चतुरसेन के उपन्यासों में इतिहास का चित्रण

लेखक

डा० विद्याभूषण भारद्वाज
एम०ए०, पी-एच०डी०

प्रकाशन प्रतिष्ठान
सुभाष बाजार, मेरठ

प्रथम संस्करण

मूल्य ४०·००

मूल्य ४० ००
मुद्रक :
श्री बनारसीदास शर्मा
व्यवस्थापक
कमल प्रेस, मेरठ

प्रकाशक एवं सम्पादक
डा० विद्याभूषण भारद्वाज
एम ए, पी-एच. डी
प्रकाशन प्रतिष्ठान
सुभाष बाजार, मेरठ

समर्पण

तुलसी-साहित्य के महापंडित,
मेरठ कॉलेज, मेरठ
के
हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं रीडर
पूज्य गुरुश्री
डा० रामप्रकाश अग्रवाल
एम० ए०, (हिन्दी, सस्कृत, अंग्रेजी) पी-एच०डी०
को
उनके अन्तेवासी का यह श्रद्धा-सुमन

विषय--सूची

भूमिका

डा० विद्याभूषण भारद्वाज का शोध-प्रबन्ध ८-९ वर्ष बाद प्रकाशित होकर ग्रन्थ-रूप में सामने आ रहा है। हिन्दी जगत अथवा विश्वविद्यालय क्षेत्र किस रूप में इसका स्वागत करेगा इसकी कुछ कल्पना हो की जा सकती है। वही मेरी प्रस्तावना की प्रेरणा है।

समस्त विद्याओं का मिलन विन्दु एक है। वही ज्ञान है। वह एक ओर अखण्ड है, जिस प्रकार रस एक ओर अखण्ड होता है। उसका एक ही अधिष्ठान है 'आत्मा'। जिस प्रकार एक अंशुमाली प्राची से प्रकट होकर अपनी असंख्य किरणों के रूप में बहुविध प्रकट होता है उसी प्रकार आत्मा की प्राची से ज्ञान का अंशुमाली अनेक विद्याओं के रूप में भासमान होता है। इन विद्याओं की मूलभूत एकता को आत्मसात करने का प्रयास ही ज्ञान को अखण्ड रूप में देखने की साधना है। उच्चतर अध्ययन के सोपानों पर आरोहण करते जाने के साथ अखण्ड-ज्ञान के दर्शन की साधना फलवती प्रतीत होने लगती है। एक ही विषय के अध्ययन में अनेक विषयों का आस्वाद अनुभव होने लगता है। शोध-कार्य भी इन्हीं उच्चतर सोपानों पर आरोहण करने का एक मार्ग है।

'आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में इतिहास का चित्रण' शीर्षक शोध कार्य उपर्युक्त आदर्श का ही एक प्रयोग है। एक शब्द में कहें तो यह शोध ग्रन्थ अन्तर्विद्यायी अध्ययन' (इंटरडिसिप्लिनरी स्टडी) का एक प्रारम्भिक प्रयास है। हिन्दी शोध कार्य के इतिहास में इस दृष्टि से इसे विशेष मान्यता प्राप्त होगी। साहित्य का सम्बन्ध दर्शन, ललित कला (संगीत, चित्र और मूर्ति), समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र नीतिशास्त्र, तथा भाषाशास्त्र के साथ समझने का प्रयास हिन्दी के कुछ शोध प्रबन्धों में किया गया है, पर इन निकटतम विद्याओं से परे अन्य मानविकी विद्याओं तथा सामाजिक विज्ञानों के साथ उसका सम्बन्ध समझने का प्रयास उस समय प्रारम्भिक अवस्था में ही था, जब कि इस शोध प्रबन्ध का लेखन आरम्भ किया गया था। साहित्य और इतिहास-विद्या के संयोजक एवं विभाजक बिन्दुओं को देखने का कुछ प्रयास जिन शोध प्रबन्धों में दृष्टि-गोचर होने लगा था उनमें से उल्लेखनीय है डा० जगदीश चन्द्र जोशी का शोध-प्रबन्ध— प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों का अध्ययन'। डा० जोशी ने अपने प्रबन्ध में प्रसाद के नाट्यशिल्प के विवेचन के साथ उनकी इतिहास-दृष्टि को भी परखने और इतिहास तथा साहित्य के सामंजस्य बिन्दुओं को देखने का प्रयत्न भी किया है। डा० भारद्वाज ने अपने प्रबन्ध में इस अन्तर्विद्यायी अध्ययन का मार्ग कुछ और प्रशस्त किया है। उन्होंने कुछ अधिक विस्तार और विशदता के साथ प्रबन्ध के प्रारम्भ में इतिहास और साहित्य के सम्मिलन बिन्दुओं को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। इसके लिये उन्होंने इतिहासकारों और साहित्य-समीक्षकों तथा भारतीय और योरपीय, दोनों ही क्षेत्रों के विद्वानों के मत उद्धृत किये हैं। यह हिन्दी शोध-परिधि के विकास में उनका प्रथम योगदान है।

आचार्य चतुरसेन का वाङ्मय विविध और व्यापक है। लेखक ने परिशिष्ट में उसकी तालिका प्रस्तुत की है। उनका उपन्यास-साहित्य स्वतन्त्र रूप से भी पर्याप्त विस्तृत है और ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या भी अधिक है, पर शोधकर्ता ने केवल पाँच ऐतिहासिक उपन्यासों को ही विश्लेषण के लिये चुना है। शोध-कार्य की गहराई और वैज्ञानिक पद्धति के निर्वाह के लिये यह आवश्यक था। ये पाँच उपन्यास भी भारतीय इतिहास के भिन्न युगों और व्यक्तियों से सम्बन्धित हैं, जिनके माध्यम से भारतीय जीवन की मूलभूत

एकता का, यहाँ के स्त्री-पुरुष-समाज और संस्कृति के बुनियादी स्वभाव का, तथा बाहरी परिस्थितियों से पड़ने वाले प्रभाव और उसकी प्रतिक्रिया का ज्ञान होता है। इसके साथ ही, उपन्यासकार चतुरसेन के जीवन-दर्शन, और भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा और उनकी राष्ट्रीय भावना का परिचय भी पाँच विवेच्य उपन्यासों के द्वारा प्राप्त हुआ है। इनमें से प्रथम उपन्यास 'वैशाली की नगरवधू' आचार्य चतुरसेन के नारी, स्त्री पुरुष सम्बन्ध, प्रेम, वासना सौंदर्य, नृत्य और संगीत तथा नारी व सदन में भारतीय राजनीति विषयक दृष्टिकोण का ज्ञापक है। द्वितीय उपन्यास 'सोमनाथ' लेखक की धर्म-सम्बन्धी मान्यताओं का सूचक है, तृतीय 'पूर्णाहुति' जातीयता और राष्ट्रीयता का निदर्शक है, चतुर्थ 'सह्याद्रि की चट्टानें' भारतीय पौरुष और स्वाभिमान का व्यंजक है और पंचम 'आलमगीर' उनकी इस्लाम विषयक भावना का उद्घोषक है। इस कृति में नायक ही ऐसा चुना गया है जिसके माध्यम से लेखक को इस्लाम धर्म के क्रूर पक्ष को ही प्रकट करने का अवसर मिला है, पर आचार्य चतुरसेन इस्लाम या मुसलमान शासकों के प्रति सर्वथा अनुदार थे, ऐसा मानना उनके प्रति अन्याय होगा। यह बात आलमगीर और महमूद के चरित्र-चित्रण के उत्तर में स्पष्ट हो जायेगी। महमूद की सहृदयता का चित्रण करके उन्होंने साहित्यकार की सामंजस्यमयी उदार-दृष्टि का परिचय दिया है। इस प्रकार ये पाँच उपन्यास भारतीय संस्कृति मानव-संस्कृति और स्वयं लेखक की निजी संस्कृति के मानों पाँच दर्पण हैं।

इस शोध-प्रबन्ध की शोध-प्रविधि उपर्युक्त सभी विशेषताओं की अपेक्षा अधिक आकर्षक, नवीन और मौलिक है। प्रारंभ में जिस 'अन्तर्विद्यायी अध्ययन' की चर्चा की गई है, उसी क्रम में इसकी शोध प्रविधि को 'अन्तर्संङ्काय प्रयोग' (इन्टरफैकल्टी एप्रोच) कहा जा सकता है। लेखक ने वैज्ञानिक प्रयोग एवं परीक्षण-विधि को निष्कर्ष प्राप्त करने के लिये अपनाया है। पहले अध्याय में उसने इतिहास और साहित्य की केवल सैद्धान्तिक तुलना की है, लेकिन बाद में पाँच अध्यायों में उसने वैज्ञानिक परीक्षण की विधि को अपनाते हुए यह दिखाने की चेष्टा की है कि किस उपन्यास में कितना इतिहास-तत्व है और कितना साहित्य-तत्व, और इस दृष्टि से किस उपन्यास को उत्कृष्ट साहित्य की कोटि में रखा जा सकता है और किस को मात्र ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करने वाले रस-हीन साहित्य की कोटि में। इसके लिये लेखक द्वारा घटनाओं एवं पात्रों का यह वर्गीकरण स्तुत्य है—पूर्ण ऐतिहासिक इतिहास-सवेतित, इतिहास अविरोधी कल्पित और कल्पनातिशायी। ग्राफ के द्वारा भी लेखक ने प्रत्येक उपन्यास की साहित्यिक-ऐतिहासिक स्थिति को स्थापित करने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार साहित्य के वैज्ञानिक मूल्यांकन और वस्तुपरक समीक्षा के लिये गणित की प्रक्रियाओं के प्रयोग का, हिन्दी की साहित्यिक-शोध में यह कदाचित् पहला ही प्रयास है। इस प्रकार का प्रयास अभिनन्दनीय है या नहीं, यह पृथक बात है। पर शोधकर्त्ता की दृष्टि, श्रम और साहस तथा नवीनता को उत्पन्न करने का उत्साह तो अवश्य प्रशंसनीय है ही। हिन्दी शोध में वैज्ञानिक प्रविधि को इस सीमा तक अपनाने का यह पहला उदाहरण है। पर मानविकी विद्याओं के अध्ययन में विज्ञान का इतना अधिक आश्रय उन विद्याओं के वैशिष्ट्य को समाप्त कर देने के खतरे से भी खाली नहीं है। फिर भी यह शोध-प्रबन्ध हिन्दी शोध और समीक्षा को एक नई दृष्टि प्रदान करता है। डा० भारद्वाज अपनी आगामी कृतियों में समीक्षा के उच्चतर प्रतिमान स्थापित करें, यही मेरी कामना है।

रामप्रकाश अग्रवाल

हिन्दी विभाग, मेरठ कालिज, मेरठ

रामनवमी, १९७२

प्राक्कथन

आचार्य चतुरसेन शास्त्री स्वयं में ही एक संस्था और साकार साहित्य थे। उन के विशाल साहित्य पर आलोचना का अभाव हिन्दी साहित्य की निष्क्रियता अथवा मंथरता का परिचायक है। विधिवत् समीक्षा या अनुसंधान का तो कहना ही क्या अभी तक उनका या उनके साहित्य का परिचय तक भी प्रकाशित नहीं है। उनकी मृत्यु के आघात ने अवश्य ही कुछ संवेदनशील हृदयों को झंकृत किया है और वह झंकार पत्र-पत्रिकाओं में ही आबद्ध होकर न रह जाए, ऐसी भी आशंका होने लगी थी। प्रस्तुत शोधकर्ता और उसके निर्देशक का ध्यान इस ओर गया जिसके परिणाम स्वरूप प्रस्तुत विषय का चयन किया गया।

साहित्यकार अपने जीवन काल में शोध का विषय नहीं बन सकता, यह मान्यता बहुत समय तक अनुसंधान-जगत् में रही। सम्भव है इसीलिए आचार्य चतुरसेन शास्त्री का साहित्य अछूता पड़ा रहा हो। सौभाग्यवश अब वह समय आ गया है कि उनके इस विशाल एवं बहुमूल्य वाङ्मय से हिन्दी तथा इतर क्षेत्रों की जनता परिचित और सुपरिचित होगी। प्रस्तुत शोध-कर्ता का प्रयास यदि इस दिशा में कुछ भी जागरूकता उत्पन्न कर सका तो सचमुच ही उसका श्रम सार्थक होगा।

आचार्य चतुरसेन को अभी तक पाठ्यक्रम में भी स्थान नहीं मिला था परन्तु जिस किसी विद्यार्थी ने उनकी एक दो कहानी अथवा एकाध उपन्यास ही पढ़ लिया, था वह उनकी ओर आकृष्ट अवश्य हुआ था। प्रस्तुत शोधकर्ता भी उन्हीं में से एक है। प्रारम्भ में उसका विचार सम्पूर्ण साहित्य को शोध का विषय बनाने का था। परन्तु यह कार्य अत्यन्त दुःसाध्य और वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से असमीचीन था। इसी आधार पर उनके साहित्य के केवल एक पक्ष और उस पक्ष के भी कुछ संकलित अंश को ही अध्ययन और अनुसंधान का आधार बनाया गया है। लखनऊ विश्वविद्यालय के शोधिच्छु श्री कुमार कपूर आचार्य चतुरसेन के सम्पूर्ण कथा-साहित्य पर शोध-प्रबन्ध लिख रहे हैं—इतना विशाल उनका कथा-साहित्य और शोध-प्रबन्ध की सीमित परिधि।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को प्रस्तावना, उपसंहार एवं परिशिष्ट के अतिरिक्त छ अध्यायों में बाँटा गया है। प्रस्तावना में आचार्य चतुरसेन के साहित्य का संक्षिप्त परिचय और उनके उस विशाल वाङ्मय में ऐतिहासिक उपन्यासों का स्थान दिखलाने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही इस ओर भी संकेत किया गया है कि उनके व्यक्तित्व में पाण्डित्य और सहृदयता अथवा साहित्याचार्यत्व एवं सृजन क्षमता का एक साथ सामंजस्य हुआ था। इसी प्रसंग में उनके इतिहास-सम्बन्धी दृष्टिकोण का उल्लेख और उनकी इतिहास-रस की कल्पना की ओर भी संकेत किया गया है। साथ ही विषय की मौलिकता और परिधि का औचित्य भी इसी अध्याय में बतलाया गया है।

पहले अध्याय में सिद्धान्त-पक्ष का विवेचन है। इसमें प्राचीन संस्कृताचार्यों के दृष्टिकोण से, आधुनिक भारतीय साहित्यिकों के दृष्टिकोण से एवं अंग्रेजी विद्वानों के दृष्टिकोण से, साहित्य की परिभाषा पर विचार किया गया है, साथ ही इतिहास की परिभाषा पर विचार किया गया है। डा० जगदीशचन्द्र जोशी ने इतिहास का ध्रुव और चल

स्वरूपों में वर्गीकरण करके ये दो नवीन मौलिक नाम (ध्रुव इतिहास और चल इतिहास) दिए हैं। इस नामकरण की अनुपयुक्तता बतलाते हुए शोधकर्ता ने इतिहास के दो नवीन स्वरूप बतलाए हैं— गवेषणापरक इतिहास और अनुमानपरक इतिहास। सम्भवतया इतिहास के इस प्रकार के नामकरण अभी तक न किये गये हों। तत्पश्चात साहित्य और इतिहास के अन्तर एवं साम्य पर प्रकाश डाला गया है तथा ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा देकर ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास में अन्तर एवं साम्य स्पष्ट किया गया है।

दूसरा अध्याय बौद्धकालीन इतिहास और 'वैशाली की नगरवधू', तीसरा अध्याय गुजरात का इतिहास और 'सोमनाथ,' चौथा अध्याय राजपूतों का इतिहास और 'पूर्णाहुति' पाँचवा अध्याय मराठों का इतिहास और 'सह्याद्रि की चट्टानें,' छठा अध्याय मुगलों का इतिहास और 'आलमगीर' से सम्बन्धित है। उपर्युक्त पाँचों अध्यायों का विवेचन-क्रम एक सा रहा है। इनमें से प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में तत्कालीन भारतवर्ष का मानचित्र दिया है फिर क्रमशः उपन्यास का संक्षिप्त कथानक, तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा, उपन्यास में ऐतिहासिक तत्व, उपन्यास में कल्पना, उपन्यास का घटना-विश्लेषण, उपन्यास के घटना विश्लेषण का रेखा चित्र, रेखा-चित्र की व्याख्या, उपन्यास का पात्र विश्लेषण, उपन्यास के पात्र विश्लेषण का रेखा चित्र, रेखा-चित्र की व्याख्या, लेखक का उद्देश्य और निष्कर्ष दिया गया है।

अपने इस शोध प्रबन्ध को मैंने सच्चे अर्थ में वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया है। और इस विवेचन की वैज्ञानिकता के लिये जो रेखाचित्रों का आधार लिया गया है वह मौलिक और नवीन पद्धति कही जा सकती है। किसी साहित्यिक कृति का इस प्रकार का परिशीलन मेरे देखने में नहीं आया है, इसीलिए मैंने एक नवीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपन्यास के ऐतिहासिक एवं कल्पना-तत्वों को देखा है। उपन्यास में इतिहास के तत्वों को मैंने कई विधाओं से निकाला है। सर्वप्रथम उपन्यास में जितना भी ऐतिहासिक तत्व था उसे विभिन्न शीर्षकों में बाँटकर, इतिहास की कसौटी पर कसा है। दूसरे प्रकार का विश्लेषण प्रस्तुत करने के लिए मैंने उपन्यास के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक की समस्त घटनाओं का क्रमशः विश्लेषण करके चार भागों में वर्गीकरण किया है। वर्गीकरण के चार भाग इस प्रकार हैं— (१) पूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ, जो इतिहास में जैसी की तैसी मिलती हैं और लेखक ने उन पर अपनी कल्पना का आवरण चढ़ाने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया है। (२) इतिहास संकेतित घटनाएँ, जिनका इतिहास में संकेत-मात्र मिलता है परन्तु उपन्यासकार ने उन्हें विकसित कर दिया है और इस प्रकार ऐतिहासिक सत्य को कोई क्षति पहुँचाये बिना रमणीयता प्रदान की है। (३) कल्पित किन्तु इतिहास-अविरोधी घटनाएँ, जो लेखक की कल्पना की सृष्टि हैं और मुख्यतया जिनके आधार पर उसने इतिहास में रसात्मकता का संचार करने का प्रयास किया है और उनके सत्य की सुरक्षा करते हुए उस को साहित्यिक रूप प्रदान किया है। (४) कल्पनातिगामी घटनाएँ, जो तत्कालीन इतिहास का विरोध करती हैं या लेखक के पूर्वाग्रह के फलस्वरूप उद्भूत हुई हैं। यह वैकल्पिक तत्व ऐतिहासिक उपन्यास में आना अनिवार्य ही है क्योंकि एक ओर तो इसके बिना इतिहास में रस का संचार नहीं किया जा सकता और दूसरी ओर ऐसी ही घटनाओं के द्वारा लेखक उस इतिहास के विषय में निजी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

यह वर्गीकरण चार्ट में दिखाया गया है। इसके पश्चात् इस वर्गीकरण को मैंने ग्राफ में दिखाया है। प्रत्येक रेखाचित्र में एक रेखा है जो घटनाओं को दो भागों में विभाजित करती है। सामान्यतः नीचे वाले भाग (पूर्ण ऐतिहासिक तथा इतिहास संकेतित) को उपन्यास में इतिवृत्त प्रस्तुत करने वाला अंश माना है और ऊपर के भाग (कल्पित और कल्पनातिशायी) को उपन्यास में रोचकता लाने वाला तत्व माना है। इसके अपवाद हो सकते हैं क्योंकि कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ काल्पनिक घटनाओं से भी अधिक रोचक हैं। परन्तु वे घटनाएँ प्रायः सुनी-सुनाई होती हैं, इसलिए उनकी रोचकता कम हो जाती है। साधारणतः वह चित्रण अधिक मनोहारी होता है जो इतिहास की कसौटी पर खरा तो न उतरे पर इतिहास से उसका विरोध भी न हो, वे इतिहास के पोषक तत्वों के रूप में आएँ। उदाहरणार्थ शिवाजी द्वारा अफजल खाँ के वध की घटना सर्वविदित है। इस घटना की सीमा में प्रवेश करते ही पाठक समझ लेता है कि आगे क्या होगा। इस घटना में पाठक को विशेष कुतूहल न रहेगा। कुतूहल कथा-साहित्य का प्राण है, इसलिए कुतूहल के अभाव में कथा की रोचकता में कमी आ जाएगी। हाँ, यदि कुछ ऐसी घटनाओं का निर्माण किया जाए जो कल्पित हो परन्तु शिवाजी की बुद्धिमत्ता, उनके शौर्य आदि के अनुरूप हो तो निश्चय ही इन घटनाओं में अधिक रमणीयता झलकेगी। यही कारण है कि रेखा के ऊपर के भाग को मैंने उपन्यास में रोचकता लाने वाले तत्व के अन्तर्गत लिया है।

तत्पश्चात् रेखाचित्र की व्याख्या की है। इतिहास की मूल घटनाओं में कितनी पूर्ण ऐतिहासिक हैं, कितनी इतिहास संकेतित हैं आदि के आधार पर प्रत्येक प्रकार की घटनाओं का प्रतिशत निकाला है और इस प्रतिशत के आधार पर उपन्यास में रमणीयता तत्व का आकलन किया है। रेखाचित्र की गति (आरोह, अवरोह) पर दृष्टि डालने से उपन्यास की सम्पूर्ण गति का परिचय मिल जाता है। उपन्यास बिना पढ़े ही इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि यह उपन्यास पूर्ण ऐतिहासिक या ऐतिहासिक या कल्पित है अथवा रोचक है या नीरस है।

उपन्यास में आये पात्रों का भी उपर्युक्त रीति से वर्गीकरण करके चार्ट बनाया है उसे ग्राफ में रेखाचित्र के माध्यम से दिखाया है तथा प्रतिशत निकाला है। घटनाओं और पात्रों के प्रतिशत को जोड़कर, उसका अनुपात निकालकर उपन्यास का निष्कर्ष निकाला है।

इसके पश्चात् लेखक के उद्देश्य का वर्णन किया गया है और अध्याय के अन्त में अध्याय का निष्कर्ष दिया गया है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि दूसरे से छठे अध्याय तक पाँचों अध्यायों की रूप-रेखा एवं वर्णन क्रम एक ही सा रहा है।

सातवाँ अध्याय उपसंहार का है जिसमें आचार्य श्री के ऐतिहासिक उपन्यासों की प्रमुख प्रवृत्तियों का समाहार किया गया है और साथ ही सब उपन्यासों का सम्मिलित रूप से दृष्टि में रखते हुए उन उपन्यासों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए, उन प्रवृत्तियों की पुष्टि की गई है। संक्षेप में हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में आचार्य श्री का स्थान निर्धारित किया है।

प्रत्येक शोधकर्त्ता मौलिक गवेषणा अथवा मौलिक अध्ययन-पद्धति का उत्साह लेकर अग्रसर होता है। हो सकता है यह मौलिकता सभी को रुचिकर और समीचीन प्रतीत न हो। मैंने जो विज्ञान के विद्यार्थी के अनुरूप चार्ट एवं ग्राफ-प्रणाली का आश्रय लिया है वह एक नवीन प्रयोग अथवा अध्ययन को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न एवं साहस है। मेरा विश्वास है कि अनुसंधान कार्य में, जिसमें वैज्ञानिकता की अत्यधिक आवश्यकता मानी जाती है इस प्रकार का अनुशीलन नीर-क्षीर विवेक से परिपूर्ण होगा।

सम्पूर्ण प्रबन्ध लिखने के अनन्तर यह अनुभव किया गया कि आचार्य चतुरसेन शास्त्री की जीवनी और उनके साहित्य का परिचय भी संक्षिप्त रूप में दिया जाना आवश्यक है। शोध प्रबन्ध में इसके लिए कोई स्थान न था और बलपूर्वक स्थान देने से विषयान्तर होना अवश्यम्भावी था। अतः उसे अंत में परिशिष्ट के रूप में जोड़ना उपयुक्त समझा गया। परिशिष्ट के पूर्वार्द्ध में आचार्य चतुरसेन शास्त्री का जीवन परिचय संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। उत्तरार्द्ध में उनके वाङ्मय का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस का दिग्दर्शन रेखाचित्र से भी कराया गया है। इस पर दृष्टिपात करने से उनके जीवन की साहित्य निर्माण की सम्पूर्ण गतिविधि का स्पष्ट परिचय मिलता है।

यह शोध-प्रबन्ध मेरे तीन वर्षों के अहर्निश परिश्रम का प्रतिफल है। सर्वप्रथम मुझे, मेरठ कालेज के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० रामप्रकाश अग्रवाल के प्रति, श्रद्धा-सुमन अर्पित करने चाहिएँ जिनके निर्देशन, कठिन परिश्रम और आशीर्वाद से इस शोध-प्रबन्ध की सम्भूति हुई। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी संस्कृत विभाग के अध्यक्ष परम श्रद्धास्पद डा० हरवंशलाल शर्मा के प्रति मैं नतमस्तक हूँ, जिन्होंने इस शोध-प्रबन्ध में अनेक बहुमूल्य सुझाव दिए हैं। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के रीडर डा० परमानन्द शास्त्री एवं मेरठ कालेज मेरठ के हिन्दी-विभाग के वरिष्ठ प्रवक्ता डा० विष्णुशरण 'इन्दु,' मित्रद्वय ऐसे हैं जो मेरे लिए बैसाखी के समान सदैव रहे हैं। शोध-छात्रा सुश्री स्वर्णकान्ता एम०ए०, एम०लिट० (अब डाक्टर) के लिए कुछ लिखना उनके सहयोग का अवमूल्यन करना है। ऊपर जिसे मैंने अपने शोध-प्रबन्ध की वैज्ञानिक पद्धति कहा है, वह वस्तुतः उन्हीं की देन है। स्वर्गीय आचार्यश्री की सहधर्मिणी आदरणीया सुश्री कमलकिशोरी चतुरसेन एवं आचार्य श्री के अनुज श्री चन्द्रसेन भी, कृतज्ञता-ज्ञापन की इस परिधि में आते हैं, जिनकी सहायता के बिना इस शोध-प्रबन्ध की सृष्टि दुःसाध्य थी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय प्रयाग, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, श्री मुंशी जी के भारतीय विद्या भवन बम्बई, दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी दिल्ली आदि के अधिकारियों के प्रति भी मैं श्रद्धावनत हूँ, जिन्होंने मुझे अत्यधिक सहायता दी।

कृतज्ञता-ज्ञापन शोध-प्रबन्धों की परम्परा का संश्लिष्ट अंग बन गया है। कृतज्ञता-ज्ञापन से कृतज्ञ कृपालुओं के ऋण से उऋण सा हो जाता है। मेरा विश्वास है कि इससे कृपालुओं की कृपा का अवमूल्यन हो जाता है। मैं भी इस परम्परा का अतिक्रमण न कर सका और इस पाश्चात्य शैली के प्रवाह में बह गया। अन्त में मैं एक बार फिर अपने सहयोगियों की कृपा का आत्मा से सम्मान करता हूँ।

रामनवमी– १९७२

विद्याभूषण भारद्वाज

प्रस्तावना

आचार्य चतुरसेन शास्त्री हिन्दी के उन महान साहित्यकारों में हैं जिनके लिखित साहित्य के परिमाण, गुण और विविधता को देखकर भावी पीढ़ियाँ कदाचित् यह विश्वास नहीं कर सकेंगी कि यह एक व्यक्ति का साहित्य है और उस समय शायद वे और उनका साहित्य भी एक किंवदन्ती के विषय बन जायेंगे। सूर के सवा लाख पद, एक रात्रि में रामचन्द्रिका की रचना आदि बातें आज अविश्वसनीय बन गई हैं। परन्तु आचार्य श्री का साहित्य पुनः यह विश्वास दिलाता है कि ये सजीव और प्रत्यक्ष वास्तविकताएँ थीं। आचार्य चतुरसेन और उनके साहित्य के किंवदन्ती बन जाने की आशंका इसलिये और भी होती है कि इतना विपुल साहित्य और इतनी लम्बी साहित्य साधना के होते हुए भी उनका परिचयात्मक या आलोचनात्मक साहित्य आज तक नगण्य है। उनकी मृत्यु पर ही कुछ हल्की सी हलचल या सक्रियता दिखलाई पड़ी थी और कहा नहीं जा सकता कि उनके साहित्य की यथेष्ट समीक्षा हिन्दी-साहित्य में शोध में कब सम्पन्न हो सकेगी।

जिस लेखक का परिचय तक न लिखा गया हो, जिस पर समीक्षा की साधारण पंक्तियाँ भी अनुपलब्ध हों उस पर शोध सामग्री जैसी वस्तु प्राप्त होना तो सर्वथा असम्भव ही है। समीक्षात्मक सामग्री शोध का पथ प्रशस्त करती है परन्तु आचार्य श्री के सम्बन्ध में विपरीत बात ही चरितार्थ होती दिखाई देती है। उन पर पहले अनुसंधान होगा उन परिस्थितियों का विवेचन किया जायगा जिनमें उन्होंने ऐसे विशाल आकार के साहित्य-देवता का निर्माण किया, जिन संघर्षों से जूझकर भारतीय साहित्य और संस्कृति और सस्कृति के विविध पक्षों का आलोक उद्घाटित किया, धर्म दर्शन इतिहास और साहित्य आदि विद्याओं की निगूढ़ सम्पत्ति जनता के लिये सुलभ की। भारतीय इतिहास की गहन तिमिराच्छादित कन्दराओं में साहित्य का दीपक जलाया और तब इन अनुसंधानित तथ्यों के आधार पर समीक्षकों के नेत्र इस उपेक्षित साहित्य-समृद्धि के प्रति आकर्षित होंगे।

लगभग दो सौ ग्रन्थों के विशाल वाङ्मय में आचार्य चतुरसेन ने भारतीय जीवन के सभी पक्षों का स्पर्श करने की चेष्टा की है। सबसे अधिक ख्याति कदाचित् उन्हें अपने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ तथा कथा-साहित्य और उसमें भी ऐतिहासिक उपन्यासों के आधार पर मिलती है। इसीलिए सर्वप्रथम उनके ऐतिहासिक उपन्यासों को ही शोध और उसके अन्तर्गत यथा-आवश्यक समीक्षा के लिए सकलित किया गया है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या भी कम नहीं है परन्तु इन सभी को एक ही

प्रबन्ध के अन्तर्गत समेटना असम्भव भी था और अनावश्यक भी। इसके अनेक कारण हैं। प्रथम तो यह कि विषय का अधिक विस्तार होने से शोध-कर्ता यथेष्ट दोहन नहीं कर सकता दूसरी बात यह है कि समस्त एतिहासिक उपन्यासों में कुछ मूलभूत प्रवृत्तियों का होना स्वाभाविक है। और वे मूलभूत प्रवृत्तियाँ कुछ थोड़े से उपन्यासों के आधार पर भी पहचानी जा सकती हैं। तीसरी बात यह भी है कि सारे तथाकथित एतिहासिक उपन्यास पूर्णतया ऐतिहासिक नहीं कहे जा सकते। इसीलिये उनके पाँच श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों को जोकि भारतीय इतिहास के पाँच कालों से सम्बन्धित हैं, जिनके द्वारा भारतीय इतिहास-पुरुष का आरोहण क्रमिक रूप में देखा जा सकता है और जिनके द्वारा साहित्य-शिल्पी की प्रमुख प्रवृत्तियों को समझा जा सकता है, चुन लिया गया है। ये पाँच उपन्यास हैं — (१) वैशाली की नगरवधू (५०० ई० पूर्व बौद्धकालीन), (२) सोमनाथ (ग्यारहवीं शताब्दी-कालीन—महमूद गजनवी के सोमनाथ पर आक्रमण से सम्बन्धित) (३) पूर्णाहुति (तेरहवीं शताब्दी—कालीन—पृथ्वीराज चौहान से सम्बन्धित), (४) सह्याद्रि की चट्टानें (सत्रहवीं शताब्दी—कालीन-शिवाजी से सम्बन्धित), (५) आलमगीर (१७वीं शताब्दी कालीन—शाहजहाँ, औरंगजेब से सम्बन्धित)।

इन पाँच तथा अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन तथा आस्वादन करने के उपरान्त आचार्य चतुरसेन का मौलिक योगदान जो हिन्दी साहित्य के लिये प्रतीत होता है। वह है उनकी इन रचनाओं द्वारा आविर्भूत इतिहास-रस की मौलिक कल्पना। इस इतिहास-रस के विषय में उन्होंने स्वयं भी 'वैशाली की नगरवधू' के अन्त में एक शास्त्रीय परन्तु संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया है जिसके आधार पर उनके इस दृष्टिकोण का निश्चय ही, भावी हिन्दी-साहित्य-शास्त्र में, विकास और प्रकाशन होगा। उनके इस इतिहास-रस को प्रस्तुत शोध-कर्त्ता ने भी अपने इस सीमित प्रयास में समझने का प्रयत्न किया है।

इतिहास के अनुशीलन से प्राप्त आस्वादन को उसने एक विशिष्ट आस्वादन मानकर भारतीय साहित्य-शास्त्र में स्थान देने का सफल प्रयत्न किया है। उनके ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास-रस के विधान में सफल प्रयोग हैं, जिनमें उसके नश्वर घटनाओं में प्रवाहित अनश्वरता की धारा अर्थात् कुछ चिरंतन सत्यों के दर्शन कराये हैं, अतीत को रमणीय रूप में प्रस्तुत किया है। उन व्यक्तियों स्थानों और घटनाओं को समीप लाकर उनसे हमारा तादात्म्य स्थापित किया है और इस प्रकार इतिहास को साहित्य का चिर नवीन परिच्छद प्रदान किया है। इस इतिहास-रस के अन्तर्गत जो मुख्य सिद्धान्त लेखक ने स्थापित करने की चेष्टा की है वह है मानव जगत में नारी प्रणय का महत्व, जो कि सूक्ष्म रूप में मानव-हृदय के भीतर हृदय विप्लव बनकर युद्ध-भूमि में राष्ट्र-विप्लव के नाम से स्थूल रूप बनकर प्रकट होता है। आचार्य चतुरसेन के ही शब्दों में, (इस अनिर्दिष्ट 'इतिहास-रस' के उदय का एक और कारण भी है। इसमें रस का एक स्रोत मिश्रित है। वह साधारण भी है और असाधारण भी। वह है नारी-प्रणय। जहाँ इतिहास-रस का प्रादुर्भाव होता है वहाँ प्रायः यही देखने को मिलता है कि हृदय-विप्लव के बाद राष्ट्र-विप्लव हुआ। इतिहास के अनेक असाधारण नरवरों ने नारी की माया में वशीभूत होकर जीवन नष्ट किया

है। मानव-कुल के जीवन के ऐसे करुण भग्नावशेषों से मसार-पथ भरा पड़ा है। लेखक जब जीवन-मग की इन घटनाओं पर विप्रलम्भ-शृंगार और इतिहास-रस' का मिश्रण करके भैरव संहार की भेरी बजाता है, तो कोटि-कोटि जनपद उन्मत्त, उद्भ्रान्त होकर लोट-पोट हो जाता है)'[1] आगे के अध्यायों में लेखक के साहित्य में से सकलित पाँच उपन्यासों के आधार पर शोध-कर्ता ने इतिहास-रस के विधान में आचार्य श्री की सफलता को आँकने का परिश्चित प्रयत्न किया है, और इस आधार पर चतुरसेन का यह महत्व भी प्रकट किया है कि वे एक साथ ही साहित्यकार और साहित्याचार्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे। वे स्वयं ही इतिहास-रस के प्रथम प्रयोक्ता और स्वयं ही प्रथम प्रस्तोता हैं, जैसे कि भारतेन्दु जी हिन्दी के प्रथम नाटककार थे और प्रथम नाट्याचार्य भी। एक साथ ही हिन्दी-साहित्य और भाषा का इतिहास और साहित्य के रूप में भारतीय जगत का इतिहास लिखने वाला व्यक्ति निःसंदेह ही साहित्याचार्यत्व की गरिमा से मंडित और साहित्य-स्रष्टा की भावुकता और कल्पना प्रवणता से विभूषित था।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में आचार्य जी के सृजन-कौशल और साहित्य-शिल्प को समझने के साथ ही उनके इतिहास विषयक दृष्टिकोण और उनकी ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रवृत्ति एवं क्षमता को भी उद्घाटित करने का प्रयत्न किया गया है। इन उपन्यासों में उनका इतिहास-मनीषी और अनुसंधाता का रूप भी व्यक्त होता है। अपने ऐतिहासिक दृष्टिकोण को उन्होंने स्वयं भी अपने उपन्यासों की भूमिकाओं में समझाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार उनके उपन्यासों में सिद्धान्त (भूमिकाओं एवं उपसंहारों में) और व्यवहार (उपन्यासों की रचना में) दोनों ही मिल जाते हैं और समीक्षा तथा अनुसंधान की थोड़ी-सी सामग्री इसी रूप में अनुसंधान-कर्ता को प्राप्त हुई है।

अनुसंधान की दृष्टि से प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित पूर्ववर्ती अध्ययन दो भागों में विभाजित किया जा सकता है एक तो चतुरसेन-सम्बन्धी अध्ययन और दूसरा ऐतिहासिक-साहित्य (उपन्यास, नाटक आदि) से सम्बन्धित अध्ययन। जैसा कि हम पिछले अनुच्छेदों में देख चुके हैं कि आचार्य चतुरसेन का अध्ययन और उस पर अनुसंधान का कार्य अभी तक बिल्कुल नहीं हुआ है। हाँ ऐतिहासिक-साहित्य पर अवश्य कुछ कार्य हुआ है और वह भी प्रायः नगण्य ही है क्योंकि अभी तक इस प्रकार के साहित्य का न तो कोई वर्गीकरण हुआ है न इस प्रकार के साहित्य के मूल्यांकन के कोई शास्त्रीय आधार ही प्रस्तुत किये गये हैं। फिर भी इतिहास-निष्ठ साहित्य पर जितना भी अल्प-कार्य हुआ है, उसकी रूप-रेखा इस प्रकार है—शोध के क्षेत्र में इस प्रकार के दो ही ग्रंथ उल्लेखनीय हैं, उनमें से प्रथम है डा० जगदीशचन्द्र जोशी का 'प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक' और दूसरा है डा० शशिभूषण सिंहल का 'उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा'। डा० जोशी ने इतिहास और साहित्य के सम्बन्ध का किंचित विवेचन करने का प्रयास किया है और शेक्सपियर के ऐतिहासिक नाटकों को लक्षित करते हुए मूल्यांकन का कुछ शास्त्रीय आधार निश्चित करने का प्रयास किया है। उनका विषय नाटकों से सम्बन्धित है अतः इतिहास-निष्ठ-साहित्य के

१—वैशाली की नगरवधू (भूमि)—पृष्ठ ७३३।

मूल्यांकन का शास्त्रीय आधार प्रस्तुत करने के प्रयत्न के अतिरिक्त कोई अन्य दिशा-निर्देश उनके शोध प्रबन्ध से प्राप्त नहीं होता। डा० सिंहल का प्रबन्ध श्री वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों से सम्बन्धित है, परन्तु उन्होंने इतिहास-निष्ठ-साहित्य के मूल्यांकन का कोई आधार बनाने की चेष्टा नहीं की है। फिर भी ऐतिहासिक उपन्यास की परख के लिये उनके बनाए मार्ग से प्रस्तुत शोध-कर्त्ता को अवश्य कुछ सहायता मिली। इसके अतिरिक्त नागपुर विश्वविद्यालय से डा० गोविन्दप्रसाद शर्मा को १९५८ में 'हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन' विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि मिली है। उन्होंने भी उपर्युक्त अभाव की पूर्ति नहीं की है और ना ही इनका शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हुआ है। एक और कृति उल्लेखनीय है डा० गोपीनाथ तिवारी की ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार। इस लघु पुस्तिका में लेखक ने हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकारों की सूची और उनका संक्षिप्त परिचय-मात्र प्रस्तुत किया है। परन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों की शास्त्रीय समीक्षा की ओर वे भी दत्त चित्त नहीं हुये हैं। इस पर भी उनकी यह कृति हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का विधिवत् अनुशीलन करने के लिये प्रेरणा प्रदान करती है और एक प्रकार से इस विषय का नेतृत्व करती है।

प्रस्तुत शोध-कर्त्ता ने अपने प्रयास में एक ओर तो चतुरसेन-साहित्य के अध्ययन का पथ प्रशस्त करने का प्रयत्न किया है और दूसरी ओर इतिहास-निष्ठ अथवा इतिहास पर आधारित साहित्य के मूल्यांकन का शास्त्रीय आधार अपने पूर्ववर्ती लेखकों से कहीं अधिक स्पष्ट रूप में और अधिक परिमाण में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इसी आधार पर वह यह दावा कर सकता है कि उसने अपने विषय से सम्बन्धित अध्ययन को अग्रसर किया है और भावी अनुसंधित्सुओं के लिये नवीन दिशा-निर्देश किया है। यही उसका सर्वाधिक मौलिक योगदान है।

—·०·—

१

साहित्य और इतिहास

: १ . साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति

सहितस्य भावः साहित्यम्—सहित का भाव साहित्य कहलाता है। सपूर्वक 'धा' धातु से 'क्त' प्रत्यय करने पर 'दधातेर्हि' अष्टाध्यायी के इस सूत्र से 'धा' को 'हि' आदेश होने पर 'सहित' शब्द व्युत्पन्न हुआ। अर्थात् 'सम्' उपसर्ग और 'धा' धातु से मिलकर साहित्य शब्द बना है।

अब प्रश्न उठता है कि 'सहित' शब्द का अर्थ क्या है। सहित शब्द के दो अर्थ होते हैं १. सह=साथ होना, २ स+हितम्=हितेन अर्थात् हित के साथ होना, जिसमें हित का सम्पादन हो। सहित शब्द के उपर्युक्त दोनों अर्थों की व्याख्या विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से की है जिससे साहित्य शब्द निर्मित होता है। बाबू गुलाबराय के मतानुसार—*"सह साथ होने के भाव की प्रधानता देते हुए हम कहेंगे कि जहाँ शब्द और अर्थ, विचार और भाव का, परस्परानुकूलता के साथ सहभाव हो वही साहित्य है। शब्द और अर्थ का सहित होना स्वाभाविक रूप से ही माना गया।"*[१]

"साहित्य का अर्थ 'हितेन सह सहित' लगाते हुए हम कहेंगे कि साहित्य वही है जिससे मानवहित का सम्पादन हो। हित उसे भी कहते हैं जिससे बुद्ध बने, बुद्ध लाभ हो—'विदधातीति हितम्' आनन्द भी एक लाभ है।"[२]

"सहित का अर्थ है दो का योग, अथवा धीयते जो धारण किया जाये वह है हित। हित के साथ जो रहे वह है सहित और उसका भाव है साहित्य। अथवा सहयोग में अन्वित भाव साहित्य है। 'सहितयोर्भाव साहित्यम' के आधार पर कहा गया है कि शब्द और अर्थ दोनों के मेल को साहित्य कहते हैं।"[३]

"संस्कृत के सहित शब्द का अर्थ है साथ और उसमें भाववाचक प्रत्यय जोड़ देने पर साहित्य शब्द की सिद्धि होती है, जिसका आशय होता है, समन्वय, साहचर्य अर्थात दो तत्वों की सहचरी सत्ता।······उस (साहित्य) की प्रमुख-वृत्ति हमारे मनोवेगों को तरंगित करना है। और मनोवेगों के तरंगित होने पर बाह्य जगत के साथ ऐसा रागात्मक सम्बन्ध स्थापित होता है जो अपनी चरमकोटि पर पहुँचकर उस जगत् के साथ हमारा ऐक्य स्थापित कर देता है। इस अनुभाव्य और अनुभावक के तादात्म्य को ही रस कहते हैं और इस रस वाले वाक्य को ही हमारे साहित्यशास्त्रियों ने काव्य अर्थात् साहित्य कहा है।"[४]

'सहितस्यभाव. साहित्यम्' की व्याख्या करते हुए कवीन्द्र रवीन्द्र ने कहा है—"सहित शब्द से साहित्य की उत्पत्ति होती है अतएव धातुगत अर्थ करने पर साहित्य शब्द में मिलन का एक भाव दृष्टिगोचर होता है। वह केवल भाव का भाव के साथ, भाषा का

१. बाबू गुलाबराय : काव्य के रूप पृ० २। २. वही पृ० ३।

३. डा० दशरथ ओझा : समीक्षा शास्त्र पृ० ३।

४. डा० सूर्यकान्त : साहित्य मीमांसा, पृ० २०।

भाषा के साथ, ग्रन्थ का ग्रन्थ के साथ मिलन है। यही नहीं, वरन वह बतलाता है कि मनुष्य के साथ मनुष्य का अतीत के साथ वर्तमान का दूर के साथ निकट का अत्यन्त अंतरंग योग-साधन साहित्य के सिवाय और किसी के द्वारा संभव नहीं। जिस देश में साहित्य का अभाव है उस देश के लोग सजीव बन्धन से बँधे नहीं विच्छिन्न होते हैं।'[1]

इस सहितता का एक और भी आशय है जिससे साहित्य की व्यापकता और गौरव प्रकट होता है। सहितता का अर्थ है सम्मिलन, सामजस्य और समन्वय। साहित्य वास्तव मे वह सागर है जिसमे नाना विद्यारूपी सरिताओं का संगम होता है। वास्तव में साहित्य का पूर्ण-गौरव शक्ति और उत्कर्ष है। साहित्य की संज्ञा से विभूषित होने का उसका अधिकार ही वहाँ प्रकट होता है जहाँ कि उसमें समस्त विद्याओं और शास्त्रों का पूर्ण सामजस्य दिखलाई पड़े। हिन्दी में रामचरितमानस एक ऐसा ही आदर्श साहित्य कहा जा सकता है। बिहारी-सतसई में और दोहावली से ज्योतिष गणित, इतिहास पुराण, विज्ञान, वैद्यक, ताम्रकला, काष्ठकला, लौहकला, स्वर्णकारिता रसायन विद्या आदि के अनेकानेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ये समस्त विद्याएँ और शास्त्र साहित्य में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनो ही रूप मे दृष्टिगोचर होते हैं अथवा यूँ कहना चाहिये कि साहित्य का चमत्कारिक संस्पर्श पाते ही इनमे एक अद्भुत रमणीयता का संचार हो जाता है।

२ साहित्य की परिभाषा

१-संस्कृताचार्यों के मतानुसार

प्राचीनकाल मे साहित्य या साहित्यशास्त्र उसे कहते थे जो काव्य का सांगोपांग निरूपण करता था। इसे काव्यानुशासन की भी संज्ञा दी गई है। काव्यमीमांसा में राजशेखर ने इसे 'साहित्य-विद्या' के नाम से पुकारा है।

वक्रोक्ति जीवितकार आचार्य कुन्तक ने साहित्य का लक्षण बताते हुए कहा है — "शब्द और अर्थ के शोभाशाली सम्मिलन को साहित्य कहते हैं। यह सम्बन्ध तभी मनोहारी बनता है जब कवि उपर्युक्त स्थान पर उपयुक्त शब्द न अधिक, न न्यून रखकर अपनी रचना को शोभाशाली बनाता है।"[2]

काव्यमीमांसाकार ने शब्द और अर्थ को सहभाव से यथावत् रखने वाली विद्या को साहित्य-विद्या कहा है।[3]

श्राद्धविवेककार ने साहित्य के विषय मे कहा है कि परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा रखते हुए तुल्य-रूप वालों का एक साथ, एक क्रिया में संलग्न होना साहित्य कहलाता है।[4]

शब्दशक्ति प्रकाशिका के लेखक ने भी साहित्य के लक्षण के विषय में कुछ इसी प्रकार की बात कही है कि तुल्य ही एक क्रिया से सम्बन्धित बुद्धि-विशेष अथवा बुद्धि-

१. हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई : साहित्य-परिचय, पृ० १२

२ साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रति काप्यसौ।
अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थितिः ॥ वक्रोक्ति जीवितम् १. १७।

३. शब्दार्थयोर्यथावत्सहभावेन विद्या साहित्यविद्या।
काव्यमीमांसा द्वितीय अध्याय।

४. परस्परसापेक्षाणां तुल्यरूपाणां युगपदेकक्रियान्वयित्वं साहित्यम्।
(श्राद्धविवेक) शब्द कल्पद्रुम पंचम् काण्ड, पृ० ३,४।

वाङ्मय साहित्य होता है।[1]

'शब्दकल्पद्रुम' कार की साहित्य की व्याख्या इस प्रकार है- मनुष्यकृत श्लोकमय ग्रन्थ-विशेष, साहित्य कहलाता है।[2]

व्याकरण एवं तर्क के अनुसार 'साहित्य' प्रारम्भ में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध सूचित करता था। बाद में चलकर साहित्य काव्य के उन सभी गुणों का परिचायक हो गया जो काव्य को काव्य के अतिरिक्त शेष साहित्य से पृथक करते हैं। इस प्रकार 'साहित्य' 'काव्य' का पर्यायवाची बन गया।

साहित्य की प्रक्रिया कितनी रहस्यमय है इसी को ध्यान में रखकर ध्वन्यालोक-कार आनन्दवर्धनाचार्य ने कहा है कि इस अपार काव्य रूपी संसार में कवि ही ब्रह्मा है। जगत् उसे जिस प्रकार का रुचता है, वैसा ही उस जगत् को परिवर्तित हो जाना पड़ता है।[3]

"इस जगत का दीखने वाले प्रकार से, कवि को रुचने वाले प्रकार में बदल जाना ही साहित्य का सार है। और इसी प्रक्रिया को पिछले आचार्यों ने रस नाम से पुकारा है।"[4]

भर्तृहरि तो साहित्य-शून्य पुरुष को मानव की संज्ञा देने को ही तैयार नहीं है वे उसे बिना पूँछ और सींग वाला पशु मानते हैं।[5]

शब्द और अर्थ के निम्नलिखित धर्मों को भोजराज ने 'शृंगार-प्रकाश' में साहित्य कहा है –

१–अभिधा, २–विवक्षा, ३–अविभाग, ४–व्यपेक्षा, ५–सामर्थ्य, ६–अन्वय, ७–एकार्थी-भाव, ८–दोषाभाव, ९–गुण-सम्बन्ध, १०–अलंकार, ११–योग।

शारदातनय ने इन्हें काव्य-उपकरण माना है और इनका समर्थन किया है।

भामह ने काव्यादर्श में कहा है कि शब्द और अर्थ दोनों से साहित्य बनता है।[6] इस सूत्र ने एक विवाद को जन्म दिया कि शब्द प्राधान्य माना जाए या अर्थ-प्राधान्य। माघ ने इस समस्या का हल दिया। उन्होंने कहा कि विद्वज्जनों को सुकवि के समान शब्द और अर्थ दोनों अपेक्षित हैं।[7]

मम्मट का काव्य-प्रकाश, विश्वनाथ का साहित्य-दर्पण और प० राज जगन्नाथ का रस-गंगाधर, संस्कृत के तीन आचार्यों के ये तीन लक्षण ग्रन्थ सर्वमान्य से रहे हैं।

काव्य-प्रकाश में उस शब्द और अर्थ को कविता कहा है जिसमें दोष न हो,

---

१ तुल्यवदेकक्रियान्वयित्वं बुद्धिविशेषविषयित्वं वा साहित्यम्।
(शब्दशक्ति प्रकाशिका) शब्दकल्पद्रुम पंचम् काण्ड, पृ० ३३४।

२. मनुष्यकृतश्लोकमयग्रन्थविशेषः साहित्यम्। शब्दकल्पद्रुम पंचम् काण्ड, पृ० ३३४

३. अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥ अग्नि पुराण ३३९।१०

४. डा० सूर्यकान्त साहित्य मीमांसा पृ० २२।

५. साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छ विषाण हीनः।
तृणन्न खादन्नपि जीवमानस्तद् भागधेयं परमं पशूनाम्॥ नीतिशतक ११।

६. शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्। काव्यालंकार १-११-१६

७. शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते। शिशुपाल वध २-८६

गुण हो, अलंकार हो और कभी-कभी अलंकार न भी रहें।[1]

साहित्यदर्पणकार ने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है।[2]

रसगंगाधरकार ने रमणीयार्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा है।[3]

तात्विक दृष्टि से इन तीनों परिभाषाओं में कोई विशेष विरोध नहीं है। परन्तु आज साहित्य को जिस व्यापक अर्थ में ग्रहण किया जा रहा है वह दृष्टिकोण इन आचार्यों के समय तक नहीं अपनाया गया था। विज्ञान की उन्नति के साथ इन लक्षणों में भी व्यापकता आ गई है।

२–आधुनिक भारतीयों के मतानुसार

विज्ञान ने मानवजीवन का कायापलट कर दिया है। परिभाषाएँ बदल गई हैं, मानवदण्ड बदल गए हैं। मानव का बौद्धिक विकास हुआ है। अतः आज साहित्य की अनेक परिभाषाएँ हो गई हैं। विचार-स्वातन्त्र्य ने परिभाषाओं को जन्म दिया है। हिन्दी जगत में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी डा० श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द्र, जैनेन्द्र कुमार, नन्ददुलारे बाजपेयी, बाबू गुलाबराय, डा० नगेन्द्र आदि मनीषियों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से 'साहित्य' की सुस्पष्ट व्याख्या की है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि ज्ञान-राशि के संचित कोश का नाम ही साहित्य है।

यह साहित्य की सबसे व्यापक परिभाषा है। अंग्रेजी के लिट्रेचर शब्द में भी यही भावना सन्निहित है। लिट्रेचर लैटर्स से बना है। अक्षरों का जितना भी विस्तार है वह सब लिट्रेचर है।

साहित्य और साहित्यकार के कर्त्तव्य तो महान हैं। सच्चे अर्थों में साहित्यकार राष्ट्र का, समाज का, संस्कृति का जागरूक प्रहरी है जिसकी साहित्य रूपी तिजोरी में राष्ट्र की, समाज की वह संस्कृति धरोहर के रूप में सुरक्षित रखी रहती है और आगे आने वाली पीढ़ियों को हस्तान्तरित कर दी जाती है। साहित्य वह संग्रहालय है जिसमें कलाकारों से विभूषित मानव-संस्कृति की नग्न प्रतिमाएँ रखी रहती हैं।

"साहित्य आत्म और अनात्म के सहित रहता है। आत्म और अनात्म, पुरुष और प्रकृति ये सब भेद परमात्मा में विलीन कर देने की व्यवस्था पुरानी है। हिन्दू मत की श्रेष्ठ विशेषता यही है कि वह भेदों के भीतर एक अभेद को देखता है। प्राचीनों के इस दर्शन ने ब्रह्म का निरूपण किया था और साहित्य में भी उन्होंने रस का निरूपण किया है।"[4]

आत्मा और अनात्मा के विषयों का विवेचन करते हुए डा० श्यामसुन्दर दास ने कहा है कि आत्मा के विषय हैं आनन्द, आकर्षण और अनुराग तथा अनात्मा के विषय विषाद विकर्षण और विराग। आनन्द और विषाद, आकर्षण और विकर्षण, अनुराग

१ तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि। (काव्य प्रकाश १–४)

२. वाक्य रसात्मकं काव्यम्। साहित्यदर्पण १।३।

३. रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। रसगंगाधर १।१।

४. डा० श्यामसुन्दर दास : साहित्यलोचन, पृष्ठ ३५। वही पृष्ठ ३४।

और विराग ये ही साहित्य के भी विषय हैं। जैसे नित्यप्रति के जीवन में हमारी ज्ञान, इच्छा और क्रिया की वृत्तियाँ, आनन्द और विषाद, आकर्षण और विकर्षण, आत्म और अनात्म के अगणित भेदों के साथ संयुक्त हो जाती हैं वैसे ही वे साहित्य में भी होती हैं।[1]

इस प्रकार साहित्य में आत्म और अनात्म के समन्वय की भावना सन्निहित है। यदि समन्वय न होगा तो साहित्य का मार्ग एकांगी हो जाएगा। वह या तो आत्म का प्रदर्शन करने वाला हो जाएगा या अनात्म का। फलस्वरूप वह साहित्य-क्षेत्र की सीमाओं का उल्लंघन कर दर्शन आदि के क्षेत्र में प्रवेश कर जाएगा।

प्रेमचन्द जी ने कहा है, 'मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि जो कुछ लिख दिया जाये वह सब का सब साहित्य है। साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रकट की गई हो जिसकी भाषा प्रौढ़ और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो। और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है जब उसमें जीवन की सचाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों।"[2]

जो साहित्य हृदय पर अमर डाले भावविभोर करदे, मस्तिष्क और आत्मा की खुराक बने वही सच्चा साहित्य होगा। अपने एक भाषण में श्री प्रेमचन्द जी ने 'जीवन की आलोचना' को साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा कहा है। जीवन की सच्ची आलोचना का प्रयास होगा मानव के अन्दर की उस मवाद को निकालकर बाहर फेंक देना जो उसके जीवन में सड़न पैदा कर रही है जो उसके जीवन को विषमय बना रही है। फल होगा कि एक स्वस्थ जीवन की निर्मिति की नींव डाली जाएगी, जीवन के अन्धकार को दूर किया जाएगा कल्याणकारी सत्य की सुन्दर प्रतिष्ठापना की जाएगी और यह कार्य केवल साहित्य ही कर सकता है।

और यही कारण है कि भाषा-वैभिन्य रुचिवैभिन्य, संस्कृति-वैभिन्य होने पर भी सम्पूर्ण विश्व-साहित्य में मानव-जीवन के सनातन सत्य की सलिला देश-काल की ऊबड़ खाबड़ सीमाओं को लाँघती हुई, सुन्दर यश ध्वजा फहराती हुई, मानव जाति के कंटकाकीर्ण मार्ग को प्रशस्त करती हुई, अबाध गति से प्रवहित है। विश्व के समस्त दर्शनों का केन्द्र बिन्दु एक है। विश्व-वृत्त की परिधि पर मानव के आचार-विचार, आदर्श, भावनाएँ आदि भ्रमित हैं जिनका केन्द्र बिन्दु एक है। यही 'एक' मानव-जीवन का चिरन्तन सत्य है। इसी चिरन्तन सत्य को अनुभूति का आधार बनाकर भाषा के माध्यम से निरिक्ष करके जब सुन्दर और कल्याणकारी मूर्तरूप दे दिया जाता है तभी साहित्य की सर्जना हो जाती है। इसीलिए श्री गंगा प्रसाद पाण्डेय ने साहित्य को विश्व मानव का हृद बताया है।[3]

"साहित्य केवल कल्पनाओं का क्रीडास्थल नहीं है और न वह उत्तेजित मानसिक सृष्टिमात्र है वरन् वह स्थायी विचारों के मानसिक विकास का एक सुन्दर चित्र है जो कि सत्य और सनातन है। ...साहित्य तो युग-युगों के महान पुरुषों के मननशील प्राणों के आन्तरिक सत्य का आभास है।[4]

---

१. डा० श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन, पृष्ठ ३४।
२. श्री प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृष्ठ ३।
३. श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय : निबन्धिनी, पृष्ठ ३। ४. वही पृष्ठ ३।

"मानव जाति की इस अनन्त निधि में जितना कुछ अनुभूति-भाण्डार लिपिबद्ध है, वही साहित्य है। और भी अक्षर-बद्ध रूप में जो अनुभूति-सचय विश्व को प्राप्त होता रहेगा, वह होगा साहित्य।"[1]

अनन्त-निधि से श्री जैनेन्द्र कुमार का अभिप्राय उन वस्तुओं से है जो मानव की अनुभूति के फलस्वरूप सृजित हुई जैसे मन्दिर, तीर्थ, घाट, शास्त्र, पुराण, स्तोत्रग्रन्थ, शिलालेख स्तम्भ, मूर्तियाँ, स्तूप आदि। अर्थात् मिट्टी, पत्थर, धातु, ध्वनि, भाषा आदि उस अनुभूति की अभिव्यक्ति के माध्यम बने।

मूर्धन्य लेखक ने अनुभूति पर प्रश्रय दिया है। वास्तव में जब तक साहित्य की नींव में अनुभूति का मसाला नहीं होगा तब तक साहित्य का महल खड़ा नहीं होगा। केवल कल्पना की भित्ति पर सृजित साहित्य का वही हश्र होगा जो देवकीनन्दन खत्री का *चन्द्रकान्ता सतति का हुआ।* अनुभूति को आधार मानकर जो साहित्य रचा जाएगा वह अतीत के गौरव की भाँति प्रदर्शित कर वर्तमान के अन्धकारमय मार्ग को प्रकाशित करता हुआ भविष्य का पथ प्रशस्त करेगा। श्री जैनेन्द्र कुमार ने परिभाषा को केवल सहायक मात्र माना है।

आचार्य शुक्ल के अनुसार "साहित्य के अन्तर्गत वह सारा वाङ्मय लिया जा सकता है जिसमें अर्थबोध के अतिरिक्त भावोन्मेष अथवा चमत्कार-पूर्ण अनुरंजन हो तथा जिसमें ऐसे वाङ्मय की विचारात्मक समीक्षा या व्याख्या हो।"[2] शुक्ल जी ने उसे हृदय की मुक्तावस्था का प्रकाशन माना है।[3]

भावोन्मेष से शुक्ल जी का अभिप्राय रति आदि चित्तवृत्तियों के उद्बोधन से है तथा चमत्कार से उनका अभिप्राय है उक्तिवैचित्र्य से।

बाबू गुलाबराय ने कहा है, "हमारी जीवन-धारा की आनन्दमयी अभिव्यक्ति ही तो साहित्य है।"[4] "साहित्य विचारशील आत्माओं की अभिव्यक्ति है।"[5] "साहित्य समन्वय का ही सुफल है। वास्तव में साहित्य में क्षुद्रकण से लेकर महान पर्वत तक सभी सम्मिलित होते हैं। वहाँ पर सीमित असीमित में विरोध नहीं, वहाँ की चरम साधना सब तत्वों के सामंजस्य करने में ही सफल होती है। साहित्य का भी अपना एक आदर्श होता है जो जीवन की अन्तश्चेतना और सौन्दर्य-भावना का द्योतक है। मानव मन में ये भावनाएँ सारहीन नहीं हैं वरन् आनन्द-उपलब्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।"[6]

साहित्य क्या है? साहित्य मानव-जाति के उच्च से उच्च और सुन्दर से सुन्दर विचारों तथा भावों का वह गुच्छा है जिसकी बाहरी सुन्दरता और भीतरी सुगन्धि दोनों ही मन को मोह लेती हैं। कोई जाति तब तक बड़ी नहीं हो सकती जब तक कि उसके भाव और विचार उन्नत न हों।[7]

---

१. सम्पादक श्री पदुमलाल बख्शी : साहित्य शिक्षा, पृष्ठ १०। (श्री जैनेन्द्र के 'साहित्य क्या है' नामक लेख से)।

२. श्री रामचन्द्र शुक्ल : काव्य में रहस्यवाद, पृ० ११।

३. श्री रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, भाग १ पृ० १६३।

४. बाबू गुलाबराय : काव्य के रूप, पृ० ५।

५. श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय : निबन्धिनी, पृ० ४।　　६-वही पृ० ५।

७ डा० राजेन्द्र प्रसाद : साहित्य, शिक्षा और संस्कृति।

साहित्य में मानव जीवन का अजस्र स्रोत प्रवहित है, जो कालान्तर में मानव-जीवन को दान देता चला आ रहा है, जो अति प्राचीन होने पर भी चिरनवीन है, नित नवीन है, भावी नवीन है। सूर, तुलसी, कालिदास, शेक्सपीयर आज भी जीवित हैं, कल भी जीवित रहेंगे और प्रलय पर्यन्त जीवित रहेंगे। मानव-जीवन को वे आज तक एक सदेश देते रहे हैं, जीवन के प्रति मोही बनाते रहे हैं, अग्रसर होने के लिए एक प्रेरणा देते रहे हैं। साहित्य मानव की रागात्मिका वृत्तियों की खुराक है। मनुष्य साहित्य से पिता तुल्य स्नेह प्राप्त करता है, वात्सल्य प्राप्त करता है, पत्नी के प्रेम के दर्शन भी कर सकता है, बहिन का दुलार भी उसे मिल सकता है, हृदय को प्रफुल्लित करने वाली सामग्री भी वह दे सकता है, अंधियारे में भटके पथभ्रष्ट को आलोक भी देता है, गुरुवत् प्रताड़ना भी उसे साहित्य से मिल सकती है कुल मिलाकर कह सकते हैं, कि साहित्य एक आदर्श जीवन दे सकता है।

गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब ही मैं अवतार लेता हूँ।[1] अत्युक्ति न होगी यदि कहा जाय कि भगवान तत्कालीन महान साहित्यकार की आत्माओं में आविर्भूत होता है। इतिहास साक्षी है कि जब जब धर्म की हानि हुई तब-तब महान् साहित्यकारों ने जन्म लिया। हिन्दी साहित्य का भक्ति काल गवाह है कि यदि तुलसी, सूर जैसे भगवान राम, कृष्ण के अवतार नहीं होते तो आज हिन्दू और हिन्दू-संस्कृति के भग्नावशेष भी दृष्टिगोचर नहीं होते। सूर, तुलसी की अमर कलाकृतियाँ मानव-जाति में सदैव प्राण-प्रतिष्ठा करती रहेंगी। इससे सिद्ध होता है कि साहित्य समाज का अनुगामी नहीं है। जब-जब समाज और धर्म पतनोन्मुख होता है तब-तब ही सत्साहित्य की रचना होती है। समाज जितना शान्त और सुखी होगा साहित्य उतना ही निम्न कोटि का रचा जाएगा। अस्तु-साहित्य जाति को उबारने के लिए, संस्कृति की रक्षा करने के लिए एक अनुपम और सर्वोत्तम साधन है। "साहित्य जीवन और जगत की लोकरंजन कारिणी अभिव्यक्ति है।"[2]

इस प्रकार साहित्य की अनेकानेक परिभाषाएं इतनी हैं कि जिनकी गिनती नहीं हो सकती परन्तु यदि बुद्धि और चिन्तन-मनन के दूरवीक्षण यन्त्र से देखा जाए तो इनमें संस्कृताचार्यों की परिभाषाओं के अणु दीख पड़ेंगे। प्राण-तत्व वही है, कलेवर में कुछ अन्तर है। अस्तु-साहित्य की आधुनिक परिभाषा में संस्कृताचार्यों की प्राचीन परिभाषा से अधिक कुछ नहीं है। उन्हीं बातों को अपनी अपनी भाषा में कह भर दिया है।

३– अंग्रेजी विद्वानों के मतानुसार :

साहित्य की परिभाषा विवाद साहित्य का विषय रही है पर अभी तक कोई विद्वान साहित्य की ऐसी गुष्ठु और प्रौढ़ परिभाषा न दे सका जो सर्वमान्य हो, सर्वग्राह्य हो। साहित्य की परिभाषा के सदर्भ में आर० ए० स्काट जेम्स ने शिलर के विचारों को उद्धृत किया है कि प्रत्येक कला आनन्द को एक समर्पण है। सच्ची कला वही है जो

१. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ श्री मद्भगवद्गीता, अध्याय ४, श्लोक ७।

२. श्री शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृ. १।

उच्चतम आनन्द का बोध कराये।[1] वैसे इन परिभाषा मे कोई नवीनता नहीं है। हमारे यहाँ तो यह बात और भी सशक्त रूप में कही गई है। रस-सिद्धान्त में ब्रह्मानन्द सहोदर की चर्चा हुई है हमारा यह ब्रह्मानन्द सहोदर शिलर के उच्चतम आनन्द से बहुत ऊँचा है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध विद्वान विलियम हेनरी हडसन ने साहित्य को उन अनेक साधनों में से एक माना है जिनमें किसी विशिष्ट युग की स्फूर्ति अभिव्यक्ति पाकर उन्मुक्त होती है।[2]

टामस ड क्विन्सी ने साहित्य के दो भाग किये हैं—(१) ज्ञान का साहित्य, (२) शक्ति का साहित्य। प्रथम का कार्य सिखाना है दूसरे का कार्य चलाना है, गति देना है। पहले की उपमा पतवार से दी जा सकती है दूसरे की पाल से प्रथम अस्थिर ज्ञान का उदघाटन करता है, द्वितीय उच्च एव स्थिर ज्ञान का पोषक है।[3] परन्तु उसके अन्तर मे सदैव प्रेम, आनन्द और सहानुभूति का निवास होता है। टामस ड-क्विन्सी का प्रथम प्रकार के साहित्य से उस वाङमय का आशय है जो ज्ञान का प्रसार करे। वैज्ञानिक-साहित्य, भूगोल, इतिहास आदि इस कोटि में आ सकते हैं। द्वितीय प्रकार के विभाजन में उन्होंने उस साहित्य को लिया है जिसकी चर्चा हम पहले कर आए हैं — जो चिर सत्य की सुन्दरता के साथ कल्याणकारी प्रतिष्ठापना करे, जिसमे सहितता का भाव हो। लेखक ने पतवार और पाल से बडी मधुर और पुष्ट उपमा दी है। पतवार की शक्ति से समाज की नाव को ससार-सागर में खेकर, उस सागर को पार किया जाता है। मानव को, जीवन-यापन के लिए, कुटीर-उद्योग, चिकित्सा, इजीनियरिंग आदि का मार्ग इस प्रकार का साहित्य उद्घाटित करता है, दूसरी ओर पाल मानव के सवेगों से भरी नौका को अपने आप ही बहा ले जाता है। उस पाल मे इतनी शक्ति है कि वह भारी से भारी नौका को भी बहा ले जा सकता है। और यही है साहित्य का चिर मूल्य जो मानव को कल्याणकारी मार्ग की ओर बहा ले जाए।

साहित्य की उपर्युक्त सहितता मात्र यथार्थ का पल्ला पकडकर अग्रसर नहीं हो सकती, वह वास्तविकता को ज्यों का त्यों चित्रित नहीं कर सकती। यदि ऐसा हुआ तो स्काट जेम्स के अनुसार वह कलाकृति छाया की छाया मात्र सिद्ध होगी।[4] उसमें

१. "All art is dedicated io joy ... .. The right art is that alone, which creates the highest enjoyment."
आर० ए० स्काट जेम्स द्वारा शिलर का उद्धरण – द मेकिंग आफ लिट्रेचर, पृ. ३६१।

२. डा० प्रतापनारायण टडन : हिन्दी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास, पृ. २१।

३. here is first the literature of knowledge, secondly, the literature of power: the function of the first is to teach the function of the second is to move the first is a rudder the second an car of a sail. The first speaks to the mere discursive understanding, t e second speaks ultimately, it may happen to the higher understanding ...... but always through affections of plea ure and sympathy.
ऐनवाइल क्लेमर द्वारा सम्पादित माडेल्स फार स्टडी पुस्तक मे टामस ड क्विन्सी का लेख 'लिट्रेचर आफ नालिज एण्ड लिट्रेचर आफ पावर,' पृ १२१।

४. "......a work of art, as a mere imitation of reality, is only a copy of a copy"
आर० ए जेम्स स्काट : द मेकिंग आफ लिट्रेचर, पृ ३।

सामंजस्य और रूपान्तरण की भावना तभी उद्भूत होगी जब वह आदर्श को ग्रहण करे।

इसी प्रकार का मन्तव्य डा० डेविड डेचेस ने भी प्रकट किया है। उन्होंने कहा है कि साहित्य, गद्य अथवा पद्य में रचित किसी भी ऐसी रचना की ओर संकेत करता है जिसका ध्येय तथ्य का विवरण न होकर कहानी कहना हो अर्थात् उसमें कथात्मकता हो, अथवा शब्द प्रयोग में उर्वर कल्पना के किसी प्रयोग द्वारा आनन्द-प्रदान करना हो।[1] परन्तु वह प्रयोग थोथी कल्पना की उड़ान भी न हो। गेटे के अनुसार किसी कलाकृति की सफलता उस अंश तक निर्भर होती है, जिस तक कि उसमें कथ्य विचार संभूत होता है।[2]

मनोविश्लेषण शास्त्र के पण्डित फ्रायड ने साहित्य की व्याख्या एक नवीन दृष्टिकोण से की है। उन्होंने साहित्य को अतृप्त वासनाओं की अभिव्यक्ति मात्र माना है। हिन्दी में ही नहीं, विश्व की प्रायः सभी भाषाओं के अधिकांश विद्वानों ने फ्रायड के मन्तव्यों से अपनी सहमति प्रकट की है। परन्तु प्रो० विनयमोहन शर्मा ने फ्रायड के साहित्य पर आरोपित सिद्धान्तों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। उन्होंने यह माना है कि फ्रायड की यह व्याख्या केवल काल्पनिक साहित्य के विषय में ही ठीक हो सकती है।[3]

सेण्टब्यूव (Sainte B.uve) ने तो साहित्य की परिभाषा देने में असमर्थता भी प्रकट करते हुए कहा है कि "मैं साहित्य अथवा साहित्यिक कृतियों को शेष मानव-संस्थाओं से अलग अथवा विभाज्य नहीं समझता। मैं किसी कृति का अनुभव कर सकता हूँ परन्तु अपने मानव ज्ञान से उसके विषय में कोई निर्णय नहीं दे सकता।[4]

वास्तव में साहित्य का आस्वाद गूँगे का गुड़ है। इसके विषय में इधर-उधर की, आस-पास की बातें तो कही गई हैं परन्तु एक निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकी है।

(३) इतिहास की परिभाषा

इति + ह + आस = इतिहास। इति का अर्थ है 'इस प्रकार', ह का अर्थ है 'निश्चित,' तथा आस का अर्थ है 'था'। इसका अर्थ है इस प्रकार निश्चित हुआ अर्थात् जो अतीत का वर्णन करे। अतीत में उस काल में कौन-कौन सी घटनाएँ किस किस प्रकार घटित हुईं इसका विवरण मात्र, एक लेखा जोखा, इतिहास है।

---

१. literature, refers to any kind of composition in prose or verse which has for its purpose not the communition of fact but the telling of a story .. or the giving of pleasure through some use of the inventive imagination in the employment of words

डा० डेविड डेचेस क्रिटिकल एप्रोचेस टु लिट्रेचर, पृ. ४

२. "The success of a work of art depends upon the degree in which what it undertakes to represent is instinct with idea"

आर० ए० जेम्स स्काट द्वारा गेटे का उद्धरण - द मेकिंग आफ लिट्रेचर, पृ. २२६।

३. डा० प्रताप नारायण टंडन हिन्दी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास, पृष्ठ २२।

४. 'literature, literary production, is not for me distinct or at least separable from the rest of man and human organization: I can taste a work, but it is difficult for me to judge it independently of my knowledge of the man himself."

आर० ए० जेम्स स्काट द्वारा सेण्टब्यूव का उद्धरण - द मेकिंग आफ लिट्रेचर, पृ. २४६

इतिहास में हमें केवल घटनाओं के ही दर्शन नहीं होते अपितु हम उन घटनाओं की परिस्थितियों और परिणामों को भी पढ़ते हैं। "हम मालूम है कि लोहा गरम होने पर सदैव फैला करता है। इससे हम जान सकते हैं कि किसी विशेष अवस्था में लोहा यदि गर्म हुआ तो वह अवश्य फैलेगा और इस विकार के होने वाले परिणाम अवश्य होंगे। इतिहास के द्वारा हम भविष्य की बात का जो अनुमान कर सकते हैं, वह उपरिलिखित नियम के अनुसार ही होते हैं। ...इस प्रकार के कार्य कारण सम्बन्ध का विचार करके इतिहास के आधार पर हम कितने ही भविष्य रचा करते हैं।"[1] इससे स्पष्ट हुआ कि हम यह कह सकते हैं कि जब कभी वही परिस्थिति होगी, वे ही कारण होंगे तो परिणाम भी वही होगा। यह एक वैज्ञानिक सत्य है। और इतिहास कभी भी वैज्ञानिक सत्यों की सीमा नहीं लांघता बल्कि वह तो विज्ञान की तराजू पर तोला हुआ मानव-जीवन के अतीत के देश-काल विशेष की विशिष्ट घटनाओं के कारणों और परिणामों का विवरण है। पर बिल्कुल एक सी परिस्थिति इतिहास में दो बार मिलना प्रायः असम्भव है। ऐतिहासिक परिस्थितियों में कुछ साम्य मिल सकता है पर ऐक्य नहीं मिल सकता। यही कारण है कि हमारे ऐतिहासिक सिद्धांत प्रयोगात्मक शास्त्रों की भांति स्थिर नहीं हो सकते। वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ इतिहास के आधारों में उन्नति हो रही है और नित नवीन तथ्यों का पता चलता रहता है अतः ऐतिहासिक सिद्धान्तों में थोड़ा बहुत परिवर्तन सम्भव है।

सी० राइट मिल्स ने भी इसी प्रकार की बात कही है कि इतिहासवेत्ता मानव-जाति की व्यवस्थित स्मरण शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है और लिखे हुए इतिहास के रूप में वह स्मरण-शक्ति अतिशयता से गतिमान है अथवा अस्थिर है।[2] इसका अर्थ हुआ कि इतिहास परिवर्तनशील है, आज जिस बात को हम सत्य समझते हैं कल वह खोज होने पर असत्य भी सिद्ध हो सकती है और रुचिवैभिन्य के कारण भी उसमें परिवर्तन आता है।[3]

विश्व-मानव को इकाई मानते हुए बेनदेटो क्रोचे ने कहा है कि हमारा इतिहास *हमारे आत्मा का इतिहास है और मानव-आत्मा का इतिहास विश्व का इतिहास है।*[4]

आर० जी० कालिंग वुड ने इतिहास को मानव के आत्म-ज्ञान के लिए बताते हुए कहा है कि इतिहास हमें बताता है कि भूतकाल के मानव ने क्या किया है और इस प्रकार मनुष्य क्या है।[5]

---

१ श्रीगोपाल दामोदर तामसकर : मराठों का उत्थान और पतन, पृ० ३–४।

२ The historian represents the organised memory of mankind and that memory, as written history, is enormously mableable.
सी० राइट मिल्स : द सोशियोलाजिकल इमेजिनेशन, पृ० १४४।

३. It changes also because of changes in the points of interests.
सी० राइट मिल्स : द सोशियोलाजिकल इमेजिनेशन, पृ० १४५।

४. Our history is the history of our soul and the history of the human soul is the history of the world.
श्री क्रोचे : हिस्ट्री एज द स्टोरी आफ लिबर्टी, पृ० ११७।

५. His is for human self-knowledge......the value of history then is that it teaches us what man has done and thus what man is."
श्री आर० जी० कालिंगवुड : द आइडिया आफ हिस्ट्री, पृ० १०।

यह परिभाषा बहुत कुछ साहित्य की परिभाषा के अनुरूप है—साहित्य भी तो मानव जीवन की आलोचना है, उसके मन का दर्पण है।

प्रसिद्ध विद्वान डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार देशों जातियों राष्ट्रों तथा महापुरुषों के रहस्यों को प्रकट करने के लिए इतिहास एक अमोघ साधन है। किसी जाति को सजीव रखने, अपनी उन्नति करने तथा उस पर दृढ़ रहकर सदा अग्रसर होते रहने के लिए संसार में इतिहास से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं। अतीत-गौरव तथा घटनाओं के उदाहरणों से मनुष्य जाति एवं राष्ट्र में जिस संजीवनी शक्ति का संचार होता है उसे इतिहास के सिवा अन्य उपायों से प्राप्त करके सुरक्षित रखना कठिन ही नहीं प्रत्युत एक प्रकार से असम्भव है।

इतिहास भूतकाल की अतीत स्मृति तथा भविष्यत की अदृश्य सृष्टि को ज्ञान रूपी किरणों के द्वारा सदा प्रकाशित करता रहता है।[१]

श्री वृन्दावन लाल वर्मा के व्यक्तिगत नोट्स से, सूत्र रूप में, इतिहास की कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार प्राप्त हुई हैं—

किसी कुटिल ने कहा है कि इतिहास वह है जो कभी नहीं घटित हुआ और उस व्यक्ति द्वारा लिखा गया है जो वहाँ था ही नहीं।[२]

कार्लाइल ने अपने फ्रेंच रिवोल्यूशन में गप्प के अर्क खींचने की क्रिया को इतिहास कहा है।[३] .... यह भी इतिहास को सत्य नहीं मानते।

अपने 'राइज एण्ड फाल आफ द रोमन एम्पायर' में गिब्बन ने कहा है 'इतिहास वस्तुतः मानव के अपराधों, मूर्खताओं और दुर्भाग्यों के लेखे से कुछ और अधिक है।'[४]

'नेपोलियन ने इतिहास को कल्पित कथा कहा है।[५]

'इमर्सन भी कुछ ऐसी ही बात कहते हैं कि सुव्यवस्थित इतिहास कुछ नहीं है, केवल जीवन चरित्र है।'[६]

श्री वर्मा जी को श्लेगल के कथन से कुछ सन्तोष मिला। उसने कहा है कि इतिहासज्ञ भूत की ओर देखता हुआ भविष्य की बात कहता है।[७]

एच जी वेल्स ने मानव इतिहास को विचारों के सत्व का इतिहास कहा है।'[८]

---

१ डा० गौरीशंकर ओझा राजपूताने का इतिहास, पृ० १०।

२ Some cynics said, "History is something that never happened, written by a man who was not there"

३ Carlyle in his 'French Revolution" states that, "History is a distillation of rumour"

४ Gibbon in his 'Rise and Fall of the Roman Empire" says "History is indeed little more than the register of crimes, follies and misfortunes of mankind"

५ Napolean questions, "What is history but a fable agreed upon."

६ Emerson in his "Essays has Said, There is properly no history, *only biography*"

७ But Schlegel comforts us "Historian is a prophet looking backwards"

८ H G wells in his 'Outlines of history"says, Human history is an essence, a *history of ideas*"

और अन्त में विरोधी परिभाषाओं पर विचार कर लेने के पश्चात् श्री वर्मा जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इतिहास विकास-प्रक्रिया और समाज की प्रगति का पूर्ण लेखा है।[१]

सुप्रसिद्ध विद्वान डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने कहा है कि 'इतिहास किसी देश अथवा मनुष्यों के भूतकाल का वर्णन करता है वर्तमान अथवा भविष्य का नहीं। जो हो चुका वह इतिहास का विषय है जो कुछ है या आगे होना चाहिये वह इतिहास का विषय नहीं। इतिहास बीती हुई बातों का सच्चा ब्यौरा देता है।'[२]

पं० जवाहरलाल नेहरू इस इतिहास को एक सिलसिलेवार मुकम्मिल चीज बनाते हुए कहते हैं कि "इतिहास को तो एक चित्ताकर्षक नाटक समझना चाहिये जो हमारे दिल को मोह लेता है—ऐसा नाटक जो कभी-कभी सुखान्त लेकिन ज्यादातर दुखान्त रहा है और दुनिया जिसका रंगमंच और गुजरे जमाने के महान् पुरुष और महिलाएँ जिसके पात्र हैं।"[३]

सुप्रसिद्ध विद्वान एवं भारत गणतन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा है कि "इतिहास की सबसे अधिक साधारण परिभाषा यही है कि वह भूतकाल का वृत्तान्त है और उसका मुख्य ध्येय यह है कि समय की समाधि से उन बातों और व्यक्तियों को निकाले, जो कभी थी किन्तु आज नहीं है।'[४]

डा० राजेन्द्र प्रसाद ने आगे कहा कि 'वह घटनाओं की कोरी नीरस कहानी न होकर ऐसा शास्त्र है जो हमें मानवीय समाजों और संस्थाओं के जन्म और विकास का पूरा-पूरा ज्ञान कराता है।

इतिहास तो सही अर्थ में तभी इतिहास होगा जब वह इन सब और दूसरी शक्तियों और बातों का जो मानवों पर या उनके द्वारा सक्रिय रहती है, समन्वयात्मक दृष्टि से विचार करे।'[५]

इतिहास अनुभवों का भण्डार है। उसमें मनुष्य-जीवन के नाना प्रकार के सैकड़ों अनुभव भरे पड़े हैं। जीवन के अनुभव की पाठशाला एक तो स्वयं जीवन है, दूसरी है इतिहास।[६] अनुभवों का अर्थ भी सत्य है। इतिहास का सम्बन्ध केवल अतीत से है। वर्तमान और भविष्य से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। "इतिहास आलोचनात्मक शास्त्र है।"[७]

श्रीगोपाल दामोदर तामस्कर ने इतिहास को मनःप्रवृत्तियों का बहिस्स्वरूप कहा है। उन्होंने कहा है कि इतिहास में समाज और व्यक्ति का मन बहुत कुछ पढ़ा जा सकता है। राष्ट्र को उन्होंने एक इकाई के रूप में स्वीकार किया है। अतः मनःप्रवृत्तियों से यहाँ एक व्यक्ति और समाज के मन की प्रवृत्ति का अर्थ लिया गया है। यह परिभाषा कुछ साहित्यिक सी हो गई है। मनःप्रवृत्तियाँ कारण होती हैं, इसके फलस्वरूप कुछ घट-

---

१ "Out of these conflicting verdicts we arrive at the truth, "History is an incomplete record of the evolutionary process and progress of society."

२ अनुवादक डा० वासुदेव शरण अग्रवाल : हिन्दू सभ्यता, पृ० ६।
(डा० राधा कुमुद मुकर्जी की पुस्तक हिन्दू कलचर का अनुवाद)

३. पं० जवाहरलाल नेहरू. विश्व इतिहास की झलक, पृ० २०

४. डा० राजेन्द्र प्रसाद . साहित्य शिक्षा और संस्कृति, पृ० ११७। ५–वही पृ० ११६–१२०

६ श्री गोपाल दामोदर तामस्कर . मराठों का उत्थान और पतन, पृ० ४ ७–वही पृ० ६।

नाएँ होती हैं फिर उन घटनाओं के कुछ परिणाम निकलते हैं। बस अतीत के कारण कार्य और परिणाम के ब्योरे को इतिहास कहते हैं।

मानवीय मनोवृत्तियाँ साकार रूप में परिणत होकर ही इतिहास की जन्मदायिनी होती हैं। इतिहास मानव-जीवन की मनोवृत्तियों का अक्षुण्ण समाहार है। स्थूल और सूक्ष्म विचारों का संघर्षणात्मक द्वन्द्व अपनी परिणति में इतिहास के उस धरातल की स्थापना करता है जिस पर समय समय पर आने वाले अनुचिन्तक, विचारक तथा लेखक अपनी धारणा के अनुसार अतीत के रखे हुए किसी एक बीज को लेकर स्मारक के रूप में एक स्थावर सृष्टि करते हैं जिसे देखकर उसके रूप का, उसके बाह्य और आन्तरिक कलेवर का आद्योपान्त दर्शन प्रत्येक विचारक के लिए आवश्यक हो जाता है।

यह दर्शन कभी इकाई के रूप में व्यष्टि और समष्टि को संयुक्त करता है तो कभी उसके पारस्परिक सम्बन्धों को शिथिल करने का भी प्रयास करता है। किसी काल की इति' के सूक्ष्म सत्य को लेकर तद्रूप लघु-दीर्घ शृंखलाओं को संयुक्त कर ऐतिहासिक साहित्य की रचना में लेखक एकांगी सत्याधारित अथवा सर्वांगी सत्याधारित कथावस्तु को अपनी मौलिकता की वेशभूषा में सुसज्जित करता है, उसकी वेषभूषा अपनी होती है। उस वेषभूषा को पहराने की पद्धति भी अपनी होती है।

इतिहास का उद्देश्य केवल घटना वर्णन नहीं है। इसमें देश के उत्थान और पतन का प्रतिबिम्ब होना चाहिये।[1]

इतिहास हमारे लिए केवल खण्डित पाषाणों से भरा अजायबघर नहीं है। उससे स्फूर्ति ग्रहण करनी है। मनुष्य को इतिहास ने बनाया, उसी प्रकार मनुष्य भी इतिहास बनाता है। हर क्षण वह क्रिया चल रही है।[2]

"अतीत की राजनीति वर्तमान का इतिहास है और वर्तमान इतिहास वर्तमान की राजनीति है।'[3]

इतिहास साक्षी है, विज्ञान की खोजें गवाह हैं कि मानव के मूल में संघर्ष के बीज विद्यमान हैं। वह मनुष्य कहलाने की स्थिति तक विकसित भी नहीं हुआ था तब से ही *उसकी प्रवृत्ति संघर्षात्मक रही है। इसी संघर्ष में विजय प्राप्त कर* मानव पशुयोनि से मानवयोनि में विकसित हुआ। इस विकास के लिए उसे कितने संघर्ष करने पड़े होंगे कितने युगों तक *वह इस विकास के लिए जूझता रहा होगा*, यह अनुमानातीत है। और आज तक का इतिहास उठाकर देख लीजिये कि उसी आदिम मानव की मूल-प्रवृत्ति आज के इस सभ्य मानव में ज्यूँ की त्यूँ है। "प्रकृति, मनुष्य और समाज के मध्य सृष्टि के श्री गणेश से आज तक द्वन्द्व चलता आया है। इस अनादि अनवरत द्वन्द्व का लेखा-जोखा मानव का इतिहास है। ...इस प्रकार अनन्त काल से मनुष्य और प्रकृति, मनुष्य और मनुष्य तथा मनुष्य और समाज में, अनवरत द्वन्द्व होता चला आ रहा है। गत संघर्षों की स्मृति उसे बल की टक्करों के लिए बल देती है, स्फूर्ति देती है, प्रेरणा देती है।"[4]

---

१. श्री कोरलनाथ को', मुक्त भारत (भूमिका), पृ. २।
२. आलोचना : ५ अक्टूबर १९५३, पृ. १०   ३. अज्ञात।
४. डा. शशि भूषण सिंहल उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा, पृ. २७–२८

प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने भी कुछ इसी प्रकार कहा है, 'सृष्टि ईश्वर ने रची और चलाई है और उसी प्रेरणा से यह अब भी चल रही है, इस सिद्धान्त को मैं नहीं मानता। समाज का सृजन आर्थिक विकासों से होता है।'' कामट ने फ्रांस में इसको प्रारम्भ किया, बर्कले ने इंगलैंड में इसे बढ़ाया और मार्क्स ने उसे परिपक्व किया, इस सिद्धान्त में इतिहास की कोई गुंजाइश नहीं। मैं इसके कुछ अंगों को मानता हूँ और कुछ को नहीं। मेरा अपना अपना सिद्धान्त है। मानव का विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ है और होगा। वह एक बात में बढ़ता है दूसरी में घटता है। सर्वतोमुखी बाढ़ कभी नहीं आती। यही मानव का प्रगतिवाद है।"[1]

सामान्य अर्थ में इतिहास का सम्बन्ध मानव, घटना और काल से जोड़ा जाता है। इस आधार पर इसकी परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं—लिपिबद्ध भूतकालिक घटनाओं और तत्सम्बन्धी सभी पुरुषों का चरित्र इतिहास है। यह प्राचीन परिभाषा है। प्राचीन इतिहासकारों ने इतिहास को प्रधानतः व्यक्ति-प्रधान माना था उसमें विशिष्ट व्यक्तियों के क्रियाकलापों का लेखा जोखा मात्र था। उसमें तात्कालिक युद्धों षड्यन्त्रों, विद्रोह आदि की सूचना मात्र होती थी। उक्त इतिहास ठोस तथ्यों का इतिवृत्त था, उसमें व्यक्तिगत उद्देश्य की चर्चा के साथ प्रेम और घृणा, असफलता महत्वाकांक्षा और अधःपतन एवं मैत्री और विरोध की कहानी होती थी।"[2]

पर आज इतिहास का क्या, मानव जीवन का प्रत्येक दृष्टिकोण बदल गया है। आधुनिक इतिहासज्ञ के समक्ष 'इतिहास' इतना संकुचित अर्थ लेकर अवतरित नहीं होगा। 'नव इतिहास का भी एक दर्शन है जो एक ओर तो विश्लेषणात्मक एवं तर्कपूर्ण छोरों को स्पर्श करता है और दूसरी ओर संश्लिष्ट प्रभाव की व्यंजना को। मानव समाज के अनन्त घात-प्रतिघात में आधुनिक इतिहासकार ऐसे चिरन्तन नियमों का अन्वेषण करता है, जिसका सम्बन्ध व्यक्ति-विशेष और काल-विशेष से न होकर मानव-सभ्यता के चिरन्तन एवं शाश्वत सत्यों से है।'"[3]

आज के इतिहासकार को हम एक दृष्टि से सच्चा दार्शनिक और ऐतिहासिक कह सकते हैं क्योंकि वह कार्य-कारण-परम्परा पर बड़ी सूक्ष्मता से वैज्ञानिक दृष्टि से लेकर एक ऐसा विवेचन करता है, जिससे ऐतिहासिक स्वरूपों और परिवर्तनों पर प्रकाश पड़ता है। ऐसा इतिहासकार मानव-जीवन को इतिहास के अनुसार खंडों में विभाजित नहीं करता, वह तो कार्य-कारण-शृंखला पर बहुत दूर तक विचार करता है। एक विशिष्ट युग में घटित घटनाओं को वह उसी युग की देन नहीं मानता, अपितु उनके कारणों की खोज वह उस युग से बहुत पहले करता है। उदाहरणार्थ १५ अगस्त १९४७ को भारत का भाग्य पलटा। भारत स्वतन्त्र हुआ, अंग्रेजी राज्य समाप्त हुआ। तो इस घटना का मूल कारण आज का इतिहासकार १९४७ के १०, ५ वर्ष पूर्व के निरन्तर आन्दोलनों में नहीं खोजेगा। इस महान घटना के बीजारोपण के लक्षण उसे सैकड़ों वर्षों पूर्व के इतिहास में मिलेंगे।

---

१. हरगम : ६ मार्च, १९५१ में उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा।
२. डा. जगदीशचन्द्र जोशी : प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० १। ३-वही पृ. १।

अस्तु किसी देश में घटित होने वाली महान घटनाओं, राज्यक्रान्तियों, आन्दोलनों, परिवर्तनों, का मूल उस युग से पूर्व के युगों में अवश्य ही विद्यमान होता है।

प्राचीन और आधुनिक इतिहासकारों के उपर्युक्त दृष्टिकोण पर सूक्ष्मता से विचार करने पर पता चलता कि दोनों में विरोध नहीं है। प्रथम प्रकार का ऐतिहासिक दृष्टिकोण व्यक्तिपरक और कालपरक है, द्वितीय प्रकार का व्यष्टि और काल की परिधि में नहीं आता। वह मानव जीवन को काल निरपेक्ष मानता है। उसके दृष्टिकोण से मानव-जीवन तो अखंड अजस्र जलधारा के समान है जो देश काल की सीमाओं को लांघती हुई बहती जाती है। 'इसमें सन्देह नहीं कि विशेष काल में विशेष प्रकार के व्यक्ति अनायास ही जन्म नहीं लेते, मूलतः वे युगों के अजस्र प्रवाह की एक लहर की तरह होते हैं, जो धारा की अखंड धारा में एक बार ऊँचे उभर पुनः विलीन हो जाते हैं।"[1] वस्तुतः इतिहास के प्राचीन और आधुनिक दृष्टिकोण एक दूसरे के पूरक हैं। इतिहासकार एक आधार पर दूसरे को समझने का प्रयास करता है।

"इतिहास के अन्दर हम दो सिद्धान्तों को काम करते देखते हैं। एक तो सातत्य का सिद्धान्त और दूसरा परिवर्तन का। ये दोनों सिद्धान्त परस्पर विरोधी से लगते हैं परन्तु ये विरोधी हैं नहीं। सातत्य के भीतर भी परिवर्तन का अंश है। उसी प्रकार परिवर्तन भी अपने भीतर कुछ अंश सातत्य का लिये रहता है। असल में हमारा ध्यान उन्हीं परिवर्तनों पर जाता है जो विस्फोट क्रान्तियों या भूकम्प के रूप में अचानक फट पड़ते हैं। फिर भी प्रत्येक भूगर्भ शास्त्री यह जानता है कि धरती की सतह में जो बड़े-बड़े परिवर्तन होते हैं उनकी चाल बहुत धीमी होती है और भूकम्प से होने वाले परिवर्तन उनकी तुलना में अत्यन्त तुच्छ समझे जाते हैं। इसी तरह क्रान्तियाँ या धीरे-धीरे होने वाले परिवर्तन और नूतन रूपान्तरण की बहुत लम्बी प्रक्रिया प्रमाण मात्र होती है। इस दृष्टि से देखने पर स्वयं परिवर्तन एक ऐसी प्रक्रिया है जो परम्परा के आवरण में लगातार चलता रहता है। बाहर से अचल दिखने वाली परम्परा भी, यदि जड़ता और मृत्यु का पूरा शिकार नहीं बन गई तो धीरे-धीरे वह भी परिवर्तित हो जाती है।"[2]

इतिहास के दो स्वरूप

डा० जगदीश चन्द्र जोशी ने इतिहास के दो भेद किये हैं—ध्रुव इतिहास और चल इतिहास।[3]

ध्रुव इतिहास से उनका आशय उस इतिहास से है, जिसमें यथेष्ठ परिवर्तन सम्भव नहीं, क्योंकि उसके प्रमाण के लिये विज्ञान की खोज है। चल इतिहास से उनका तात्पर्य है उस इतिहास से जो दन्त कथाओं, पुराण कथाओं आदि पर आश्रित है। इसमें परिवर्तन सम्भव है।

१. डा. जगदीशचन्द्र जोशी, प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ. ३।

२ पं जवाहरलाल नेहरू : श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की 'संस्कृति के चार अध्याय' की प्रस्तावना पृ. ९—११

३. डा. जगदीशचन्द्र जोशी—प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक पृ ७।

अब प्रश्न उठता है क्या विज्ञान ने ध्रुव इतिहास के विषय में सोचना बन्द कर दिया है ? नहीं, कदापि नहीं। उसकी गति तीव्र, तीव्रतर होती जा रही है, अधकार की पर्तें उखड़ती जा रही हैं, ज्ञान प्रकाश फैलता जा रहा है। इस पर क्या यह सम्भव नहीं कि विज्ञान कुछ ऐसे उपकरण खोज डाले जो ध्रुव इतिहास पर और प्रकाश डाले जो उसकी धारा को बदल दे। यह बिल्कुल सम्भव है, फिर ध्रुव ध्रुव कहाँ रह गया ? चल हो गया। विज्ञान एक खोज में सलग्न हैं। यदि उसमें विज्ञान ने सफलता प्राप्त कर ली तो विश्व-मानव के सागर में एक ऐसा ज्वार आयगा जो विश्व-धर्मों की नींव को जर्जरित कर देगा, जो पुराणों, कुरानों, बाइबिलो आदि को अपने साथ बहा ले जावेगा और भाटे के पश्चात् विश्व मानव को लभ्य होगे तात्विक सीप, जिनमें से निकलेंगे मोती और फिर मानव अपनी रुचि के अनुसार ज्ञान के उन मोतियों के मूल्य से रचेगा नव इतिहास का नव प्रासाद। उस समय विश्व-हृदय मे एक भूडोल आयेगा, जिससे ससागरा पृथ्वी भी काँप उठेगी, रूढियो के मेरु दड टूट जायेंगे विश्वासो के साथ विश्वासघात होगा और आश्चर्य नहीं, ऐसी क्रांति का विस्फोट हो जो विश्व धर्म ग्रन्थो को स्वाहा कर दे।

विश्व मे तहलका मचा देने वाली भावी सम्भाव्य वह वैज्ञानिक खोज क्या है ? वह है ध्वनियो को पकड़ना। शब्द का गुण है आकाश – अत शब्द मरता नहीं है, नष्ट नहीं होता है, वह आकाश में विचरण करता रहता है। जितनी भी ध्वनियाँ प्रस्फुटित होती हैं वे सब आकाश में जाकर विलीन हो जाती हैं। अब विज्ञान इस खोज में सलग्न है कि प्राचीन ध्वनियाँ पकड़ी जाएँ। यदि इसमें सफलता मिल गई तो दूध का दूध और पानी का पानी हो जायेगा। अस्तु,

डा० जोशी का नामकरण कुछ समीचीन प्रतीत नहीं होता। मेरे दृष्टिकोण से ध्रुव इतिहास को गवेषणापरक इतिहास और चल इतिहास को अनुमान-परक इतिहास कहा जाता तो अधिक समीचीन होता ?

इतिहास की परिभाषा पर कुछ कह लेने के बाद भी एक प्रश्न सूचक चिह्न बना रह जाता है। उसका समाधान नहीं हो पाता। हम इतिहास किसे मानें ? जिसे हम आज इतिहास मानते हैं, कल भी क्या वही इतिहास की तराजू पर तौला जा सकेगा ? यदि नहीं, तो फिर इतिहास की परिभाषा अपूर्ण रह जाती है। इतिहास तो 'सत्य' को कहता है, सत्य क्या परिवर्तनशील है ? दो और दो चार ही तो रहेंगे, पाँच तो नहीं, परन्तु इतिहास अर्थात् विज्ञान अर्थात् सत्य तो ज्यूँ का त्यूँ रहना चाहिये इसमें परिवर्तन कैसा ? केवल इतना कहने से तो काम नहीं चलता कि इतिहास वह बताता है कि क्या हुआ ? पर उसका बताया हुआ 'यह हुआ' क्या विश्वसनीय है ? दो एक उदाहरणों से बात स्पष्ट हो जायेगी। १९४६ तक हम पढ़ते आए थे कि १८५७ में गदर हुआ था। अब पढ़ाया जाता है कि वह तो स्वतन्त्रता का सग्राम था। एक मापदण्ड बदल गया है। कल्पना कीजिये कि कुछ दिनों के बाद फिर अग्रेजो का राज्य आ जाता है तो इस नवनिर्मित इतिहास की नींव खोखली हो जायेगी। गांधी जी को एक पागल हिन्दू ने गोली मारी, यह इतिहास निर्मित हुआ जो कल के आने वाले बच्चे पढ़ेंगे। कल्पना कीजिये कि गांधी जी के निधन के समय

राष्ट्रीय स्वर लेकर संघ की मिनिस्टरी होती जो क्या रूप-रेखा होती, उस इतिहास की ? नैपोलियन बोनापार्ट के इतिहास को कौन नहीं जानता कि वह महापराक्रमी, शूरवीर तथा महान था। परन्तु आर्च विशप व्हाटले ने हिस्टोरिक डाउटस पुस्तक के माध्यम से वैज्ञानिक, पुष्ट प्रमाणों के साथ यह सिद्ध कर दिया कि नैपोलियन सम्बन्धी अनेक घटनाएँ कपोल-कल्पित हैं अनर्थ किये हैं। नैपोलियन का रूस (मास्को) पर आक्रमण फालगर का युद्ध आदि इतिहास-सिद्ध घटनाओं को उसने अप्रामाणिक बताया और अनेक प्रमाणों से पुष्ट किया।

इसका अर्थ हुआ कि इतिहासकार भी बिना कल्पना के आगे नहीं बढ़ सकता। उसके समक्ष तो घटनाएँ मात्र उस देशकाल की मिट्टी में मिले होते हैं, उन्हें छाँट-छाँट कर वह कल्पना के सहारे उनसे एक माला बनाता है। फिर साहित्यकार और इतिहासकार में अन्तर क्या रह गया ? *इस दृष्टि से तो केवल एक अन्तर दीख पड़ता है, वह है, शैली का,* शिल्पविन्यास का अभिव्यंजना-वैचित्र्य का। हम नित्य प्रति देखते हैं कि एक व्यक्ति एक कहानी को घण्टों में कहता है जबकि दूसरा उसे ४, ७ मिनटों में ही समाप्त कर देता है। कुछ व्यक्तियों के सामने एक अनोखी घटना घटी। अब उनमें से हर एक से कहिए कि लिखिए आपने क्या क्या देखा ? तो निश्चित बात है कि सबके विवरण विभिन्न होंगे, उनके कलेवर में भी भिन्नता होगी।

इसी से एक सूत्र और पूरा है कि जब स्पष्ट ताजी देखी हुई घटना का सही सही विवरण आप नहीं प्राप्त कर सकते तो सहस्रों वर्ष पीछे की बात की सत्यता पर आप क्या विश्वास करेंगे।

इन सबसे एक ही परिणाम निकलता है कि हम आज तक कोई ऐसा यन्त्र नहीं निर्मित कर पाये हैं, जिसमें हम दूध का दूध और पानी का पानी कर सकें।

हम इतना कह सकते हैं कि इतिहासकार के समक्ष एक सत्य होता है, बिना कल्पना के, बिना संभावना के वह सत्य पंगु है। अर्थात् इतिहास कितना भी शुद्ध हो, कितना भी वैज्ञानिक हो पर बिना कल्पना के वह अपना रूप-निर्माण नहीं कर सकता। यह बात दूसरी है कि कल्पना का पुट कितना है। इस कल्पना को इतिहासवेत्ता अनुमान कह देते हैं।

साहित्य और इतिहास में अन्तर एवं साम्य

साहित्य और इतिहास में क्या अन्तर है, क्या समता है, इन प्रश्नों पर जब *गहराई से विचार करते हैं तो लगता है जैसे ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।* इस अन्तर में भी एक समानता है। मानव के लिए यह अन्तर समानता को लेकर ही पहुँचता है। इसी लिए मानव जीवन के लिये ये दोनों, गाड़ी के दोनों पहियों के समान हैं। दोनों की आवश्यकता उसे पड़ती है। *न केवल साहित्य में और न केवल इतिहास में हम अपने अतीत की* झाँकी देख सकते हैं, दोनों का समन्वित रूप ही हमें कुछ प्राणवान वस्तु दे पायेगा।

इतिहास अतीत के सत्य का पोषक है, अतीत के रहस्यों का उद्घाटक है।

साहित्य सत्य को शिव और सुन्दर का रूप देकर, उसमें मानव का पथ प्रदर्शन करता है

क्रोचे ने भी कविता और इतिहास दोनों को मानव जीवन के लिए अनिवार्य बताया है।[1]

साहित्य समन्वय का रूप हमारे सामने प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि ऐतिहासिक तथ्यों पर रचित साहित्य पाठक को सम्मोहित करके उसी देश काल में विचरण कराता है जिसकी वे घटनायें हैं। इतिहास पाठक को उस देशकाल में नहीं ले जाता। पाठक को स्वयं को अपनी कल्पना के सहारे उस देशकाल में उठाकर फेंक देना पड़ता है जबकि साहित्य न जाने कब किस प्रकार उस लोक में ले जाकर हमारा ऐसा तादात्म्य स्थापित कराता है कि हमें यह भी ज्ञात नहीं होता कि कब उस मायभरी भूमि पर उतरे। 'सोमनाथ' पढ़ते समय भुजाएँ फड़क उठती हैं, दाँत अपने आप बज उठते हैं, लगता है जैसे आक्रान्ता महमूद हमारी मा बेटियों की लाज लूटने आ रहा है उठो कूद पड़ो समरभूमि में बजा दो एक बार फिर रणभेरी, यह है साहित्य की करामात। किसी की लाज लुटा किसी की लाज बचो, इतिहास को कोई मतलब नहीं। इतिहास से हमें प्रेरणा छीननी पड़ती है, स्फूर्ति लेनी पड़ती है। साहित्य प्रेरणा देता है स्फूर्ति को हमारे चरणों में ला डालता है। इतिहास नग्नवादी है साहित्य वस्त्रालंकारों में विश्वास रखता है। इतिहास को कटु से कटु सत्य कहने में भी लाज नहीं आती, साहित्य कटु सत्य को शूगर-कोटेड करके प्रदान करता है। इतिहास बुद्धि-सापेक्ष है साहित्य बुद्धि के साथ हृदय और आत्मा को भी समान सम्मान देता है। इतिहास पशु-मानव के समान है साहित्य उसकी बैसाखी है। इतिहास केवल सत्य का हामी है, साहित्य सत्य शिव सुन्दरम् का समन्वित रूप है।

साहित्य की परिभाषा देते हुए हमने सहितता की बात कही थी।

साहित्य की सहितता का अर्थ अखंडता भी है। अर्थात् एक ओर वह मानव को मानव से मिलाता है उनकी अनुभूतियों को एक धरातल पर उपस्थित करता है (रस सिद्धान्त) तो दूसरी ओर वह कालगत दूरी की खाइयों को भी पाटता है और वर्तमान को अतीत तथा भविष्य से जोड़कर कालगत अखंडता का बोध कराता है। इतिहास के अनुशीलन का यही रहस्य है और जब इतिहास को उपजीवी बनाकर उस पर साहित्य का निर्माण किया जाता है तब इस कालगत दूरी की अखंडता का अनुभव कर लेने पर अनिर्वचनीय आनन्द की उद्भावना होती है। सत्साहित्य देश और काल की सीमाओं से परे होता है और यही तो इतिहास का भी पाठ है। अर्थात विविध घटनाओं में एक ही सत्य का संकेत करते हुए इतिहास हमें अखंडता की दृष्टि प्रदान करता है। और उसी प्रकार विविध मार्गों और कार्यों में एक ही सत्य की ओर संकेत करके साहित्य भी हमें उसी अखंडता की अनुभूति प्रदान करता है। श्री वृन्दावनलाल वर्मा के 'ललित-विक्रम' नाटक की भूमिका में हिन्दी जगत की सुप्रसिद्ध कवयित्री सुश्री महादेवी वर्मा ने इतिहास को प्राण-तत्व जीवन का स्पंदन माना है और जीवन का यही स्पंदन साहित्य का भी प्राण है।

---

1 Poetry and History are, then, the two wings of the same breathing creature, the two linked moments of the knowing mind.

क्रोचे : हिस्ट्री एज द स्टोरी आव लिबर्टी, पृ० ३१३।

उन्होंने लिखा है, "हमारा भविष्य जैसे कल्पना से परे दूर तक फैला हुआ है, हमारा अतीत भी उसी प्रकार स्मृति के पार तक विस्तृत है। अतीत के जिस अंश तक प्रमाण की किरण पहुंच सकती है उसे हम इतिहास की संज्ञा देते हैं जो जीवन के स्पंदन से रहित इतिवृत्त मात्र है।"[1]

सब जानते हैं कि इतिहास साहित्य के प्रधान अंगों में से एक है। किन्तु इसमें पाठक के मनोवेगों का प्रणोदन नहीं होता। यह तो जीवन क्षेत्र में घटी हुई घटनावलियों का लेखा मात्र है और साहित्य का उपर्युक्त लक्षण इस पर नहीं घटता। ... जो भी रचना साहित्यिक है उसमें मनोवेगों को आन्दोलित करने की शक्ति का होना अनिवार्य है। हम इतिहास को साहित्य उसी सीमा तक कहेंगे जहाँ तक कि वह अतीत की घटनाओं की आवृत्ति करता हुआ भी हमारे मन की भावनाओं को गुदगुदाता हो। हमारे मन में आनन्द-भरी उथल पुथल मचा देता हो। इतिहास के वे अंश जिनका एकमात्र लक्ष्य घटनावलियों की आवृत्ति करना है, साहित्य नहीं अपितु कोरे लेखे मात्र हैं।[2]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि इतिहास और साहित्य में विशेष अन्तर नहीं, पथ दोनों का एक है, मंजिल मकसूद में अन्तर है। इतिहास का गन्तव्य थोड़ी दूर चलकर ही समाप्त हो जाता है और साहित्य चलता रहता है। वह तब तक चलते रहने में हार नहीं मानता जब तक आने वाली पीढ़ियों के लिए कल्याणकारी सुन्दर मार्ग की प्रशस्ति न हो जाए। हाँ, इतिहास यदि मार्ग में ही हिम्मत न हार बैठे और साहित्य के कंधे से कंधा मिलाकर अग्रसर होता रहे तो वह साहित्य की श्रेणी में आ सकता है। यदि इसमें कल्याणकारी भावना नहीं होगी, मानव हृदय में तरंगें उठाने की शक्ति नहीं होगी तो फिर इसे साहित्य की श्रेणी से निकाल बाहर किया जाएगा। सच्चे इतिहास में जहाँ हम अतीत की घटनाओं की सुसज्जित पंक्तियाँ लगी दीख पड़ती हैं, वहाँ हम उन घटनाओं की प्रचंड थपेड़ों से प्रताड़ित हुए मनुष्यों और उनके रचे संसारों के खंडहर भी दीख पड़ते हैं। और जहाँ हम रामायण को पढ़ते समय राम, रावण तथा दशरथ, कैकेयी के ऊपर घटने वाली राम-रावण घटनाओं का फिर से दर्शन होता है, वहीं हम साथ ही जराग्रस्त दशरथ के उसकी प्राणप्रिया महिषी कैकेयी के हाथों प्राण पखेरू छिनते दीख पड़ते हैं। साहित्य पाठक को उस अतीत से ऐसा तादात्म्य स्थापित कराता है कि पाठक आत्मविस्मृत हो जाता है। उसकी स्थिति जमूरे की सी हो जाती है जो साहित्यकार रूपी जादूगर की हर बात का वैसी ही उत्तर है जैसा वह चाहता है। और इतिहासकार यदि इस काम में सफल हो जाय तो हम उसे साहित्यकार मानने में कोई आपत्ति नहीं। इतिहासकार यदि हिप्नाटिस्ट बन जाए, यदि वह सम्मोहन क्रिया में पारंगत हो जाए तो निस्संदेह वह साहित्यकार बन सकता है।

जिस सीमा तक एक इतिहासकार अतीत की घटनाओं को घटाने वाले देव दानवों के साथ हमारा तादात्म्य स्थापित करके हमें फिर से इस शरीर पिंजर में निहित

१. श्री वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'ललित विक्रम नाटक' के प्रारम्भ में 'दो शब्द' शीर्षक भूमिका, महादेवी वर्मा।

२. डा० सूरचन्द : साहित्य मीमांसा, पृ० ११।

रहने पर भी, अतीत के क्षेत्र म वह घूमा फिरा कर, हँसा और रुला सकता है, उसी सीमा तक उसके इतिहास को हम साहित्य के नाम से विभूषित करेंगे।'[1]

इतिहास का मूलमन्त्र है 'क्या हुआ था'। जबकि साहित्य का नारा है 'क्या होना चाहिए था क्या हो सकता था। इतिहास का प्राण विशेष-सत्य है जबकि साहित्य का प्राण नित्य-सत्य है, चिरन्तन सत्य है। साहित्यकार का सम्बन्ध इतिहास की सम्पूर्णता मे नही होता अपितु इतिहास के काल, घटना और पात्र-विशेष से होता है, इतिहासकार का सम्बन्ध इतिहास की सम्पूर्णता से होता है, उस काल-विशेष का सम्पूर्ण वर्णन उसे अपेक्षित है। इतिहासकार अपने सभी उपकरणो के द्वारा जो सृष्टि करता है वह देश के काल, घटना और सस्कृति के उत्तरोत्तर क्रमिक परिवर्तनो की यथार्थ सूची अर्थात् इतिहास होता है। नाटककार उस सूची के अश-विशेष को गृहण कर उसे नाटक के सूक्ष्म शरीर मे इस प्रकार सुसज्जित कर देता है कि वह साहित्य का रस,पूर्ण अ ग बन जाता है।[2]

स्वातन्त्र्य वीर श्री सावरकर ने हिन्दू पद-पादशाही' पुस्तक मे इतिहास का उद्देश्य बताया है, जो साहित्य के उद्देश्य से मेल खाता है। उन्होंने लिखा है कि इतिहास का मनन इसलिये नही करना चाहिय कि हम पुराने झगडे और फिसाद को चिरस्थाई रखने के लिय कोई कारण ढूढ निकालें और आज भी मातृभूमि या 'खुदा' के नाम पर खून की नदियाँ बहा सकें। इतिहास का काम तो उन मूल कारणो की खोज करना है जो झगडे फिसाद और खूरेजियो को मिटाकर मनुष्य को मनुष्य से जो एक प्रभु के पुत्र हैं और एक ही माता वसुन्धरा की गोद मे पले हैं — मिला दे और अन्तत सार्वभौम मानव-प्रजातन्त्र स्थापित कर सके।'[3]

साहित्य भी यह कार्य करता है वह भी मानव-मात्र का पोषण करता है, वसुधैव कुटुम्बक का पालन करता है।

'मुन्शी इतिहास को साहित्य की एक कलात्मक कृति कहते हैं और इतिहासकार के 'स्वानुभव' से प्रेरित सरसता को इसका कारण मानते हैं, हैरोडोटस, थुसिडाइडस, गिबन, मैकाले, कार्लाइल के इतिहास उनके आदर्श हैं, और इन सबमें कथन की रसिकता और भावनात्मक अपूर्वता का आनन्द होने के कारण इनको कलात्मक कृति मानते हैं।'[4]

सुश्री महादेवी वर्मा ने कहा है कि 'इतिहास को साहित्य मे प्रतिष्ठित करने के लिये घटना को जीवन से और जीवन को मनुष्य के अनुरागो से जोडना पडता है।'[5]

इतिहासकार को इस बात की चिन्ता नही रहती कि उनकी कृति रसोद्रेक में सफल होती है या नही, उसकी यथातथ्य सूची बन जाये — एक लेखा तैयार हो जाये तो उसके करणीय की इति श्री हो जाती है। लेकिन यदि साहित्यकार की कृति रसोद्रेक मे

१. डा० सूर्यकान्त · मीमासा, पृष्ठ १४।

२ डा० जगदीशचन्द्र जोशी : प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० ८।

३. श्री सावरकर : हिन्दू पद पादशाही, पृष्ठ ५–६।

४. डा० जगदीशचन्द्र जोशी . प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृष्ठ १६ :

५. श्री वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'ललित-विक्रम' के 'दो शब्द' (भूमिका लेखिका महादेवी वर्मा) से उद्धृत।

सफल नहीं उतरती तो वह कृति साहित्य की पंक्ति में बैठने की अधिकारिणी हो ही नहीं सकती।

लिटररी रिमेन्स वाल्यूम्स में वालगिंड का मत प्रसिद्ध है। उन्होंने कहा है कि वही वास्तविक और सच्ची ऐतिहासिक नाट्य कृति (साहित्यिक-कृति) है, जो उस मानव समाज का प्रतिनिधित्व करे जिसके लिये वह रची गई है। प्रत्येक सफल सच्ची साहित्यिक कृति में हर देश-काल के मानव का हित अन्तर्निहित है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, गीता आदि आज तक मानव को कल्याणकारी पथ दिखाते रहे हैं, आगे भी दिखाते रहेंगे, इसी से साहित्य की गुण-प्रकता का अनुमान लगाया जा सकता है।

अन्त में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इतिहास और साहित्य में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। अन्तर केवल वेशभूषा का है, कहने के ढंग का है। इतिहास एक देश-काल-घटना अथवा पात्र विशेष के विषय में सम्पूर्ण जानकारी यथातथ्य रूप में देता है जबकि साहित्य उपर्युक्त में से किसी विशेष अर्थ को लेकर एक बात विशेष कहना चाहता है। इतिहास में कितने ही ऐसे उदाहरण मिलते हैं जो साहित्य के उद्धरणों की तुलना में किसी भी दशा में कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। एक उदाहरण दिया जाता है दारा के कत्ल से सम्बन्धित है। यह किसी भी औपन्यासिक कृति से कम हृदय द्रावक नहीं है।[1]

---

[1] "At night fall when Dara for fear of being poisoned was engaged with his son Sipihr Shukoh in boiling some lentils, Nazar and his commrades of hell entered the room Seeing these bloody men in the posture the prince all at once gave a start and sat shrinking back He said to them, "Have you been sent to slay us?" They replied, "At present we do not know any thing about killing any body It has been ordered that your son should be separated from you and kept in custody some where else We have come to take him away" Sipihr Shukoh was seated knee to knee with his father The hump backed Nazar casting his venom spouting glance at Sipihr Shukoh said, "Get up" At this Sipihr Shukoh losing his senses clung to his father's legs Father and son hugged at each other tightly and began to weep, crying, "Alas, Alas". In a harsh and thretening tone the slaves said to Sipihr Shukoh", Get up, otherwise we shall drag you away", and they started to lay hands on him to snatch *him off* Dara Shukoh wiped off his tears, turned towards the slaves and said, "Go and tell my brother to leave his innocent nephew here". The slaves in reply said, "We are not anybody's message bearer, we must carry out our orders". And saying these words they rushed forward and forcibly *tore him away from his father's embrace When Dara realised that this* was his last moment, he tore open a pillow and took out a small pen knife, which he had kept concealed there. He turned to the slaves who was advancing to seize him and drove the small knife with such force into the wretch's side that it stuck fast in the bone . At length they made a rush at him in a body and over powered him The agonising shriek of Sipihr Shukoh, who was in a neighbouring room, continued to reach the ears of Dara Shukoh when they were engaged in finishing their bloody work".

डा० कालिका रंजन कानूनगो ; दारा शिकोह, पृष्ठ २२८–२३१।

ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा

उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति

'उपन्यास शब्द 'उप' और नि' पूर्वक 'अस' धातु में 'घ' प्रत्यय जोडने से व्युत्पन्न हुआ।"[१] उपन्यास शब्द आधुनिक युग की देन नहीं है। इसका वर्णन हमें संस्कृत के प्राचीन लक्षण ग्रन्थों में मिलता है। मुख्यत दो प्रकार की व्याख्याएं उपलब्ध होती हैं— (१) 'उपन्यास प्रसादनम्', (२) उपपत्तिकृतो ह्यर्थ उपन्यास सकीर्तित।

उपन्यास प्रसादनम्' का अर्थ है उपन्यास प्रसन्नता देता है। अर्थात् पाठक इससे प्रसन्नता प्राप्त करता है, यह पाठक का मनोरजन करता है। इस व्याख्या के आधार पर उपन्यास के इस गुण को उपन्यास का गुण कहा जा सकता है। यदि उपन्यास पाठक का मनोरजन नहीं कर सकता तो वह निष्फल है, प्राणहीन है। पौराणिक कथाओं में इसका दर्शन होता है। पौराणिक कथाओं के दो उद्देश्य स्पष्ट प्रतिलक्षित हैं एक कथाओं के माध्यम से उपदेश और दूसरा मनोरजन।

'उपपत्तिकृतो ह्यर्थ उपन्यास सकीर्तित का अर्थ है उपन्यास युक्ति-युक्त रूप में किसी अर्थ को प्रस्तुत करता है। उपन्यास दो शब्दों के योग से बना है उप + न्यास। 'उप' उपसर्ग है जिसका अर्थ उपपत्तिकृत है। 'उपपत्ति' का अर्थ है किसी वस्तु की स्थिति हेतु द्वारा निश्चय करना, युक्ति, सगति, चरितार्थता। न्यास' का अर्थ है स्थापन, रखना। 'अत हेतु द्वारा स्थितियों का निश्चय करना, उनमें सगति या सामजस्य बैठाना या तार्किक ढग से उनकी चरितार्थता या वास्तविकता की व्यजना करना उपन्यास का धर्म है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर उपन्यास जीवन के अति निकट आकर इसका खाका खींचता है।"[२]

अग्रेजी में उपन्यास नावेल (Novel) को कहते हैं। नावेल का अर्थ है नूतन, नवीन। लगभग चार शताब्दियों पूर्व कल्पना की अतिरंजना की एक भयकर लहर सारे ससार में आई थी जिसने मानव-मन को आलोडित कर दिया था, कला जीवन से परे होकर स्वच्छन्द विचरण करने लगी थी जीवन से कला का कोई लगाव न रह गया था। तब कथा-साहित्य में गल्प (*Fiction*) का बोलबाला था। इसकी प्रतिक्रिया होनी थी। आसमान में कलाकार आखिर कितने दिन तक विचरण कर सकते थे। उन्हें फिर इसी भूमि पर उतरना था कला को जीवन के लिये सुयोग्य बनाना था। फलत कला ने नया मोड लिया, वह मानव जीवन की सहचरी बनी, पोषिका बनी, सेविका बनी, और कथा ने एक अगडाई ले कर नया मोड पकडा। यही नव' 'नावेल बना।

"उपन्यास में लेखक स्थापना करता है अपनी कथात्मक सृष्टि की। परमात्मा की सृष्टि वह असाधारण-वृहत-जगत् है तो लेखक की यह रचना, उप गौण, साधारण, लघु) या उपन्यास है। इस प्रकार 'उपन्यास' का शब्दार्थ हुआ लघु (जगत की) स्थापना।'[४]

---

१. श्री काल हायर संस्कृत ग्रामर का धातु कोष का ऐपेन्डिक्स।
२. श्री विश्वनाथ : साहित्य दर्पण, पृष्ठ ४२२, श्लोक ३६७।
३. डा० दशरथ ओझा : समीक्षा शास्त्र पृष्ठ १२१।
४. डा० शशि भूषण सिंहल उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ १६।

उपन्यास क्या है ?

'उपन्यास क्या है' यह प्रश्न परिभाषात्मक कम है व्याख्यात्मक अधिक है। विद्वानों ने अपने अपने दृष्टिकोण से इस प्रश्न का उत्तर दिया है। पर आज तक कोई परिभाषा ऐसी नहीं बन सकी जो सर्वमान्य हो। "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[1] उपन्यास पर अपने विचार व्यक्त करते हुए प्रेमचन्द जी ने आगे कहा है कि कोई भी दो चरित्र समान नहीं हैं पर फिर भी वे समान हैं। उनमें एक वैभिन्य है तो एक सामान्य भी है। "यही चरित्र-सम्बन्धी समानता और विभिन्नता, अभिन्नत्व में भिन्नत्व और विभिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाना उपन्यास का कर्त्तव्य है।"[2]

"वेब्सटर ने उपन्यास का निश्चित लम्बाई लिये हुये वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली कथावस्तु वाला बताया है।"[3]

इसी परिभाषा के आधार पर बाबू गुलाबराय ने उपन्यास की परिभाषा इसी प्रकार दी है 'उपन्यास कार्य कारण शृंखला में बंधा हुआ वह गद्य कथानक है, जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक व काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।"[4]

फ्रांसीसी समालोचक एबेल शेवैले ने "उपन्यास को निश्चित आकार वाला गद्य आख्यान माना है। फोस्टर ने तो उसकी शब्द संख्या तय करते हुए एम० एबेल शेवैले की परिभाषा को स्वीकार किया है।"[5]

यह कितनी भ्रमपूर्ण परिभाषा है। इसका अर्थ हुआ कि पचास हजार शब्दों से कम की और साठ हजार से अधिक शब्दों की कलाकृतियाँ औपन्यासिक क्षेत्र में पदार्पण नहीं कर सकेंगी।

"उपन्यास एक स्थायी साहित्य है, मुद्र-युग की प्रधान साहित्यिक देन, समाचार पत्रों की तरह घण्टे भर में बासी होने वाला साहित्य नहीं। तथापि इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अधिकांश छपे हुए उपन्यासों का मूल्य किसी बासी दैनिक पत्र से किसी प्रकार कम नहीं है। ...उपन्यास इसलिये स्थायी साहित्य नहीं है कि वह उपन्यास

१. प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृष्ठ ७१।

२. वही पृष्ठ ७२।

३. A fiction is prose tale or narrative of considerable length, in which characters and actions professing to re resent those of real lif are portrayed in a plot
वेब्सटर : न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी आफ द इंगलिश लैंग्वेज, पृष्ठ १६७०।

४. बाबू गुलाबराय : काव्य के रूप, पृष्ठ १६१।

५. M. Abel Chevallay has, in his brilliant little manual, provided a definit on . . He says, " . .. a fiction in prose of a certain extent .. .. that is quite good enough for us and we may perhaps go so far as to add that the extent should not be less than 50,000 words".
ई० एम० फोस्टर : आस्पेक्ट्स आफ द नावेल, पृष्ठ ६।

है, बल्कि इसलिये कि उसके लेखक का अपना एक जबरदस्त मत है, जिसकी सचाई के विषय मे उसे पूरा विश्वास है। वैयक्तिक स्वाधीनता का यह सर्वोत्तम रूप है। ...... उपन्यास यन्त्र-युग के समस्त गुण-दोषो को साथ ही लेकर उत्पन्न हुआ है। .... वैयक्तिक स्वाधीनता की जैसी अधोगति इस क्षेत्र मे हुई है वैसी और की नहीं हुई और साथ ही उसकी जैसी सुन्दर परिणति इस क्षेत्र मे हुई है वैसी अन्यत्र नही हो सकी। .. उपन्यास ने मनोरजन के लिए लिखी जाने वाली कविताओ की ही नही नाटको की भी कमर तोड दी है। क्योकि पाँच मील दौडकर रगशाला मे जाने की अपेक्षा पांच सौ मील से किताब मँगा लेना आज के जमाने मे अधिक सहज है......इस युग मे उपन्यास एक ही साथ शिष्टाचार का सम्प्रदाय, बहस का विषय, इतिहास का चित्र और पाकेट का थियटर हो गया है।"[1]

हिन्दी जगत के मूर्धन्य समालोचक डा० श्यामसुन्दर दास ने भी उपर्युक्त प्रकार से अपनी परिभाषा दी है—'उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।"[2] यह परिभाषा एकागी है, इसमे एक कमी है और वह कमी बहुत बडी है। इन्होंने मनोरजन, प्रभावोत्पादकता अथवा रसोद्रेक का उल्लेख नही किया है। फिर कल्पना की सीमा का भी उल्लेख नही किया है।

यदि उपन्यास मे कल्पना की पतग की डोरी जीवन के यथार्थ के हाथो मे नही रहेगी तो उसकी गति दो प्रकार की हो सकती है। या तो वह तुरन्त ही धराशायी होकर छिन्न विच्छिन्न हो जाएगी या फिर हवा के झोंकों से आकाश मे दूर, इतनी दूर उडकर पहुच जायेगी कि आँखो से ओझल हो जाय, अन्ततोगत्वा उसे विनाश को प्राप्त होना ही है। अत कल्पना का जीवन से सम्बन्ध-विच्छेद नही होना चाहिये। यदि इस परिभाषा को ही ठीक मान लिया जाये तो फिर जीवन की व्याख्या करने वाले शुष्क दर्शन-ग्रन्थो को भी उपन्यास कह सकते हैं। अस्तु, इस परिभाषा मे यदि रजन और प्रभाव का पुट और दे दिया जावे तो किसी सीमा तक उपन्यास की परिभाषा बन सकती है। अस्तु उपन्यास की परिभाषा हम इस प्रकार दे सकते हैं कि कल्पित किन्तु जीवनाविरोधी गद्यमय आख्यान द्वारा जीवन की सरस और प्रभावशालिनी मनोरजिनी व्याख्या उपन्यास कहलाती है।

सुश्री एडिथ व्हार्टन ने श्रेष्ठ कथानक और अच्छे चरित्रो की महत्ता बताते हुए उपन्यास के विषय मे कहा है कि "अच्छी कथा और सुविकसित चरित्रों वाले पात्रो का काल्पनिक कृतित्व उपन्यास है।"[3]

श्रेष्ठ कथानक और अच्छे पात्रों की महत्ता उपन्यास की इस परिभाषा मे दी गई है। पर इसमे एक बात छूट गई है और वह है मानव जीवन। सुन्दर कथानक का

---

१. हिन्दी-साहित्य परिषद मेरठ के अधिवेशन के अवसर पर प० हजारीप्रसाद द्विवेदी के भाषण का अश।

२. डा० श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन, पृष्ठ १८०।

३. A novel is a work of fiction containing a good story and well drawn characters.

एडिथ व्हार्टन : राइटिंग फार लव आर मनी, पृष्ठ ५२

चन्द्रकान्ता सन्तति, भूतनाथ आदि का है जो पाठक को अपने में इस प्रकार सराबोर कर लेता है कि पाठक आत्म-विस्मृत हो जाता है। पर इसका मानव-जीवन से क्या सम्बन्ध है? इस प्रश्न के उत्तर में मौन ही रह जाते हैं।

परिभाषा की उपर्युक्त कमी को पूरा करने की कोशिश सी करते हुए हरा-ट्रल्फर्ट का कथन है कि "मानव की वाणी में विचारों का गद्यमय अनुवाद उपन्यास है और यह अनुवाद पाठकों की ज्ञान-वृद्धि भी करें।"[1]

रिचार्ड बर्टन ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए कहा है कि "उपन्यास गद्य में रचित, कवि के समकालीन जीवन का अध्ययन है। समाज के उत्थान की भावना से अनुप्राणित हो कलाकार इसकी रचना करता है। इसलिये वह प्रेमतत्व को प्रधान साधन बनाता है, इसलिए कि प्रेम ही एक माध्यम है, जो मनुष्य को सामाजिक बन्धनों में बाँध देता है।"[2]

ऐतिहासिक उपन्यास :

ऐतिहासिक उपन्यास दो शब्दों के योग से बना है इतिहास + उपन्यास। अर्थात् जिस उपन्यास में इतिहास हो वह ऐतिहासिक उपन्यास कहा जायगा।

कोई कृति ऐतिहासिक उपन्यास तभी कहलाएगी जब हमें उसमें इतिहास के दर्शन होंगे अर्थात् जो लेखक किसी उपन्यास में इतिहास के दर्शन करा सकने में समर्थ है वह सच्चा ऐतिहासिक उपन्यासकार है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि ऐतिहासिक उपन्यासों का प्राण ऐतिहासिक वातावरण है। यदि जितनी कुशलता के साथ उपन्यासकार अपने उपन्यास में ऐतिहासिक वातावरण की अभिसृष्टि कर सके उतना ही अधिक प्रभावशाली वह ऐतिहासिक उपन्यास होगा। यह नितान्त सत्य है कि उपन्यास इतिहास नहीं है। "औपन्यासिक पात्रों के निर्माण में कल्पना ही काम करती है, पर पात्रों के चरित्र विकास में तत्कालीन परिस्थितियों का ही प्रभाव पड़ता है। इसलिए ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्रों के चरित्र में हम लोग तत्कालीन समाज की सारी विशेषताएँ जान लेते हैं। उस युग की विचार-धारा, आदर्श और प्रचलित रीति-नीति के कारण मनुष्यों के व्यक्तिगत जीवन की गति, किस प्रकार एक विशेष परिस्थिति में पड़ कर क्रमशः विकसित होती है, यह हमें ऐतिहासिक उपन्यासों से ज्ञात हो सकता है।"[3]

---

१. "They (novels) are prose translation of ideas into the language of *human life being lived—the translation must be made with such an* accuracy as to increase the reader's knowledge of his own self."
हरा ट्रल्फर्ट : रायटर्स बुक के 'प्लाट इन ए नावेल एण्ड प्लाट इन द गुड फार' के पृष्ठ ८ से उद्धृत।

२ "It is a study of contemporary society with an im lied social interest and with a special reference to love as the motive force simply because love is which binds together human being in their social relation."
डा० दशरथ ओझा इत समीक्षा शास्त्र के पृष्ठ ११४ से रिचार्ड बर्टन का उद्धरण।

३. श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी हिन्दी-कथा साहित्य, पृष्ठ २२०।

ऐतिहासिक उपन्यास का लक्ष्य है व्यष्टि में समष्टि के दर्शन कराना। एक व्यक्ति के झरोखे से पूरे समाज का दर्शन किया जा सकता है। एक ऐतिहासिक उपन्यास के झरोखे से तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण देश-काल की गतिविधि पर दृष्टिपात किया जा सकता है।

"प्राचीन में कुछ बहुत अच्छा था, कुछ बुरा। बुरे के हम शिकार हुए। अच्छे ने हमें सर्वनाश से बचा लिया। क्या वर्तमान और भविष्य के लिये हम प्राचीन से कुछ ले सकते हैं? प्राचीन की गलतियों से बच सकते हैं। वर्तमान का हर एक क्षण भूत और भविष्य में परिवर्तित होता रहता है। कोई किसी से अलग नहीं। इन्हें भली भाँति देखो परखो और सम्मिश्रण की विधि अपना कर पढ़ो। बुन्देलखण्ड के इतिहास और भूगोल से परिचित था ही, बहुत सी परम्पराएँ भी हाथ लग गई थी। निश्चय किया कि वर्तमान की समस्याओं को लेकर प्राचीन में रम जाओ और उपन्यास के रूप में जनता के सामने अपनी बातों को रख दो।"[1]

श्री वर्मा जी के इस कथन से उनका इतिहास के प्रति दृष्टिकोण पता चलता है। उन्होंने इतिहास को वर्तमान और भविष्य से संश्लिष्ट बताया है। उसकी गति आवर्तिक है। वर्तमान-भूत का पुनरावर्तन मात्र है भविष्य वर्तमान का पुनरावर्तन है और भूत भविष्य का। इसी प्रकार की गति है इतिहास की। इतिहास तो हमारे लिये अन्न उत्पन्न करने वाले क्षेत्र के समान है। उस अन्न को वहाँ से निकालकर खाने योग्य बनाने का काम कुशल कृषक साहित्यिक का है। इतिहास हमारे लिये सामग्री छोड़ता है, साहित्यिक उस सामग्री को लेकर उसे इस योग्य बनाता है कि वह वर्तमान पीढ़ी को प्राण दे सके, मनोरंजन दे सके, प्रकाश दे सके, स्फूर्ति दे सके, गति दे सके और आगे आने वाली पीढ़ी के लिये फिर भी ज्यूँ की त्यूँ बची रह सके। वह तो अन्नपूर्णारूपा द्रौपदी के भोजनोपरान्त चावल के उस एक शेष दाने के समान है, जिससे दुर्वासा और उनके शिष्यों की उदरपूर्ति हो गई और फिर भी वह बचा रह गया।

"उपन्यास के अन्दर इतिहास के मिल जाने से जो एक विशेष-रस संचारित हो जाता है, उपन्यासकार एक-मात्र उसी रस ऐतिहासिक-रस के लालची होते हैं, उसके सत्य की उन्हें कोई विशेष परवाह नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति उपन्यास में इतिहास की उस विशेष गन्ध और स्वाद से ही एकमात्र सन्तुष्ट न हो और उसमें से अखंड इतिहास को निकालने लगे तो वह साग के बीच में साबित जीरे, धनिया, हल्दी और सरसों ढूँढेगा। मसाले को साबित रखकर जो व्यक्ति साग को स्वादिष्ट बना सकते हैं वे बनाएँ, और जो उसे पीसकर एक सम कर देते हैं उनके साथ भी हमारा कुछ झगड़ा नहीं। क्योंकि, यहाँ स्वाद ही लक्ष्य है मसाला तो उपलक्ष्य मात्र है।"[2]

कवीन्द्र रवीन्द्र ने उपर्युक्त उद्धरण में बड़ी पते की बात कही है। कुछ विद्वान ऐतिहासिक घटनाओं को तोड़ने मरोड़ने के पक्ष में है तो कुछ कहते हैं कि ऐतिहासिक

१ श्री वृन्दावनलाल वर्मा : आजकल (जुलाई १९५७ के अंक में लेख), पृष्ठ १८।

२. पदुमलाल बख्शी द्वारा संपादित नामक पुस्तक साहित्य शिक्षा के रवीन्द्रनाथ टागुर के 'ऐतिहासिक उपन्यास' नामक लेख, पृष्ठ ८६ से उद्धृत।

सत्य की बराबर रक्षा होनी चाहिये। परन्तु रवीन्द्रनाथ टाकुर ने दोनों का ही विरोध नहीं किया। एक मध्यम मार्ग निकाला है कि लेखक चाहे ऐतिहासिक सत्य की पूर्ण रूपेण रक्षा करें अथवा आंशिक रूप से रक्षा करें, इस बात की उन्हें चिन्ता नहीं। उन्हें तो केवल यह देखना है कि लेखक ऐतिहासिक रस की अवतारणा कर सका है या नहीं। यदि वह इस कार्य में सफल हुआ है तो वह सच्चा ऐतिहासिक उपन्यासकार समझा जाएगा।

'साधारणतः ऐसे उपन्यास जिसमें अतीत-कालीन पात्र, वातावरण और घटनाओं के ज्ञान तथ्यों को कल्पना से मांसल और जीवन्त बनाकर रखने का प्रयास होता है, ऐतिहासिक उपन्यास कहे जाते हैं।"[१]

"इन ऐतिहासिक उपन्यासकारों की जिम्मेदारी द्विगुणित होती है। इनके लिए इतिहास के प्रति सच्चाई और कला के प्रति निष्ठा रखना नितान्त आवश्यक होता है।"[२]

ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और कल्पना को लेकर एक विवाद रहा है कि ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास का पुट कितना हो, कल्पना का कितना, इतिहास में कोई परिवर्तन किया जा सकता है या नहीं आदि। इसमें विद्वानों के विभिन्न मत हैं।

'सर वाल्टर रेले' अपनी पुस्तक 'इंगलिश नावेल' में लिखते हैं कि "ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रधान पात्र स्वयं ऐतिहासिक नहीं होने चाहिये।"[३]

'दा इवोल्यूशन आफ इंगलिश नावेल' में स्टिडर्ड लिखते हैं कि 'स्काट अपनी कला के लिये इतिहास के तथ्यों को बदल डालते हैं।'"[४]

हेनरिटा मौलर्स अपनी पुस्तक 'ए पीर एट अवर ऐनसैस्टर्स' की भूमिका में घोषित करते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यासकार को इतिहास को विस्तृत और लम्बा बनाने का अधिकार नहीं है जो ऐसा करता है वह जानबूझ कर इतिहास पर रंग फेरता है, वह नैतिक अपराध करता है।[५]

ऐतिहासिक उपन्यास का सम्बन्ध अतीत-विशेष और वातावरण विशेष से रहता है। ये समस्त तत्व समाज के विशिष्ट अंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। आज का पाठक, आने वाले कल का पाठक, उनसे रस ग्रहण करेगा। अर्थात् उस ऐतिहासिक उपन्यास के पात्रों में वह अपनी, अपने समाज की एक प्रतिच्छाया देखेगा, उसे उस कृति में अपनी मनोवृत्तियों का पोषण मिलेगा, उन तत्वों से उसका तादात्म्य होगा। "ऐतिहासिक उपन्यास सामाजिक उपन्यास की भाँति मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों और उनकी समस्याओं की कहानी है।'[६] और उपन्यासकार को यह कमाल हासिल है कि वह वर्तमान समस्याओं को

---

१. श्री बी० एम० चिन्तामणि कृत 'ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य' की प्रस्तावना, लेखक डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १ से उद्धृत। २. वहीं पृ १

३. "The principal characters of a historical novel should not be themselves historical."
डा० गोपीनाथ तिवारी—ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ० ७ से उद्धृत।

४. *Scott changeth the fact of history in the interest of his art.*
डा० गोपीनाथ तिवारी ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ० ८ उद्धृत।

५. No small portion of moral culpability attaches to that writer, who, for the convenience of his own pen, wilfully represents as true what he knows *to be false.*
डा० गोपीनाथ तिवारी—ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ० ६ से उद्धृत।

६. डा० शशिभूषण सिंहल : उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २५।

इस खूबी के साथ इतिहासकालीन घटनाओं, चरित्रों आदि के साथ गूँथ देता है कि वे अन्योन्याश्रित हो जाती हैं। वर्तमान समस्याएँ उस काल की समस्याएँ बन जाती हैं और उस काल की समस्याएँ वर्तमान काल की बन जाती हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य है कथानक और पात्रों का किसी काल विशेष के जीवन के साथ समन्वय करना।

चाहे जिस प्रकार का ऐतिहासिक उपन्यास हो उसका प्रभाव और आकर्षण सदैव अधिकांश उनके द्वारा किये गये अतीत काल के जीवन के निर्मल और सजीव चित्रण पर ही निर्भर रहेगा, क्योंकि एक प्रकार से यही उनके अस्तित्व का औचित्य है। ऐतिहासिक उपन्यासकार का कार्य है कि वह इतिहासज्ञों और पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा किये गये नीरस तथ्यों पर अपनी उत्पादक कल्पना शक्ति का प्रयोग करे।[1]

उसके लिये हम कह सकते हैं कि एक सन्तुलित उपन्यास के लिये कल्पना और इतिहास का सतुलित मिश्रण हुआ हो। डा० गोपीनाथ तिवारी के अनुसार—

"जब इतिहास और कल्पना का सन्तुलित मिश्रण हुआ हो, जब खोजपूर्ण ऐतिहासिक अध्ययन एव मनोरम कल्पना को एक आसन पर खड़ा करके पाणिग्रहण कराया गया हो तब हमें सन्तुलित उपन्यास देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है।"[2]

इनसे स्पष्ट हुआ कि ऐतिहासिक सत्यों के साथ कल्पना का सम्मिश्रण अनिवार्य है। यदि कल्पना का रग नहीं चढेगा तो वह उपन्यास न बनकर कोरा इतिहास रह जायेगा पर कल्पना का यह अर्थ नहीं कि वह कल्पना के पखो पर स्वच्छन्द विचरण करे। वह स्वतन्त्र हो सकता है पर स्वच्छन्द नहीं। बुद्धि-ग्राह्य तत्व उसकी कृति मे नहीं आने चाहियें, जिनके पढने से यह आभास हो जाए कि ये उस काल के हैं ही नहीं। इसका अर्थ है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार उस सीमा तक कल्पना का पुट दे सकता है, जहाँ तक ऐतिहासिक तथ्यों का गला न घुटे। यदि कोई राम को दुष्ट और रावण को सच्चरित्र दिखायेगा तो वह कृति समादृत नहीं होगी, तिरस्कार की वस्तु बन जायेगी। समाज उसे हेय समझेगा। "कल्पना का उचित प्रयोग वह इस प्रकार कर सकता है कि पात्र के गुण दोष को विकसित करने वाली अथवा उनका स्पष्टीकरण करने वाली नवीन घटनाओं की योजना करे, ऐसी घटनाएँ चाहे ऐतिहासिक न भी हों।"[3]

हिन्दी मे एक दल इस पक्ष मे है कि इतिहास में परिवर्तन कर उपन्यास लिखना चाहिये। ऐतिहासिक उपन्यासकार राहुल जी एव श्री चतुरसेन शास्त्री इस पक्ष के हैं।

शास्त्री जी का मत है कि ऐतिहासिक उपन्यास है, उनमे इतिहास नहीं ढूँढना चाहिये। ऐसा करना मूर्खता है। इतिहास में परिवर्तन होता रहता है, फिर भला कैसे इतिहास दिया जा सकता है। ऐतिहासिक उपन्यास कोई इतिहास नहीं है, जिससे इतिहास-ज्ञान सीखा जाये। उसमें एक कहानी मिलेगी। इतिहास काल विशेष की चीज है। ऐसी चीज क्यों न दी जाय जो युगो से ऊपर की हो, जो शाश्वत हो, सार्वभौम हो। वह है

---

१ श्री शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृ० ६६

२ डा० गोपीनाथ तिवारी—ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ० ४

३ श्री शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृ० ६८।

'इतिहास रस'। अतः पाठकों को यह आशा नहीं करनी चाहिये कि उपन्यास, काव्य या कहानी को पढ़कर वे ऐतिहासिक ज्ञान अर्जन करेंगे। ऐसी पुस्तकों में तो उन्हें इतिहास के स्थान पर इतिहास-रस ही की प्राप्ति होगी (वैशाली की नगरवधू)। इसकी पुष्टि में वह कहते हैं, 'यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक उपन्यास और कथानक लिखने से पहले ऐतिहासिक विशेष-सत्यों को जानना चाहिये। *परन्तु यदि वह ऐसा करे तो वह कदापि कोई* रचना जीवन में नहीं कर सकता क्योंकि ऐतिहासिक विशेष सत्यों का ज्ञान कभी भी पूरा नहीं हो सकता। उनमें गवेषणा करने वाले विद्वानों के द्वारा नई-नई जानकारी होने रहने से निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। फिर क्या न साहित्यकार अपनी कहानी और उपन्यास की चिर-सत्य के आधार पर जिसमें गवेषणा की कोई गुंजाइश नहीं, रचना करे।'[1] *(वैशाली की नगरवधू, पृष्ठ ७५६)*

*श्री वृन्दावनलाल वर्मा दूसरे प्रकार की विचारधारा का पोषण करते हैं कि ऐतिहा-*सिक उपन्यास में उपन्यासकार को इतिहास की घटनाओं को तोड़ने मरोड़ने का हक नहीं है। उनके अनुसार उपन्यास की रूपरेखा रीतिरिवाज, सामाजिक चित्रण व्यक्तिगत चरित्र आदि पूर्ण एवं समानुपातिक हो। साथ ही वह सद्भावों के उद्रेक करने में सफल हो, उसमें कुछ आधुनिक समस्याएँ भी हों। तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वे सुशृङ्खलित हों। ऐतिहा-*सिक उपन्यास धर्म अथवा आदर्श के प्रचारक न हों। श्री वर्मा जी ने एक बात और मुख्य* कही है कि ऐतिहासिक उपन्यासों में पाठक को पकड़े रखने की शक्ति होनी चाहिए तथा पाठक इससे कुछ ज्ञानार्जन भी करे।'[2]

"ऐतिहासिक उपन्यासकार को इतिहास, मानव-मन और जीवन की वास्तविकता को उपन्यास कला के रंग में रंगकर रखना पड़ेगा। सफल ऐतिहासिक उपन्यासकार में इतिहास की सच्चाई भी मिलती है और कल्पना का मनोरंजन भी।'[3] अस्तु —

१– डा० गोपीनाथ तिवारी ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ १०–११।

२– In a historical novel the frame outline should be in accordance with history, traditions should also never be lost sight of The social environment should be true, various actions of life, individuals characters *integrated*, *proportionate mingling of all* must be done It should be to rouse emotion for the good Some modern problems should be introduced Logical and psychological links must be kept intact The aim of all art is to refine The historical novel starts with the reader's faith in the main characters But the historical novels should *not pose to be a missionary or moralist* It may become ridiculous in the attempt when a reader has left reading a historical novel He should feel refreshed and energised, inspired to do something better, to improve After reading it he should be able to say that he knows more about the subject than when he had begun reading *it It must entertain in a real* way

श्री वृन्दावनलाल वर्मा के व्यक्तिगत नोट्स से उद्धृत।

३– डा० गोपीनाथ तिवारी : ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृष्ठ ६।

ऐतिहासिक उपन्यास मे इतिहास भी हो, उपन्यास भी, अर्थात् इतिहास मे कल्पना हो पर वह कल्पना इतिहास की विरोधिनी न हो, उसकी पोषिका हो फिर भी यह स्मरणीय है कि ऐतिहासिक उपन्यास, उपन्यास पहले है इतिहास बाद मे। यदि हमे इतिहास के ही दर्शन करने हैं या हमे इतिहास ही खोजना है तो इतिहास के ग्रन्थ यथेष्ट हैं। इतिहास का 'कुछ' हम उपन्यास मे खोजते हैं, 'कुछ' वही है, जिसे आचार्य चतुरसेन ने इतिहास-रस कहा है।

ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास मे अन्तर एव साम्य

इतिहास = 'इति+ह+आस' अर्थात ऐसा हुआ। उपन्यास का अर्थ है वह कलाकृति जिसमे मानव के अनेक पक्षो का स्थापन किया गया हो, प्रक्षेप किया गया हो। स्पष्ट हुआ कि इतिहास केवल भूत की बात करता है, अतीत के घटना चक्रो की सूची देता है मानव-जीवन का उसे कोई लोभ नही, वह तो एक सच्ची बात बताता है। वह तो 'काणे पाडे पाँ लगें' मे विश्वास रखता है। उसे इस बात की चिता नही कि इससे पाडे जी को कष्ट होगा या पाडे जी को हानि होगी। जबकि उपन्यास पाण्डे जी को ढग से उनके शरीर-दोष बताएगा, वह भी यदि आवश्यक हुआ तो।

यही अन्तर ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास मे है। इतिहास तो पुरातात्विक सग्रहालय है जहाँ अतीत के देश-काल के भग्नावशेष सगृहीत हैं, तत्कालीन सस्कृति के चरण चिन्ह हैं, सब के मानव की गौरवशालीन पताकाओ के चिथडे हैं, महान विजेताओ, युग-निर्माताओ की हड्डियो के ककाल हैं और ध्वस्त वह सब कुछ है जो उस समय हुआ। ऐतिहासिक उपन्यास वह जादुई नगरी है जहाँ वे भग्नावशेष अपने मौलिक रूप मे दीख पडते हैं, गौरवशालीन पताकाएँ पहराती हुई नजर आती हैं युद्ध के लिए कटिबद्ध जवानो की हुकार सुनाई देती है, जहाँ वह देशकाल सप्राण होकर चल चित्र की भाति हमारे मानस-पटल के सामने से गुजरता चला जाता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार की कलम को यह कमाल हासिल है कि वह पाठक को उठाकर उस देशकाल मे विचरण कराने ले जाता है या फिर उस देशकाल को पाठक के समक्ष ला पटकता है। सजय जिस प्रकार अधे धृतराष्ट्र को हस्तिनापुर मे बैठे बिठाए कुरुक्षेत्र की रणस्थली का दर्शन कराते थे उसी प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासकार पाठक को कराता है।

इतिहास घटनाओ का लेखा-जोखा मात्र है जबकि ऐतिहासिक उपन्यास उनमे से कुछ विशिष्ट घटनाओ का कल्पना मिश्रित काचन-मणिवत सयोग है। इतिहास के केवल एक पुत्र है– अतीत का यथार्थ जबकि ऐतिहासिक उपन्यास के पास इतिहास वाले यथार्थ के पुत्र के साथ एक कल्पना का दत्तक पुत्र भी है।

अग्रेजी समालोचक वाल्टर वैंग होट ने ऐतिहासिक उपन्यास की तुलना करते हुए जलप्रवाह मे पडी हुई प्राचीन दुर्ग की मीनार की छाया से की है। पानी नया है, नित्य परिवर्तनशील है परन्तु मीनार पुरानी है अपने स्थान पर स्थिर है। ऐतिहासिक उपन्यास लेखक की भी यही समस्या है कि उसके पैर तो इस जमीन पर हैं, वह सास इस युग और नमिष मे ले रहा है परन्तु उसका स्वप्न पुरातन है और फिर भी नवीन है। एक ही ऐति-

हासिक विषय पर विभिन्न युग के लेखक इसी कारण से विभिन्न प्रकार से लिखेंगे।"

इतिहासकार के पास तथ्यों के साथ-साथ एक सश्लिष्ट सम्भाव्यता भी होती है जिसका आश्रय लेकर वह इतिहास रचता है। दूसरे शब्दों में इसे अनुमान कह सकते हैं। अर्थात इतिहास को निर्दिष्ट रूप देने के लिए इतिहासकार को अनुमान की सहायता लेनी पड़ती है जबकि ऐतिहासिक उपन्यासकार के पास ऐतिहासिक तथ्यों के अतिरिक्त दो और अस्त्र होते हैं– कल्पना और व्याख्या। इतिहासकार कल्पना की परिधि में प्रवेश नहीं कर सकता व्याख्या नहीं कर सकता। वह अधिक से अधिक अनुमान का सहारा ले सकता है। "इतिहासकार केवल मात्र दंत कथा और पुराणों से कहानियाँ लेकर ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं की सृष्टि नहीं कर सकता, न केवल स्वानुभव के आधार पर इतिहास की घटनाओं और पात्रों की स्पष्ट शब्दों में आलोचना ही कर सकता है, न उसके कर्तव्य पर मनमानी टिप्पणियाँ ही दे सकता है और न इतिहास को एक काल्पनिक कथा का ही स्वरूप दे सकता है। दूसरे शब्दों में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इतिहासकार निर्माण नहीं कर सकता खोज भले ही करले, अन्वेषक होने के कारण इतिहासकार का दृष्टिकोण वैज्ञानिक कहा जाता है।"[2] जबकि ऐतिहासिक उपन्यासकार को उपर्युक्त बातों की छूट है। उसके लिए वह क्षेत्र खुला है जो इतिहासकार के लिए बन्द है, वह व्याख्या कर सकता है, आलोचना कर सकता है, घटा-बढ़ा सकता है। उसके द्वारा रचित काल्पनिक घटनाएँ और पात्र भी वैज्ञानिक से होते हैं, वे ऐतिहासिक तथ्यों का पोषण करने वाले होते हैं, उनके विरोधी नहीं होते।

इतिहास राष्ट्रपरक है, ऐतिहासिक उपन्यास व्यक्तिपरक। इसका यह अर्थ नहीं कि ऐतिहासिक उपन्यासकार राष्ट्र के प्रति उदासीन रहता है, नहीं, वह भी राष्ट्र प्रेमी होता है। अन्तर केवल इतना ही होता है कि व्यष्टि में समष्टि समाहित है और समष्टि में वह राष्ट्र के दर्शन करता है। उसका व्यक्ति राष्ट्र का प्रतीक होता है। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासकार मानव को प्रमुखता देता है। उसकी (ऐतिहासिक उपन्यासकार की) दृष्टि में व्यक्ति का महत्व अधिक है, वह पात्रों को मनुष्य के दृष्टिकोण से ग्रहण करता है। वह उसके जीवन के अनावश्यक व्यय को छोड़कर उल्लेखनीय अंशमात्र को व्यक्त करता है जबकि इतिहासकार व्यक्ति का भी केवल उतना ही अंश ग्रहण करता है जो राष्ट्र व जाति के उत्थान-पतन से सम्बन्धित है। व्यक्ति को प्रमुखता देने के कारण उपन्यासकार जीवन के अधिक समीप है।"[3]

इतिहास में राष्ट्र का उत्थान-पतन मुख्य विषय होता है उसमें व्यक्ति के अपने जीवन की विशेष महत्ता नहीं रहती। राष्ट्र के उत्थान-पतन में जिन व्यक्तियों का हाथ रहता है, उनका वर्णन राष्ट्र के अंग होने से ही इतिहास में निबद्ध होता है। स्वयं व्यक्ति

१– उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृष्ठ २१- लेखक डा० शशिभूषण सिंहल 'आलोचना' ? में 'ऐतिहासिक उपन्यास' का उद्धरण।

२– टॉम जोन्स के उद्धरण के आधार पर डा० जगदीशचन्द्र जोशी कृत 'प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक' नामक पुस्तक के पृष्ठ १६ से उद्धृत।

३– डा० शशिभूषण सिंहल उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृष्ठ २८।

का चरित्र उसमें गौण स्थान ही पाता है। उपन्यास मे व्यक्ति की ही प्रधानता रहती है। देश के कर्म क्षेत्र मे राष्ट्रीय जीवन का जो निर्माण होता है, उसमे हम एक व्यक्ति के चरित्र को प्रधानता देकर उसी के सुख दुख मे देश और काल की विशेष परिस्थिति की प्रतिच्छाया देख लेते हैं। देश के भीतर जो विकट सघर्ष होता है, जो घोर युद्ध होता है, क्रान्ति की जो भयकर आँधी आती है, उसमें हम एक व्यक्ति के पारिवारिक जीवन मे प्रेम और त्याग की अपूर्वता देखकर जीवन की चिरन्तन महिमा को प्राप्त कर लेते हैं। इतिहास के पृष्ठों में जो राजा, सम्राट, सेनापति, नेता और शासक अपने-अपने विशेष प्रभुत्वशाली पदो के कारण अपने कृत्यों से राष्ट्र के उत्थान और पतन म विशेष प्रभाव डालने के कारण प्रख्यात हो गये हैं। उनके मानवीय भावो का उत्थान पतन हम उपन्यासो मे पाते हैं। वे एकमात्र राष्ट्र के कर्णधार नही रहते, वे मनुष्य होकर पिता, पुत्र, पति और प्रेमी के रूप मे प्रदर्शित होते हैं, तब हम उनके चरित्र मे जीवन की गरिमा या हीनता का अनुभव करते हैं।'[1]

अतीत मे मानव का बचपन छिपा पडा है, उसका गौरव छिपा पडा है, उसका उत्थान पतन सन्निहित है। अतीत के खडहरो मे मानव की सस्कृति बिखरी पडी है जिसके टुकडों को देखकर वर्तमान का मानव कभी हस पडता है, कभी गौरव से सीना फुला लेता है, कही अपने पतन को देखकर वह सिर धुनता है और सबक लेता है। इस प्रकार अतीत मे एक रस है, एक अमृत है, आत्मविस्मृत कर देने वाला एक आनन्द है। इस रसामृतानन्द की एक बूँद भी पाठको के गले उतार सकने मे इतिहास असफल है जबकि ऐतिहासिक उपन्यास अपने पाठको को इसका आकठ पान कराता है, इसमें आचूड स्नान कराता है। हमारे अतीत का मानव जैसे भयकर चेचक का शिकार हुआ। इस भयकर रोग के आक्रमण के बाद उसका मुख डेरल कट हो गया, विकृत हो गया। इतिहास उस कुरूप चेहरे को ज्यूँ का त्यूँ हमारे सामने ला रखेगा लेकिन ऐतिहासिक उपन्यासकार उसकी प्लास्टिक सर्जरी करके हमारे सम्मुख प्रस्तुत करेगा। वह उस कुरूप और भयावने चेहरे को अपने पाठक के समक्ष रखने की हिम्मत नही कर सकता कि पाठक की एक बार को तो चीख ही निकल जाये। बस यही तो एक अन्तर है इतिहासकार और ऐतिहासिक उपन्यासकार में। इतिहास का भारतीय पाठक महमूद गजनवी को कभी गले नही लगा सकता, पर ऐतिहासिक उपन्यास का पाठक चतुरसेन के सोमनाथ के दुर्दान्त, दैत्य स्वरूप, महापातकी, पशुत्व की पराकाष्ठा को प्राप्त महमूद को अवश्य गले लगाएगा, उसके सभी गुनाहों को माफ कर देगा। क्यूँ ? क्योंकि वह मानव है, पशुत्व के अन्तिम छोर तक यदि उसका पतन हुआ था तो देवत्व की सीमा का भी वह स्पर्श कर आया था। जो महमूद अपनी प्रेयसी एक मात्र चौला को प्राप्त करने के बदले अपना मान सम्मान, राज, सम्पत्ति यहाँ तक कि जीवन सर्वस्व दे सकता था, उसने उसे पाकर भी उसका स्पर्श तक न किया। इतना ही नहीं उसने यहा तक किया कि उसने अपनी प्रेयसी को मुक्त कर दिया कि चाहे जहा जाओ। क्या इसे देवत्व की निशानी नहीं कहेंगे ? नारकीय रौरव, वदबू से आक्रान्त, बर्बर, नर-पिशाच अपनी तलवार को नारी के आचल के साये मे अगर दफना दे तो उसे क्या कहेंगे मानव, केवल मानव। गुप्त जी ने कहा है—

१—श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—हिन्दी कथा साहित्य, पृष्ठ २२६।

देव सदा देव तथा दनुज दनुज हैं।
जा सकते किन्तु दोनों ओर ही मनुज हैं॥[1]

देवता देवता है, राक्षस राक्षस है, कोई खास बात नहीं, खास बात तो 'महमूदों' की है जो गिरते हैं तो इतने गिरते हैं कि राक्षसत्व की परिधि को भी लाघ जाते हैं और उठते हैं तो इतने उठते हैं कि देवताओं के मेहमान बनते हैं— नर सहारों के खून से लथपथ महमूद का जीवन उसके आँसू की केवल एक बूंद से प्रक्षालित हो गया। दुर्दान्त में भी मानवीय गुणों की प्राण प्रतिष्ठा ऐतिहासिक उपन्यासकार के बूते की बात है, इतिहासकार के नहीं। यही तो है वह सत्य शिव सुन्दरम् जो ऐतिहासिक उपन्यासकार के बल की बात है। इतिहासकार को इससे कोई सरोकार नहीं। इतिहास हमारे अतीत की सभ्यता एवं संस्कृति रूपिणि नारी की जगह-जगह से फटी हुई साड़ी है और ऐतिहासिक उपन्यास है उन फटे हुए स्थानों पर पैवन्द लगाकर, उन्हें रफू कर, मानव के समक्ष रखता है। बस दोनों में यही एक छोटा सा अन्तर है।

१—श्री मैथिलीशरण गुप्त—नहुष, पृ० ११।

२

वैशाली की नगरवधू

उपन्यास का कथानक

नायक महानामन को एक दिन आम्रवृक्ष के नीचे एक नवजात कन्या पड़ी मिली। उनके कोई बच्चा नहीं था, उसे वह उठा लाया। आम्र के नीचे से प्राप्त होने के कारण उसका नाम आम्रपाली रखा। सर्वाधिक सुन्दरी होने कारण वैशाली के कानून के अनुसार आम्रपाली को जनपद कल्याणी बनाया गया।

हर्षदेव जनपद-कल्याणी अम्बपाली का प्रथम अतिथि था। महानामन ने हर्षदेव के साथ आम्रपाली का विवाह करने का वचन दिया था। हर्षदेव के आने पर आम्रपाली ने कहा कि तुम्हारी वाग्दत्ता पत्नी मर चुकी है। 'यदि तुम में कुछ मनुष्यत्व है तो तुम जिस ज्वाला में मर रहे हो उसी से वैशाली जनपद को जला दो, भस्म कर दो।'

सोमप्रभ आर्या मातंगी और बिम्बसार का पुत्र था। आर्या मातंगी ने उसे यह तो बता दिया कि मैं तेरी माता हूँ पर वह यह नहीं जान पाया कि उसका पिता कौन है। उसे वर्षकार और आचार्य काश्यप की आज्ञा से कुण्डनी के साथ चम्पा के लिये गुप्त यात्रा पर जाना पड़ा। मार्ग में विषकन्या कुण्डनी ने चम्पारण्य में सम्बर असुर का संहार किया। और बाद में चम्पा के राजा दधिवाहन के प्राण भी कुण्डनी ने लिए, सोमप्रभ तथा कुण्डनी चम्पा को जीतकर वहां की राजकुमारी चन्द्रभद्रा को लेकर वहाँ से श्रावस्ती की ओर चले।

अम्बपाली के उपवन में महाराज उदयन आकाश मार्ग से आए और तीन ग्रामों वीणा बजाकर अम्बपाली को तीन ग्रामों की ताल पर नृत्य करने को बाध्य किया। अम्बपाली के जीवन में यह प्रथम पुरुष था जिसने उसे मोहित किया। उदयन को वह अपना सर्वस्व अर्पण करने को तैयार थी परन्तु उदयन ने कहा मैं शरीर का भूखा नहीं और वह चला गया।

हर्षदेव विक्षिप्तावस्था में वीतिभय नगरी में पहुंचा। वहाँ एक सेठ का लड़का समुद्र में, उसका जहाज डूब जाने से, डूब गया था। नियमानुसार उस सेठ की सारी सम्पत्ति राजकोष में मिला ली जाती। उसकी वृद्ध माता ने हर्षदेव को कहा कि मैं तुझे शुल्क दूंगी तू मेरे पुत्र कृतपुण्य का अभिनय कर और उसकी चारों पत्नियों से एक-एक पुत्र उत्पन्न कर। तीन वर्षों में हर्षदेव ने उन चारों से तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न कर दीं। अब बुढ़िया का काम निकल जाने पर उसने उसे टालने की सोची। तीसरी बहू का उससे बहुत लगाव हो गया था। हर्षदेव स्वयं भी चाहता था कि सदा कृतपुण्य ही बना रहे और सुख भोगे। तीसरी बहू ने हर्षदेव से कहा कि चम्पा में मेरे पिता सेट्टि के यहाँ जाना और वहाँ मेरी प्रतीक्षा करना।

भगवान बादरायण ने अपने शिष्य को आदेश दिया कि आज रात्रि में एक सम्मान्य अतिथि आएंगे। उनका सत्कार करना और कल प्रातः मुझसे मिलना। परन्तु उस रात्रि एक वृद्ध के साथ अम्बपाली आई, थोड़ी देर बाद महाराज बिम्बसार आए। बिम्बसार श्रावस्ती के अभियान में हार गए थे। बादरायण के यहाँ अम्बपाली से महाराज बिम्बसार ने प्रणय निवेदन किया। अम्बपाली ने शर्त रखी कि मेरा पुत्र मगध का भावी सम्राट हो और वैशाली से बदला लिया जाय। महाराज ने शर्त मान ली।

कुण्डनी आदि चारों अश्वारोहियों पर दस्यु शम्बुमा ने बाण वृष्टि की। सोम घायल हो गया। उसे लेकर उसका असुर मित्र शम्ब एक कंदरा में छिप गया। राजकुमारी चन्द्रभद्रा और कुण्डनी बन्दिनी हुईं, परन्तु कुण्डनी अपने कौशल से निकल कर भाग गई पर चन्द्रभद्रा शम्बुमा के कब्जे में रह गई।

सम्राट बिम्बसार राजधानी राजगृह लौट आए। आकर उन्होंने देखा कि मथुरापति अवन्तिपति प्रद्योत की सहायता करने के लिए मगध पर चढ़ आया है। राजगृह में उस समय न सेनापति चन्द्रभद्रिक थे न वर्षकार। अब उन्हें मगध का पतन निश्चित जान पड़ा। पर वर्षकार और शाम्बव्य काश्यप की कूटनीति से शत्रु सेना वापस भाग गई।

गौतम बुद्ध अपने प्रभाव से बौद्ध भिक्षुओं की संख्या बढ़ा रहे थे। अजित केसकम्बली का आश्रम सरयू-तीर पर था। उसने गौतम का बहुत विरोध किया। राजकुमार विदूडभ उनके पास आए और उन्होंने राजकुमार को तथागत के विरुद्ध खूब भड़काया और कहा कि बन्धुल और उसके बारहों पुत्र परिजनों को नष्ट कर दो और बन्धुल के भागिनेय दीर्घकारायण को अपना अन्तरंग बनाओ और इस प्रकार राज सिंहासन को हथियाओ।

जीवक कौमारभृत्य को एक दासी की आवश्यकता थी। वह दासों के हट्ट में पहुँचा। वहाँ उसने एक सुन्दरी दासी खरीद ली। उसी हट्ट में सोमप्रभ भी खड़ा था। इतने में कुण्डनी भी उससे मिल गई। उसने सोम को बताया कि राजकुमारी चन्द्रभद्रा को इस दास ने अभी बेच डाला है। वह अन्तःपुर में महारानी कलिंगसेना की भेंट देने के लिए खरीद ली गई है।

विदूडभ ने अपना कूट-मन्त्र चलाया। उसने बन्धुल के बारहों पुत्र-परिजनों को दूत के रूप में कौशाम्बी-पति के आम यज्ञ के निमन्त्रण के लिए भेजने को तैयार किया और कहा कि इनके पीछे प्रच्छन्न रूप में २० सहस्र सैन्य जाए। राजपुत्र विदूडभ ने श्रावस्ती का नगर-व्यवस्था अपने हाथ में ले ली।

कौशलपति प्रसेनजित ने राजसूय यज्ञ प्रारम्भ किया। इतने में सूचना आई कि बन्धुल के बारहों पुत्र-परिजन मार डाले गए। यह सब विदूडभ की चाल थी। अब सामान्य पर उसने बन्धुल को सेनापति के रूप में भिजवा दिया। इस प्रकार श्रावस्ती विदूडभ के लिए निष्कंटक हो गई।

कुण्डनी और सोम ने वध में साथ दासी के वेश में राजनन्दिनी के पास अन्तःपुर में पहुँच गए तथा उन्होंने राजकुमारी का मार्ग-दर्शन किया। राजनन्दिनी चन्द्रभद्रा के वध

नानुसार सोम अन्तःपुर से निकलकर श्रमण भगवान महावीर से मिलने पहुंचा। उसने चन्द्रभद्रा की कथा उनसे कह सुनाई। उन्होंने उसे छुटकारा दिलाने का आश्वासन दिया और विदूडभ को बुलाया। विदूडभ से सब बातें कहीं और विदूडभ ने उसकी मुक्ति का आश्वासन दिया। सोम राजकुमारी को प्यार करने लगा था अतः उसे शंका हुई कि कहीं विदूडभ उसे न हड़प ले। पर विदूडभ ने विश्वास दिलाया कि मैं ऐसा नहीं करूँगा। विदूडभ ने कलिंगसेना से मिलकर राजकुमारी को मुक्त कराकर साकेत भिजवा दिया। जब प्रसेनजित को ज्ञात हुआ कि वह तो परमसुन्दरी राजकुमारी थी, दासी नहीं थी तो वे कलिंगसेना पर बहुत बिगड़े। सोम जब अपने को न रोक सका तो वह राजकुमारी से मिलने पहुँचा और प्रणय निवेदन किया। राजकुमारी ने कहा कि मैं भी तुम्हें उतना ही प्यार करती हूँ परन्तु अब तुम भगवान महावीर की आज्ञा से ही मेरे पास आना अन्यथा नहीं।

सेनापति कारायण विदूडभ के गुट के थे। विदूडभ ने उन्हें तरकीब से प्रसेनजित से अभियोग लगवाकर श्रावस्ती बुलवा लिया था और कारागार में बन्द करवा दिया था। अब विदूडभ के विद्रोह करने का अवसर आ गया था। उन्होंने कारायण को कारागार से मुक्त कर दिया और कहा कि नगर पर अपना अधिकार कर लो और महाराज प्रसेनजित जब जेतवन से गौतम के दर्शन करके लौटें तो उन्हें बन्दी बनाकर सीमान्त पर छोड़ आना। महारानी मल्लिका चाहें तो राजमहल में आ सकती हैं। कारायण प्रसेनजित को बन्दी बनाकर सीमान्त पर छोड़ आये। मल्लिका भी महाराज के साथ चली गई। दोनों राजगृह के द्वार पर पहुँचते ही मर गए और बिम्बसार ने उनका विधि-विधान के साथ दाह-संस्कार किया।

बन्धुल को यह समाचार मिल गया था और उसने महाराज का निष्क्रमन छद्म वेश में देखा था। बन्धुल ने विदूडभ को बन्दी बना लिया पर सोम, कुण्डनी, अजित केसकम्बली के प्रयत्नों से राजकुमार विदूडभ को बन्धुल के चंगुल से छुड़ा लिया और बन्धुल को कैद कर लिया। विदूडभ का विधि-विधान से राज्याभिषेक हो गया। आचार्य अजित महामात्य बने, कारायण महासेनापति।

भगवान महावीर ने सोम को उपदेश दिया कि राजकुमारी के मार्ग से तुम्हें हट जाना चाहिए क्योंकि उसे कौशल की राजमहिषी बनना होगा। सोम ने स्वीकार किया और वह राजकुमारी के पास पहुँचा। राजकुमारी से उसने सब कुछ कह दिया। राजकुमारी बिलखती रही। वह बोली कि जब तक मेरे प्राण हैं तब तक उनमें तुम रहोगे। सोम उससे विदा लेकर और उसको इच्छानुसार उसके अश्व धूमकेतु को लेकर कुण्डनी और शम्ब के साथ वैशाली के राजपथ पर अग्रसर हुआ।

अम्बपाली एक बार अपने साथियों और पौरजनों के साथ आखेट खेलने गई। वह पुरुष वेश धारण कर युवराज स्वर्णसेन के साथ गहन वन में प्रविष्ट हुई। वनराज ने आम्रपाली के अश्व पर आक्रमण किया और वह एक ओर खड्ड में जा गिरी। आम्रपाली की मृत्यु अवश्यम्भावी जानकर वैशाली में शोक की लहर व्याप्त गई। हुआ यह कि जब सिंह ने उस पर आक्रमण किया तो वह असावधान थी। उसकी इस असावधानी को एक

चित्रकार ने देख लिया था। उसने सिंह पर बरछे से आक्रमण किया सिंह के और अश्व पर आक्रमण करने के पूर्व चित्रकार का बर्छा सिंह की धमनियों को चीर चुका था।

चित्रकार की कुटिया में पहुंचकर आम्रपाली ने देखा कि वहाँ महाराज उदयन वाली वीणा मंजुघोषा रखी है। चित्रकार ने तीन ग्राम में वाणा वादन किया और अम्बपाली ने अपार्थिव नृत्य किया। दोनों एक दूसरे के लिए पागल हो उठे। दोनों ने अपना सर्वस्व एक दूसरे को अर्पण कर दिया। सात दिनों पश्चात् एक दिन प्रात ही वह उसे वैशाली छोड आया। आम्रपाली अभी तक उसका परिचय नहीं जान सकी थी। चित्रकार सोमप्रभ था।

हर्षदेव अपनी प्रेयसी कृतपुण्य सेट्ठि की मध्यमा पत्नी द्वारा दिए हुए तीन मधुगोलकों को लेकर चम्पा-मार्ग में विश्रामार्थ ठहर गया। वहाँ उसे एक ब्राह्मण मिला। उसने एक गोलक ब्राह्मण का भी दिया। ब्राह्मण ने उसे फोड़कर देखा तो उसमें अनेक बहु-मूल्य रत्न भरे थे। ब्राह्मण को, उसके फटे वेश और रत्नों से भरे मोदक को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सब भेद जाना। उसने ब्राह्मण को यह भी बताया कि मैं वैशाली का मूलोच्छेदन करूंगा। ब्राह्मण ने उसे योजना बताई कि तू देशान्तरों में वाणिज्य करके, चम्पा से अपने बनावटी श्वसुर सेट्ठि से धन उधार लेकर वैशाली में जाकर बस जा। मैं तुझे वहीं मिलूंगा।

अतुल सम्पत्ति से परिपूर्ण होकर हर्षदेव वैशाली आकर बस गया। वह प्रसिद्ध हो गया कि जम्बू द्वीप का सबसे अधिक धन शाली सेठ है।

वैशाली में दस्यु बलभद्र का महान आतंक फैला हुआ था। वह पास की पहाड़ियों में छिपा रहता था और अपने साथियों के साथ लूटमार करता फिरता था।

वैशाली में मगध-महामात्य वर्षकार आए। उन्होंने गण के समक्ष याचना की कि यदि मुझे भरपेट अन्न मिले तो मैं राज्य की सेवा करूं। गणपति सुनन्द ने कहा कि जबतक हम सोच विचार कर कोई निर्णय करते हैं तबतक आप हमारे अतिथि रहिए। आर्य वर्षकार ने स्वीकार किया और दक्षिण ब्राह्मण कुण्डग्राम-सन्निवेश में सोमिल श्रोत्रिय के यहाँ रहे।

कुण्डनी वैशाली में विदिशा की अपूर्व सुन्दरी वेश्या मदनन्दिनी के रूप में रहने लगी। वह प्रत्येक आगन्तुक से १०० स्वर्ण मुद्राएं लेती और एक दिन में एक ही का स्वागत करती। इसके रंग ने आम्रपाली का रंग फीका कर दिया।

वैशाली में एक नन्दन साहु थे। वे एक अच्छी दूकान करते थे पर उनका एक गूढ़ व्यवसाय और था जिसे कोई नहीं जानता था।

सोमिल श्रोत्रिय एक महान पंडित था। उसके यहाँ की शुक-सारिकाएँ वेदपाठियों के अशुद्ध उच्चारण का टोक दिया करती थीं। वैशाली के गणराज्य की ओर से आर्य वर्षकार को नित्य एक सहस्र सुवर्ण भेंट में आते, वर्षकार उन्हें उसी समय ब्राह्मणों को दान कर देते थे।

इसी समय वैशाली में हरिकेशीबल नामक एक काले चाण्डाल मुनि का आगमन हुआ। यह वास्तव में नागरिक-रूप प्रच्छन्न था। वह एक दिन उन ब्राह्मणों में जा घुसा

जहाँ वर्षकार स्वर्णदान कर रहे थे ब्राह्मणों ने इस चाण्डाल को धक्के दिया, पीटा। इनके कोप से कितने ही ब्राह्मण मारे गए। वर्षकार के कथनानुसार शेष ब्राह्मणों ने इस चाण्डाल मुनि के पैरों में गिर कर क्षमा माँगी। वास्तव में हुआ यह कि नन्दन साहु ने भोजन में विष मिलाया जिसके फलस्वरूप ये मरे। इसका आतंक फैल गया। उपर्युक्त सब व्यक्ति वर्षकार के कूटयन्त्र थे जो उन्होंने वैशाली को ध्वस्त करने के लिए विभिन्न रूपों में नियुक्त किये थे।

वैशाली में एक भय की लहर दौड़ गई कि मगध सम्राट बिम्बसार वैशाली पर आक्रमण कर रहे हैं। गण ने इस पूरी स्थिति पर विचार किया कि क्या करणीय है। वैशाली के विशिष्ट जनों पर मगध के गुप्तचरों के सब भेद खुल गए कि वर्षकार की पद-च्युति एक चाल है, वे मन्त्रि युद्ध का संचालन करने वैशाली आए हुए हैं, दस्यु बलभद्र सोम-प्रभ हैं, मदननंदिनी कुण्डनी है। वैशाली के गण ने एक योजना यह बनाई कि राजगृह दूत बन कर जाया जाए और वहाँ से गुप्त रूप से सब समाचार मानचित्र आदि लाए जाएं वर्षकार पर भी उनकी यह योजना छिपी नहीं रही। उसने तुरन्त ही लेख लिख कर चरों को इधर उधर भेजा।

वैशाली के सेनापति जयराज राजगृह की ओर वहाँ का भेद लेने के लिए चले जा रहे थे। गान्धार काप्यक भी जा रहे थे। ये दोनों अलग अलग जा रहे थे। प्रभञ्जन और उसका एक साथी जयराज द्वारा मारे गए। फलतः वर्षकार का संदेश राजगृह नहीं पहुंच सका।

मधुवन में वैशाली की सेनाने दस्यु बलभद्र (सोमप्रभ) पर आक्रमण किया परन्तु उन्हें मुंह की खानी पड़ी। इससे पूर्व दस्यु के दल में वह अम्बपाली के आवास में गया था जहाँ सूर्यमल्ल आदि इस दस्यु का हनन करने की डींग हाँक रहे थे। सोमप्रभ को दस्यु के वेश में अम्बपाली पहचान गई। इन दस्यु ने उन सबको आक्रान्त किया और मधुवन की ओर लौट गया। उसके पीछे-पीछे अम्बपाली तथा उनके पीछे सूर्यमल्ल, स्वर्णसेन अपनी सेना लेकर पहुंचे। यहीं वे सोमप्रभ की दस्यु-सेना से मुँह की खाकर लौटे। अम्बपाली को दस्यु की कुटी में ले जाया गया जहाँ सोमप्रभ और अम्बपाली फिर एक दूसरे में लीन हो गये।

जयराज राजगृह पहुंच गया। वहाँ से उसने राजगृह की सेना आदि की सब जानकारी ली, मानचित्र आदि लिये। काप्यक भी गणदूत बनकर राजगृह पहुंचा। उसका बड़ी धूमधाम से स्वागत हुआ। सम्राट के सम्मुख दूत के रूप में प्रकट हुआ जयराज। सन्धि की बातें नहीं मानी गईं। जयराज कुपित होकर चला आया। बाद में जब सम्राट को पता चला कि दूत काप्यक के स्थान में कोई और प्रकट हुआ तो उन्होंने उन दोनों को बन्दी बनाने की आज्ञा दी। अभयकुमार उसे पकड़ने दौड़ा। परन्तु वह मारा नहीं गया और जयराज सकुशल वैशाली पहुंचा।

मगध ने वैशाली पर आक्रमण किया। दोनों सेनाएँ भयंकर युद्ध में जुट गईं। निर्णय चिर-युद्ध अभी तक नहीं हो पाया था। दोनों ओर की अपार हानि हुई थी। इसी समय सम्राट अपनी सेना त्यागकर अम्बपाली के आवास में अनिन रात्रें पहुंचे और वहीं

सुरा-सुन्दरी पान करते हुए पड़े रहे। इसी समय सोमप्रभ ने वैशाली की ईंट से ईंट बजा दी।

मगध सेना में सम्राट के लुप्त होने की बात फैल गई। परन्तु वह उच्चाधिकारियों तक ही सीमित थी। सेनापति उदायि मारे गए। वैशाली की सेना को सम्राट का पता चला तो अम्बपाली के आवास पर आक्रमण की तैयारी हुई। इस पर सम्राट ने सोम के पास आज्ञा भिजवाई कि अम्बपाली के आवास की रक्षा की जाय। अत सोम ने युद्ध बन्द कर दिया। और यही मगध-सेना की पराजय का कारण बनी। उधर सेनापति को जब सोमप्रभ से सहायता न पहुंची तो उन्हें वैशाली के समक्ष समर्पण करना पड़ा। सोम की इच्छानुसार विदूडभ भी ५ सहस्र सेना लेकर वैशाली को ध्वस्त करने पहुंचा था।

सम्राट बिम्बसार को जब पता लगा कि सोम ने युद्ध बन्द कर दिया है तो उन्होंने उसका शिरच्छेद करने की प्रतिज्ञा की और गुप्त मार्ग से आगे स्कन्धावार पहुंचे। वहां सोम ने उन्हें बन्दी बनाया और कहा कि देवी अम्बपाली राजमहिषी के पद पर अभिषिक्त नहीं हो सकती। सम्राट को बन्दी बनाने से पूर्व सम्राट और सोमप्रभ में द्वन्द्व युद्ध हुआ। सम्राट को परास्त करके सोम उनका प्राणान्त करना ही चाहता था कि अम्बपाली भागती हुई आई और चिल्लाकर बोली सोम इन्हें छोड़ दो मैं इन्हें प्रेम करती हूं और तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि मैं मगध की राजमहिषी नहीं बनूंगी। सोम ने उन्हें बन्दी बना लिया और कहा कि इन्हें प्राण-दान देता हूं पर ये युद्ध-अपराधी हैं और सैनिक न्यायालय में इस पर विचार किया जाएगा।

सोमप्रभ एकान्त में बैठा अपने पिछले जीवन पर दृष्टिपात कर रहा था। इतने में आर्या मातंगी आई और उन्होंने कहा कि पुत्र अपने बन्दी पिता को मुक्त कर। सम्राट तुम्हारे पिता हैं। आम्रपाली तुम्हारी भगिनी है पर वह वर्षकार की पुत्री है। इस पर सोम को कुछ ढाढ़स बंधा। यह कहते ही मातंगी का देहान्त हो गया।

सोम बन्दीगृह गया। उसने सम्राट को पिता कहकर पुकारा और बताया कि वह आपका और आर्या मातंगी का पुत्र है। आम्रपाली मेरी बहिन है। सुनकर सम्राट कटे वृक्ष की भांति गिर पड़े— इस पर सोम ने बताया कि वह वर्षकार और मातंगी की पुत्री है। सम्राट को कुछ ढाढ़स बंधा। दोनों ने बाहर आकर मातंगी का दाह संस्कार किया। सोम वहां से चला गया, क्योंकि गद्दी पर आम्रपाली के पुत्र को ही बैठाना था।

आम्रपाली के गर्भ से बिम्बसार के पुत्र ने जन्म लिया। उसे उसने राजगृह भेज दिया। सम्राट ने घोषित किया कि मगध का भावी सम्राट उत्पन्न हुआ है।

१० वर्ष पश्चात् आम्रपाली ने तथागत को अपने आवास में निमंत्रित किया। अपना सब कुछ बुद्ध संघ को अर्पण कर वह भिक्षुणी बन गई, भिक्षुओं की टोली में प्रथम बार जाते हुए उसने देखा कि उसके पीछे एक तरुण भिक्षु ने भी चुपचाप अनुगमन किया। आहट पाकर आम्रपाली ने पूछा, 'कौन है ?'

'भिक्षु सोमप्रभ आर्ये'।

आम्रपाली बोली नहीं, रुकी भी नहीं, एक मन्दस्मित की रेखा उसके सूखे होठों और सूखी हुई आंखों में भाग गई। वह चलती गई। चलती चली गई।

तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा
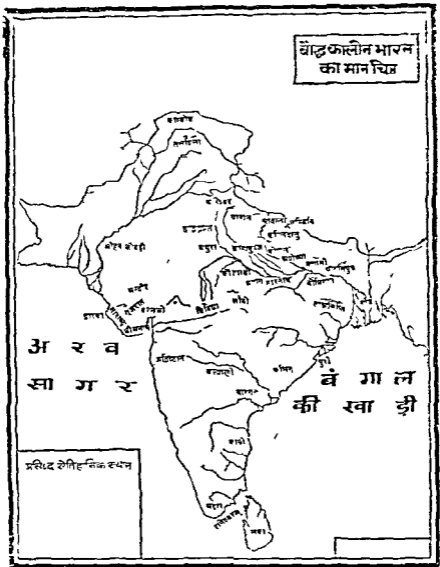
"ईसा पूर्व छठी शताब्दी का काल भारतीय इतिहास मे एक युगान्तर प्रस्तुत करता है। इस काल मे प्रविष्ट होते ही हम राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्रों म क्रान्तिकारी परिवर्तन देखते हैं। अनेक शताब्दियों की क्षीण-सलिला विचारधारायें नवजीवन पाकर इस काल में उद्दाम वेग से प्रवाहित होने लगती हैं। परिणामत भारतीय जीवन के अनेक क्षेत्रों मे हमें एक प्रभजन, एक आप्लावन, एक युगारम्भ अथवा एक परिणति के दर्शन होते हैं।"[1]

छठी शताब्दी ई० पू० का यह काल भारतीय इतिहास मे ही नहीं अपितु विश्व इतिहास मे महान क्रान्ति का काल माना जाता है। क्रान्ति सदा ही तब होती है जब मानव

१. डा० विमलचन्द्र पाण्डे : भारत का सामाजिक इतिहास (प्राक्कथन)।

अपने हृदय, बुद्धि, मन, मस्तिष्क को शृंखलाओं से जकड़ा हुआ पाता है। तब वह इन शृङ्खलाओं को तोड़ डालने के लिये विद्रोह कर उठता है। छठी शताब्दी ई० पू० की इस क्रान्ति के कारण भी इसी प्रकार की बेड़ियाँ थी जो निम्न है —

(१) साहित्यिक जटिलता, (२) यज्ञो की जटिलता,
(३) बलि का प्रकोप, (४) तन्त्र-मन्त्र का प्राबल्य,
(५) ब्राह्मणों की अहम्मन्यता, (६) जाति-प्रथा की जटिलता।

इन कारणों ने जनता के मन और मस्तिष्क में बारूद की भांति कार्य किया। फलतः तत्कालीन समाज में एक विस्फोट हुआ जिसके दर्शन हम राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि हर क्षेत्र में होते हैं।

(१) राजनीतिक दशा

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि छठी शताब्दी ई० पू० एक महान क्रान्ति का काल था। सभी क्षेत्रों में क्रान्ति हुई। राजनीतिक क्षेत्र में भी इस क्रान्ति के व्यापक रूप से दर्शन होते हैं। "उत्तर भारत में आर्यकरण का कार्य बहुत ही वेग से चल रहा था और छठी शताब्दी ई० पू० तक आते-आते यहाँ अनेक शक्तिशाली आर्य केन्द्र स्थापित हो चुके थे। ··· ···अष्टाध्यायी में २२ जनपदों का उल्लेख किया गया है जिनमें कैकय, गांधार, कम्भोज, मद्र, अवन्ति, कुरू, साल्व, कोसल, भारत, उसीनर, यौधेय, व्रिजि तथा मगध सम्मिलित थे। इनमें से कुछ तो प्राचीन थे तथा कुछ का संगठन बाद में हुआ था। पांचाल, विदेह, अंग तथा बंग भी 'प्राच्यजनपद' के नाम से विख्यात थे। ··· वास्तव में प्रारम्भिक बौद्ध-ग्रंथों में ही हमें सर्वप्रथम राजनैतिक इतिहास की पृष्ठभूमि स्पष्ट रूप से प्राप्त होती है।"[१]

(१) १६ महाजनपद .

'अंगुत्तरनिकाय' में १६ महाजनपदों का संक्षिप्त वर्णन मिलता है।

(१) अंग, (२) मगध, (३) काशी, (४) कौशल, (५) वज्जि, (६) मल्ल, (७) चेदि, (८) वश या वत्स, (९) कुरू, (१०) पंचाल, (११) मच्छ या मत्स्य, (१२) सूरसेन, (१३) अस्सक, (१४) अवन्ति, (१५) गांधार तथा (१६) कम्भोज, महाजनपद थे।"[२]

अंग की राजधानी चम्पा, मगध की राजगृह, कौशल की श्रावस्ती, वज्जि की वैशाली, मल्ल की कुशीनारा और पावा, चेदि की शक्तिमती या सान्थिवती, वत्स की कौशाम्बी, कुरू की सम्भवत हस्तिनापुर या इन्द्रप्रस्थ थी, पंचाल की काम्पिल्य, मत्स्य की विराट नगर, सूरसेन की मथुरा, अस्सक की पोतन, अवन्ति की माहिस्सा, गंधार की तक्षशिला, कम्भोज की राजधानी का उल्लेख नहीं मिलता। यह पता चलता है कि इसके राजपुर तथा द्वारका दो प्रमुख नगर थे।[३]

(२) ४ राजतन्त्रीय राज्य :

·(१) पहिला राज्य कौशल का था जिसे वर्तमान में अवध कहते है। वही पुराना कौशल था। इस राज्य के बीच से सरयू नदी बहती थी। अतएव इसको दो राज-

---

१. श्री रतिभानु सिंह नाहर प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ १४५।
२. अंगुत्तरनिकाय . १/२१३, ४/२५२, २६, २६०।
३. वही पृष्ठ १४६-१४७ के आधार पर।

धानियाँ थीं । सरयू के उत्तरी भाग की राजधानी श्रावस्ती और दक्षिणी भाग की कुशावती थी । जिन दिनों बुद्ध जी अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे उन दिनों कौशल में प्रसेनजित शासन कर रहा था । ... कौशल तथा मगध राज्य में सार्वभौम सत्ता के लिये निरंतर संघर्ष चलता रहा । अन्त में विजय-लक्ष्मी मगध को ही प्राप्त हुई ।

(२) वत्स कौशल-राज्य की दक्षिणी सीमा पर स्थित था । इसकी राजधानी कौशाम्बी थी । बुद्ध जी के समय में उदयन इस राज्य का शासक था । उदयन बड़ा ही रण-प्रिय शासक था और अवन्ति के राजा के साथ उसका जीवन-पर्यन्त संघर्ष चलता रहा परन्तु मगध के राजा के साथ उसने सदैव मैत्री रखी ।

(३) अवन्ति राज्य वत्स राज्य के दक्षिण-पश्चिम में स्थित था । इसकी राजधानी उज्जैनी थी । बुद्ध जी के समय में प्रद्योत नामक राजा अवन्ति में शासन कर रहा था । ... उसका निरन्तर वत्स के राजा उदयन के साथ संघर्ष चलता रहा ।

(४) चौथा प्रधान तथा शक्तिशाली राज्य मगध का था । यह राज्य आधुनिक विहार के गया तथा पटना जिलों को मिलाकर बना था । राजगृह इसकी राजधानी थी । बुद्ध जी के समय में बिम्बिसार मगध में शासन कर रहा था । वह बड़ा वीर, साहसी तथा महत्वाकांक्षी शासक था । बिम्बिसार ने अंग राज्य पर विजय कर उसे अपने राज्य में मिला लिया । उसने बौद्ध तथा जैन दोनों ही धर्मों को प्रोत्साहन दिया था ।"[१]

(३) ११ गणतान्त्रिक जातियाँ :

"बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों से हमें बहुत सी अराजतान्त्रिक जातियों का बोध होता है जोकि किसी काल में गंगा की घाटी में स्थित थीं । ... रीज डेविड्स ने अपनी पुस्तक बुद्धिस्ट इंडिया में निम्नलिखित ११ जातियाँ निर्दिष्ट की हैं :—

(१) कपिलवस्तु (कपिलवस्तु) के शाक्य, (२) अलकप्प के बुली,
(३) केसपुत्त के कालाम, (४) सुमुगगिरि के भग्ग,
(५) रामगाम के कोलीय, (६) पावा के मल्ल,
(७) कुशीनारा के मल्ल, (८) पिप्पलिवन के मोरिय,
(९) मिथिला के विदेह, (१०) वैशाली के लिच्छिवी,
(११) वैशाली के नाय ।"[२]

उस समय उत्तरी भारत में कोई सार्वभौम तथा शक्तिशाली राज्य न था जो एक केन्द्र से सम्पूर्ण उत्तरी भारत का शासन चला सकता, बल्कि छोटे-छोटे राज्य थे जो आपस में ही लड़ते और झगड़ते रहते थे । ये राज्य सदा इस प्रयत्न में रहते थे कि निर्बल राज्यों को समाप्त कर अपने राज्य का विस्तार करें । इस प्रकार सभी राज्यों में एक प्रकार की होड़ सी चलती थी ।

(४) तत्कालीन शासन व्यवस्था :

राजतन्त्रात्मक तथा गणतन्त्रात्मक दो प्रकार की शासन-व्यवस्था का प्रचलन

---

१. श्री नेत्र पाण्डेय : भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास, पृष्ठ ११८–११६ ।

२. श्री रविभानु सिंह नाहर : भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ १४७ ।

इस युग मे प्रधान था। कौशल, वत्स, मगध और अवन्ति म राजतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था का प्रचलन था और शेष राज्यों मे गणतन्त्रात्मक व्यवस्था थी। राजतन्त्रात्मक राज्यों म राजा लोग शासन करते थे जिनका पद परम्परागत होता था। राजा निरकुश नहीं होता था वरन् वह मन्त्री परिषद की सहायता से शासन करता था। निर्दयी तथा अयोग्य राजाओं को पदच्युत कर दिया जाता था।

गण-राज्यों की शासन-व्यवस्था लोकतन्त्रात्मक थी। इनमे राज्य की शक्ति गण अथवा समूह के हाथ में रहती थी। गण पचायती राज्य थे। इनका शासन जनता के प्रतिनिधियो के हाथ में रहता था। जो व्यक्ति शासन चलाने के लिए निर्वाचित कर लिए जाते थे, वे राजा कहलाते थे। इन लोगों की एक परिषद् होती थी। इस परिषद् का एक प्रधान होता था। वह भी राजा ही कहलाता था। वह एक निश्चित काल के लिए निर्वाचित कर लिया जाता था। परिषद् को परामर्श देने के लिए एक दूसरी सभा होती थी जो 'अष्ट कुलक' कहलाती थी। इसमें गण के आठ प्रमुख कुलों के प्रतिनिधि होते थे। कई गणराज्य मिलकर कभी-कभी सघ भी बना लिया करते थे। सभवत बड़े राज्यों से भयभीत होकर आत्मरक्षा के लिए इस प्रकार के सघ बनाये गये थे। गण-राज्यों का शासन, परिषद् के प्रधान के हाथ म रहता था जो गण-मुख्य कहलाता था। वह परिषद् के निश्चय के अनुसार अपने अधीन पदाधिकारियो की सहायता से शासन को चलाता था।"[1]

"राज्य की सर्वोच्च कार्यपालिका का प्रधान 'राजा' होता था। यह राजा एक निर्वाचित व्यक्ति होता था। 'राजा' उपाधि थी। राज्य के अन्य महत्वपूर्ण पदाधिकारियो मे उपराज (उपप्रधान) सेनापति तथा भडागारिक (खजाची) थे।

लेकिन गण' की शक्ति वस्तुत सथागार में निहित थी। सथागार मुख्य नगरो में विद्यमान थे। इन भवनो में केन्द्रीय अधिवेशन होते थे। ... सथागारो में पारित अधिनियमो को ही 'राजा' एव मन्त्रि-मण्डल क्रियान्वित करता था। सथागार के सदस्यो को भी 'राजा' कहकर सम्बोधित किया जाता था। ... सभी प्रकार के मामले चाहे उनका सम्बन्ध देश की शान्ति से हो, युद्ध से हो, नागरिकता से हो, इस सभा में उपस्थित होते थे। प्रस्तावो पर बहस होती थी और बहुमत का निर्णय सबको मान्य होता था। ...... चूलकलिंग जातक में यह स्पष्ट निर्दिष्ट है कि लिच्छवि राज्य के समस्त राजा तर्क एव विवाद म अग्रणी थे। मजूमदार ने अपनी पुस्तक कार्पोरेट लाइफ म इस भावना का स्वागत किया है।"[2]

"यद्यपि इस काल मे राजतन्त्र तथा प्रजातन्त्र दोनो ही प्रकार की शासन-व्यवस्था विद्यमान थी परन्तु धीरे-धीरे झुकाव राजतन्त्र की ओर बढता जा रहा था। जिन राज्यो म राजतन्त्रीय व्यवस्था थी उनकी शक्ति धीरे-धीरे बढती जा रही थी और प्रजातन्त्र राज्य निर्बल होते जा रहे थे। जब इन राज्यो म सघर्ष आरम्भ हुआ तो पहले

१. श्रीनेत्र पाण्डेय . भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास पृष्ठ ११८।

२. "It seems to improve that the Assembly was not merely a formal part of the constitution. It had active and vigorous life and wielded real authority in the state".

श्री रतिभानुसिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक एव सास्कृतिक इतिहास, पृ. १४१-१४२।

राजतन्त्र राज्यों ने गणतन्त्रात्मक राज्यों को समाप्त कर दिया और जब राजतन्त्रात्मक राज्यों में सार्व-भौम-सत्ता के लिए संघर्ष आरम्भ हुआ तब मगध राज्य ने अपने प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त कर अपना एक छत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया।"[1]

५- ग्राम संगठन

ग्रामों पर ही सामाजिक-संगठन आधारित था। ......विभिन्न जिलों के भिन्न-भिन्न ग्रामों में रीति-रिवाज, भूमिस्वत्व तथा ग्रामीणों के सामाजिक अधिकार भिन्न भिन्न थे। .. लोग झुण्ड बनाकर अर्थात संगठित होकर ग्रामों में रहते थे।... ग्रामीण घरों के बीच में पतली-पतली गलियाँ थीं। .... ग्रामों में चरागाहों की भी व्यवस्था थी जिनमें सामूहिक रूप से ग्रामीणों के पशु चरा करते थे। कुछ जंगल भी छोड़ दिए जाते थे जिन पर समस्त ग्रामीण जनता का समानाधिकार था। ग्रामीण जनता सामूहिक रूप से चरवाहे 'गो-पालक' नियुक्त करते थे जो खेत कट जाने के पश्चात् उन क्षेत्रों में पशुओं को चराया करते थे।

खेत की बुआई साथ होती थी और सिंचन-कार्य के लिए सामूहिक नालियाँ बनी थीं। ... ग्राम प्रमुख इसका निरीक्षण करता था।

राज्य का भूमि पर केवल इतना अधिकार था कि वह कृषकों से कृषि-कर प्राप्त करे। कृषि-कर वसूल करने के लिए राज्य की ओर से 'ग्राम भोजक' नामक पदाधिकारी नियुक्त था। ...कभी-कभी ग्रामीण जनता सहकारिता के आधार पर सम्मिलित श्रम-दान द्वारा अपने ग्रामों में सड़कों की मरम्मत करती थी, बगीचे लगाती थी तथा इसी प्रकार के अन्य सामूहिक स्थानों, विश्रामगृह आदि का निर्माण करती थी।

६- नगर-संगठन

दीघनिकाय के अनुसार उस काल के छः प्रमुख नगर ये थे।

१- *चम्पा*, २- *राजगृह*, ३- *सावत्थी*, ४- *साकेत*, *कौशाम्बी* तथा ६- *वाराणसी*।

समस्त सुप्रसिद्ध नगर नदियों के तट पर ही स्थित हैं। ......सरयू के तट पर अयोध्या, राप्ती के तट पर श्रावस्ती, गंगा के तट पर वाराणसी (काशी), यमुना के तट पर मथुरा एवं कौशाम्बी तथा गोदावरी के तट पर पोतन (अस्सक प्रदेश की राजधानी) नगर बसा था।

तक्षशिला प्राचीन भारत का सर्वोत्तम नगर था। इसका महत्व शिक्षा की दृष्टि से ही बहुत बड़ा था। तक्षशिला विश्वविद्यालय से ही पाणिनि, जीवक, कौटिल्य जैसे विद्वान स्नातक होकर निकले थे जिन्होंने भारतीय दर्शन एवं साहित्य की अभिवृद्धि में अद्वितीय योग दिया।

नगर साधारणतया दुर्गाकार एक दीवार (प्राकार) से घिरे हुए होते थे। रक्षा के लिए खाइयाँ थीं। ......श्रीमानों की उच्च अट्टालिकाएँ ईंटों की बनी होती थीं उनमें चित्रकारी तथा रंगाई की हुई रहती थी। ..... प्रकाश एवं वायु का विशेष ध्यान रखा जाता था। .... चित्रकारी के नमूने, लेप बनाने की विधि जिन पर ये चित्र बनाये जाते

१. प्रो. श्रीनेत्र पाण्डेय : भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास, पृ. ११८।
२. महापरिनिब्बान सुत्तन्त (दीघनिकाय), पृ. ८।

है, आदि का विस्तृत विवरण विनय मे दिया गया है। चित्रकारी के चार प्रमुख नमूनो के भी वृत्तान्त सुरक्षित हैं। वे इस प्रकार हैं

(क) मालाकार, (ख) लताकार, (ग) पचसूत्राकार, (घ) नाग-दन्ताकार।

डेविड्स महोदय ने निर्धनो की झोपडियो का नग्न चित्रण करते हुए लिखा है कि धनाढयो के भवनो की सख्या कम थी। निर्धनो के एक मजिल वाले मकान नगर की बदबूदार तग गलियो मे घने बने थे, डेविड्स महोदय के ही वाक्यो मे।"[1]

: २ सामाजिक दशा

१- वर्ण-व्यवस्था

भारतवर्ष मे विचाराधीन काल मे पाच वर्ण थे। जातको तथा कुछ जैन ग्रन्थो के आधार पर तत्कालीन समाज के वर्ग निम्न प्रकार थे।

१. ब्रह्मण (ब्राह्मण), २ खत्तिय (क्षत्रिय), ३. वेस्स (वैश्य), ४ सुद्द (शूद्र), तथा ५ हीन जातियु तथा हीन सिप्पनि।[2]

१–० ब्राह्मण – ब्राह्मणो ने समाज मे अपना स्थान सर्वोच्च बनाया हुआ था। ऋग्वेद मे ब्रह्मणो का उल्लेख पितरो के साथ किया है।[3] और तैत्तिरीय सहिता मे तो उसे प्रत्यक्ष देवता कहा गया है।[4] आरण्यक ने कहा है कि समस्त देवता उसमे निवास करते हैं इसलिए वह नमस्कार्य है।[5] वह दिव्यवर्ण है।[6] ताण्ड्य ब्राह्मण मे उसे क्षत्रिय से उच्चतर बताया है।[7] और इतना ही नही वह १० वर्षीय ब्राह्मण १०० वर्षीय क्षत्रिय से श्रेष्ठ है।[8]

ब्राह्मणो की प्रतिष्ठा इतनी बढ गई थी कि दड-विधान मे भी ब्राह्मणो के साथ पक्षपात होता था। यदि शूद्र ब्राह्मण को अपशब्द कहने का दोषी होता तो उसकी जीभ के काटे जाने का दण्ड या मृत्यु-दण्ड दिया जाता।[9] ब्राह्मणी के साथ समागम करने पर शूद्र तो मृत्यु-दण्ड का भागी होता पर पर शूद्रा के साथ समागम करने पर ब्राह्मण को केवल १००० या ५०० कार्षापण का दण्ड मिलता।[10]

---

१. "There was probably tangle of narrow and evil smelling streets of one storied wattle and daub huts with thatched roofs, the meagre dwelle places of the poor."

श्री रतिभानुसिह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ. १९८-२००।

२. श्री रतिभानुसिह नाहर प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सास्कृतिक इतिहास, पृ० १९३।

३. ब्राह्मणास पितर सोम्यास शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा। ऋग्वेद ६, ६, ७५, १०।

४. एते वै देवा प्रत्यक्ष यद् ब्राह्मणा। तैत्तिरीयसहिता १, ७, ३१।

५. यावतीर्वैदेवतास्ता सर्वविद विदि ब्राह्मणा वसंति तस्मात् ब्राह्मणेभ्य: वेद विद्भ्य दिवे दिवे नमस्कुर्यात। आरण्यक २, १५।

६. दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणं.। तैत्तिरीय ब्रा० १, २, ६।

७ ब्रह्म हि पूर्व क्षत्रात्। ताण्ड्य ब्रा० ११, १२।

८ दसवर्षंच ब्राह्मण: शत्वर्षंच क्षत्रिय: पिता पुत्रौ स्म तौ विद्धि तयोस्तु ब्रह्मण: पिता :
आपस्तम्ब १, ४, १४, २१ :

९. मनु : ८–२७० ; १०. मनु : ८–३६६, ८–३७८ :

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि ब्राह्मणों को कितना सम्मान मिला हुआ था। यह स्वाभाविक है कि वे इन अधिकारों का दुरुपयोग करते होंगे। इतर वर्णों के साथ ब्राह्मणों के निश्चित रूप से अच्छे सम्बन्ध नहीं रहे होंगे।

१–१ क्षत्रिय .—क्षत्रियों को भी बड़ा भारी सम्मान दिया हुआ था। उनका स्थान ब्राह्मणों के पश्चात् था। ब्राह्मण को जिस प्रकार वेदाध्ययन, यज्ञ तथा दान करने का अधिकार था क्षत्रियों को भी उसी प्रकार का अधिकार था।[1] गौतम के अनुसार शासन कार्य के लिए राजा को (जो क्षत्रिय होता था) वेद, धर्मशास्त्र, उपवेद तथा पुराणों के विधि-निषेधों का अनुसरण करना चाहिए।[2]

अध्ययन, यज्ञ, दान, शास्त्र, जीवन तथा भूत-रक्षण आदि क्षत्रिय के प्रमुख कार्य कौटिल्य ने बताये हैं।[3]

१–२ वैश्य .—वैश्य वर्ण-प्रतिष्ठा की दृष्टि से ब्राह्मण और क्षत्रिय-वर्णों के पश्चात गिना जाता है। आपस्तम्ब के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-वर्णों में प्रत्येक पूर्वगामी-वर्ण अनुगामी-वर्ण जन्म से ही उच्चतर है।[4]

१–३ शूद्र.—शूद्र की स्थिति तो अत्यन्त दयनीय थी। वह तो सब का दास था, सेवक था। गौतम ने तो उसके लिये अनार्य शब्द का प्रयोग किया है।[5]

१–४ हीन जातियु तथा हीन सिप्पनि :—यह जाति चाडालो, मछेरों आदि की होती थी। यह जाति नगर की चार दीवारी से बाहर रहती थी। बुद्ध के समय के अतिरिक्त इस जाति का कालिदास के काल में भी होना पाया जाता है।[6]

उपर्युक्त वर्ण-व्यवस्था से इतना परिचय स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मणों के विरुद्ध समाज के इतर वर्णों के अन्तर में एक भयंकर अग्नि सुलग रही थी। कारण ब्राह्मणों के द्वारा उन्हें अपमान सहना पड़ता था। समय-समय पर ऐसे विचारक अवश्य उत्पन्न होते रहे हैं, जो धर्मान्धता, रूढ़िवाद के विरुद्ध आवाज उठाते रहे हैं, जो आवाज निर्बल होती है वह दब जाती है और सबल आवाज एक क्रान्ति के रूप में परिवर्तित हो जाती है। ईसा-पूर्व छठी शताब्दी में गौतम-बुद्ध और महावीर स्वामी की आवाजें ऐसी ही थी, जिन्होंने इस धर्मान्धता की जड़ें हिला दी।

---

१. द्विजातीनामध्ययनमिज्या दानम् : गौतम १०, १-३, ७, ५०।

२. गौतम : ११–१६

३. क्षत्रियस्याध्ययन यजन दान शास्त्राजीवो भूतरक्षनच। कौटिल्य ३,६।

४. चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः।
तेषां पूर्वः पूर्वो जन्मतः श्रेयान्॥　　आपस्तम्ब १,१,१,५।

५. गौतम : १०,६६

६. हिन्दू सोसाइटी वाज कम्पोज्ड आफ द फोर ट्रेडिशनल कास्ट्स ओर वर्णाज, द्विज, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एण्ड शूद्र। ए फिफ्थ क्लास, कम्पोज्ड आफ द फाउलर्स, मैन लिविंग बाइ नैट, दैट इज, फिशिंग, चाण्डाल्स, एण्ड द लाइक, हैव आल–सो बीन मैनशण्ड। दिस क्लास——, लिव्ड आउट साइड द वाल्स आफ द सिटी।
डा० भगवतशरण उपाध्याय इण्डिया इन कालिदास पृ० १७१ :

रूढिवादी जाति व्यवस्था के समर्थक एवं निर्माता ब्राह्मणों को चुनौती देते हुये महात्मा गौतम-बुद्ध ने जाति-भेद एवं वर्ण-भेद का समूल विनाश करने के लिये सतत प्रयास किया था।··· मानव की समानता का सन्देश महात्मा-बुद्ध ने वर्ण-भेद की जंजीरों में जकड़े हुए असहाय हिन्दू-समाज को सुनाया और मुक्ति-द्वार सबके लिये खोल दिया। किन्तु जड़ता के आगे चेतनता की यह चिनगारी उतनी प्रकाशयुक्त एवं प्रभावोत्पादक नहीं हो सकी, जितनी जीवन के अन्य क्षेत्रों में इसने अपना जादू दिखलाया। समाज में अस्पृश्यता का रोग पूर्ववत् बना रहा।[1]

जैसाकि पहले कहा गया है, महात्मा-गौतम-बुद्ध के पूर्व लगभग सम्पूर्ण भारत में ब्राह्मणों का प्रभुत्व स्थापित था। "उनका वर्गीकरण समस्त देश में मान्य था, किन्तु बौद्ध-धर्म के उत्थान के पश्चात् सामाजिक परिस्थिति में परिवर्तन आ गया। इसी काल में राजनीतिक सत्ताहीनता में भी परिवर्तन आया। पश्चिमी भारत में तो अब भी ब्राह्मणों का वही दबदबा था और सम्पूर्ण जनता ब्राह्मण-कर्मकाण्ड एवं ब्राह्मण-व्यवस्था को मानती थी।······इस प्रकार समाज में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था।··· किन्तु पूर्वी भारत में अवस्था कुछ भिन्न थी। यहाँ क्षत्रियों का प्राधान्य था। वे अपने को ब्राह्मणों से किसी प्रकार नीचा समझने को प्रस्तुत न थे। ···यह ब्राह्मण-क्षत्रिय विद्वेष भी समाज की जाति-भेद सम्बन्धी कुरूपता का अन्त नहीं कर सका और न इन दोनों की सत्ता का ही समूल नाश हो सका कि समाज में जाति-भेद का प्रश्न ही समाप्त हो जाता। किन्तु हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि स्वयं बौद्ध भिक्षुओं के समाज में भी जाति-पाँति की विशुद्धता का बड़ा ध्यान रखा जाता था। वे भी रक्त को प्रधानता प्रदान करते थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि शाक्यों ने कौशल नरेश प्रसेनजित को शाक्यपुत्री न देकर दासी पुत्री दे दी।"[2]

२—दास-वर्ग :

समाज में दास-वर्ग भी था। इनके विषय में रीजडेविड्स महोदय ने बुद्धिस्ट इंडिया में लिखा है कि :—

'समाज में दासों का बाहुल्य हो गया था। सबल व्यक्ति अपने आक्रमणों से दूसरों को पकड़ लेते थे और दास बना लेते थे और उन्हें सब अधिकारों से वंचित कर दिया जाता था। इन दासों की सन्तान भी दास होती थी।'[3] सुन्दरी दासियाँ उच्च-वर्णों द्वारा भोगी जाती थीं, विशेषतः ब्राह्मणों और क्षत्रियों द्वारा। क्षत्रिय राजा ब्राह्मणों को सुन्दरी दासियाँ दान में देते थे। स्वयं उनका उपभोग करते थे और बेच देते थे। चूँकि

१. श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पृ० १६२

२. श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पृ० १६३

३. There were also slaves, individuals had been captured in predatory raids and reduced to slavary or had been deprived of their freedom as a judicial punishment; or had submitted to salvery of their own accord. Children born to such slaves were also slaves,. and the emancipation of slaves is often referred to.

श्री रतिभानु सिंह नाहर : भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पृ० १६४ से उद्धृत

समाज में उनका कोई स्थान नहीं था। इस कारण ये दासियाँ मुक्त-सहवास और सन्तान उत्पन्न कराने में किसी प्रकार का बन्धन अनुभव नहीं करती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि वर्ण-संकर सन्तान की उस समाज में एक बाढ़ सी आई और इन वर्ण-संकर सन्तानों ने फिर आर्य कही जाने वाली जनता को आक्रान्त किया, उनसे राज्य छीने। इसका विशिष्ट वर्णन हम 'लेखक का उद्देश्य' के अन्तर्गत करेंगे।

३—आश्रम

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार चारों आश्रमों के लिये कात्यायन ने 'चातुराश्रम्य' पद दिया है। सूत्र में उनके नाम ये हैं ब्रह्मचारी (५।२।१३४), गृहपति (४।४।६०), भिक्षु (३।२।१६८), और परिव्राजक (६।१।१५४)। पाणिनि के समय में आश्रम प्रणाली उन्नत दशा में थी।[1] परन्तु बौद्ध तथा जैन-धर्मों के प्रचार के फलस्वरूप ब्राह्मणों की आश्रम व्यवस्था भी ढीली पड रही थी। "अब आश्रमों के स्थान पर आचरण की शुद्धता सेवा आदि पर बल दिया जा रहा था। ब्राह्मणों के प्रभाव के कम हो जाने के कारण आश्रम-व्यवस्था का विरोध हो जाना स्वाभाविक ही था।"[2]

४ विवाह .

"इस काल में कई प्रकार के विवाहों का प्रचलन था जिनमें ब्राह्म, गान्धर्व तथा स्वयम्वर प्रधान थे। जब वर कन्या के माता-पिता अथवा संरक्षक विवाह करते थे तो उसे ब्राह्म-विवाह, वर-कन्या स्वयं अपना विवाह कर लेते थे तो उसे गान्धर्व विवाह और जब किसी प्रतिज्ञा के पूरी हो जाने पर कन्या वर को स्वीकार कर लेती थी तब उसे स्वयम्वर विवाह कहते थे। कुछ जातियों में सगोत्रीय विवाह का प्रचलन था परन्तु अन्य जातियों में सगोत्रीय विवाह मना था। बहु विवाह तथा विधवा विवाह का भी प्रचलन था।"[3]

"पाणिनि ने विवाह के लिए "उपयमन" (१।२।१६) शब्द का प्रयोग किया है जिसकी व्याख्या "स्वकरण" शब्द से सूत्र में की गई है (उपायमः स्वकरणे १।३।५६) पति के द्वारा पत्नी का पाणि गृहण किये जाने पर विवाह-संस्कार सम्पन्न समझा जाता था। ...... मनु के अनुसार केवल सवर्णा स्त्रियों के साथ विवाह पाणिगृहण द्वारा होता था (पाणिगृहण संस्कारः सवर्णा सूप दिश्यते (३।४३) विवाह सम्बन्ध अपने गोत्र से बाहर की प्रथा थी जैसी अब भी है।"[4]

५—नारी का स्थान

"स्त्रियों की दशा के सम्बन्ध में हमें बौद्ध-ग्रन्थों में सांकेतिक उदाहरण प्राप्त होते हैं। प्रारम्भ में भगवान बुद्ध भी उनकी ओर से उदासीन से जान पड़ते हैं। ••• भगवान स्त्रियों को संघ-प्रवेश की अनुमति देने के पक्ष में नहीं दिखलाई पड़ते हैं।[5] किन्तु कालान्तर में उन्हें इस नियम में परिवर्तन करना पड़ा क्योंकि जिस समय वे वैशाली में रुके थे तो महाप्रजापति ने पुरुष-वेश धारण करके अपने साथ अनेक रोती हुई शाक्य-

१. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६५-६६
२. धीरेन्द्र पाण्डेय : भारत का सम्पूर्ण इतिहास पृ० १२० ३. वही पृ० १२०-१२१
४. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६६
५. विनय का प्रथम नियम (विनयपिटक, चुल्लवग्ग १०।१)।

स्त्रियों को लेकर भगवान से संघ प्रवेश की प्रार्थना की और बुद्ध भगवान के प्रिय शिष्य आनन्द ने काफी सिफारिश की थी। फलतः उन्होंने स्त्रियों को संघ प्रवेश की अनुमति प्रदान कर दी पर साथ ही आठ ऐसे कठोर प्रतिबन्ध भी लगा दिए जिनसे उनका संघ-जीवन बहुत कष्ट दायक हो गया और साथ ही इससे उनका स्थान भी निम्नतम हो गया। इन आठ कठोर नियमों में से एक यह भी था कि "सौ वर्ष की भिक्षुणी" को भी पहले भिक्षु की अभ्यर्थना करनी पड़ती थी, चाहे भिक्षु केवल एक दिन का ही क्यों न दीक्षित हुआ हो।"[१] भिक्षुणियाँ भिक्षुओं के पास स्वेच्छा से जाकर वार्तालाप नहीं कर सकतीं थीं पर भिक्षुओं के लिए यह स्वतन्त्रता प्राप्त थी कि वे भिक्षुणियों के पास जाकर बातचीत करें।"[२]

"नारियों को साधारणतया घर की चार दीवारी में रहना पड़ता था। गृह-चातुर्य तथा संगीत उनके मुख्य गुण माने जाते थे। लड़कियों का विवाह बहुधा माता पिता या अभिभावक ही निश्चित करते थे किन्तु किसी विशेष अवस्था में उन्हें अपना वर स्वयं चुनने का अधिकार था।"[३]

"स्त्रियों की दशा इस युग में अधिक सन्तोषजनक न थी। बौद्ध धर्म में भी, जो समानता के सिद्धान्त का समर्थक था, स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की प्रारम्भ में आज्ञा न थी। परन्तु कन्याओं की शिक्षा-दीक्षा का ध्यान रक्खा जाता था और इन्हें संगीत तथा घर के अन्य कार्यों में प्रवीण बनाने का प्रयत्न किया जाता था। यद्यपि पर्दे की जटिल प्रथा न थी परन्तु उनके शील तथा लज्जा का ध्यान रखा जाता था और पुरुषों से थोड़ा बहुत उन्हें पर्दा अवश्य करना पड़ता था। कुछ स्त्रियाँ गणिका अथवा वेश्या का कार्य किया करती थीं।"[४]

(३) धार्मिक दशा

तत्कालीन समाज के हृदय और मस्तिष्क में ब्राह्मण-धर्म के विरुद्ध भावना बारूद की भाँति सुलग रही थी। हिंसा, बलि तथा जटिल यज्ञों के मार्ग पर ले जाने वाले ब्राह्मणों के साथ जनता अब अग्रसर होने को तैयार नहीं थी। "गंगा उपत्यका या कुरु पांचाल के राज्यों के शासन-काल में वैदिक कर्मकाण्ड ••• अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचा। लेकिन अब समाज आगे बढ़ चुका था, ••• और वैदिक कर्मकाण्ड पर भीतर से संदेह और बाहर से प्रहार होने लगा था।"[५] जैसाकि ऊपर कहा गया है कि वर्ण संकरों का एक प्रबल संगठन आर्यों के विरुद्ध खड़ा हो गया था। उन्होंने आर्यों की राजसत्ता को आक्रान्त किया। राजसत्ता को आक्रान्त करने के पश्चात् उन्होंने आर्यों की धर्म-सत्ता को भी निर्मूल करने का संकल्प किया और तभी अत्यन्त प्रतिभाशाली दो वर्ण संकरों ने दो नवीन धर्मों की नींव डाली। वे दो व्यक्ति थे महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध। महावीर स्वामी ने जैन-धर्म को पुनर्जागृत किया, गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म की स्थापना की। चूँकि जनता एक

१. विनय का आठवाँ नियम (विनयपिटक, चुल्लवग्ग १०।१)। २. विनयपिटक, चुल्लवग्ग १०-१।
३. श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ. १६६।
४. श्रीनेत्र पाण्डेय : भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास, पृ. १२०।
५. श्री राहुल सांकृत्यायन : बौद्ध संस्कृति, पृष्ठ ४।

नवीन मार्ग की खोज में संलग्न थी अतः ये दोनों धर्म जनता को प्रिय लगे। परिणाम यह हुआ कि एक बार को इन धर्मों की लहर सारे देश में, विशेषतः उत्तर भारत में व्याप्त गई।

(१) जैन धर्म :

मुख्य जैन सिद्धान्त—"जैन वेद की सत्ता और प्रमाण को स्वीकार नहीं करते और न वे यज्ञों के अनुष्ठान को ही महत्त्व देते हैं। उनका विश्वास है कि प्रत्येक वस्तु में, परमाणु तक में जीव होता है और वह चेतन है। इसका अर्थ हुआ उनका अर्थ-रहित अहिंसक दृष्टिकोण। छोटे से छोटे जीव के प्रति हिंसा का विचार करके उनके लिये अत्यन्त असाह्य और असह्य हो उठा। परिणामतः हिंसा की दृष्टि से यह धर्म अद्भुत वैषम्य का केन्द्र हो उठा, क्योंकि ऐसा भी उदाहरण इतिहास में प्रस्तुत है कि जैन राजा ने पशु की हत्या के अपराध में मनुष्य को प्राण-दण्ड की आज्ञा दे दी। जैन संसार के चेतन सृष्टा, उसके पालन कर्ता अथवा व्यापक परमात्मा को नहीं मानते। उनके अनुसार "ईश्वर उन शक्तियों का उच्चतम, शालीनतम और पूर्णतम व्यक्तिकरण है जो मनुष्य की आत्मा में निहित होती है।"[1] जैन जीवन का लक्ष्य भौतिक बन्धनों से मोक्ष है। आत्मा का बन्धन कर्मों के फलस्वरूप है। पूर्व जन्म के कर्मों का नाश और इह जन्म में उनका अनस्तित्व ही मोक्ष-दायक है। और कर्मों का नाश सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचार के त्रिरत्नों के साधन से होता है। जैन कठोर तप को बड़ा महत्त्व देते हैं। यौगिक क्रियाओं और आमरण अन्न त्याग का भी उनके यहाँ विशेष महत्त्व है। उनका विश्वास है कि तप और संयम से आत्मा को शक्ति मिलती है तथा निकृष्ट प्रवृत्तियाँ दबी रहती हैं।"[2]

(२) बौद्ध धर्म :

बुद्ध के मुख्य सिद्धान्त—"बुद्ध के उपदेश सर्वथा सरल और प्रायोगिक हैं। आत्मा और परमात्मा के झगड़ों में वह कभी न पड़े, क्योंकि उनका विश्वास था कि इस प्रकार के वाद-विवाद से आचार में किसी प्रकार की प्रगति नहीं होती। उन्होंने घोषणा की कि संसार में सब कुछ अनित्य है, (क्षण नश्वर सर्व अनित्य)। अपने समकालीन दार्शनिकों की भाँति वह भी जन्म को दुख मानते थे, परन्तु दुख और विषाद की कठोरता से वह नितान्त व्यथित थे। इसी कारण दुख के विश्लेषण और उसके शमन के उपाय के प्रति वह अधिक दत्तचित्त हुए। अत्यन्त मनोयोग से उन्होंने चार आर्य-सत्यों का प्रचार किया। चार आर्य-सत्य निम्नलिखित थे। (१) दुख है, (२) दुख का कारण है, (३) दुख का निरोध है और (४) दुख के निरोध का मार्ग है। बुद्ध के अनुसार सारे मानव दुखों का कारण तृष्णा है और इसका नाश ही दुख का अन्त करने का एक मात्र उपाय है। तन्हा (तृष्णा) का नाश

१. डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन इण्डियन फिलासफी, भाग १, पृष्ठ ३३१।

२. श्रीमती एस० स्टिवेन्सन की "द हार्ट आफ जैनिज्म", जगमन्दरलाल जैनी की "आउट लाइन्स आफ जैनिज्म", बरोदिया की "हिस्ट्री एण्ड लिट्रेचर आफ जैनिज्म", डा० राधाकृष्णन की "इण्डियन फिलासफी, भाग १ अध्याय ६ पृष्ठ २८६–३४०", शाह की "जैनिज्म इन नार्दर्न इण्डिया" नामक पुस्तकों के आधार पर डा० रमाशंकर त्रिपाठी द्वारा लिखित "प्राचीन भारत का इतिहास" नामक पुस्तक के पृष्ठ ७७–७८ से उद्धृत।

अष्टांगिक मार्ग के सेवन से ही साध्य है। यह अष्टांगिक मार्ग निम्नलिखित है–(१) सम्यक् दृष्टि (विश्वास), (२) सम्यक् संकल्प (विचार), (३) सम्यक् वाक (वाणी), (४) सम्यक् कर्मान्त (कर्म) ( ) सम्यक् आजीव वृत्ति), (६) सम्यक् व्यायाम (श्रम), (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि। बुद्ध ने इसे मध्यम मार्ग (मज्झिम मग्ग) कहा, क्योंकि यह अत्यन्त विलास और अत्यन्त तप दोनो के बीच का था। जो प्रव्रज्या नही ले सकते थ वे भी इस अष्टांगिक मार्ग पर आरूढ हो दु खन्वन्ध को काट सकते थे। सघ के भिक्षुओं का निब्बान अथवा निर्वाण की प्राप्ति के लिय यत्न करना आवश्यक था। उनको मनसा वाचा कर्मणा सर्वथा पवित्रता रखनी थी। इस अर्थ बुद्ध ने १० प्रकार के निम्नलिखित निषेध किये जिनमे से पहले पाँच साधारण उपासक के आचरण मे भी वर्जित थे –(१) पर द्रव्य का लोभ, (२) हिंसा, (३) मद्यपान, (४) मिथ्या भाषण, (५) व्यभिचार, (६) सगीत और नृत्य मे भाग लेना, (७) अजन, फूल और सुवासित द्रव्यो का प्रयाग, (८) अकाल भोजन, (९) सुखप्रद शैया का उपयोग और (१०) द्रव्य ग्रहण। इस प्रकार बुद्ध ने आचार के काफी कई नियम बनाये परन्तु दार्शनिक चिन्तन को आध्यात्मिक उन्नति म बाधक कहकर निषिद्ध किया। बुद्ध की सबसे क्रान्तिकर घोषणा यह थी कि उसके सन्देश सबके लिये हैं। नर और नारी, युवा और वृद्ध, श्रीमान् और कगाल सभी समान रूप से उस पर आचरण कर सकते हैं।"[1]

(३) अन्य प्रमुख धार्मिक सम्प्रदाय :

वास्तव म बौद्धिक क्रान्ति का इतिहास न तो उक्त दो धार्मिक नेताओ तक ही सीमित है और न इन दोनो के साथ ही यह समाप्त हुई। इन दोनो धर्मो के उदय होने के पूर्व भी देश मे कुछ दूसरे धार्मिक सम्प्रदाय विद्यमान थे। 'अगुत्तर निकाय' की तालिका जिसमे दस सम्प्रदायो का उल्लेख किया गया है, काफी प्रामाणिक है। तालिका इस प्रकार है .–

३–० आजीवक—इस सम्प्रदाय के अनुयायी नग्न रहा करते थे और जीविकोपार्जन के सम्बन्ध म विशेष जटिल नियमो एव विधियो का अनुसरण करते थे।

३–१ निगन्थ (निर्ग्रन्थ)—जैन मतावलम्बियो को निर्ग्रन्थ कहा गया है।

३–२ मुण्डसावक बुद्ध घोष ने निर्ग्रन्थ तथा मुण्ड सावक सम्प्रदाय को एक ही सम्प्रदाय स्वीकार किया है।

३–३ जटिलक—ये ब्राह्मण थे और अपनी जटा बढ़ाये रखते थे।

३–४ परिव्राजक—ये भी ब्राह्मण समाज के ही अन्तर्गत थे और सन्यास ग्रहण करके इधर-उधर घूमा करते थे।

३–५ मागन्धिक बौद्ध ग्रन्थो म इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध म कुछ भी नही कहा गया है।

---

१. रीज डविड्स की बुद्धिज्म, कर्न की "मैनुअल आफ इण्डियन बुद्धिज्म", कीथ की "बुद्धिस्ट फिलासफी इन इण्डिया एण्ड सीलोन', डा० राधाकृष्णन की "इन्डियन फिलासफी, भाग १ अध्याय ७–११, पृष्ठ ३४०–७०६" के आधार पर डा० रमाशंकर त्रिपाठी द्वारा, लिखित 'प्राचीन भारत का इतिहास" नामक पुस्तक के पृष्ठ ७६–८० से उद्धृत।

३–६ तेदाण्डिक—सिर के बाल मुंडाये तथा हाथ में दण्ड लिये चलने वाले ब्राह्मण भिक्षुओं को यह नाम दिया गया था।

३–७ अविरुद्धक—इनके सम्बन्ध मे केवल इतना ज्ञात है कि ये स्वय को सबका मित्र घोषित करते थे और किसी का विरोध नहीं करते थे।

३–८ गौतमक—ये महात्मा बुद्ध के चचेरे भाई देवदत्त के अनुयायी थे ······ देवदत्त ने गौतम बुद्ध के विरुद्ध पृथक सम्प्रदाय खड़ा किया था।

३–९ देव धम्मिक जो देवताओं के धर्म को मानते थे उन्हें देव धम्मिक कहते थे किन्तु उसका अभिप्राय किस सम्प्रदाय से है यह अब तक स्पष्ट नहीं हो सका है।[१]

धार्मिक दृष्टिकोण से यह युग एक महान धार्मिक क्रान्ति का युग था। यह क्रान्ति ब्राह्मण धर्म के दोषों के विरुद्ध की गई थी।

·४ आर्थिक दशा

१– कृषि

विचाराधीन काल मे "कुल जनसंख्या का अधिकांश भाग ग्रामों में बसता था जिनका प्रमुख पेशा कृषि था किन्तु कृषि के अतिरिक्त लोग तत्सम्बन्धी उद्योग तथा सहायक उद्योग धन्धे भी किया करते थे।"[२]

"भारत कृषि प्रधान देश होने के कारण अधिकांश लोगों का पेशा कृषि ही था। किसान भूमि का स्वामी समझा जाता था और उसे अपनी उपज के छठे भाग से बारहवें भाग तक राज्य को लगान के रूप मे देना पड़ता था।"[३]

२– उद्योग धन्धे

"जातक मे १८ प्रकार के उद्योग धन्धों का उल्लेख प्राप्त होता है, नामांकन केवल चार प्रकार के उद्योग धन्धो का मिलता हैं – बढ़ई लोहकार, चर्मकार तथा चित्रकार।"[४] पूरी सूची हमे जातक मे भी प्राप्त नही होती है।

"बढ़ई लोग लकड़ी की गाड़ियां, रथ, नाव आदि बनाया करते थे। कुम्हार लोग मिट्टी की और चर्मकार चमड़े की अच्छी अच्छी वस्तुएँ बनाया करते थे। सुनार लोग सोने, चाँदी तथा रत्नो के बड़े सुन्दर आभूषण बनाया करते थे। हाथी दाँत का काम भी उन्नत दशा मे था। जुलाहे बहुत अच्छे-अच्छे कपड़े बुनते थे। कुछ लोग बहेलिए, मछुये, सपेरे नाच गाने आदि के भी काम करते थे। परन्तु ये कार्य समाज में अच्छी दृष्टि से नहीं देखे जाते थे। विभिन्न व्यवसाय के लोगो ने अपने को श्रेणियो मे सगठित कर लिया था। प्रत्येक श्रेणी का एक प्रधान होता था जो जेष्ठक कहलाता था। जेष्ठक का समाज में बड़ा आदर सम्मान था। इन श्रेणियो के अपने नियम हुआ करते थे।"[५]

'बुद्ध ग्रन्थों मे सेट्ठि' शब्द प्रयुक्त हुआ है जो सम्भवत प्रमुख अथवा प्रधान

---

१. श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ २०९ २१०। २. वही पृष्ठ २०१।

३. श्री नेत्र पाण्डेय : भारत का सम्पूर्ण इतिहास, पृ० १२१

४. जातक १।२६४ ॥ ३।३३० ॥ ३।४२८ ॥ आदि।

व्यापारी थे। श्रेष्ठ के अर्थ में ही सेट्ठि का प्रयोग रहा होगा। जातकों में महासेट्ठि तथा अनुसेट्ठि शब्द आये है जिन से यह ध्वनि निकलती है कि 'सेट्ठियों' में भी उनकी स्थिति के अनुसार छोटे-बड़े पद थे।"[१] डेविडस महोदय के अनुसार उस समय के रहन सहन के स्तर के अनुसार धनिकों की संख्या काफी सीमित थी।[२]

"जातक ग्रन्थों से हमें पता चलता है कि इस काल में आन्तरिक तथा बाह्य व्यापार भी उन्नत दशा में था। यह व्यापार जल तथा स्थल दोनों मार्गों से हुआ करता था। भारत से रेशमी वस्त्र, मलमल, कम्बल, सुगन्धित पदार्थ, औषधियाँ मोती, रत्न, हाथी-दाँत का सामान विदेशों को भेजा जाता था। पूर्व से व्यापार करने के लिए ताम्रलिप्ति और पश्चिम से व्यापार करने के लिए भड़ौच के बन्दरगाह को काम में लाया जाता था। आन्तरिक व्यापार के लिए अनेक मार्ग बने हुए थे।[४] जातक में हमें भरूकच्छ (सम्भवत भड़ौच) बन्दरगाह का उल्लेख मिलता है।"[३]

डेविडस महोदय ने व्यापारिक मार्गों के विषय में इस प्रकार कहा है "उस समय नदियों में नावों द्वारा सामान इधर-उधर भेजा जाता था। भीतरी मार्गों में बैल गाड़ियों का प्रयोग होता था। चूंकि अच्छी सड़कें और पुल नहीं थे इसलिए बैलगाड़ियाँ जगलों को पार करके जाती थी। चोर डाकुओं से रक्षा करने के लिए पुलिस का प्रबन्ध होता था। एक देश से दूसरे देश को सामान लाने ले जाने पर कर वसूल किए जाते थे।"[५]

३–व्यापारिक मार्ग ·

डेविड्स महोदय ने इन व्यापारिक मार्गों की रूप-रेखा इस प्रकार प्रस्तुत की है –

---

१ रतिभानु सिंह नाहर प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ० २०३।

२. . .. The number of those who could be considered wealthy from the standards of those times, was very limited
रीज डविडस बुद्धिस्ट इण्डिया पृ० ६२।

३. श्री नेत्र पाण्डेय · भारत का सम्पूर्ण इतिहास, पृ० १२१।

४. जातक ४।१३७।

५. "There were merchants who conveyed their goods either up and down the great rivers, or along the costs in boats , or right across country in carts travelling in caravans These carvans' long lines of small two wheeled carts each drawn by two bullocks, were a distinctive feature of the times There were no made roads and no bridges The carts struggled along, slowly, throguh the forests, along the tracks from village to village kept open by the peasants. *The pace never exceeded two miles an hour. Smaller streams were* acrossed by gullies leading down to fords, larger ones by cart ferries. There were taxes and octroi duties at each different country entered , and a heavy item in the cost was the hire of volunteer police who let themselves out in bands to protect carvans against robbers on the way. The cost of such carriage must have been great , so great that only, the more costly goods could bear it.
रीज डेविड्स . बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० ६०–६१

३-०. उत्तर से दक्षिण-पश्चिम का मार्ग .—सावत्थी से पतिट्ठान (पैठान) तक जिसमें पड़ने वाले प्रमुख स्थान महिस्सति, उज्जैनी, गोनध, विदिशा, कौशाम्बी तथा साकेत थे।

३-१ उत्तर से दक्षिण-पूर्व मार्ग सावत्थी से राजगह (राजगृह) तक जिनमें सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनारा, पावा हत्थिगाम भाण्डगाम, वैशाली, पाटलिपुत्र तथा नालन्दा प्रमुख स्थान पड़ते थे जहां व्यापारी रुकते थे। यह मार्ग सीधे न जाकर काफी घूम कर जाता था।

३-२ पूर्व से पश्चिम का मार्ग :— यह प्रधानतया जल मार्ग था और बड़ी-बड़ी नदियों द्वारा यातायात होता था। गंगा में सुदूर पश्चिम सहजाति तक तथा यमुना में उसी दिशा की ओर कौशाम्बी तक नावें जाती थीं। आगे चलकर नावें गंगा के मुहाने तक जाने लगी और वहाँ से सामुद्रिक मार्ग पकड़ कर वर्मा चली जाती थीं।

३-३. अन्य व्यापार-मार्ग – जातकों तथा अन्य ग्रन्थों में इन मार्गों के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यापार-मार्गों का भी उल्लेख किया गया है। इनमें निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं –

३-३-० विदेह से गांधार तक। ३-३-१ मगध से सौवीर तक। ३-३-२ मरुकच्छ से वर्मा तक। ३-३-३ बनारस से वर्मा तक (*गंगा के मुहाने से होते हुए*)। ३-३-४ चम्पा से वर्मा तक।

४– मुद्रा .

'इस युग में मुद्रा का प्रचलन था और क्रय-विक्रय मुद्रा के माध्यम से हुआ करता था। यद्यपि निष्क, शतमान आदि मुद्राओं का पहिले से ही प्रचलन था। परन्तु इस काल की प्रधान मुद्रा 'कार्षापण' कहलाती थी जो तांबे की बनी होती थी। बौद्धकालीन मुद्रायें ढाली *नहीं जाती थीं वरन् वे पीटकर बनाई जाती थी। इन मुद्राओं पर 'जनपद' 'श्रेणी'* अथवा कोई धार्मिक चिह्न अंकित रहता था।"[1]

५- साझेदारी

"व्यापार में साझेदारी भी होती थी जिसका उल्लेख 'कूट वाणिज्य जातक' में किया गया है। साझे में ईमानदारी न बरतने का भी विवरण प्राप्त होता है और बेईमानी करने वाले को असफल होकर अन्त में बराबर-बराबर भाग देना पड़ता है।"[2]

६– ग्रामों की आर्थिक अवस्था :

ग्रामों की आर्थिक अवस्था के सम्बन्ध में डेविड्स महोदय ने लिखा है .—

ग्रामों की आर्थिक व्यवस्था सरल थी। कोई भी पर आधुनिक शब्दों में धनी नहीं बन सकता था पर साथ ही यहाँ साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन थे, सुरक्षा और स्वतन्त्रता थी। न तो वहाँ जमींदार थे और न भिखारी।"[3]

"ग्राम अर्थ-नीति भूमि के स्वतंत्र स्वत्व के आधार पर खड़ी थी। कृषक अपने *खेत का स्वामी था* परन्तु गाँव की पंचायत अथवा परिषद् की अनुमति बिना वह अपना खेत बेच या रहन नहीं कर सकता था।[4] ग्रामों में अपराध बहुत कम होते थे।''' -

१. प्रो० श्यामत पाण्डेय : भारत का सम्पूर्ण इतिहास, पृ० १२१।

२. श्री रतिभानु सिंह नाहर 'भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ० २०५।

३. वही पृ० १९९-१९८।

४. डा० रमाशंकर त्रिपाठी : प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ७६।

ग्रामीणों का जीवन शान्तिमय था। ग्रामीण जनता को कभी यदि सकटापन्न स्थिति का सामना करना पडता तो वह दुर्भिक्ष द्वारा ही।[1]

उपन्यास मे ऐतिहासिक तत्व

इस उपन्यास की कथावस्तु का आधार अम्बपाली है। बौद्ध ग्रथ अम्बपाली के साक्षी हैं। एक बौद्ध उपाख्यान मे वर्णन आता है कि वैशाली मे एक गणिका अम्बपाली थी जिसने भगवान गौतम बुद्ध को उनके वैशाली आने पर भोजन का निमत्रण दिया और उन्होंने उसे स्वीकार किया जिसके फलस्वरूप वैशाली के राजपुरुषों ने ईर्ष्या की था।[2]

'वैशाली के गणतत्र मे ऐसा कानून था जिसके आधार पर राज्य की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या को अविवाहिता रखकर उसे वेश्या बना दिया जाता था।'[3] श्री चतुरसेन ने कहा– है 'इसी पर से मैंने अपनी कल्पना के सहारे एक छोटी सी कहानी लिखी थी जो एक पत्रिका मे छपी थी। इसके बाद अम्बपाली पर कई कहानी, उपन्यास और लेख मेरे देखने मे आए और मेरे मस्तिष्क मे अम्बपाली को लेकर एक उपन्यास लिखने की भावना जड कर गई।'[4]

– मैंने बौद्ध और जैन साहित्य का गहन अध्ययन आरम्भ किया। – मैंने यह ठान ली कि इस उपन्यास मे एक तरफ जहाँ मसीह से पूर्व ५ वी छठी शताब्दी की सम्पूर्ण धर्मनीति, राजनीति और समाजनीति का रेखा चित्र खीचू, वहाँ अपने अध्ययन और विचारो को भी प्रकट करता जाऊ। अपनी बात को अधिक बल से कहने के लिए मुझे जैन, बौद्ध, हिन्दी-साहित्य तथा सस्कृत साहित्य के साथ वैदिक साहित्य, दर्शन, विज्ञान और मनोविज्ञान का अध्ययन करना पडा। अनेक अग्रेजी और दूसरी भाषाओ के लेख और पुस्तकें भी पढनी पडी।[5]

लेखक के वक्तव्य से प्रकट हुआ कि प्रस्तुत उपन्यास मे पात्र, घटना और तिथि सम्बन्धी ऐतिहासिक तत्व सूक्ष्म रूप से निहित है। हाँ तात्कालिक समाजनीति, धर्मनीति, राजनीति का स्पष्ट दिग्दर्शन उपन्यास मे कराया है। अधिकाश नगरो, राज्यो, ग्रामो आदि का वर्णन विशुद्ध ऐतिहासिक है। उपन्यास मे वर्णित काफी पात्रो के नाम ऐतिहासिक हैं। इनका यथा-स्थान वर्णन किया जाएगा। इन पात्रो के क्रिया कलापो के माध्यम से जो धर्म, समाज और राज का वर्णन किया गया है वह विशुद्ध ऐतिहासिक है पर ये क्रिया-कलाप कुछ कल्पना की सृष्टि है।

ऐतिहासिकता की दृष्टि से सर्व प्रथम राज्यो और नगरो पर विचार करेंगे तत्पश्चात् पात्रो और घटनाओ के विषय मे विचार करेंगे।

: १ - राज्यों और नगरों की ऐतिहासिकता

१- वैशाली

वैशाली उपन्यास का सर्वप्रमुख केन्द्र है जिसकी भित्ति पर इस उपन्यास की अभिसृष्टि हुई है। वैशाली अत्यन्त प्राचीन नाम है। प्राचीन हिन्दू ग्रथों मे वैशाली का

---

१. श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन का राजनीतिक तथा सास्कृतिक इतिहास, पृ० ११६-११८।

२. महावग्ग ६।४।६

३. वैशाली की नगरवधू–पृष्ठ ७७८। ४. वही पृष्ठ ७७८। ५. वही पृष्ठ ७८२

उल्लेख आता है कि यह नगर लिच्छवियो की राजधानी थी। इसे इक्ष्वाकु के पौत्र अथवा नाई के पुत्र ने बसाई थी जिनका नाम राजा विशाल था।[1] परन्तु विशाला के राजवश के अन्त होने से लिच्छवियो के गणतत्र की स्थापना के समय तक के इतिहास के विषय मे निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। बौद्ध-पाली ग्र थों में वैशाली एव लिच्छवियो के सम्बन्ध मे गौतम बुद्ध क अनेक उद्गार प्रकट हैं। भगवान महावीर वैशाली के थे, बौद्ध ग्र थों म तथा अन्य ग्र थो मे इस प्रकार के उल्लेख लब्ध हैं।[2] भगवती सूत्र के टीकाकार अभयदेव ने तो वैशालिक का अर्थ ही महावीर किया है।[3]

ऐसा मालूम होता है कि वैशाली नगरी मे उस समय कुण्ड ग्राम और वाणिज्य ग्राम इन दो नगरो का समावेश भी था। आज भी य दोनो गाँव बानिया वसुकुण्ड नाम से आबाद हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वैशाली का विस्तार धीरे-धीरे बढ़ता गया। बौद्ध ग्र थों से पता लगता है कि जनसख्या बढने से तीन बार कई ग्रामों को सम्मिलित करके इस नगरी को विशाल किया गया जिससे उसका नाम वैशाली पडा।[4]

"इस प्रकार तीन नगरों से मिलकर बने होने के कारण वैशाली को प्रसगानुसार उन तीनो मे से चाहे जिस किसी नाम स पुकारा जाता था। बौद्ध परम्परा म भी वैशाली के तीन जिलो का उल्लेख है। वैशाली दक्षिण पूर्व म, कुण्डपुर उत्तरपूर्व मे और वाणिज्य ग्राम पश्चिम मे। कुण्डपुर के आगे उत्तर पूर्व मे एक कोल्लाग नामक सन्निवेश था उसमे अधिकतर ज्ञातृ-क्षत्रियो की बस्ती थी। इसलिए उसे 'नाय-कुल' अर्थात ज्ञातृ-वशीय-क्षत्रियों का घर कहा जाता था।"[5]

'इसी कोल्लाग सन्निवेश के पास ज्ञातृ-वशीय-क्षत्रियों का द्युतिपलाश नामक एक उद्यान और चैत्य था (विपाक सूत्र--१)। इसे ज्ञातृ-वशियों का उद्यान कहते थे। (नाय-सण्ड-वणे उज्जाणे अथ वा नाय-सण्ड-उज्जाडे)। आचाराग (२-४-२२) मे उत्तर-क्षत्रिय-कुण्डपुर सन्निवेश अथवा दक्षिण ब्राह्मण-कुण्ड-सन्निवेश' का उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि कुण्डपुर सन्निवेश के दो भाग थे, जिसमे उत्तरीय भाग मे क्षत्रिय (सम्भवतः ज्ञातृ) और दक्षिणी भाग मे ब्राह्मणो की बस्ती थी। कल्पसूत्र मे क्षत्रिय-कुण्ड-ग्राम-नगर और ब्राह्मण-कुण्ड ग्राम-नगर ऐसा उल्लेख है।— तिब्बत से प्राप्त ग्रन्थों मे बुद्धकालीन वैशाली में सोने के कलश वाले सात हजार महल और चाँदी के कलश वाले १४ हजार महल तथा ताँबे के कलश वाले २१ हजार घरो का उल्लेख है। इन तीन पृथक-पृथक महलों में अनुक्रम से उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ कुल के लोग रहते थे। इसका आभास उपासक-दशा-सूत्र में हमको मिलता है।"[6]

"वैशाली लिच्छवी का मुख्य नगर था। उसके स्थान पर आज बिहार के मुजफ्फ-

---

१ वाल्मीकि रामायण अ० ४२-६ विष्णु पुराण ४ १-१८ वायु पुराण ८६-

२. अरहा नायपुत्ते भगव वेसालिए' सूत्रकृताग उत्तरा अध्ययन

३ भगवती सूत्र २-१-१२-२　　　　４. मज्झिमनिकाय अट्ठकथा महासिंहनाद सुत्त वण्णना

५ उपासक दशासूत्र -१ ६ हार्नल का अग्रेजी अनुवाद पृष्ठ ३) ६ वैशाली की नगरवधू-पृष्ठ ७८४

रपुर जिले में 'वसाढ' आबाद है। — उनको बुद्ध और महावीर दोनो के उपदेश सुनने को मिले। लिच्छवियों की शासन-काया मे ७७०७ राजा भाग लेते थे। लिच्छवी अपन संघ-की बैठकों के लिये प्रसिद्ध थे। — गौतमबुद्ध ने उनको बहुत सराहा था।[1]

महावस्तु सग्रह ग्रन्थ के अनुसार वैशाली मे १ लाख ६८ हजार राजा निवास करते थे। विनय पिटक म वैशाली की यशोगाथा का गान करते हुए लिखा है कि उसमें ७७७७ प्रासाद, ७७७७ कूटागार, ७७७७ आराम और ७७७७ पुष्करिणियाँ थी[3] महापरिनिब्बाण सुत्त के अनुसार उपन्यासकार चतुरसेन लिखते हैं भिन्न भिन्न राजकाज के छोटे-बड़े कामों के लिये भिन्न-भिन्न पदाधिकारी नियुक्त थे। जैसे अपराधी का न्याय करने के लिए अनुक्रम से राजागण विनिश्चय महामात्र, व्यावहारिक सूत्रधार, अष्टकुलक, सेनापति, उपराजा और राजा इतने अधिकारियों के मण्डल के पास अपराधी को ले जाया जाता था।[4]

उपन्यासकार ने वैशाली के विषय म लिखा है, "मुजफ्फरपुर से पश्चिम की ओर जो पक्की सड़क जाती है, उसपर मुजफ्फरपुर से लगभग १८ मील दूर 'वैसौढ' नामक एक बिल्कुल छोटा-सा गाँव है।" वास्तव में वहाँ अबसे कोई ढाई हजार वर्ष पूर्व एक विशाल नगर बसा था। आजकल जिसे गण्डक कहते हैं उन दिनो उसका नाम 'मिही' था — उन दिनो यह दक्षिण की ओर इस वैभवशालिनी नगरी के चरणों को चूमती हुई दिघिवारा के निकट गंगा मे मिल गई थी। इस विशाल नगरी का नाम वैशाली था। यह नगरी अति समृद्ध थी। उसमें ७७७७ प्रासाद, ७७७७ कूटागार, ७७७७ आराम और ७७७७ पुष्करिणियाँ थीं। धन-जन से परिपूर्ण यह नगरी तब अपनी शोभा की समता नहीं रखती थी।

यह लिच्छवियो के वज्जी संघ की राजधानी थी। नगरी के चारों ओर काठ का तिहरा कोट था, जिसमें स्थान-स्थान पर गोपुर और प्रवेश-द्वार बने हुए थे।"

२ – लिच्छवि

"लिच्छवि राज्य मे ७७०७ राजा ७७०७ उपराजा ७७०७ सेनापति थे। इन राज्यों मे सब लोग निरपेक्ष भाव से अपनी योग्यता प्रदर्शित कर सकते थे। 'ललित विस्तर' म लिच्छवि लोगों के बारे में यह लिखा हुआ है "यहाँ छोटे-बड़ो का आदर तक नहीं करते। सभी कोई अपने को राजा बताते हैं। सभा कोई चिल्लाते रहते हैं "मैं राजा हूँ, मैं राजा हू।" प्रजातन्त्र राज्यों मे गणपति प्रधान अफसर होता था। इसका चुनाव वोट के द्वारा होता था।"[6]

लिच्छवि गणतन्त्र बुद्धकालीन भारत के १६ महाजन पदों मे से एक प्रमुख राज्य था। इस गणराज्य के पूर्व म वन्य प्रदेश, पश्चिम मे कोशल देश और कुसीनार,

१. श्री विपिनेशचन्द्र भारतीय इतिहास, पृष्ठ

२. महावस्तु ग्रन्थ- १-२७।

३. विनय पिटक महावग्ग ८-१-१

४. वैशाली की नगरवधू–पृष्ठ ७६०

५. वैशाली की नगरवधू पृ. १–२।

६. प्रयाग महिला विद्यापीठ : हमारे देश के इतिहास, पृ. ७१ :

तथा पावा, उत्तर में हिमालय की तलहटी में आया हुआ वन्य प्रदेश और दक्षिण में मगध साम्राज्य था।

भगवान बुद्ध ने लिच्छवियों की प्रशंसा इस प्रकार की है "हे भिक्षुओं, आज लिच्छवि प्रमाद-रहित और वीर्यमान होकर व्यायाम करते हैं इससे मगध का राजा उनके मर्म को समझकर उन पर चढ़ाई करते हुए डरता है। हे भिक्षुओं, भविष्य में लिच्छवि सुकुमार हो जाएँगे और उनके हाथ पैर कोमल और सुकुमार बन जाएँगे। वे आज लकड़ी के तख्त पर सोते हैं फिर वे रुई के गद्दों पर सूर्योदय होने तक सोते रहेंगे तब मगधराज उन पर चढ़ाई कर सकेगा।"[1]

'वैशाली की नगरवधू' के लेखक आचार्य चतुरसेन शास्त्री प्रस्तुत उपन्यास की 'भूमि' में 'महापरिनिव्वाण सुत्त' से निम्नांकित उद्धरण देते हैं — हे आनन्द, लिच्छवि बारम्बार सम्मेलन करते हैं और इन सम्मेलनों में सभी इकट्ठे होते हैं, एक साथ बैठते हैं, एक साथ उठते हैं और एक साथ काम करते हैं। जो नियम विरुद्ध है वह काम नहीं करते, जो नियम-सम्मत है उसका विच्छेद नहीं करते ......कुल-कुमारियों और कुल स्त्रियों का हरण नहीं करते, न उन पर बलात्कार करते हैं, अपने भीतरी और बाहरी चैत्यों को मानकर सत्कार से पूजते हैं और पूर्व परम्परा के अनुसार धार्मिक बलि देने में असावधानी नहीं करते। अर्हन्तों की रक्षण और आश्रयण के लिए वे व्यवस्था रखते हैं।"[2]

"विन्सेण्ट स्मिथ लिच्छवियों को मूलतः तिब्बत निवासी बताता है। हड़सन उन्हें शक कहता है। उनके आचार-विचार आस-पास के क्षत्रियों के कुलों से सर्वथा भिन्न थे। न वे वेदों में श्रद्धा रखते थे न ब्राह्मणों में। न वे वर्ण-व्यवस्था मानते थे। वे यक्ष प्रतिमा पूजते थे, तथा मुर्दों को जंगल में फेंक आते थे। वे उत्कृष्ट योद्धा धनुर्धारी तथा शिकारी थे। शिकार में कुत्तों को साथ रखते थे। शत्रु उन्हें क्रूर कहकर पुकारते थे। सार्वजनिक स्त्रियों का वे खुल्लम-खुल्ला उपयोग करते थे। उनके साथ उद्यानों में विहार करते तथा स्त्री के लिए घातक युद्ध कर डालते। उनका प्राचीनतम मान्य पवित्र ग्रन्थ पवेणी पोथ्थकम् था।"[3]

आचार्य श्री ने प्रस्तुत उपन्यास में वैशाली नगरी और लिच्छवि गणराज्य का वर्णन बहुत अंशों में उपर्युक्त उद्धरणों के अनुरूप ही किया है।

३—मगध और राजगृह

मगध और उसकी राजधानी राजगृह 'वैशाली की नगरवधू' में वर्णित दूसरा प्रसिद्ध राज्य है जिसके फलस्वरूप उपन्यास के ताने बाने के सूत्र उपन्यास के अथ से इति तक विद्यमान हैं।

बुद्धकाल में सम्राट बिम्बसार के समय में मगध एक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण राज्य बन गया था। 'मगध की महारानी वासवी की पुत्री पद्मावती का सम्बन्ध कौशाम्बी से है।'[4] वह उदयन की रानी है।[5] मगध की राजमाता छलना की धमनियों में लिच्छवि-

१. बोधम्म सुत्त : व० १, सु० ३ (वैशाली की नगरवधू पृष्ठ ७८७)
२. वैशाली की नगरवधू : पृष्ठ ७८८।
३. वही पृ. ७८६।
४. श्री जयशंकर प्रसाद : राज्यश्री ३।५१।
५. वही अजातशत्रु १।२५।

रक्त बडी शीघ्रता से दौडता है । इस प्रकार मगध का सम्बन्ध वैशाली के लिच्छवि राज्य से भी है । मगध की महारानी वासवी कोशल के महाराज प्रसेनजित की बहिन है ।[1] सम्भवत बिम्बसार के शासन-काल मे ही मगध ने अपनी अच्छी प्रतिष्ठा बनाली थी । काशी का राज्य मगध का एक अग हो गया था, क्योकि कोशल ने उसे वासवी को दहेज मे दे दिया था ।[2] मगध की राजधानी इस समय राजगृह थी ।"[3]

"इतिहास के अनुसार मगध की राजकीय शक्ति का प्रतिष्ठाता बिम्बसार ही था और उसने नवीन राजगृह की स्थापना ही की थी । उसने अग को विजय किया एव समीपवर्ती राष्ट्रो से विवाह-सम्बन्ध किये, जिनमे कोशल और वैशाली मुख्य था ।"[4]

"मगध मे वर्तमान पटना और गया दोनो जिले थे । गिरिव्रज या राजगृह राजधानी थी । यहाँ का प्रथम राजा प्रमगड कीकट था । (ऋगवेद ३।५३।८) निरुक्तकार यास्क उसे अनार्य कहता है (निरुक्त ६।३२) अभिधान चिन्तामणि मे कीकट मागधो को कहा है ।—— यह महाराज्य बुद्धकाल मे गगा, चम्पा और सोन नदियो के बीच मे था, इसकी परिधि २३०० मील थी (रिज डेविड) ।"[5]

'मगध राज्य आर्यावर्त के प्राचीन राज्यो मे से था । कहते हैं महाभारत काल मे जरासन्ध इस देश का शासक था । बिम्बसार के समय मगध मे ८० हजार ग्राम थे ।"[6]

उपन्यासकार ने मगध के विषय मे इसी प्रकार का वर्णन दिया है — — मगध साम्राज्य मे ८० हजार ग्राम लगते थे । — — यह साम्राज्य विध्याचल गगा, चम्पा और सोन नदियों के बीच फैला हुआ था जो ३०० योजन के विस्तृत भूखण्ड की आय का था । इस साम्राज्य के अन्तर्गत १८ करोड जनपद था ।[7]

"आर्यो के बोए वर्ण-सकरत्व के विष-वृक्ष का पहिला फल मगध साम्राज्य था । जिसने असुरवशियो से रक्त-सम्बन्ध स्थापित करके शीघ्र ही भारत भूमि से आर्य राजवशो को हतप्रभ कर दिया था । ब्राह्मणो और क्षत्रियो ने इतर जाति की युवतियो को अपने उपभोग मे लेकर उनकी सन्तानो को अपने कुल-गोत्र एव सम्पत्ति से च्युत करके उनकी जो नवीन सकर जाति बना दी थी, इनमे तीन प्रधान थी । जिनमे मागध प्रमुख थे । इन्ही मागधो ने राजगृह को राजधानी बनाई ।"[8]

राजगृह : "अति रमणीय हरितवसना पर्वतस्थली को पहाडी नदी सदानीरा अर्धचन्द्राकार काट रही थी । उसी के बायें तट पर अवस्थित शैल पर कुशल शिल्पियो ने मगध-साम्राज्य की राजधानी राजगृह का निर्माण किया था । दूर तक इस मनोरम सुन्दर नगरी को हरीभरी पर्वत शृखला ने ढाँप रखा था । उत्तर और पूर्व की ओर दुर्लंघ्य पर्वत श्रेणियाँ थी जो दक्षिण की ओर दूर तक फैली थी । पश्चिम की ओर मीलो तक बड़े-बड़े

१. श्री जयशकर प्रसाद । अजातशत्रु । १। ४१ । २. वही १।२६।
३. डा० जगदीशचन्द्र जोशी : प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृष्ठ २२१।
४. अजातशत्रु : १ ३७ ।
५. वैशाली की नगरवधू : पृ. ७६२–७६३ ।
६. प्रयाग महिला विद्यापीठ : हमारे देश का इतिहास, पृ. ७१ ।
७. वैशाली की नगरवधू ; पृ. ७१ । ८. वही पृ. ७० ।

पत्थरों की मोटी अजेय दीवारें बनाई गई थीं। स्थान-स्थान पर गर्म जल के स्रोत थे। बहुत सी पर्वत-कन्दराओं को काट-काट कर गुफाएँ बनाई गई थीं। नगर की शोभा आलौकिक थी।—— नगर के बाहर अनेक बौद्धविहार बन गए थे।"[1]

इतिहास में राजगृह के विषय में विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता, केवल इतना ही मिलता है कि राजगृह मगध की राजधानी थी। उपन्यासकार ने थोड़ी आलंकारिक भाषा में राजगृह का वर्णन किया है। यह आलंकारिकता इतिहास के विरुद्ध नहीं गई है अतः इसे हम इतिहास के अन्तर्गत ही लेते हैं।

४—कोशल राज्य

वैशाली की नगरवधू उपन्यास की कथावस्तु को गति देने वाला तृतीय मुख्य राज्य है कौशल राज्य। आधुनिक अवध के अनेक भाग इसके अन्तर्गत थे। श्रावस्ती इसकी राजधानी थी।[2] प्रसाद ने भी कोशल की राजधानी श्रावस्ती को माना है।[3]

कोशल की सीमा का स्पष्ट निर्देश इतिहास नहीं करता है। "परन्तु जातकों में सीमाप्रान्त के किसी विद्रोह का उल्लेख अवश्य मिलता है, जिसको दबाने के लिए बन्धुल मल्ल को भेजा गया था।[4]

मगध और शाक्यों से कोशल के वैवाहिक सम्बन्ध थे। प्रसाद जी ने अपने अजातशत्रु नाटक में इस पर प्रकाश डाला है।[5] सम्राट प्रसेनजित के शासन के समय शाक्यों का राज्य कोशल का करद राज्य रहा होगा।[6]

काशी और साकेत पर भी कोसलों का अधिकार था और शाक्य-संघ इन्हें अपना अधीश्वर मानता था। हिरण्यनाभ कौसल, सेतव्य नरेश और ययाति इन्हें अधिपति मानते थे। यह महाराज्य दक्षिण में गंगा और पूर्व में गंडक नदी का स्पर्श करता था। बुद्ध से कुछ पहिले कोशल-राजधानी साकेत हो गई थी।[7]

कोशल राज्य उन दिनों बहुत दूर तक फैला हुआ था। शाक्यों का प्रजातन्त्र-राज्य तथा काशी राज्य इस राज्य के अन्तर्गत थे। राजा बिम्बसार पसेनदी (प्रसेनजित) कोशल के बहनोई लगते थे।……पसेनदी के बेटे विडूडभ ने शाक्यों पर चढ़ाई की और बहुत लोगों को मार डाला।[8]

उपन्यास में कोशल राज्य का उल्लेख तो मिलता है पर विवरण या वर्णन नहीं मिलता।

---

१. वैशाली की नगरवधू : पृ. ६८।
२. श्री रविभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास, पृ. १४६।
३. श्री जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु, १।५२।
४. डिक्शनरी आफ पालि प्रोपर नेम्स 'बन्धुल' पृष्ठ २६६।
५ श्री जयशंकर प्रसाद— अजातशत्रु, १।५२, ५३, ५४।
६. धम्मपद अट्ठ कथा, १।३३१, जातक १।१३३, ४।१४४।
७ वैशाली की नगरवधू— पृष्ठ ७१२।
८. प्रयाग महिला विद्यापीठ—हमारे देश का इतिहास, पृष्ठ ७२।

५–कौशाम्बी :

कौशाम्बी वत्स राष्ट्र की राजधानी थी। कौशाम्बी-नरेश उदयन का भी इस उपन्यास की कथावस्तु मे थोड़ा योगदान है। इसके खडहर कर्वी के पास जिला बाँदा, उत्तर प्रदेश मे यमुना किनारे 'कोसम' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रसाद के अनुसार उदयन के राज्य-काल मे गौतम ने अपना नवाँ चातुर्मास्य कौशाम्बी मे व्यतीत किया।[1] कौशाम्बी का वत्स राष्ट्र की राजधानी होने का उल्लेख जातको मे है।[2] रामायण[3] और महाभारत[4] के अनुसार चेदि राज्य ने कौशाम्बी बसाई। भर्ग राज्य वत्स का करद था।[5]

बुद्ध के समय म कौशाम्बी अवश्य ही महत्वपूर्ण नगरी रही होगी, क्योंकि आनन्द इसको बुद्ध के 'परिनिब्बाण' के योग्य स्थानो मे से मानता है।[6] विनय पिटक[7] के अनुसार कौशाम्बी दक्षिण और पश्चिम से आने वाले कौशल और मगध के यात्रियो के लिए महत्व-पूर्ण विश्राम-स्थल था। मनोरथ पूर्णी अगुत्तर टीका[8] तथा 'पटिसम्भिदामग्ग'[9] मे लिखा है कि वक्कल निगल जाने वाली मछलियाँ यमुना मे बनारस से कौशाम्बी तक ३० कोश तैर कर चली जाती थी। अत कौशाम्बी बनारस से तीस मील पश्चिम मे रही होगी।[10]

बौद्ध ग्रन्थो म कौशाम्बी नाम के दो कारण बताए हैं।[11] प्रथम और अधिक प्रचलित कारण यह है कि ऋषि कुसुम्ब या कुसुम्भ के आश्रम मे अथवा उसके आस-पास कौशाम्बी बसाई गई थी। दूसरा यह कि विशालकाय (कोसम्बरुक्ख)।[12] कोसम के वृक्ष नगर के चारो ओर प्रचुर परिमाण मे थे। लका की प्राचीन पुस्तको मे भी कौशाम्बी प्राचीन भारत के १६ प्रमुख नगरो मे से एक माना गया है।[13] बौद्ध साहित्य मे सूचित षोड़ष महाजन पदो मे वत्स अथवा वश का उल्लेख करते हुए त्रिपाठी[14] भी कौशाम्बी या कोसम्ब को उसकी राजधानी मानते हैं।[15]

उपन्यास मे कौशाम्बी के विषय मे कोई वर्णन नही मिलता।

६–श्रावस्ती

श्रावस्ती कौशल की राजधानी थी। यह साकेत से ४५ मील उत्तर, राजगृह से ३३७ मील उत्तर पश्चिम, साकाश्य से २२५ मील अचिरवती नदी के किनारे पर बसी थी।[16] प्रसाद ने श्रावस्ती मे बौद्ध धर्म का अच्छा प्रभाव दर्शाया है।[17] प्रसाद ने भी श्रावस्ती

१. श्री जयशकर प्रसाद : अजातशत्रु, कथा प्रसग, पृष्ठ १६।
२. जातक, ४।२८, ६।२३६। ३. रामायण, ३२-३-६। ४. महाभारत, ६२-३१।
५. जातक, ३५३। ६. विनय पिटक, १।२७७। ७. वही– १।२७७।
८. डिक्शनरी आफ पाली प्रोपर नेम्स, पृष्ठ ६९२। ९. वही– ६९२।
१०. डा० जगदीशचन्द्र जोशी : प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृष्ठ २४६-२४७।
११. डिक्शनरी आफ पाली प्रोपर नेम्स, पृष्ठ ६९२।
१२. मारगोमा ट्री। १३. एशियट ज्याग्राफी आफ इण्डिया, कनिघम, पृष्ठ ४४८।
१४. डा० रमाशकर त्रिपाठी : प्राचीन भारत का इतिहास,
१५. डा० जगदीशचन्द्र जोशी : प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृष्ठ २४७।
१६. वैशाली की नगरवधू : पृष्ठ ७९९।
१७. श्री जयशकर प्रसाद ; अजातशत्रु, २।१९, १००।

को कोशल की राजधानी बनाया है।[१] "श्रावस्ती सूर्यवंशी राजा युवनाश्व के पुत्र श्रावस्त ने बसाई थी।[२] बुद्धकाल में यह राजा प्रसेनजित की राजधानी थी"।[३]

'श्रावस्ती का उल्लेख बहुत से जातकों में भी मिलता है। यह बौद्धकाल की सर्वश्रेष्ठ महानगरियों में से एक है। भगवान बुद्ध ज्ञान-प्राप्ति से पूर्व एवं उसके उपरान्त भी श्रावस्ती में रहे, राजा प्रसेनजित उनके अन्यतम भक्तों में से एक था।"[४]

"कोशल की श्रावस्ती वर्तमान गोंडा और बहराइच जिलों की सीमा पर 'सहेठ-महेठ' ग्राम के स्थान पर थी।"[५]

उपन्यासकार ने श्रावस्ती के विषय में कहा है कि "श्रावस्ती उन दिनों जम्बूद्वीप का सबसे बड़ा नगर था। ... श्रावस्ती में समस्त जम्बूद्वीप की सम्पदाओं का अगम समागम था। ......श्रावस्ती महानगरी में हाथी-सवार, घुड़सवार, रथी, धनुर्धारी आदि नौ प्रकार की सेनाएँ रहती थीं। कोशल राज्य की सैन्य में यवन, शक, तातार और हूण भी सम्मिलित थे। ... उच्चवर्णीय सेट्ठियों, सामन्तों, श्रमणों और श्रोत्रिय ब्राह्मणों के अतिरिक्त, दास, रसोइए, नाई, उपमर्दक, हलवाई, माली, धोबी, जुलाहे, मौआ बनाने वाले, कुम्हार, मुट्ठिर, मुल्लड़ी और कर्मकार भी थे।"[६]

७-तक्षशिला :

तक्षशिला से निकले स्नातकों का इस उपन्यास में बड़ा योगदान रहा है। अतः तक्षशिला की ऐतिहासिकता के विषय में भी थोड़ा विचार कर लिया जाए।

महाभारत में उल्लिखित जनमेजय ने तक्षशिला पर विजय प्राप्त की थी।[७] रमाशंकर त्रिपाठी ने तक्षशिला को गांधार की राजधानी बताते हुए, बुद्धकालीन षोडश जन-पदों के प्रसंग के समय, उसकी चर्चा की है।[८]

प्लिनी के अनुसार तक्षशिला नगरी पुष्कलावती से ६० रोमन मील (अंग्रेजी ५५ मील) दूरी पर एक निम्न समतल क्षेत्र पर बसे हुए अमन्द (Amande) नामक जिले में थी।[९] एरियन इसे सिन्धु और झेलम के बीच के प्रदेश का सबसे बड़ा नगर मानता है।[१०] राय चौधरी इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं कि तक्षशिला का राज्य गांधार के प्राचीन राज्य का पूर्वी भाग था। स्ट्राबो इस प्रदेश को अत्यन्त उपजाऊ और घना बसा हुआ मानते हैं।[११] यूनानी इतिहासकारों के अनुसार ई०पू० ३२७ में 'टैक्साइल्स' तक्षशिला के सिंहासन

---

१. श्री जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु, २।१००। २. विष्णु पुराण (विल्सन) ४।२।
३. एन्शियेंट ज्योग्राफी आफ इण्डिया, कनिंघम, पृष्ठ ३९८।
४. डा० जगदीशचन्द्र जोशी : प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृष्ठ २४७।
५. वैशाली की नगरवधू : पृष्ठ ७६२।
६. वैशाली की नगरवधू— पृष्ठ २८५-२८६।
७. महाभारत (आदिपर्व) ३।६८२, ८३, ८३२-३४।
८. डा० रमाशंकर त्रिपाठी . प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ ४५।
९. प्लिनी, ६।२३। १०. एरियन (इंवेजन), मैकिंडल, पृष्ठ ८२।
११. स्ट्राबो (मैक्रिंडल), पृष्ठ ३४।

पर था और उसके पश्चात् 'आम्भी' (आम्भीक) वहाँ का राजा हुआ।[1]

"ई० पू० ६०० में तक्षशिला (पेशावर के निकट) में एक भारी विश्वविद्यालय था। यहाँ पर कुल विद्या तथा शिल्प का पठन-पाठन होता था। देश के चारों ओर से बड़े-बड़े ब्राह्मण, क्षत्रिय राजकुमार आदि शिक्षा प्राप्त करने के लिये वहाँ जाते थे।"[2]

पाणिनि, वररुचि, चाणक्य प्रभृति विद्वान तक्षशिला की गौरवशील देन थी। चन्द्रगुप्त की भूमिका में प्रसाद ने तक्षशिला के विषय में कहा है, "तक्षशिला नगरी अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। जहाँ का विश्वविद्यालय पाणिनि और जीवक ऐसे छात्रों का शिक्षक हो चुका था।"[3] स्मिथ लिखता है—"तक्षशिला उन दिनों पूर्व की सबसे बड़ी नगरियों में से थी और यहाँ उत्तरी भारत का एक प्रख्यात विद्यापीठ था, जहाँ सभी जातियों के विद्वान शिक्षा-प्राप्ति के लिये एकत्र होते थे।"[4] "तक्षशिला भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं शिक्षा का प्रमुख केन्द्र रही थी।"[5]

उपन्यास में तक्षशिला का उल्लेख तो कई स्थानों पर हुआ, पर कोई वर्णन नहीं मिलता।

८—चम्पा :

प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु को गति प्रदान करने वाली एक नगरी चम्पा भी है। इस नगर के सम्बन्धित पात्रों और घटनाओं ने उपन्यास में एक विशिष्ट मनोरंजन की अभिसृष्टि की है। यह नगर अंग राज्य की राजधानी था। "अंग राज्य मगध के पूर्व में उससे सम्बद्ध था। चन्दन नदी दोनों राज्यों की सीमा थी। चम्पा का स्थान भागलपुर के निकट कहा जाता है। यहाँ से जहाज स्वर्णभूमि तक जाते थे।[6] अंगवैरोचन वहाँ के प्रतापी राजा थे, उनके पुत्र दधिवाहन की कन्या महावीर की सर्वप्रथम स्त्री-शिष्या थी।"[7]

चम्पा नगरी के विषय में भी कोई विशेष उल्लेख उपन्यास में नहीं है।

कुछ नगरों एवं राज्यों के नाम और हैं, जिनका विशेष योगदान इस उपन्यास में नहीं है। वे निम्न प्रकार हैं—

९—अवन्ती :

"अवन्ती का दूसरा नाम मालवा है। इसकी राजधानी उज्जयिनी थी। बुद्ध के समय प्रद्योतवंशीय राजा चण्ड बड़ी शान के साथ देश पर राज्य करते थे। इन्होंने वत्स देश के राजा उदयन को कैद कर लिया। पश्चात् अपनी लड़की वासवदत्ता से इनका ब्याह कर

१. डा० जगदीशचन्द्र जोशी : प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृष्ठ २४९–२५०।
२. प्रयाग महिला विद्यापीठ : हमारे देश का इतिहास पृ० ५१
३. श्री जयशंकर प्रसाद : चन्द्रगुप्त (भूमिका) पृ० २८
४. स्मिथ : अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया पृ० ६५
५. जातक, ८।२२, ५९
६. जातक (५४२)।
७. ऐतरेय ब्रा० (viii २२) महागोविन्द सुत्तंत।

दिया।"[1] प्रसाद ने उज्जयिनी को शिप्रा के तट पर बसी हुई मालवा प्रदेश की एक प्रसिद्ध नगरी बताया है।[2]

इस उपन्यास में अवन्ती का उल्लेख मात्र मिलता है।

१०—गान्धार :

सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार गान्धार नाम के दो राज्य थे, पूर्वी गान्धार और पश्चिमी गान्धार। पूर्वी गान्धार सिन्ध और झेलम नदियों के बीच में था जिसकी राजधानी तक्षशिला सिन्धु के पूर्वी तट पर थी। सिन्ध-नदी के पश्चिम में पश्चिमी गान्धार की राजधानी पुष्करावती थी।[3]

११—काशी :

प्रसाद के अनुसार वासवी देवी को उनके पिता ने काशी का राज्य दहेज में दिया था।[4] काशी प्रदेश मगध के पश्चिम में था और काशी के उत्तर पश्चिम की ओर कोशल प्रदेश था। जातकों से ज्ञात होता है कि काशी एक महत्वपूर्ण प्रान्त था, क्योंकि बनारस या काशी के राजा ब्रह्मदत्त को लेकर कई कथाएँ कही गई हैं। स्मिथ का विचार है कि प्राचीन ग्रंथों में इनकी प्रसिद्धि का कारण केवल शक्तिशाली पड़ौसी राष्ट्रों से सम्बन्ध ही नहीं वरन इसलिये भी है कि बुद्ध-धर्म-प्रवर्तन के इतिहास का यह सबसे पवित्र स्थान है।[5] इसी सांस्कृतिक महत्ता के कारण सम्भवतः इसका राजनीतिक महत्व भी बढ़ गया हो और इसमें सन्देह नहीं कि काशी के कारण ही मगध और कोशल के बीच राजनीतिक संघर्ष होते रहे। काशी के इसी महत्व के कारण प्रसाद ने इसे एक सम्पन्न प्रदेश के रूप में चित्रित किया है।[6]

वैशाली की नगरवधू में काशी-नगरी का प्रसंग कई स्थलों पर आया है पर कोई वर्णन-विशेष उपन्यासकार ने नहीं दिया।

१२—पावा :

पावा मल्लों के राज्य में था और उसका अमृत सरोवर ५०० प्रधान मल्लों से सदैव रक्षित रहता था। दूसरी जाति का कोई भी उसमें जल नहीं पी सकता था।[7] पावा में ही बन्धुल ने सौ मल्लों से अकेले युद्ध किया और मल्लिका उस सरोवर का जल-पान कर कोशल लौट आई।[8] कनिंघम के अनुसार पावा के मल्लों का राज्य वर्तमान पडरौना में है।[9] किन्तु अन्य इतिहासज्ञों ने मल्लों की राजधानी कुशीनगर से पूर्वोत्तर १०—

---

१. प्रयाग महिला विद्यापीठ : हमारे देश का इतिहास पृ० ७२

२. श्री जयशंकर प्रसाद : स्कन्दगुप्त—२।७०

३. आचार्य चाणक्य : (सत्यकेतु विद्यालंकार) पृ० १४ स्थान परिचय।
(डा० जगदीशचन्द्र जोशी : प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक पृ० २६५ के उद्धृत)

४. श्री जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु १।३७

५. स्मिथ : अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया पृ० ३१

६. डा० जगदीशचन्द्र जोशी : प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक पृ० २३५

७. श्री जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु २।७४ ८. वही—२।७५

९. कनिंघम पृ० ४९७-४९८

११ मील की दूरी पर सठियाव नामक स्थान के आस-पास मानी है। अत पावा नारी को भी वहीं होना चाहिए।[1] लंका के इतिहासकार ने पावा नगर को बुद्ध का अन्तिम निवास स्थान बताया है। वहाँ वे कुशी नगर में निर्वाण प्राप्त करने के पूर्व रुके थे।[2] काश्यप के अनुसार लिच्छवि और वृजि संघ के अष्ट-कुलों में से एक मल्ल भी थे।[3]

पावा का वर्णन भी उपन्यास मे लब्ध नही है, उल्लेखमात्र है।

१३—कपिलवस्तु ;

कपिलवस्तु शाक्यो की नगरी थी और विरुद्धक की ननसाल थी।[4] कपिलवस्तु हिमालय की तराई मे बसा है। कपिलवस्तु का उल्लेख जातको एव अन्य बौद्ध ग्रथो मे प्रचुर मात्रा मे मिलता है। कपिलवस्तु गोतम-बुद्ध की जन्मभूमि थी और वहाँ शाक्यकुमार उन दिनो प्रसेनजित के अधीन थे।[5]

कपिलवस्तु का उपन्यास मे योगदान तो काफी है, परन्तु उपन्यासकार ने उसके विषय मे कोई वर्णन नहीं किया।

उपर्युक्त नगरो के अतिरिक्त उपन्यास मे अनेक स्थानो के नामो का स्थान-स्थान पर उल्लेख हुआ है यद्यपि इन स्थानों का उपन्यास की गति मे कुछ स्थान नहीं हैं तो भी ये स्थान ऐतिहासिक हैं अर्थात इतिहास इन स्थानों के विषय में साक्षी है।

३२, पात्रों की ऐतिहासिकता

अब पात्रो की ऐतिहासिकता के ऊपर विचार किया जायेगा।

१—आम्रपाली :

वैशाली की नगरवधू की प्राण आम्रपाली है। अम्बपाली को आश्रय मानकर ही इस उपन्यास की रचना हुई है। आम्रपाली वैशाली की जनपद्-कल्याणी थी, एक गणिका थी। गणिका और वेश्या में जमीन आसमान का अन्तर है। कामसूत्र में गणिका का लक्षण निम्न प्रकार बताया है—

"आभिरम्युच्छ्रिता वेश्या शील रूप गुणान्विता।
लमने गणिका शब्द स्थान च जनससदि।
पूजिता सा सदा राज्ञा गुणवद्भिश्च सस्तुता।
प्रार्थनीयादभिगम्या च लक्ष्यूमता च जायते।[6]
पूजिता गणिका सर्वनंन्दिनी को न पूजयत्।"[7]

इससे स्पष्ट होता है कि गणिका वह वेश्या होती थी जो शील रूप एव गुणवती होती थी। वे चौसठ कलाओ में प्रवीण होती थीं। वह सदा राजा तथा गुणीजनो से

१. आदिभारत (शास्त्र) पृ० १५८ २. कनिघम पृ० ४६७
३. डा० जगदीशचन्द्र जोशी प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक पृ० २१८
४. श्री जयशकर प्रसाद ; अजातशत्रु १।५३।
५. डिक्शनरी आफ पाली प्रोपर नेम्स, 'विद्ड्भ', पृ० ८७६—८७७
६. कामसूत्र सू० २०।२१ ७. वही ५३

पूजित होती थी, उन्हें सर्वोच्च सम्मान मिलता है। अस्तु, गणिका के सम्बन्ध में जो भ्राम धारणा है कि वह एक दुश्चरित्रा होती है, गलत है।

आम्रपाली एक गणिका थी, उसे भी राजा तथा अन्य गुणीजनों का सम्मान प्राप्त था। वह परमसुन्दरी थी, चौंसठ कलाओं में प्रवीण थी। कामसूत्र के समस्त लक्षणों से अम्बपाली सम्पन्न थी।

जैसाकि पहले बताया गया है कि बौद्ध-ग्रन्थों में आम्रपाली का दर्शन आया है। 'दीर्घनिकाय'[1] के विवरण से ज्यूं का त्यूं मिलता हुआ अम्बपाली का चित्र चतुरसेन ने वैशाली की नगरवधू में खींचा है।

'दीर्घनिकाय के विवरण से भी लिच्छवि गणतंत्र की गणिका अम्बपाली के वैभव, ऐश्वर्य एवं आत्मसम्मान का एक स्पष्ट चित्र सामने आ जाता है। वह बड़े ठाट-बाट के साथ भगवान बुद्ध को निमंत्रित करने जाती है। उसके पास इतना विशाल ऐश्वर्य है कि वह भगवान को संघ सहित निमंत्रण दे सकती है और किसी भी मूल्य पर समस्त लिच्छवि गणतंत्र के प्रभुत्व के बदले भी इस 'महान भात' को छोड़ने को तैयार नहीं। भगवान को निमंत्रण देने का और लिच्छवि युवकों के रथों के 'धुरों से धुरा' टकराने वाली इस गणिका की आदरणीय स्थिति के सम्बन्ध में सदेह नहीं रह जाता।'[2]

"बौद्ध ग्रन्थों में अम्बपाली वैशाली की गणिका है। उसका यह नाम इसलिए पड़ा कि एक माली ने उसे एक आम्रवृक्ष के नीचे पड़ा पाया था। वह इतनी सुन्दरी थी कि उसके लिये वैशाली के तरुण राजकुमारों में आये दिन संघर्ष होने लगे। (इसकी सुन्दरता का अनुमान इससे भी लगाया जा सकता है कि अम्बपाली के आगमन की चर्चा सुनकर भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा कि वे अपने मान और अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखें अन्यथा अम्बपाली का प्रबल आकर्षण उन्हें विचलित कर देगा। (सुमंगलविलासिनी) थेरीगाथा के दो गीतों में आनन्द ने उन भिक्षुओं को कुत्सित किया है जो अम्बपाली को देखते ही अपनी सुध खो बैठे।) इसके परिणामस्वरूप उसे जनपद कल्याणी (गणिका) बना दिया गया। तथागत जब अन्तिम बार वैशाली गये तब अम्बपाली ने उनका आगमन जानकर वैशाली के निकट कोलिग्राम में ही उनके दर्शन किये। अम्बपाली गणिका को भगवान ने धार्मिक कथा से संदर्शित, समुत्तेजित किया। तब अम्बपाली ने भगवान को भिक्षु-संघ सहित भोजन का निमंत्रण दिया। अम्बपाली गणिका ने उस रात के बीतने पर आराम में उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार कर भगवान को समय सूचित किया।...... तब अम्बपाली गणिका भगवान के भोजन कर, पात्र से हाथ खींच लेने पर नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिका भगवान से बोली—"भन्ते मैं इस आराम को (जिसमें तथागत ठहरे थे) बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ को देती हूँ।" आराम को स्वीकार किया। तब भगवान अम्बपाली को धार्मिक कथा से समुत्तेजित कर आसन से उठकर चले गये।"[3]

१. दीर्घनिकाय, १२७
२. डा० जगदीशचन्द्र जोशी : प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० ३२८।
३. दीघनिकाय २। ३
(डा० जगदीशचन्द्र जोशी : प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक पृ० ३२४१०० से उद्धृत)

उपन्यास म ग्रम्बपाली और विम्बसार का पति-पत्नी जैसा सम्बन्ध दिखाया है। इतिहास मे केवल इतना मिलता है कि ग्रम्बपाली विम्बसार की पत्नी थी।[1]

आम्रपाली की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे केवल बौद्ध-ग्रन्थ ही प्रमाण हैं, अन्यत्र कुछ नही मिलता।

२ बिम्बसार

'वैशाली की नगरवधू' उपन्यास मे बिम्बसार का बहुत योगदान है। बिम्बसार से ग्रम्बपाली का पुत्र होता है। वह भावी सम्राट होता है। अम्बपाली ने बिम्बसार को अपना सर्वस्व समर्पण करते समय यह शर्त रखी थी कि "आपके औरस् से मेरे गर्भ मे जो सन्तान हो, वही मगध का भावी सम्राट हो।"[2] इस पर सम्राट बिम्बसार ने कहा —"मैं शिशुनाग वंशी मगधपति बिम्बसार अपने साम्राज्य की शपथ लेकर यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि देवी ग्रम्बपाली के गर्भ मे मेरे औरम् से जो पुत्र होगा वही मगध का भावी सम्राट होगा।"[3]

सम्राट बिम्बसार ऐतिहासिक पुरुष हैं। उपन्यास मे वर्णित बिम्बसार, उसका मगध का सम्राट होना, उसकी राजधानी राजगृह होना आदि के सम्बन्ध म इतिहास मौन नही है। "बुद्ध के समय नागवंशीय बिम्बसार मगध के राजा थ। उन दिनो मगध राज्य मे ८० हजार गाँव थे। इन्होंने ग्रग राज्य को जीता। इनका विवाह एक लिच्छवि और एक कोशल राजकुमारी से हुआ था। बिम्बसार बुद्ध के शिष्यो मे से थे।...... लिच्छवि लोगो को आगे बढने से रोकने के लिए उसने पाटली ग्राम मे एक भारी किला बनाया। इसके पुत्र उदयि ने पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाई।'[4]

"मगध-सम्राट बिम्बसार शिशुनाग वंश का ५ वाँ राजा था। इस वंश का यह प्रथम राजा है जिसका ऐतिहासिक वृत्त प्राप्त है। गया के पास प्राचीन गिरिव्रज उसकी राजधानी थी। पीछे उसने नवीन राजधानी राजगृह की नीव रखी। उसने अंग को जीता जो भागलपुर और मुंगेर का इलाका था। मगध राज्य की उन्नति और विस्तार का सूत्रपात इसी विजय से हुआ। इस प्रकार मगध साम्राज्य का सस्थापक ही बिम्बसार को कहा जाना चाहिए। इसने कोशल और वैशाली के दोनो समर्थ पडोसी राज्यो की एक-एक राजकुमारी से विवाह करके अपनी राजशक्ति दृढ की। बिम्बसार का राज्यकाल ई० पू० ५२८ से ई० पू० ५०० तक माना जाता है।[5]

'इसमे सदेह नही कि बिम्बसार के तीन पत्नियाँ थी। बौद्ध साहित्य के अनुसार उसकी केवल दो रानियाँ थीं। एक रानी कोशला थी और दूसरी क्षेमा। कोशला का मूल नाम वासवी था और वह कोशल नरेश प्रसनजित की बहिन थी।[6] क्षेमा (खेमा) मद्र (मद्र)

---

१. श्री रतिभानु सिंह नाहर . प्राचीन भारत का राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास पृ० १५६

२ वैशाली की नगरवधू पृ० २६० ३ वही—पृ० २६०

४. प्रयाग महिला विद्यापीठ हमारे देश का इतिहास पृ० ७२–७३

५. वैशाली की नगरवधू —पृ० ७१८

६. लाइफ आफ द बुद्धा (रौक हिल) पृ० ६३–६४

देश के राजा की कन्या थी।[१]

प्रसाद का ऐतिहासिक नाटक अजातशत्रु बहुत कुछ बिम्बसार के जीवन से सम्बन्धित है। प्रसाद ने कहा है—'इसी गृहकलह को देखकर बिम्बसार ने स्वयं सिंहासन त्याग किया।'[२]

महावंश के अनुसार बिम्बिसार १५ वर्ष की आयु में सिंहासनारूढ़ हुआ।[३]

बिम्बसार की सेना का वैशाली के विरुद्ध युद्ध—उपन्यास में बिम्बसार का वैशाली के विरुद्ध युद्ध का वर्णन मिलता है जिसमें बिम्बसार की पराजय दिखाई गई है। इतिहास के अनुसार यह युद्ध अजातशत्रु के साथ है जिसमें वैशाली की पराजय और अजातशत्रु की विजय दिखाई है।[४]

यद्यपि आचार्य चतुरसेन ने उपन्यास में बिम्बसार से सम्बन्धित इस प्रकार की कोई घटना नहीं दी है तथापि उपर्युक्त उद्धरणों से इतना स्पष्ट हो गया कि बिम्बसार की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में कोई शंका नहीं।

३- प्रसेनजित और विदूडभ

इन दोनों पात्रों का वर्णन वैशाली की नगरवधू में कई स्थानों पर हुआ है। विदूडभ प्रसेनजित का पुत्र था और प्रसेनजित कौशल का सम्राट था। आचार्य चतुरसेन ने इन्हें कौशलेश कहा है।[५] प्रसाद ने अपने नाटक अजातशत्रु में विदूडभ को विरुद्धक कहा है। अजातशत्रु में वर्णित प्रसेनजित और विरुद्धक (विदूडभ) सम्बन्धी कथा का आधार ऐतिहासिक है। धम्मपद के अनुसार पसेनदी (प्रसेनजित) बुद्ध का समकालीन था।[६] उस की बुद्ध पर अडिग आस्था थी।[७] धम्मपद कथा[८] और जातकों में विदूडभ का परिचय मिलता है। पसेनदी ने सात दिनों तक बुद्ध और उनके एक सहस्र शिष्यों को भिक्षा दी। सातवें दिन उसने बुद्ध से प्रार्थना की कि नित्य अपने ५०० शिष्यों सहित प्रासाद में भोजन करें। बुद्ध स्वयं नहीं आए किन्तु उन्होंने अपने स्थान पर आनन्द को भेज दिया। आनन्द नित्य ५०० भिक्षुओं सहित आता था किन्तु पसेनदी की उपेक्षा के कारण भिक्षुओं ने भिक्षा के लिये आना छोड़ दिया। अन्त तक अकेला आनन्द ही भिक्षा के समय प्रासाद में उपस्थित होता रहा। जब यह बात पसेनदी को ज्ञात हुई तो भिक्षुओं का विश्वास पुनः प्राप्त करने के लिये उसने गौतम सम्बन्धी शाक्यों से विवाह सम्बन्ध की इच्छा प्रकट की। शाक्य पसेनदी के अधीन थे। वे अपने को उससे उच्च कुल का मानते थे। किन्तु पसेनदी के प्रस्ताव को अपने कुल का अपमान समझा। किन्तु पसेनदी के भय से अपने प्रधान सामन्त महानाम की दासी नागमुण्डा से उत्पन्न वासभखत्तिया से पसेनदी का विवाह कर दिया। विरुद्धक

१. थेरीगाथा अट्ठकथा १३६-१४३
२. श्री जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु (भूमिका), पृष्ठ १८–१९।
३ महावंश २।२६।३०।
४. श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, पृ० १६३
५. वैशाली की नगरवधू-पृ. १५०।
६. धम्मपद अट्ठकथा १।३३८।
७. उदान टीका ६।२, महावंश २।१२०।
८. धम्मपद अट्ठकथा १।३३६।
९. जातक १।१३३, ४।१४४

(विडूडभ) उसी का पुत्र था। एक बार विडूडभ कपिलवस्तु गया। दासी-पुत्र को प्रणाम करने के भय से विडूडभ (विरुढक) से छोटी वय के सभी कुल पुत्र उन दिनों कपिलवस्तु से बाहर चले गये। विडूडभ जब वहाँ से लौटने लगा तो उसका सेवक प्रासाद में कुछ भूल जाने के कारण वापस भीतर गया। वहाँ उसने देखा कि एक शाक्य दासी विडूडभ को दासी-पुत्र कहकर गालियाँ दे रही थी। और उस आसन को धो रही थी। जिस पर विडूडभ बैठा था। विडूडभ इस प्रकार अपमानित होकर लौटा और उसने शाक्यों से बदला लेने का प्रण किया है।'[1]

ठीक ऐसा ही वर्णन इस उपन्यास में आचार्य चतुरसेन ने किया है। विडूडभ प्रसेनजित से कहा है, "मैं कपिलवस्तु को नि शाक्य करूंगा, यह मेरा प्रण है......आपने शाक्यों के यहाँ मुझे किस लिए भेजा था।"[2]

"तू मेरा प्रिय पुत्र है और शाक्यों का दौहित्र।"[3]

विडूडभ ने कहा, 'शाक्यों का दौहित्र या दासी-पुत्र ?....–घमण्डी और नीच शाक्यों ने सथागार में विमन होकर मेरा स्वागत किया अथवा उन्हें स्वागत करना पड़ा। पर पीछे सथागार को और आसनों को उन्होंने दूध से धोया।"... मेरा एक सामन्त अपना भाला वहाँ भूल आया था, वह उसे लेने गया, तब जो दास दासी दूध से सथागार को धो रहे थे, उनमें एक दासी मुझे गालियां दे रही थी।"[4]...... आप जैसे बूढ़े, अशक्त रोगी को शाक्य अपनी पुत्री नहीं देना चाहते थे शाक्य अपनी नाक ऊंची रखते थे, पर आपकी सेना से डरते भी थे। उन्होंने दासी की लड़की से आपका ब्याह कर दिया।'[5]

"राजा बिम्बसार पसेनदी कौशल के बहनोई लगते थे।–......पसेनदी के बेटे विडूडभ ने शाक्यों पर चढ़ाई की और बहुत से लोगों को मार डाला।'[6]

प्रसेनजित की मृत्यु —उपन्यासकार श्री चतुरसेन शास्त्री ने वैशाली की नगरवधू में दिखाया है कि विडूडभ ने प्रसेनजित को और मल्लिका को बुद्ध के दर्शन करके राजधानी लौटते समय कारायण से बन्दी बनवा कर कौशल राज्य की सीमा से बाहर छुड़वा दिया। वे दोनों भूखे-प्यासे राजगृह पहुचे। राजगृह के द्वार पर पहुंचते ही दोनों का प्राणान्त हो गया।"[7]

इतिहास इस घटना के विषय में कहता है "प्रसेनजित सचमुच अपने मन्त्रियों द्वारा पुत्र के दुष्कर्मों से क्षुब्ध था इसका प्रमाण यह है कि एक बार जब वह भगवान बुद्ध से मिलने के लिए शाक्य प्रदेश में गया था तो उसकी अनुपस्थिति में उसके एक मन्त्री दीर्घ (दीर्घ कारायण) ने विद्रोह कर दिया और प्रसेनजित के पुत्र विडूडभ को गद्दी पर बिठा दिया। यह समाचार पाते ही प्रसेनजित अजातशत्रु की शरण में चला पर राजगृह पहुचते

---

१. डा० जगदीशचन्द्र : जोशी–प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक ६१–६२।
२ वैशाली की नगरवधू–पृष्ठ १२१। ३. वही पृ०।
४. वही पृ० १२२। ५. वही पृ०। ६ प्रयाग महिला विद्यापीठ : हमारे देश का इतिहास पृ० ७२
७. वैशालीकी नगरवधू पृष्ठ ४१२–४१६, ४२४–४२७

सिंहद्वार पर ही उसकी मृत्यु हो गई।'[1]

४–बन्धुल मल्ल

'बन्धुल मल्ल' बौद्ध-इतिहास के अनुकूल है। बन्धुल कुशीनारा का एक मल्ल सामन्त था। वह तक्षशिला में पसेनदी का सहपाठी रह चुका था। तक्षशिला से लौटने पर जब वह युद्ध कला का प्रदर्शन कर रहा था तो अन्य सामन्त कुमारों ने उसके साथ परीक्षा में छल किया। इससे क्रुद्ध होकर वह श्रावस्ती चला आया जहाँ पसेनदी ने उसे अपना सेनापति नियुक्त किया। बन्धुल की पत्नी का नाम मल्लिका था। बन्धुल के न्याय-सम्बन्धी एक निर्णय पर प्रसन्न होकर पसेनदी ने उसे अपना न्यायाधीश बना दिया।[2] अन्य न्यायाधीशों ने ईर्ष्या से राजा के कान भरने प्रारम्भ किये। उससे प्रभावित होकर पसेनदी ने बन्धुल एवं उसके पुत्रों को सीमा-प्रान्त के विद्रोह का दमन करने भेज दिया। लौटते समय मार्ग में ही पसेनदी की आज्ञा से उनकी हत्या कर दी गई[3]।

आचार्य चतुरसेन ने अपने उपन्यास में कुछ थोड़ा हेर फेर किया। इन्होंने बन्धुल के पुत्र-परिजनों की हत्या विदूडभ के षडयन्त्र द्वारा कराई है।

५– जीवक कौमार भृत्य

'वैशाली की नगरवधू' में जीवक कौमार भृत्य को विदूडभ का मित्र होना दिखाया गया है। वह राजगृह का निवासी था।[4]

इतिहास में जीवक के विषय में निम्नलिखित वर्णन मिलता है, "जिस समय चण्डप्रद्योत पाण्डु रोग से पीड़ित था उस समय उसकी चिकित्सा के लिए बिम्बसार ने अपने राजवैद्य जीवक को भेजा था।"[5]

इस प्रकार जीवक की ऐतिहासिकता सिद्ध है।

६– दीर्घ कारायण

'वैशाली की नगरवधू' में दीर्घ कारायण का प्रसेनजित का मन्त्री होना मिलता है जिसको विदूडभ की कूटनीति से प्रसेनजित ने बन्दी बनाया और बाद में विदूडभ ने ही उसे मुक्त किया एवं इसी से प्रसेनजित को बन्दी बनवा कर कोशल की सीमा के पार छुड़वा दिया।[6]

इतिहास दीर्घकारायण के बारे में बहुत कम बताता है। बौद्ध ग्रंथों में उसका उल्लेख मात्र है। प्रसेनजित के कुछ मन्त्रियों का नाम बौद्ध ग्रंथों में इस प्रकार मिलता है (१) मृगधर, (२) सिरिवड्ढ, (३) दीघचारायण। इतिहासकार ने दीघचारायण के द्वारा

---

१. श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ० १६५।

२. सत्तनिकाया १।७४ (अट्ठकथा युत) –विड्ड्स एण्ड पाली-टैक्स्ट सोसायटी, १।१०१ न० ३ तथा पपञ्च-सूदनी, मज्झिम टीका . २।१५३।

३ डा जगदीशचन्द्र जोशी: प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृष्ठ ६२-६३।

४. वैशाली की नगरवधू : पृष्ठ १६०।

५. श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास पृष्ठ १६३।

६. वैशाली की नगरवधू : पृष्ठ ५७८-५८०, ४१२-४१६।

प्रसेनजित् के विरुद्ध विद्रोह करके विदूडभ को कोशल की गद्दी पर बिठाये जाने का वर्णन किया है।[1]

७– वर्षकार

'वैशाली की नगरवधू' में वर्षकार बिम्बसार के महामात्य है और बिम्बसार ने वर्षकार को कूटनीति से ही उन्हें मगध से निकाल दिया था जो वैशाली में आकर अपना कूटयुद्ध करने लगे।[2] पाटलिग्राम के पास ही उन्होंने अपना स्कन्धावार बनाया।[3] अन्त में बिम्बसार की हार और वैशाली की विजय हुई।[2]

इतिहास के अनुसार वस्साकार (वर्षकार) अजातशत्रु के समय में वैशाली कूट-युद्ध के लिए गया और अन्त में जीत मगध की हुई है। अजातशत्रु ने "कुटिल मन्त्री वस्साकार (वर्षकार) को लिच्छिवियों की संगठित शक्ति में फूट के बीज बोने के लिए वैशाली भेज दिया जिसने निरन्तर तीन वर्षों तक वहाँ निवास करके अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर ली[4] अन्ततोगत्वा अजातशत्रु की विजय हुई[5] अतः उसने राज्य की सीमा पर स्थित पाटलिग्राम (जो आगे चलकर पाटलिपुत्र हुआ) को ही युद्ध-केन्द्र बनाने का निश्चय किया और वहाँ पर अत्यन्त सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण तेजी से किया जाने लगा। ...... दुर्ग बन जाने के पश्चात् अजातशत्रु ने रणभेरी बजा दी।"[7]

८– चन्द्रभद्रा

'वैशाली की नगरवधू' के अनुसार चन्द्रभद्रा चम्पा-नरेश दधिवाहन की पुत्री है।[8] चम्पा के विध्वंस के पश्चात् महावीर के आदेश चन्द्रभद्रा अपने प्रेमी सोम को त्याग कर कौशल के सम्राट विदूडभ की पट्टराजमहिषी बनना स्वीकार करती है।[9]

चूँकि चन्द्रभद्रा ने श्रमण महावीर के कहने से अपने प्रेमी का परित्याग कर दिया इसी से उसका जैन धर्मावलम्बिनी होना सिद्ध होता है।

परन्तु इतिहास में केवल इतना वर्णन मिलता है "कि पद्मावती तथा दधिवर्मन से उत्पन्न चन्दना प्रथम जैन भिक्षुणी हुई।"[10]

उपन्यास की चन्द्रभद्रा का नाम इतिहास में चन्दना दिया है।

९– अभयकुमार

'वैशाली की नगरवधू' के अनुसार अभयकुमार मगध का राजकुमार और उपसेनापति था।'[11] उसका वैशाली के साथ घातक द्वन्द्व युद्ध हुआ जिसमें उसकी पराजय हुई।

इतिहास से केवल इतना ही पता चलता है कि 'अभयकुमार अम्बपाली और

---

१. श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, पृ. १६४-१६५

२. वैशाली की नगरवधू पृष्ठ ३१६, २३५, ७४२। ३. वही पृष्ठ ६७६।

४ श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास।

५. वही पृ. १६२। ६. वही पृ. १६२। ७ वही पृ. ११३।

८. वैशाली की नगरवधू– पृ- २११। ९. वही पृ. ४७१।

१०. श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, पृ. १३०।

११. वैशाली की नगरवधू पृ. ६४९–६५८।

बिम्बसार का पुत्र था।"[1] उपन्यास के अन्त में हमें बिम्बसार और अम्बपाली के पुत्र को मगध का भावी सम्राट घोषित किये जाने का वर्णन मिलता है।[2] इसका अर्थ यह हुआ कि उपन्यासकार ने अम्बपाली और बिम्बसार के जिस पुत्र को मगध का भावी सम्राट बताया है वह निश्चित रूप से अभयकुमार नहीं था क्योंकि उपन्यासकार ने अभयकुमार का चित्रण एक दूसरे पात्र के रूप में दिया है जिसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं।

१०– गृहपति अनाथपिण्डिक :

'वैशाली की नगरवधू' में गृहपति अनाथपिण्डिक का एक छोटा सा वर्णन मिलता है। यद्यपि इस वर्णन का सम्बन्ध मूल कथानक से बिल्कुल नहीं है फिर भी इसकी अवतारणा केवल इसलिए की गई है कि तत्कालीन समाज पर गौतम बुद्ध का प्रभाव दिखाया जाये। अनाथपिण्डिक ने राजगृह में अपने बहनोई के यहाँ गौतम बुद्ध को संघ सहित निमन्त्रित देखा। उसने भी बुद्ध को श्रावस्ती में निमन्त्रित किया और श्रावस्ती चला आया। श्रावस्ती आकर उसने बौद्ध-विहार बनवाने के लिये जेतवन को चुना। उसने जेतवन के राजकुमार को इतना स्वर्ण दिया कि वह स्वर्णवन में बिछा दिया गया और फिर इसे खरीद कर विहार बनवाया।[3]

इतिहास के अनुसार बुद्ध भगवान सातावन (राजगृह) में रुके थे। यहीं उनसे प्रभावित होकर सुदात्त नामक एक व्यापारी ने बौद्धधर्म स्वीकार किया। हमें सुदात्त के दान की महती कथा का बोध होता है। फिर इससे ज्ञात होता है कि सुदात्त ने बौद्ध-भिक्षुओं के लिये जैत राजकुमार के उपवन के लेने की इच्छा प्रकट की, पर जत ने उस उपवन का मूल्य बताया उसको पूर्णतया ढक लेने भर सोना। सुदात्त तैयार हो गया। इस कथा के प्रमाणस्वरूप भरहुत की प्रस्तरमूर्ति है जिस पर उत्कीर्ण है–

'जेतवन अनथपेदिको देति काटिसमुप्यतेन केता।' अनथपेदिक या अनाथपिण्डिक सुदात्त को उपाधि दी थी।[4] (चुल्लवग्ग)

११– कुलपुत्र यश

'वैशाली की नगरवधू' में कुलपुत्र यश के वर्णन से मूल कथानक में कोई वृद्धि नहीं होती और न ही उपन्यास म इससे किसी प्रकार की रोचकता ही आती है। केवल बुद्ध का प्रभाव दिखाने के लिये उसकी अवतारणा की गई है। यश सेट्ठि-पुत्र था वह अपनी समस्त सम्पदा एवं ऐश्वर्य को त्यागकर बुद्ध की शरण चला गया।[5]

इतिहास में यश का केवल उल्लेख मात्र है– "गौतम बुद्ध के अनेक अनुयायी बनारस में मिले जिनमें यश का नाम विशेष उल्लेखनीय है।"[6]

१२– अजितकेशकम्बलिन

ऐतिहासिक पुरुष अजितकेशकम्बली का 'वैशाली की नगरवधू' के कथानक में कुछ

---

१. श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, पृ. १२६।

२. वैशाली की नगरवधू–प ७९६। ३. वही पृ. ३०७-३०८।

४. श्री रतिभान सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ. १७६।

५. वैशाली की नगरवधू–पृ. ५३-५७।

६. श्री रतिभानु सिंह नाहर प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ. १७८।

योगदान मिलता है। उसे कुटिल ब्राह्मण के रूप में दिखाया है। वह अपनी कूटनीति से से कौशल के युवराज विदूडभ द्वारा महाराज कौशलेय प्रसेनजित् को बन्दी बनवा कर राज्य से निष्कासित करा देता है। तथा विदूडभ को कौशल के सम्राट्-पद पर अभिषिक्त करता है। इसी की कुटिल नीति के द्वारा बन्धुलमल्ल के बारहो परिजनों का सहार हुआ।[1]

इतिहास में अजित् केशकम्बली का प्रसग मिलता है जिसमे इसे एक धार्मिक सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक दिखलाया है। इनका मत था कि मृत्यु के पश्चात् सब कुछ नष्ट हो जाता है और कर्म द्वारा किसी प्रकार के लाभ की आशा नही है। शरीर के विनष्ट हो जाने पर मूर्ख तथा विद्वान सभी समान रूप से विनष्ट हो जाते हैं और मृत्यु के पश्चात् वे नही रह जाते। अजित केशकम्बलिन का सिद्धान्त उच्छेदवाद कहलाता था।[2]

१३– उदयन

ऐतिहासिक पुरुष उदयन का प्रसग 'वैशाली की नगरवधू' मे मिलता है। उपन्यासकार ने दिखाया है कि उदयन आम्रपाली के समक्ष मजुघोषा वीणा बजाते हैं और आम्रपाली को अवश नृत्य करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त 'वैशाली की नगरवधू' म उदयन आम्रपाली के ही समक्ष कलिंगसेन के साथ अपने प्रेम की चर्चा करता है।[1]

इतिहास मे उदयन का कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। केवल इतना ही मिलता है कि वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी और बुद्धकाल म उदयन यहाँ का शासक था। उदयन के सम्बन्ध में सामग्रियों का बाहुल्य है पर वह इतिहास के कितने निकट है यह नही कहा जा सकता। उदयन के सम्बन्ध मे पुराण, भास के नाटक स्वप्नवासवदत्ता तथा प्रतिज्ञा- यौगन्धरायण, हर्ष के दो नाटक प्रियदर्शिका तथा रत्नावली आदि से कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। ...... उदयन की शक्ति के सम्बन्ध मे बौद्ध ग्रंथ बहुत उदार वृत्ति रखते हुए बताते हैं कि वह अत्यन्त शक्तिशाली था और उसकी सेना सर्वदा सशस्त्र सीमाओं पर तैयार रहती थी – ... पालि साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि उदयन-पुत्र का नाम बोधि था सुसुमागिरि के भग्न नगर पर युवराज के रूप में शासन करता था। .. ... उदयन बौद्ध पिण्डोल भारद्वाज द्वारा बौद्ध धर्म का समर्थक एव रक्षक बनाया गया था।[4]

१४– चम्पा-नरेश दधिवाहन

'वैशाली की नगर वधू' मे दधिवाहन देव का इतना ही वर्णन मिलता है कि वह चम्पा-नरेश था। उस को वर्षकार के द्वारा भेजी गई विष कन्या कुण्डनी ने डसा था और इस प्रकार उसका प्राणान्त हो गया था।[5]

इतिहास में दधिवाहन का उल्लेख मात्र हुआ है। केवल इतना ही मिलता है कि लिच्छवि राजा चेतक की पुत्री पद्मावती चम्पा-नरेश दधिवाहन से ब्याही थी।[6]

---

१. वैशाली की नगरवधू- पृ ३४८-३६०।

२ श्री रतिभानु सिंह नाहर प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, पृ. ३११।

३. वैशाली की नगरवधू : पृ. १०७-१२०

४. श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सास्कृतिक इतिहास, पृ. १२६-१२७।

५. वैशाली की नगरवधू पृ. २३४।

६. श्री रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ. १००।

१५– नन्दिनी

नन्दिनी विड्डभ की माता थी। यह शाक्य-दासी-पुत्री थी। प्रसेनजित् के द्वारा कपिलवस्तु की राजकन्या से विवाह की इच्छा किये जाने पर छल से शाक्य दासी पुत्री नन्दिनी को प्रसेनजित को दे दिया गया। प्रसेनजित् पर जब इस बात का भेद खुल जाता है तो वह नन्दिनी एवं विड्डभ को तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगा।[1]

इतिहास में भी कुछ इसी प्रकार का वर्णन मिलता है। केवल मुख्य अन्तर यह है कि नन्दिनी का नाम वासभखत्तिय मिलता है। प्रसेनजित ने बुद्ध भगवान के प्रति असीम श्रद्धा भाव से प्रेरित होकर उनके ही कुल शाक्य कुल से एक शाक्य कुमारी विवाह में माँगी। शाक्यों ने आत्माभिमान में चूर होकर एक दासी कन्या को भेज दिया। इसी दासी कन्या वासभखत्तिय से विड्डभ उत्पन्न हुआ था और जिस समय प्रसेनजित को इस रहस्य का बोध हुआ तो उसने इन दोनों को राज्यच्युत किया किन्तु महात्मा बुद्ध के समझाने-बुझाने पर प्रसेनजित ने उन्हें पुनः सम्मानित किया।[2]

१६– चण्डप्रद्योत

उपन्यास में ऐतिहासिक पुरुष चण्डप्रद्योत का कोई विशेष वर्णन नहीं मिलता है। केवल इतना ही हमें इनके विषय में उल्लेख मिलता है कि इसने मगध पर आक्रमण किया था परन्तु वर्षकार की कूटनीति से यह डर कर भाग गया था।[3]

इतिहास में इनके बारे में इस प्रकार मिलता है कि बुद्धकाल में अवन्ति का शासक प्रज्योत या प्रद्योत था। प्रद्योत को बौद्ध ग्रन्थों में अत्यन्त क्रूर महत्वाकांक्षी एवं युद्ध-प्रिय के रूप में चित्रित किया गया है। इनके हृदय में उदयन को किसी प्रकार पराजित करके उनके राज्य को अपने राज्य में मिलाने की ही कामना जोर मारती रही।......मगध-नरेश अजातशत्रु अपनी राजधानी राजगृह की किले-बन्दी केवल प्रद्योत के आक्रमण के भय से ही करा रहा था।[4]

१७– गौतम बुद्ध

'वैशाली की नगरवधु' के कथानक से गौतम बुद्ध का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता कि जिससे उपन्यास में रसात्मकता आती या कथा-वस्तु में कोई विशेष प्रवाह आता। केवल इतना मिलता है कि बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार किया। अनेक श्रेष्ठि-पुत्रों ने अपने ऐश्वर्य को छोड़कर बौद्ध धर्म को ग्रहण किया और अन्त में आम्रपाली तथा सोम-प्रभ ने भी बौद्ध धर्म ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त उनके जीवन-परिचय के विषय में कुछ लिखा है जिसे इतिहास के ही पृष्ठ कह सकते हैं।

बुद्ध एक ऐतिहासिक महापुरुष हैं, इसमें दो राय नहीं हो सकती। सब इतिहासज्ञ इस बात से सहमत हैं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार सिद्धार्थ गौतम का जन्म ५६३ ई० पू० के आस पास हुआ था। उनके पिता शुद्धोदन को शाक्यों का राजा कहा

---

१ वैशाली की नगरवधू प. २६३

२ रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, प. १६५।

३. वैशाली की नगरवधू : पृ. २६५-२६८।

४. रतिभानु सिंह नाहर : प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ. १२७।

जाता है। सिद्धार्थ की माँ मायादेवी अपने मैके जा रही थी। इसी वक्त कपिलवस्तु के कुछ मील दूरी पर लुम्बिनी नामक शाल वन में सिद्धार्थ पैदा हुए। सिद्धार्थ के जन्म के एक सप्ताह बाद ही उनकी माँ मर गई और उनके पालन-पोषण का भार उनकी मौसी तथा सौतेली माँ प्रजापति गौतमी के ऊपर पड़ा। तरुण सिद्धार्थ को संसार से कुछ विरक्त देख शुद्धोदन ने यशोधरा से उनका विवाह कर दिया। कुछ दिनों पश्चात् उनके एक पुत्र हुआ जिसे अपने उठते विचार-चन्द्र के ग्रसने के लिए राहु समझ उन्होंने राहुल नाम दिया। वृद्ध, रोगी, मृत और प्रव्रजित के चार दृश्यों को देख उनकी संसार से विरक्ति पक्की हो गई और एक रात चुपके से वह घर से निकल गए।

बुद्ध ने आलार कालाम और उद्दक रामपुत्त (उद्रक रामपुत्र) से योग की कुछ बातें सीखीं परन्तु उन्हें संतोष नहीं हुआ। तब उन्होंने बोद्ध गया के पास ६ वर्षों तक योग और अनशन की भीषण तपस्या की।

बुद्ध ने मज्झिम निकाय (१।३।६) में अपने आगे के जीवन के विषय में कहा है—'मैंने एक रमणीय भूभाग में, वन खण्ड में एक नदी (निरञ्जना) बहती देखी। उसका घाट रमणीय और श्वेत था। उसे ध्यान योग्य स्थान समझकर मैं वहीं बैठ गया और जन्म के दुष्परिणाम को जानकर वहाँ मैंने अनुपम निर्वाण को प्राप्त किया।

सिद्धार्थ ने २९ वर्ष की आयु में घर छोड़ा। ६ वर्ष तक योग तपस्या करने के बाद ध्यान और चिन्तन द्वारा ३६ वर्ष की आयु (५२८ ई० पू०) में बोधि (ज्ञान) प्राप्तकर वह बुद्ध हुए। फिर ४५ वर्ष तक उन्होंने अपने धर्म (दर्शन) का उपदेश देकर ८० वर्ष की उम्र (४८३ ई० पू०) में कुसीनगर में निर्वाण प्राप्त किया।'[1]

१८— महावीर

उपन्यास में महावीर स्वामी का योगदान गौतम बुद्ध जितना भी नहीं मिलता और यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि उस समय जितना प्रभाव गौतम बुद्ध का रहा था उतना महावीर स्वामी का नहीं। उपन्यास में इतना ही मिलता है कि कुछ सेट्ठि-पुत्र उनके शिष्य हो गए थे और उन्हीं के कहने से चम्पा की राजकुमारी चन्द्रभद्रा ने अपने प्रेमी का विचार त्याग दिया था। इनके जीवन परिचय के विषय में जो कुछ भी कहा गया है वह इतिहास संगत है।

प्रसिद्ध विद्वान डा० राजबली पाण्डे के अनुसार महावीर का जन्म ६०० ई० पू० के आस-पास वैशाली के पास कुण्डग्राम में हुआ था। कुण्डग्राम में ज्ञात्रिक नामक क्षत्रियों का गणराज्य था। महावीर के पिता सिद्धार्थ उसी के गण-मुख्य थे। उनकी माता त्रिशला वैशाली के लिच्छवि गण-राजा चेटक की बहिन थी। महावीर का बचपन का नाम वर्द्धमान था। उनके कुल का गोत्र कश्यप था। उनका विवाह कुण्डिन्य गोत्र की राजकुमारी यशोदा से हुआ था जिससे अणोजा नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। अपने माता पिता के मरने के बाद वे ३० वर्ष की आयु में तपस्वी हो गए। तेरह वर्ष की घोर तपस्या के बाद जृम्भिका

१. श्री राहुल सांकृत्यायन : बौद्ध संस्कृति पृ० ५-६

२. डा० राजबली पाण्डे : भारतीय इतिहास की भूमिका पृ० ८१

ग्राम के पास एक शाल वृक्ष के नीचे उनको केवल (निर्मल) ज्ञान की प्राप्ति हुई। उस समय उनको ग्रहंत् (योग्य), जिन (विजयी) और केवलिन (सर्वज्ञ) का पद मिला।

पूर्ण ज्ञानी होने के बाद महावीर अपने ज्ञान और अनुभव का प्रचार उत्तर भारत में करते रहे। वज्जि, अंग, मगध, राढ़, सुह्म, मल्ल, कोसल, काशी आदि जनपदों में पैदल घूमकर, कठोर शारीरिक कष्ट सहते हुए उन्होंने ज्ञान और सदाचार का उपदेश दिया। उनके मत के मानने वाले निर्ग्रन्थ अथवा मुक्त कहलाते थे। ७२ वर्ष की अवस्था में पावा में महावीर का निर्वाण हुआ।[1]

शेष अप्रमुख पात्रों का उल्लेख पात्र-विश्लेषण में किया गया है।

उपन्यास में कल्पना

वैशाली की नगरवधू बुद्ध कालीन इतिहास-रस का मौलिक उपन्यास है। यह उपन्यास विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है अपितु इतिहास-रस का आस्वाद कराता है। उपन्यासकार ने अब से २५०० वर्ष पूर्व के आर्यावर्त के धरातल पर पाठक को उतार कर, इस उपन्यास के माध्यम से तात्कालिक समाज, राजनीति, धर्म के दर्शन कराए हैं और उपन्यासकार श्री चतुरसेन इस उद्देश्य में सफल ही उतरे हैं। प्रायः समस्त उत्तरीय भरत खण्ड में पाठक भ्रमण करता है। चूँकि इतिहास तत्कालीन भारत के पात्रों और घटनाओं का सही विवरण देने में असमर्थ रहा है इसीलिए लेखक को कल्पना का अधिक आश्रय लेना पड़ा है। लेकिन वह कल्पना कुछ अपवादों को छोड़कर इतिहासकार की सन्निकृष्ट सम्भाव्यता से दूर नहीं है। उपन्यासकार की यह कल्पना भले ही, घटनाओं, तिथियों, पात्रों आदि के सही-सही विवरण देने में असमर्थ रही हो परन्तु तात्कालिक समाज, राज, धर्म आदि नीतियों के स्पष्ट रेखा-चित्र बनाने में सफलीभूत हुई है। उपन्यासकार का कथन है—"केवल ऐतिहासिक जनों के नाम सत्य हैं। पात्रों की काल-परिधि का कुछ भी विचार नहीं किया गया है और आवश्यकता पड़ने पर इतिहास के सत्य की कुछ भी परवाह नहीं की गई है।[2] अब हम देखेंगे कि उपन्यास में लेखक ने किस प्रकार कल्पना का प्रयोग किया है।

: १ : आम्रपाली

१–आम्रपाली की प्राप्ति और पालन-पोषण

महानामन को आम्रपाली आम्रकुंज में पड़ी मिली। उसे लेकर वह राजसेवा से त्याग पत्र देकर अपने गाँव चला गया और उसका पालन-पोषण किया। अम्बपाली ११ वर्ष की हुई तो उसकी इच्छाओं को उभरती देख वृद्ध महानामन को फिर वैशाली लौटना पड़ा। राजधानी से जाने का एक और प्रमुख कारण था कि अम्बपाली परमसुन्दरी थी और वहाँ परमसुन्दरी को जनपद कल्याणी की पदवी दी जाने का कानून था।[3]

वैशाली के उपनगर में पहुँचते-पहुँचते वृद्ध महानामन को रात्रि हो गई, वहाँ वे एक मद्य की दूकान पर आश्रय लेने को ठहरे तो दो युवक आए और उनसे वृद्ध महा-

१. डा० राजबली पाण्डे भारतीय इतिहास की भूमिका पृ० ८३
२. वैशाली की नगरवधू पृ० ८६१   ३. वही पृ० ५–७

नामन की अम्बपाली के ऊपर कुछ कहा सुनी हो गई, अन्त म वे वृद्ध महानामन के जान पहचान के निकले।[1]

उपन्यास म प्रवेश करते ही पाठक एक प्रभाव से सम्मोहित हो जाता है। किसी भव्य नगर या भव्य महल के पोर पर पहुँचते ही जिस प्रकार उसकी महत्ता का आभास हो जाता है उसी प्रकार उपन्यास म प्रवेश करते ही लेखक के उद्देश्य से आवृत्त हो, उसी उद्देश्य की छानबीन म पाठक कौतूहल को दबाए हुए अग्रसर होता है। डा० रामकुमार वर्मा अपने शिवाजी नाटक की भूमिका म इसी प्रकार की बात कहते हैं 'जिस प्रकार सूर्योदय के पूर्व ही दिशाओ म हल्का प्रकाश फैल जाता है उसी प्रकार शिवाजी के चरित्र के आलोक के पूर्व चारो ओर के पात्रा म चरित्र की दृढता और उज्ज्वलता दिखाई पडने लगती है।'[2]

यही बात वैशाली की नगरवधू के सम्बन्ध मे चरितार्थ है। लेखक के उद्देश्य का पूर्वालोक प्रारम्भ के पृष्ठो म फैल जाता है। इस काल्पनिक घटना से लेखक के ये प्रयोजन उद्घाटित होते हैं (१) वैशाली की सम्पदा,[3] (२) सच का खुले आम जनसाधारण में प्रयोग,[4] (३) वैशाली में सुन्दरी कन्याओ का क्रय विक्रय[5] (४) दासी प्रथा,[6] (५) बात-बात पर खड्ग चलने लगना।[7]

२-आम्रपाली का जनपद कल्याणी के पद पर अभिषेक

जनपद कल्याणी की पदवी दिए जाने वाले कानून को धिक्कृत कानून कहा है। इस अध्याय म वैशाली गणतन्त्र की कार्य प्रणाली, अम्बपाली का सौन्दर्य, विदुषीपन, चरित्र-निष्ठा आदि का दिग्दर्शन कराया है। इस कल्पना सृष्टि मे हम निम्नलिखित सूत्र प्राप्त होते हैं (१) वैशाली गणतत्र के प्रत्येक व्यक्ति का अपने को गण का सदस्य अथवा राजा अथवा नियामक समझना,[8] (२) नारी के नारीत्व के दर्शन कराना।[10]

परन्तु हर देश, हर काल म क्या व्यक्ति एक ही मनोवृत्ति के होते हैं? नहीं, हर कानून के विरुद्ध आवाज उठी है। वैशाली व इस कानून के विरुद्ध भी लेखक ने आवाज उठाई है— 'वृद्ध सेट्ठि पुत्र पागल की भाँति बक रहे थे।— 'वज्जियो के इस गणतत्र का नाश हो। हम राजगृह म जा बसेंगे, देवी अम्बपाली जिएँ।'[11] इसकी परिकल्पना अगले अध्याय में हुई है, परन्तु छोटी आवाज सदा दब गई है, पाप की सदा विजय हुई है और अम्बपाली गणपति सुन्दन की याचना, 'देवी अम्बपाली तुम वैशाली के स्वतत्र जनपद को बचा लो, मैं समस्त वज्जियों के जनपद की ओर से तुम से भीख माँगता हू'[12] को स्वीकार कर वह जनपद कल्याणी बनने को तैयार हो गई।[13]

जनपद कल्याणी की पदवी मिलने पर आम्रपाली का मंगलपुष्करिणी अभिषेक

---

१ वैशाली की नगरवधू-पृ० ७-११ २. डा० रामकुमार वर्मा शिवाजी (भूमिका), पृ० १।
३. वैशाली की नगरवधू पृ० ६। ४. वही-पृ० ८।
५. वही पृ० ६। ६ वही पृ० १०। ७. वही-पृ० १०।
८. वही-पृ० १२-२१। ६ वही-पृ० १४। १०. वही-पृ० २०।
११. वही-पृ० २३। १२. वही-पृ० ३४। १३. वही-पृ० ३४।

हुआ। अपनी इस कल्पनिक सृष्टि के द्वारा उपन्यासकार ने बौद्धकालीन वातावरण की छटा दिखाकर वैसा ही प्रभाव उत्पन्न किया है। उनका प्रमुख प्रयोजन है ऐतिहासिक वातावरण की अभिसृष्टि करना तथा प्रदेश का मांस-भक्षी होना एवं मद्यपी होना, दिखाना।

३–आम्रपाली का अन्तर्विद्रोह :

अबला को यदि प्रताड़ित किया जाएगा, उसके नारीत्व का बलात् अपहरण किया जाएगा, उसे कुलवधू के मंगल पद से पदच्युत किया जाएगा, तो वह क्या नहीं कर सकेगी? उसके अन्दर शत शत दुर्गाएँ चण्डिकाएं जन्म लेंगी। वह भस्म कर देना चाहेगी उन समस्त कारण को जिनके कारण उसे इस अपमान को सहन करना पड़ा। आम्रपाली ने कहा, "मैं वैशाली के स्वैरा पुरुषों से पूरा बदला लूंगी। मैं अपने स्त्रीत्व का पूरा मोल करूंगी।"[1] और वह अन्त तक इस ज्वाला में जलती रही, अन्त तक उन्हें भस्म कर डालने की भावना उसके मन में रही। अपनी इस ज्वाला का परिचय उसने हर्षदेव को दिया जब वह आम्रपाली के आवास में प्रथम अतिथि के रूप में गया। आम्रपाली हर्षदेव की वाग्दत्ता पत्नी थी। आम्रपाली ने उससे कहा 'तुम्हारी वाग्दत्ता स्त्री आम्रपाली मर गई। — यदि तुममें कुछ मनुष्यत्व है तो तुम जिस ज्वाला में मर रहे हो, उसी से वैशाली के जनपद को जला दो भस्म कर दो।"[2] और अपने जीवन में आम्रपाली ने वैशाली के इन स्वैरा पुरुषों को अपने शरीर का स्पर्श तक भी नहीं करने दिया।

अम्बपाली के जीवन में ऐसा दूसरा व्यक्ति मगध-सम्राट बिम्बसार था जिसके द्वारा उसने अपनी उपर्युक्त अन्तर्ज्वाला के परिशमन का प्रयास किया। भगवान बादरायण व्यास के माध्यम से वह मगध-सम्राट बिम्बसार से मिलती है। सम्राट बिम्बसार अम्बपाली को प्राप्त करने के लिये अपना राज्य तक न्यौछावर करने को तैयार हैं। अम्बपाली ने अपना शरीर देने के बदले में बिम्बसार के समक्ष दो शर्तें रखीं–एक तो बिम्बसार के औरस से अम्बपाली के पुत्र को मगध की गद्दी मिले और दूसरे अम्बपाली ने कहा, "हटाई सम्राट को, लिच्छवि गणतंत्र ने मुझे बलपूर्वक वेश्या बनाया है।" ... देव, मेरा अपराध केवल यही था कि मैं असाधारण सुन्दरी थी। मेरा यह अभियोग है कि वैशाली-गण को इसका दण्ड मिलना चाहिए।'[1]

और भगवान बादरायण व्यास के उपदेश से आम्रपाली की वह अग्नि कुछ शान्त हुई। आम्रपाली को उपदिष्ट करते हुए भगवान बादरायण व्यास ने कहा, "तुम्हारा कल्याण हो, परन्तु तुम वैशाली की जनपद कल्याणी हो। एक बार तुमने आत्मदान करके वैशाली को गृह-युद्ध से बचा लिया था, अब अपने तामसिक रोष से जनपद का अनिष्ट न करना। व्यक्ति से समष्टि की प्रतिष्ठा बड़ी है, स्वार्थ भी बड़ा है ... ...त्याग संसार में महाश्रेष्ठ है, त्याग से अरिष्ट, अनिष्ट सब टल जाते हैं। तुम जब देखो कि तुम्हारे द्वारा वैशाली का, उत्तराखंड के इस एकमात्र गणतंत्र का अनिष्ट हो रहा है, तब कोई महान त्याग करना, अनिष्ट टल जाएगा। यह मेरा वचन भूलना नहीं शुभे, नहीं तो वह महासौभाग्य तुम्हें प्राप्त नहीं होगा।" और आम्बपाली ने कहा कि "मैं याद रखूंगी भगवान्।"[4]

---

१. वैशाली की नगरवधू पृ० ३१। २. वही पृ० ४३।
३. वही पृ० २५८-२६१। ४. वही पृ० २६३-२६४।

नगरवधू की इस काल्पनिक असिसृष्टि से एक ओर जहाँ हम नारी मनोविज्ञान के दर्शन होते हैं दूसरी ओर वहाँ उपन्यास में अच्छी औपन्यासिकता आई है और स्थल स्थल पर शृंगार रस की सर्जना से उपन्यास में रमणीयता आ गई है।

४–आम्रपाली की प्रेम परिधि

प्रकृति और पुरुष का संयोजन अनिवार्य है। नर और नारी का एक दूसरे में विलीनीकरण एक प्राकृतिक तथ्य है। समाज, धर्म लोक-लाज की शत शत दीवारें भी, अहं की, रूप-गरिमा की लोह शृंखलाएं भी इस मिलन को नहीं रोक सकी। रूप-गर्विता अम्बपाली पुरुषमात्र को अपने शरीर का स्पर्श न करने देने की प्रतिज्ञा करने वाली अम्बपाली, अपनी रुचि के पात्र को अपना यौवन-सर्वस्व अर्पण कर देने को तड़प उठी। उसके रूप और अहं को विगलित कर देने वाला प्रथम व्यक्ति उदयन था। आम्रपाली ने उदयन की अलौकिक वीणा देखकर कहा, "निश्चय यह वीणा अद्भुत है, परन्तु भन्ते आप मेरा मूल्य इस वीणा से आंकने का दुस्साहस मत कीजिए।'

"इसका तो अभी फैसला होगा, जब इस वीणा-वादन के साथ देवी अम्बपाली को अवश नृत्य करना होगा।'

'अवश नृत्य ?'

'निश्चय।'

'असम्भव।'

'निश्चय'!

और वीणा बजते ही अम्बपाली का निश्चय' चूर चूर हो गया। वह नृत्य कर उठी और बोली, 'मैं पराजित हो गई भन्ते।'

'भद्रे, प्रेम में जय पराजय नहीं होती। वहाँ तो दो का भेद नष्ट होकर एकीकरण हो जाता है।' उदयन ने कहा।

अम्बपाली का दर्प भंग हो गया और उसने कहा, "क्या अम्बपाली आपका कोई प्रिय कर सकती है?' परन्तु उदयन ने उसके शरीर का भोग नहीं किया और उसे तड़पती छोड़ उदयन चला गया।[१]

अम्बपाली की प्रेम-परिधि का निर्माण करने वाली इस काल्पनिक सृष्टि के अतिरिक्त शृंगार रस के संयोग पक्ष की मधुर स्रोतस्विनी बहाने वाली दूसरी कल्पना-सृष्टि है अम्बपाली का सोमनाथ से दो बार मधुवन में मिलना। अम्बपाली आखेट करने गई तो उसके अश्व पर सिंह ने आक्रमण किया। सोमप्रभ ने उसे बचा लिया और उसे अपनी कुटिया में ले गया। वहाँ अम्बपाली ने उदयन की वही मंजुघोषा वीणा देखी तो उसका रोम रोम नाच उठा। सोमप्रभ ने तीन में वीणा बजाई और आम्रपाली ने तीन ग्राम में नृत्य किया। आम्रपाली समझती थी कि भूमण्डल पर तीन ग्राम में वीणा बजाने वाला उदयन के अतिरिक्त और कोई नहीं है। सोमप्रभ के सौंदर्य और कला को देख कर आम्रपाली आपा खो बैठी और उसके यौवन की तृषा एक बार को लज्जा की परिधि लाँघ गई। सोमप्रभ ने अम्बपाली को अपने में लीन कर लिया। इस प्रकार अम्ब-

१ वैशाली की नगरवधू ११३-११८।

पाली सात दिनों तक सोम के सान्निध्य का सुख भोगकर विभिन्न मुद्राओं में सोमप्रभ से अपने अलौकिक चित्र बनवाकर वैशाली में चली गई।'

इन स्थलों में बड़ी मनोहारिता उपन्यास में आई है। पर रमणीयता प्रकट करने के फेर में पड़कर आचार्य प्रवर अपनी लेखनी को लगाम नहीं लगा सके और इस स्थल में उपन्यास में कुछ अश्लीलता आ गई है। सोम के द्वारा वीणा बजाये जाने पर आम्रपाली ने अपार्थिव नृत्य किया तो सोम की कला से उसमें कामाग्नि प्रज्वलित हो गई। आम्रपाली ने आर्तनाद करके कहा, अरे मैं आक्रान्त हो गई, 'उसने केवल मेरी आत्मा ही को आक्रान्त किया शरीर को क्यों नहीं ?···इस शरीर के रक्त की एक-एक बूंद स्थान-स्थान चिल्ला रही है·· अरे ओ निर्मम तुम इसे अपने में लीन करो, अब एक क्षण भी नहीं रहा *जाता।·· यह अधम नारी देह अरक्षित पड़ी है, इसे लूट लो।" अम्बपाली ने दोनों* हाथों से कसकर अपनी छाती दबा ली, लुहार की धौंकनी की भाँति उसका वक्षस्थल ऊपर नीचे उठने बैठने लगा। युवक ने कुटी-द्वार खोलकर प्रवेश किया उसने आगे बढ़कर अम्बपाली को अपने आलिंगन पाश में जकड़ लिया और अपने जलते हुए होंठ उसके होठों पर रख दिए। उसके उछलते हुए वक्ष को अपनी पसलियों में दबोच लिया, सुख के अतिरेक से अम्बपाली के नेत्र मुंद गये, धवल दंत-पंक्ति से अस्फुट सीत्कार निकलने लगा, ···युवक ने कुटी के मध्य भाग में स्थित शिला-खंड के सहारे अपनी गोद में अम्बपाली को लिटाकर उसके अनगिनत चुम्बन ले डाले, होंठ पर ललाट पर, नेत्रों पर गण्डस्थल पर, भौंहों पर, चिबुक पर। पर उनकी तृषा शान्त नहीं हुई। · धीरे-धीरे अम्बपाली ने नेत्र खोले, युवक ने सयत होकर उसका सिर शिला-खंड पर रख दिया अम्बपाली सावधान होकर बैठ गई दोनों ही लज्जा के सरोवर में डूब गए।"[२]

माना कि इससे आचार्य जी ने उपन्यास में अतिरोचकता लाने का प्रयास किया। परन्तु उन्हें यहाँ व्यञ्जना से कार्य लेना चाहिए था। संभोग-चित्रण के तो बड़े मधुर और अश्लीलता-रहित रूप मिलते हैं। हमारे लोकगीतों तक में ऐसे मधुर रूप देखने को मिलते हैं। अभी एक गीत सुनने का अवसर मिला। एक विवाह में स्त्रियाँ गा रही थीं—वर्णन सुहाग रात के समय का है—

गवनवाकी रैन मनाओ आज रसिया
पहला पहर जब लागा रैन का,
जलन लागे दीप, बिछन लागी खटियाँ।
दूजा पहर जब लागा रैन का,
जमन लागा दूध, होन लगी बतियाँ।
तीजा पहर जब लागा रैन का,
बुझन लागे दीप बजन लागे बिछुवा।

सभोग का कितना स्पष्ट और मधुर वर्णन है. भोली-भाली ग्रामीण स्त्रियों के इस गीत में। परन्तु अश्लीलता का नाम भी नहीं। फिर चतुरसेन शास्त्री जैसे कलाकार की लेखनी से तो व्यञ्जना की वस्तु निकलनी चाहिए थी।

---

१ वैशाली की नगरवधू : पृष्ठ ४८६–४९०। २. वही– ५०४–५०५।

लेखक ने अपने इस उपन्यास म कौतूहल को बराबर बनाए रखा है । अम्बपाली के दर्प को चूर्ण करने वाले इस अलौकिक पुरुष को पाठक नहीं पहचान पाए हैं । कौन वह पुरुष था जिसने अम्बपाली जैसी पुरुष अलभ्य नारी के शरीर को आक्रान्त किया, कौन वह पुरुष था जिसके चरणों म अम्बपाली जैसी देव दुर्लभ स्त्री का जीवन सर्वस्व न्यौछावर हो गया ? इसी से पाठक कौतूहल वश आगे बढता है । यद्यपि पाठक सोमप्रभ से पहले काफी परिचय प्राप्त कर चुके हैं फिर भी उपन्यासकार ने इसे गोपनीय रखा । केवल इसी बात से उपन्यास म कौतूहल आने से औपन्यासिकता की वृद्धि हुई । और आगे चलकर जब पाठक को यह ज्ञात होता है कि यह उसका अभीष्ट प्रिय सोम है तो पाठक गदगद् हो जाता है । आचार्य चतुरसेन कौतूहल बनाए रखने म निपुण है । इस उपन्यास म अनेक स्थल ऐसे मिलते हैं कि जहां पाठक तुरन्त ही अगले पृष्ठों पर दौडता है । बधकार की कूटनीति म इसी प्रकार के स्थल दृगोचर होते हैं ।

और उपन्यास के अन्त म जब पाठक यह जानता है कि अम्बपाली और सोमप्रभ भाई बहिन है तो जैसे वह पहाड पर से गिर पडता है और बहुत कुछ सोचने को लाचार हो जाता है कि आखिर इस प्रकार की काल्पनिक सृष्टि की लेखक को क्या आवश्यकता पडी थी और पाठक इस उपन्यास को यू ही एक ओर न फेंककर उन सूत्रो को खोजने म व्यस्त हो जाता है ।

यही कला का लक्ष्य है । जो कला कृति कुछ सोचने को लाचार करे, कुछ खोज निकालने को विवश करे और जिसकी खोज से आखें फटी की फटी रह जाएँ, वह निश्चित ही देशकाल की सीमाओ म बधी न रहकर शाश्वत रहेगी, सनातन रहेगी और उसकी आभा कभी फीकी नही पडेगी । आचार्य चतुरसेन का यह उपन्यास चिरजीवी रहेगा ।

आम्रपाली का सोम से एक बार और मिलन होता है । सोमप्रभ दस्यु बलभद्र के रूप म अम्बपाली के आवास म आता है और वहाँ उपस्थित जनो को आक्रान्त और भयभीत कर चला जाता है । अम्बपाली उसे पहचान कर उसके पीछे पीछे चली जाती है । वैशाली की सेना इन दोनो के पीछे चलती है, परन्तु मधुवन म पहुच कर सोमप्रभ की सेना से डरकर भाग आती है । अम्बपाली उसके साथ रमण करती है ।

ये काल्पनिक घटनाएँ उपन्यास म शृगार, वीर एव अद्भुत रस की त्रिवेणी बहाती हैं । कौतूहल अभी तक उसी प्रकार बना रहता है । पाठक यह तो समझ लेता है कि दस्यु बलभद्र और मधुवन म आम्रपाली का सात दिनो तक भोग करने वाला पुरुष एक ही व्यक्ति है परन्तु वह अभी तक यह नही जान पाया कि यह व्यक्ति है कौन ? दूसरे मिलन के अवसर पर उसे पता चलता है कि वह सोम है ।

इसके पश्चात् उपन्यास के अन्त म आम्रपाली का बिम्बसार से प्रणय दिखाया है । इस कल्पना-सृष्टि म शृगार, वीर और अद्भुत रस की स्रोतस्विनी बहती है । एक ओर तो वैशाली और मगध दोनो राज्यो की सेना म भयकर युद्ध छिडा हुआ है दूसरी ओर महाराजा बिम्बसार अपने एक साथी के साथ भयकर रात्रि मे नदी पार कर वैशाली के आवास मे गए ।[1] वहाँ जाकर उन्होंने अम्बपाली के साथ रग रेलियाँ मनाई ।[2]

१- वैशाली की नगरवधू पृष्ठ ७०१ । २- वही ७०३-७०७ ।

और अम्बपाली के प्रेम की पराकाष्ठा के दर्शन उस समय होते हैं जब सोमप्रभ महाराज बिम्बसार को समाप्त करने के लिये खड्ग उठाता है तो सोम को इसी समय एक चीत्कार सुनाई दी। सोम ने पीछे फिरकर देखा—देवी अम्बपाली धूल और कीचड़ में भरी, अस्तव्यस्त वस्त्र, बिखरे बाल, दोनों हाथ फैलाए चली आ रही थी। उन्होंने वहीं से चिल्लाकर कहा, "सोम प्रियदर्शी सोम सम्राट को प्राणदान दो।..."अम्बपाली दौड़कर सोमप्रभ के चरणों में लोट गई। उनकी अश्रु-धारा से सोम के पैर भीग गए। वह कह रही थी—"उनका प्राण मत लो सोम, मैं उन्हें प्यार करती हूँ।......मेरे प्राण ले लो, प्रियदर्शन सोम।" अम्बपाली इस प्रकार विलाप करती हुई सोम के चरणों में भूमि पर पड़ी-पड़ी मूर्च्छित हो गई।[1]

इन स्थलों में औपन्यासिकता के कारण उपन्यास में गति आई है।

२ कूटनीतियाँ

१—वर्षकार की कूटनीति :

वर्षकार की कूटनीतियों की कल्पना उपन्यास का प्राण है। यदि इस उपन्यास से वर्षकार की कूटनीतियों को निकाल दिया जाय तो कौतूहल, आश्चर्य, रोमांच, भय, अद्भुत आदि तत्वों का निष्कासन उपन्यास से हो जायेगा। पाठक आश्चर्य-चकित हो जाता है कि किस प्रकार उस अकेले ब्राह्मण ने विशाल राज्यों को आतंकित रखा। राज्य में इन कूटनीतियों की मर्यादा, श्रद्धा सम्राट से भी ऊपर होती थी। उपन्यास के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उपन्यास में वर्षकार की कूटनीतियों का जाल सा बिछा हुआ है।

सोमप्रभ के आचार्य शाम्बव्य काश्यप के मठ में जाने के साथ ही हमें इस वर्षकार की दिल दहलाने वाली कूटनीति के दर्शन होते हैं।[2] आचार्य काश्यप के मठ की स्थिति और वहाँ के दृश्य ऐसे हैं जैसे किसी प्रेत-लोक में पहुँच गये हों। सोमप्रभ एक सूराख में से झाँककर देखता है कि एक अप्रतिम सुन्दरी को आचार्य के चमड़े के चाबुक के भय से अपनी जिह्वा पर सर्पदंश लेना पड़ रहा है।[3]

विष-कन्या की इस घटना को पाठक पढ़कर भयाक्रान्त हो उठता है और किस प्रकार उन दिनों ये विष कन्याएँ बड़े-बड़े साम्राज्यों को धूलि-धूसरित कर देती थीं, इसे जानकर उसकी साँस भी रुकने लगती है। आचार्य शाम्बव्य का यह मठ वर्षकार की राजनीति का चक्र चलाने का एक अड्डा था। सोमप्रभ से जब विषकन्या कुण्डनी का यह कष्ट नहीं देखा गया तो वह उतावला होकर खड्ग खींचकर उसका प्रतिरोध करने को अग्रसर हुआ परन्तु बन्दी बना लिया गया और अन्त में छोड़ भी दिया गया। आचार्य ने उसे समझाया और मातंगी से मिलकर कुण्डनी के साथ चम्पा चले जाने का आदेश दिया।[4] लेखक आचार्य की प्रयोगशाला सोम को दिखाकर उस समय की युद्ध-विषयक-वैज्ञानिकता के रूप से पाठकों को चमत्कृत करता है। आचार्य अपनी प्रयोगशाला के वायुय-कूपों को दिखाते हुए सोमप्रभ से कहते हैं "इनमें बहुतों में ऐसे हलाहल विष हैं जिन्हें कूप, तालाब और जलाशयों में डाल देने से, उसके जल को पीने ही से शत्रु-पक्ष में महामारी फैल जाती है।

१. वैशाली की नगरवधू पृ० ७३३—७३४ २. वही—पृ० ७४ ३. वही—पृ० ७७—७८
४. वही—पृ० ७६—८५

बहुत से ऐसे रसायन हैं कि शत्रु सैन्य-शिविर रोग म भ्रमित हो जाती है । वायु विपरीत हो जाती है, ऋतु विपर्यय हो जाती है । इनम कुछ द्रव्य ऐसे हैं कि यदि उन्हें हवा के रुख पर उड़ा दिया जाए तो शत्रु-सैन्य के सम्पूर्ण अश्व, गज अन्धे हो जाएँ । सैनिक मूक, बधिर और जड़ हो जाएँ ।"[1]

मगध महामान्य आर्य वर्षकार के आदेशानुसार सोम कुण्डनी को लेकर चम्पा नगरी की ओर चल देता है । मगध राज्य चम्पा का पतन करना चाह रहा था । कुण्डनी को कहा गया था कि तुम्हें अंगराज दधिवाहन देव पर अपने प्रयोग से उसका प्राणान्त करना होगा ।

सोम और कुण्डनी के चम्पा पहुँचते पहुँचते वर्षकार भी पर्शुपुरी का रत्न विक्रेता बनकर चम्पा नगरी म पहुँच जाता है । कुण्डनी को अपनी पुत्री बताता है महाराज दधिवाहन के साथ, जब वे रत्न खरीदने वर्षकार के पास आए तो कुण्डनी को नीति से उनके महल म भेज दिया ।[2] और जब महाराज दधिवाहनदेव उसके सौन्दर्य के मद को न झेल सके तो वर्षकार के बताए समय के अनुसार कुण्डनी ने उन्हें चुम्बन दिया उसी क्षण उनका प्राणान्त हो गया ।[1] चम्पा के पतन के तुरन्त बाद सोमप्रभ और कुण्डनी वर्षकार की आज्ञा से चम्पा की राजनन्दिनी चन्द्रभद्रा को लेकर श्रावस्ती की ओर चल दिए ।[3]

वर्षकार की विलक्षण-कूटनीति के दर्शन से उस समय तो हतप्रभ हो उठना पड़ता है जब मगध की राजधानी राजगृह को अवन्तिपति चण्डमहासेन प्रद्योत ने चारों ओर से घेर लिया था और राजगृह का पतन निश्चित था । वर्षकार ने युद्ध किसी भी दशा मे न करने का आदेश दिया । इतन म ही बिम्बसार के पास सूचना आई कि, 'देव, शत्रु रातो-रात नगर का घेरा छोड़कर भाग गया । उसकी सेना अत्यन्त छिन्नावस्था मे भाग रही है ।" इस पर सम्राट बोले, 'यह कैसा चमत्कार है सेनापति ?" उस यन्त्र के बारे म सेनापति ने सम्राट को बताया, "अमात्य ने प्रद्योत के अभियान की सूचना जहाँ-तहाँ स्कन्धावार योग्य स्थान थे, वहाँ-वहाँ बहुत सी मागधी स्वर्ण-मुद्राएँ प्रथम ही धरती मे गड़वा दी थी। ——उन्ही स्थानो पर प्रद्योत के सहायक राजाओ और सेना नायको ने डेरे डाले । तब प्रद्योत को भरवा दिया गया कि ये सब सेनानायक और राजा मगध के अमात्य से मिल गए हैं और बहुत सा हिरण्य ले चुके हैं ।"[5] और आचार्य शाम्बव्य ने यह कार्य किया ।

उपर्युक्त काल्पनिक सर्जना के अतिरिक्त वर्षकार की कूटनीति की विलक्षणता के दर्शन तो और आगे होते है । राजनीति के बहुत दाव-पेच खिल चुकने के बाद पाठक को पता चलता है कि यह वर्षकार की नीति थी । भरे दरबार मे आर्य वर्षकार ने मगध-सम्राट बिम्बसार से वैमनस्य मोल ले लिया और सम्राट न वर्षकार का सर्वस्व अपहरण करके देश निकाला दे दिया । और "मैं मगध का त्यागकर ही अन्न जल ग्रहण करूँगा ।" इतना कहकर महामात्य ने सभा-भवन त्याग दिया और पाव-प्यादे ही अज्ञात दिशा की ओर चल दिये । राजगृह म सन्नाटा छा गया । सम्राट ने विज्ञप्ति प्रसारित की, 'जो कोई

१. वैशाली की नगरवधू, पृ. ८६-८७ । २ वही पृ २१२-२१६ ।
३. वैशाली की नगरवधू : पृ. २३२-२३४ । ४. वही पृ. २३४-२३८ ।
५. वैशाली की नगरवधू : पृ० २६६-२६७ ।

आर्य वर्षकार को साम्राज्य में आश्रय देगा, उसका सर्वस्व हरण करके उसे शूली दी जाएगी।"[1]

इस घटना के घटने पर पाठक दिल थामकर बैठ जाता है कि अब क्या होगा। उसके कौतूहल की अपार-वृद्धि होती है और वह अगले पृष्ठों पर दौड़ पड़ता है। वास्तव में यह चाल इसलिए खेली गई थी कि मगध को वैशाली पर आक्रमण करना था और वर्षकार खुले रूप में वैशाली में प्रवेश करके मन्त्र-युद्ध का संचालन करे। इससे पूर्व वर्षकार गौतमबुद्ध से बातों-बातों में वैशाली का सब हाल पूछ लेते हैं।[2]

राजगृह के काशी नापित गुरु प्रभंजन को अपना सहयोगी बनाकर वर्षकार खुले रूप में वैशाली में प्रवेश करता है। वैशाली जाते समय मार्ग में वर्षकार को हर्षदेव मिलता है। वह हर्षदेव को समझाता है कि यदि तुम वैशाली का सर्वनाश करना चाहते हो तो कुछ नगरों में व्यापार करके धन कमाकर वैशाली में जा बसो।[1]

वैशाली पहुँचकर वर्षकार वैशाली के संथागार पहुँचा। वहाँ उसने राज सेवा करने को कहा परन्तु यह गण-नियम के विरुद्ध होने के कारण उसे सेवा में नहीं लिया गया पर अतिथि ब्राह्मण मानकर उसे प्रतिदिन सहस्र स्वर्ण और दास दासियाँ निजक दी गईं।

अब वैशाली में कुछ आतंककारी, रोमांचकारी क्रिया-कलाप घटित होने प्रारम्भ हुए। पाठक भी आश्चर्य-चकित कि यह सब कुछ क्या हो रहा है। यह सब वर्षकार का मन्त्र-युद्ध था जिसके बारे में पाठक पर काफी बाद में जाकर भेद खुलता है। एक तो वैशाली के बाहर पहाड़ी में दस्यु बलभद्र है जो अपने कारनामों से वैशाली को आतंकित किए हुए है।[3] यह दस्यु बलभद्र सोमप्रभ है। एक मदनन्दिनी वेश्या है। जिसके रूपाकर्षण ने अम्बपाली की रूप-माधुरी को फीका कर दिया है।[4] एक नन्दन साहू है[5] जिसने भोजन में विष मिलाकर कितने वैशालियों को मार डाला। एक भयंकर भूति थी चाण्डाल मुनि हरिकेशीबल–यह अत्यन्त लम्बा, काला, कुरूप और एक आँख से काना था। यह विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों तथा प्रलापों से वैशाली को आतंकित करता था।

ये सब वर्षकार के गुप्तचर थे, इस बात का पता पाठक को उस समय चलता है जब वैशाली के गण के उच्चाधिकारियों की मोहनगृह की गुप्त मंत्रणा होती है। वैशाली के गुप्तचर भी कुछ कम नहीं थे जिन्होंने इस बात का पता लगाया कि मदनन्दिनी कुट्टनी है, नन्दनसाहु भी वर्षकार का आदमी है, चाण्डाल मुनि हरिकेशीबल नापित गुरु प्रभंजन है। तब पाठक आश्चर्य चकित हो उठता है।

वर्षकार की कूटनीतियों ने जहाँ उपन्यास को गति दी है, उसमें कौतूहल, रमणीयता आदि तत्वों का समावेश हुआ है वहाँ दूसरी ओर हमें तत्कालीन राजनीति के दाव पेच देखने को मिलते हैं।

---

१. वैशाली की नगरवधू: पृ. ३१४–३१६। २. वही पृ. ३०६–३१३।
३. वैशाली की नगरवधू: पृ० ५२२–५२६। ४. वही पृ. ५२७–५२८।
५. वैशाली की नगरवधू पृ. ५४१–५४६: ६. वही पृ० ५४७–५४८।

२–अजित केश कम्बली की कूटनीति

दूसरा भयंकर कूटनीतिज्ञ है अजित केशकम्बली ।[1] यह ब्राह्मण था और यज्ञ आदि मे विश्वास रखता था । उन्ही दिनों श्रमण महावीर और गौतम के नाम का डंका बज रहा था । कौशल की राजमहिषी मल्लिका गौतम की भक्त थी । विदूडभ महावीर को मानता था । अब इस कूटनीतिज्ञ ब्राह्मण ने विदूडभ को अस्त्र बनाकर इन दोनों का नाश करने की सोची । चूँकि विदूडभ की कौशलेश होने की सम्भावना थी अतः उस ब्राह्मण ने विदूडभ को अपने ही गुट मे मिलाने की सोची । इसने विदूडभ का गौतम के विरुद्ध भड़काने और उसे अपने पिता को गद्दी से उतार कर गद्दी हथियाने की प्रेरणा दी । बन्धुलमल्ल और उसके बारहों परिजन उसके शत्रु हो सकते थे । उनके मरवाने की तरकीब भी अजित ने विदूडभ को बता दी कि इन्हें सीमान्त पर युद्ध मे भेज दो ।[2] और इसकी कूटनीति से बन्धुल के बारहो परिजन मारे गए, कोशलेश प्रसेनजित को निष्कासित कर दिया गया विदूडभ को गद्दी मिली ।[3]

अजित केशकम्बली के प्रसंग मे भी उसी प्रकार का कौतूहल रोमांच, भय आदि का उद्रेक हुआ है ।

३ कूटनीतियों के घात प्रतिघात

आर्य वर्षकार ने जब वैशाली पहुचकर अपनी कूटनीति का चक्र चलाया तभी वैशाली के कूटनीतिज्ञो ने भी अपना काम प्रारम्भ कर दिया । फलतः वर्षकार की समस्त कूटनीतियाँ उद्घाटित हो गईं ।

वैशाली के पक्ष के काप्यक गान्धार ने सम्राट से वर्षकार का विग्रह शमन कराने के लिए राजगृह की ओर प्रस्थान किया जबकि वस्तु स्थिति यह थी कि वे राजगृह जाकर वहाँ के सब भेद लाना चाहते थे । इसके प्रस्थान करते ही वर्षकार ने तीन पत्र लेकर तीन व्यक्ति तीन विभिन्न दिशाओं को दौड़ाए, इन तीनों के पीछे तीन गुप्तचर वैशाली के लगे ।[4] इस प्रकार कूटनीतियो के घातप्रतिघात मे सबसे कौतूहलवर्धक घटना वर्षकार के काणे चाण्डाल मुनि का वैशाली के जयराज के पीछे लगना है । आगे जाकर जयराज काणे भमजन का शिरच्छेद कर देता है ।[5] फिर जयराज राजगृह पहुच गया और गणदूत गान्धार काप्यक के स्थान पर सम्राट बिम्बसार से जयराज मिला ।[6] जयराज ने वहाँ राजगृह से आवश्यक सूचनाएँ और मानचित्र ले लिये । सम्राट बिम्बसार को इस बात का पता चला तो उन्होंने अभयकुमार को उसके पीछे भेजा । मार्ग मे दोनों का द्वन्द्व-युद्ध हुआ और अभयकुमार मारा गया ।[7]

कहने की आवश्यकता नहीं कि ये स्थल भी उन्हीं औपन्यासिक तत्वों की अभिवृद्धि के लिए है जिनके लिए उपर्युक्त कूटनीतियां है ।

१. वैशाली की नगरवधू - पृष्ठ ५४७-५४८ ।
२. वही पृष्ठ ३४४-३५० ।
३. वैशाली की नगरवधू : पृ. ३७१ ३७४, ३७६-३८०, ४१२-४१६, ४५५-४६० ।
४. वही पृ ५६१ । ५. वही पृ ६१५-६२० । ६. वही पृ. ४४३-४४७ ।
७. वही पृ ६५२-६५७ ।

४ नियोग

अभी तक यह सुनते आए थे कि नियुक्ति किसी पद पर होती है, कोई काम करने के लिये। परन्तु हर्षदेव की नियुक्ति एक बुढ़िया ने अपने पुत्र के मर जाने पर अपनी चारों वधुओं के पति रूप में की थी ताकि वह इन चारों से एक-एक पुत्र उत्पन्न कर सके और उस का यथेष्ट शुल्क प्राप्त कर सके।[१] इस घटना की सर्जना का उद्देश्य उस समय की सामाजिक परिस्थिति का दर्शन कराना है। इसमें बताया है कि यदि किसी कुल में पुत्र उत्पन्न नहीं होता तो उस कुल की समस्त सम्पदा राजकोष में मिला ली जायगी। आज जबकि वंश चलाने के लिये हिन्दू लोग दत्तक पुत्र लेते हैं तब यह बिल्कुल सम्भव है कि अपनी सम्पदा की रक्षा के लिये और वंश चलाने के लिये उस समय इस प्रकार की घटना घट जाय। आज भी हम प्रतिदिन देखते हैं कि पुत्र प्राप्ति के लिये स्त्री क्या नहीं करती, वह असनाध्य कर सकती है।

आचार्य चतुरसेन का इस विषय में कथन है—"इस उपन्यास में एक कल्पित नियुक्त पुरुष की घटना का उल्लेख है। इस उल्लेख का अभिप्राय यह है कि उस काल में भी यह प्रथा प्रचलित थी और यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती थी कि पति की आज्ञा से अथवा पति के मरने पर स्त्री अन्य पुरुष का नियुक्त करके सतान उत्पन्न कर सकती थी। और यह सतान उस पति की कुल-गोत्र और सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थी।"[२]

हर्षदेव ने चारों से पुत्र उत्पन्न कर दिये। बुढ़िया का काम निकल जाने पर उसने उसे उस धता बताई और शुल्क मागने पर यह कहकर डरा दिया कि तुझे पुलिस के हवाले कर दिया जायगा। बुढ़िया का काइयापन दिखाना और उपन्यास में गति देना ये दो उद्देश्य मुख्य है। हर्षदेव की चरित्र शिथिलता पर कुछ प्रकाश पडता है कि वह कहाँ तो आम्रपाली के समक्ष यह प्रतिज्ञा करके आया था कि मैं वैशाली का नस्म करूँगा और कहाँ उसकी यह इच्छा होने लगी कि मैं सारे जीवन बुढ़िया का बेटा ही बना रहूँ।

इस काल्पनिक अभिसृष्टि से पाठक को बुद्धकालीन समाज के विशिष्ट चित्रों के दर्शन होते हैं।

५ सोमप्रभ और कुण्डनी का शौर्य एवं बुद्धिमत्ता

सोमप्रभ एवं कुण्डनी के क्रियाकलापों से उपन्यास में यथेष्ट मनोरंजन आया है। उनकी गतिविधियों को यदि उपन्यास से निकाल दिया जाए तो उपन्यास में नीरसता आजाएगी। वीर, शृंगार, अद्भुत एवं रौद्र रस की धाराएँ उपन्यास में प्रवाहित हुई हैं। चम्पा जाते समय ये दोनों शबर असुर के राक्षस सैनिकों द्वारा बन्दी बना लिये गए। वहाँ जाकर जिस बुद्धिमत्ता से कुण्डनी ने असुरों का अपने चुम्बनों से संहार किया और वहाँ से बचकर निकल आए यह वर्णन हड्डियों तक को कँपा देन वाला है।[३] भय, रहस्य, आशंका के झूलों में झूलता हुआ पाठक अग्रसर होता है। इन स्थलों में उपन्यास में एक अच्छी गति आई है।

यह सोम का ही असम साहस था जो माघ ने चम्पा का इतनी जल्दी और सर-

---

१ वैशाली की नगरवधू — पृष्ठ १६७-१७५।

२. वही पृष्ठ ८२३।　　३. वही पृष्ठ १९६-२०९।

नता से जीत लिया।[1] सोमप्रभ जब कुण्डनी और शम्ब असुर के साथ राजनन्दिनी चन्द्रभद्रा को लेकर श्रावस्ती की ओर आ रहा था तो मार्ग में उनकी मुठभेड़ डाकुओं से हो गई। उसमें सोम घायल हो जाता है और कुण्डनी तथा राजनन्दिनी पकड़े जाते हैं। घायल सोम को साथ पर्वत कन्दरा में ले जाता है और कुण्डनी तरकीब से डाकुओं के पंजे से निकलकर बच कर भाग जाती है। इस प्रकार तीनों बिछुड़ गए।[2]

आगे चलकर कुण्डनी और चन्द्रभद्रा मिल जाते हैं। चन्द्रभद्रा को दस्यु ने दासों के हट्ट में लाकर बेच दिया। वहाँ उसे कुण्डनी ने देख लिया। उसे खरीदकर महाराज प्रसेनजित के महल में उसकी नई रानी कलिंगसेना को भेंट देने के लिए एक चर ले गया।[3] यहाँ कौतूहल के अतिरिक्त इस काल्पनिक सृष्टि से हमें बुद्धकालीन समाज की दशा का चित्रण मिलता है कि किस प्रकार कन्याएँ तथा स्त्रियाँ भेड़ बकरियों की तरह बेची जाती थीं।

सोम ने स्त्री का वेश बनाया और कुण्डनी के साथ महाराज प्रसेनजित के अन्तःपुर में चन्द्रभद्रा की खोज में चला गया। वहाँ पहुँच कर उसने राजनन्दिनी को आश्वस्त किया। अन्त में सोमप्रभ ने महावीर स्वामी और विदूडभ की सहायता से चन्द्रभद्रा का उद्धार करवाया।[4]

इसके पश्चात सोम और कुण्डनी ने सम्मिलित साहस और बुद्धि की विलक्षणता का परिचय देकर बन्धुल मल्ल द्वारा बन्दी बनाए गए विदूडभ को मारकर कारागृह से मुक्ति दिलाई।[5] दिल दहलाने वाले सोम के साहस से ही विदूडभ बच पाया। दुर्ग की खाई में जल में गोता मारकर जल के अन्दर ही अन्दर कारागार की सीढ़ियों तक पहुँचना और फिर कारागार में प्रवेश कर जाना[6] कितने साहस और शौर्य का काम है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। उधर कुण्डनी ने अपना नाच गाने का, मद्य का रंग जमाकर सैनिकों को अपनी ओर खींच लिया।[7] सोम के अन्दर प्रवेश करते ही बन्धुल से उसकी मुठभेड़ हुई। उसने बन्धुल को घायल किया।[8]

सोम और कुण्डनी के इस अप्रतिम साहस से पाठक चमत्कृत हो उठता है। वीर रस और अद्भुत रस का बड़ा मधुर परिपाक होता है, इन काल्पनिक स्थलों में।

सोम में सिंह तक को मार गिराने की शक्ति थी, इस कल्पना के बारे में हम पीछे "सोम का अम्बपाली के साथ प्रथम मिलन" में कह आये हैं। सोमप्रभ इतना निर्भीक था कि वह आम्रपाली के आवास में गया और वहाँ वैशाली-जनों को घायल करके लौट आया।[9] वैशाली और मगध के महायुद्ध में भी हमें सोम के शौर्य, साहस और प्रतिभा के दर्शन होते हैं, जब उसने रथ मुशल-संग्राम किया।[10] और उसके साहस की पराकाष्ठा के दर्शन हमें अन्त में उस समय होते हैं जब वह सम्राट बिम्बसार को अम्बपाली के आवास में देखता है और युद्ध बन्द करके बिम्बसार को बन्दी करता है तथा उनका प्राणान्त करने के लिए उनकी छाती पर पैर रखकर गले पर खड्ग रख देता है। तब तो पाठक भी

१. वैशाली की नगरवधू, पृष्ठ ११७-२२०। २. वही पृष्ठ २७८-२८४।
३. वही पृष्ठ ३५७-३६५। ४. वही पृष्ठ ३८१-३८६, ३६७-४००।
५. वही पृष्ठ ४२८-४५४। ६. वही पृष्ठ ४४६-४४७। ७. वही पृष्ठ ४४६।
८. वही पृष्ठ ४५२-४५४। ९. वही पृष्ठ ६०७-६१४। १०. वही पृष्ठ ७२०-७२२।

एक बार तो काँप उठता है। सम्राट के साथ यह व्यवहार? क्या परिणाम होगा इसका? आदि प्रश्न पाठक के अन्तर में उठते हैं। अस्तु

सोम और कुण्डनी-सम्बन्धी काल्पनिक घटनाएँ उनके असम शौर्य और बुद्धि का परिचय देती हुई उपन्यास को समाप्त करती हैं और तत्कालीन समाज और राजनीतिज्ञों के दर्शन भी कराती हैं।

६ सोम और राजनन्दिनी का प्रेम और त्याग

जब सोम कुण्डनी के साथ चन्द्रभद्रा को चम्पा से लेकर श्रावस्ती की ओर चलता है तो मार्ग में वह चन्द्रभद्रा का बड़ा ध्यान रखता है। कुण्डनी हँसी में चन्द्रभद्रा से कहती कि यह तो दास है, तो राजनन्दिनी ने कहा कि दास नहीं अभिभावक है।[1] और इस प्रकार दोनों का एक दूसरे के प्रति आकर्षण हो जाता है। सोम एकान्त में बैठकर उनके बारे में सोचते-सोचते भावुक हो उठता है।[2]

शृंगार रस के संयोग पक्ष का अच्छा परिपाक इन स्थलों में हुआ है। कलिंग सेना के अन्तःपुर में पहुँच जाने पर चन्द्रभद्रा ने अपने छुटकारे के विषय में सोम से श्रमण महावीर से मिलने को कहा था। सोम के मिलने पर श्रमण महावीर ने चन्द्रभद्रा के उद्धार का कार्य विदूडभ को सौंपा तो सोम के हृदय में अन्तर्द्वन्द्व हुआ कि कहीं विदूडभ ही उसे न हड़पले।[3] और वही हुआ जिसकी सोम को आशंका थी। श्रमण महावीर की इच्छा के अनुसार चन्द्रभद्रा विदूडभ को मिली और सोम ने चन्द्रभद्रा को अन्तिम प्रणाम किया।[4]

वियोग का यह दृश्य बड़ा मार्मिक है। करुण और विप्रलम्भ-शृंगार रस की अद्भुत स्रोतस्विनी यहाँ बहती है।

७ बुद्ध और महावीर का प्रभाव

बुद्ध और महावीर दोनों ऐतिहासिक-पात्र हैं। इनके प्रभाव को दिखाने के लिये उपन्यास के अनेक ऐसे श्रेष्ठि पुत्रों की कल्पना की गई है जो इतने विलासी और कोमल थे कि उनके पैरों के तलुओं में रोएँ जम आये थे। अपनी समस्त सुख-सम्पदा छोड़कर ऐसे-ऐसे श्रेष्ठि-पुत्र, श्रमण संस्कृति में दीक्षित होकर साधु हो गये। कुलपुत्र यश[5], सोण कोटिविंश[6], गृहपति अनाथ पिण्डिक[7], शालिभद्र और धालिभद्र का विराग[8], आदि से श्रमण संस्कृति का प्रभाव दिखाना ही उपन्यासकार का प्रयोजन है। इनसे उपन्यास में तो कोई गति आई नहीं परन्तु इनकी अवतारणा सोद्देश्य है।

: ८ : युद्ध-वर्णन

जब इतिहास का प्राण युद्ध है तो ऐतिहासिक उपन्यासों में युद्ध-वर्णन होना चाहिये। ऐतिहासिक उपन्यास में तो वीर-रस का परिपाक होना चाहिये जिससे उपन्यासकार अपने पाठक की चेतना को जागृत कर सके। अस्तु

---

१ वैशाली की नगरवधू - पृष्ठ २६६-२७२।

२. वही पृष्ठ २७२-२९५। ३. वही पृष्ठ ३६३-३६६। ४. वही पृष्ठ ४६६-४७०।

५. वही : पृष्ठ ३५३-३५७ ६. वही पृष्ठ ३६६-४०२।

७ वही : पृष्ठ ३०४-३०८। ८. वही : पृष्ठ ३३१-३३१।

वैशाली की नगरवधू में युद्ध की काल्पनिक सृष्टि बड़ी मनोहारी है। वीर-रस का, कौतूहल का, रोमांच का, उद्रेक करने में यह वर्णन विशेषतः सफल हुआ है। इसमें हमें वैशाली और मगध की सेनाओं की युद्ध के लिए तैयारी, प्रयाण और भयंकर युद्ध आदि के दर्शन होते हैं। लेखक अपनी कल्पना सृष्टि के सहारे आज के एटम-युद्ध के पाठकों को विभिन्न प्रकार के व्यूहों द्वारा चतुरंगिणी सेना के युद्ध दर्शन कराता है। तात्कालिक रणनीति, युद्ध-कला आदि के स्वाभाविक वातावरण की अच्छी सर्जना हुई है।[1]

९ रहस्योद्घाटन

७७० पृष्ठों का उपन्यास समाप्ति पर आ गया पर अभी तक पाठक सोम और अम्बपाली किसकी संतान हैं, यह नहीं जान सका। उसके मन में इन दोनों के भेद जानने की उत्सुकता रही परन्तु लेखक साढ़े सात सौ पृष्ठों के पश्चात् इनका रहस्योद्घाटन करता है। आर्या मातंगी सोमप्रभ से कहती है कि तू बिम्बसार से मेरा पुत्र है, आम्रपाली वपकार से मेरी पुत्री है वह तेरी बहिन है।[2] सोम जैसे आकाश से गिर पड़ा और वह बौद्ध भिक्षु बन गया।[3]

१० अप्राकृत घटनाएं

आचार्य चतुरसेन ने इस उपन्यास में कुछ अति अप्राकृत घटनाओं का भी समावेश किया है। देव-दैत्य पूजित श्री मन्थान भैरव के वाडवाश्वों को कृतपुण्य सेट्ठि चुराकर ले आया। इसीलिये मन्थान भैरव मृत्युलोक में आए। वे छाया बनकर वैशाली नगरी के ऊपर घूमने लगे। कभी वे कृतपुण्य सेट्ठि के पुत्र के शरीर में प्रवेश कर जाते तो वह सेट्ठि पुत्र अनर्गल बकने लगता।[4] अपने शिष्य कीमियागर गौड़पाद से श्री मन्थान भैरव बोले, ' - मैं कौतूहलाक्रांत भी हूँ'।

'कैसा देव ?'

अम्बपाली का रे, अभिरमणीय है न ?'

एक और स्त्री है, किन्तु अभिरमणीय नहीं।

क्यों रे ?

विषकन्या है।

अच्छा-अच्छा उसका मदभंजन करूंगा,

अरे, युद्ध कब होगा ? - - - रक्तपान करूंगा, कुरु-संग्राम के बाद रक्तपान किया ही नहीं।'[5]

और मन्थान भैरव ने कुण्डनी के साथ रमण किया। जिस कुण्डनी ने सैकड़ों राक्षसों को अपने चुम्बन से तत्काल मृत्यु के घाट उतार दिया वह मन्थान भैरव के चुम्बन लेने से तुरन्त मर गई।[6]

इसी प्रकार की अतिप्राकृतिक काल्पनिक सृष्टि लेखक ने पाताल की परिषद् बुलाकर की है।[7] युद्ध के समय में ही विवाह आदि विषयों पर विचार करने के लिए एक

---

१. वैशाली की नगरवधू : पृ. ६७६-७२६। २. वही पृ. ७५१।
३. वैशाली की नगरवधू : पृ. ७६६ : ४. वही पृ. ५८५-५९६ :
५. वैशाली की नगरवधू : पृष्ठ ६०३-६०४ : ६. वही पृ. ७०८-७१३ :
७. वैशाली की नगरवधू : पृ. ३३२-३३६ :

परिषद् बुलाई गई। उस परिषद् म भारद्वाज, कात्यायन, आंगिरस, शौनक, बौधायन, गौतम, आपस्तम्ब शाम्बव्य, जैमिनि, कणाद, औलूक वासिष्ट, साल्यायन, हारीत, पाणिनि, वैशम्पायन आदि थे।

विवाह की मर्यादा स्थापित करने के लिये इन ऋषि मुनियों न अपने अपने विचार व्यक्त किय। सबसे मद्दी बात यह लगती है कि ये समकालीन न थे फिर भी अपनी विद्वता झाड़ने के लिये आचार्य प्रवर ने इन्हे एक ही मजलिस म घुसड़ दिया। यद्यपि लेखक ने इसके लिए स्पष्टीकरण दिया है कि हमने पाचाल परिषद् की कल्पना की। पर इससे उपन्यास मे एक भारी दोष तो आ ही गया।

११ · अन्तिम झांकी

अम्बपाली के पुत्र हुआ। उसने अपने पुत्र को बिम्बसार के पास भेज दिया और उसे मगध का भावी सम्राट घोषित किया।

अन्त मे एक बात केवल यही कहनी है कि वैशाली की नगरवधू की प्राय समस्त कल्पना इतिहास की पोषिका रही है। इस कल्पना न इतिहास का विरोध नहीं किया है। उपन्यास पढ़ते समय पाठक २० वी सदी मे भ्रमण नहीं करता। उसे बराबर यह आभास होता है कि अबसे २५०० वर्ष पूर्व के युग मे विचरण कर रहा है। और यदि एक ऐतिहासिक उपन्यास तत्कालीन समाज, धर्म, अर्थ-व्यवस्था और राजनीति के चित्र उपस्थित करके पाठक को उन चित्रों मे रमाले तो बहुत कुछ सीमा तक ऐतिहासिक उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यासकार के कर्त्तव्य की इति हो जाती है। इतिहास रस का ही आस्वादन कराना ऐतिहासिक उपन्यासकार का कर्तव्य है, इतिहास का ज्ञान कराना नही। इतिहास के ज्ञान के लिए तो इतिहास की पुस्तकें हैं। हाँ, मेरे दृष्टिकोण से ऐतिहासिक उपन्यास पाठक की एतिहासिक चेतना को जागृत करे, इतिहास के सम्बन्ध मे उसकी सोई हुई भूख को जगाए, तो उसके कर्त्तव्य की परिसमाप्ति हो जाती है।

और वैशाली की नगरवधू अपने पाठक के अन्तर मे इतिहास के प्रति प्रेम जागृत करती है, उसकी सुषुप्त चेतना को झझोड़ती है और पाठक इतिहास के मथन करने को उतावला हो जाता है।

चूंकि ऐतिहासिक उपन्यास, उपन्यास है इतिहास नहीं, इसलिए इतना कुछ यदि वह अपने पाठक को दे दे तो उस ऐतिहासिक उपन्यास का जीवन धन्य हो गया, वह चिरजीवी हो गया। सदा उसका मूल्य ज्यूं का त्यूं रहेगा और इसमे शका को स्थान नही कि आचार्य चतुरसेन की यह विलक्षण कृति जुग-जुग जियेगी।

उपन्यास का घटना-विश्लेषण

१. पूर्ण ऐतिहासिक

१/1 आम्रकुंज म एक कन्या-शिशु का पाया जाना फलत उसका नाम आम्रपाली रखा जाना।

२/5 उरु वेला तीर्थ मे, एक वट वृक्ष के नीचे गौतम बुद्ध का ज्ञान प्राप्त करना एव अपनी शिष्य परम्परा चलाना।

३/9 कपिलवस्तु के शाक्यो पर विदूडभ के आक्रमण से प्रसेनजित का युद्ध होना विदूडभ का प्रसेनजित को कत्ल करने के लिए खडग उठाना तथा बन्धुल मल्ल का उसकी रक्षा करना।

४/17 अवन्तिपति चण्डमहासेन प्रद्योत का राजगृह के चारो ओर घेरा डालना तथा मगध महामात्य क कूट-यत्र के फलस्वरूप प्रद्योत का सैना लेकर वापस भाग जाना।

५/20 महावीर का राजगृह मे आना तथा उनके अनेक शिष्य बनना।

६/23 विदूडभ का कूट-यत्र विदूडभ का प्रसेनजित को फुसलाकर कारायण को बन्दी बनाना, बारहो मल्ल-पुत्र-परिजनो को सीमान्त पर भेजना।

७/25 बारहो मल-पुत्रो का मारा जाना तथा बन्धुल का सीमान्त पर जाना, विदूडभ द्वारा कारायण को मुक्त करक उससे प्रसनजित को वन्दी बनवाना तथा राज्य की सीमा पर प्रसेनजित और मल्लिका को छुडवाना, राजगृह पहुचकर दोनो का स्वर्गवास हो जाना।

८/28 विदूडम का राज्याभिषेक।

९/49 आम्बपाली का बुद्ध को सघ-सहित निमत्रण देना तथा सघ को अपना सर्वस्व समर्पण करके बौद्ध भिक्षुणी बन जाना।

२ इतिहास सकेतित

१/3 वैशाली के गण सन्निपात के अनुसार आम्रपाली को पुष्करिणी अभिषेक के पश्चात् 'नगरवधू' घोषित किया जाना।

२/18 अपने मगध निवासियो सहित सम्राट बिम्बसार का गौतम बुद्ध के दर्शन के लिए जाना।

३ कल्पित-इतिहास-अविरोधी

१/2 महानामन् का आम्रपाली को लेकर उसके पालन पोषण के लिए गाँव चले जाना तथा लौटकर फिर वैशाली आ जाना।

२/4 हर्षदेव का नगरवधू आम्रपाली के आवास मे प्रथम अतिथि के रूप मे जाना तथा आम्रपाली द्वारा उत्तेजित होकर वैशाली गणतत्र को भस्म कर देने का विचार लेकर वापस लौट आना।

३/6 सामप्रभ का आचार्य शाम्बव्य काश्यप से मिलना और वर्षकार की आज्ञा से कुण्डनी के साथ चम्पा के लिए प्रस्थान करना।

४/7 आर्या मातंगी ने सोमप्रभ को आर्या मातंगी का अपनी माँ होने का पता चलना।
५/8 उदयन का आम्रपाली से मिलना और वीणा बजाना तथा आम्रपाली का अनन्य नृत्य करना–आम्रपाली का उदयन को शरीरार्पण, उदयन की अस्वीकृति।
६/10 विदूडभ का वैद्य जीवक कौमारभृत्य को अपना साथी बनाना।
७/11 अपनी चार विधवा बहुओं से पुत्र उत्पन्न करने के लिए एक वृद्ध द्वारा हर्षदेव की नियुक्ति, कार्य निकल जाने पर वृद्ध द्वारा शुल्क न देना, मध्यमा बहू का हर्षदेव पर आसक्त होना और मधुगोलकों में रत्न छिपाकर हर्षदेव को देकर अपने पिता के पास चम्पा भेज देना।
८/13 सोम, कुण्डनी और वर्षकार के प्रयत्नों से चम्पा का पतन, चम्पा-नरेश दधिवाहन देव का मारा जाना, सोम और कुण्डनी का चम्पाकुमारी चन्द्रभद्रा को लेकर श्रावस्ती की ओर चले जाना।
९/14 बादरायण व्यास के आश्रम में आम्रपाली का अपने पुत्र को मगध का भावी सम्राट बनाए जाने का बिम्बसार से वचन लेकर उन्हें अपना शरीरार्पण करना एवं बादरायण व्यास का भविष्यवाणी करना।
१०/15 सोम और राजनन्दिनी का एक दूसरे के प्रति आकर्षण।
११/16 श्रावस्ती जाते हुए दस्युओं से सोम आदि की मुठभेड़, केवल राजनन्दिनी का दस्युओं द्वारा पकड़ा जाना तथा उसका दासों के हट्ट में बेचा जाना, राजनन्दिनी को खरीदकर प्रसेनजित के महल में पहुंचाया जाना।
१२/19 बिम्बसार द्वारा वर्षकार को पदच्युत करके देश से निकल जाने की आज्ञा देना, वर्षकार का प्रमजन की कुटी में बैठकर गुप्त रूप से राजनीति-चक्र चलाना।
१३/22 अजित केसकम्बली का कूटचक्र–राजपुत्र विदूडभ को उकसाकर प्रसेनजित को अपदस्थ कर उसे राजा बनाने, बन्धुलमल्ल और उसके बारहों पुत्र-परिजनों को मरवा डालने के लिए उन्हें सीमान्त पर भेजने की योजना बनाना।
१४/24 प्रसेनजित का राजसूय यज्ञ करना।
१५/26 सोम और कुण्डनी के प्रयास से राजनन्दिनी का प्रसेनजित के महल से उद्धार, महावीर की आज्ञा से विदूडभ और कलिंगसेना द्वारा राजनन्दिनी को साकेत पहुंचाया जाना।
१६/27 बन्धुल द्वारा विदूडभ को कैद करना, सोम, कुण्डनी आदि के प्रयास से विदूडभ को कैद से मुक्ति-मिलना।
१७/29 महावीर के आदेशानुसार सोम का राजनन्दिनी को प्राप्त करने की इच्छा का परित्याग।
१८/31 वर्षकार के आदेशानुसार हर्षदेव का कृतपुण्य सेट्ठि के रूप में वैशाली में जाकर बस जाना।
१९/32 वर्षकार द्वारा वैशाली गणतन्त्र की सेवा का प्रस्ताव रखना, वज्जी गण द्वारा उसे न मानना परन्तु वर्षकार को सम्माननीय अतिथि का पद देना।
२०/33 कुण्डनी का मदनन्दिनी वेश्या के रूप में वैशाली में आकर बस जाना, वैशालियों

पर उसका यह भेद प्रकट होना ।

२१/34 नापित गुरु काण्डे प्रभंजन का हरिकेशीबल मुनि के रूप में वैशाली में उत्पात मचाना ।

२२/35 वैशाली पर बिम्बसार के आक्रमण की तैयारी के फलस्वरूप वैशाली की मोहन मंत्रणा और उसमें मगध के गुप्तचरों का रहस्योद्घाटन ।

२३/38 प्रभंजन द्वारा वैशाली में जयराज का भेद लेने के लिए उसका पीछा करना, द्वन्द्व युद्ध में प्रभंजन का मारा जाना ।

२४/39 जयराज का मगध पहुंचना, वहाँ एक सेवक की सहायता से प्रतिहार की पत्नी की प्राप्ति में सहायक होना ।

२५/40 छद्मवेशी जयराज का बिम्बसार से मिलना, बिम्बसार द्वारा उसे पकड़ने के लिए अभयकुमार को दौड़ाना, जयराज का अभयकुमार को हराकर सुरक्षित वैशाली पहुंच जाना ।

२६/41 बिम्बसार और चण्डभद्रिक का युद्ध सम्बन्धी वार्तालाप ।

२७/42 वैशाली की दूसरी मोहन मंत्रणा में वर्षकार आदि को बंद करना और युद्ध विषयक बातों पर विचार विमर्श करना ।

२८/43 मागध-मंत्रणा, वैशाली और मगध की सेनाओं में भयंकर युद्ध, बिम्बसार का गुप्त रूप से आम्रपाली के आवास में जाना, बिम्बसार को आम्रपाली के आवास में जानकर सोम द्वारा युद्ध बन्दी की घोषणा करना और इस प्रकार मगध की पराजय ।

२९/45 क्रुद्ध होकर बिम्बसार का मागध स्कन्धावार जाना, सोम का उन्हें बन्दी बनाकर मार डालने का प्रयास परन्तु आम्रपाली के हस्तक्षेप से सोम द्वारा बिम्बसार को प्राणदान देना ।

३०/46 मगध और वैशाली में विराम-सन्धि ।

३१/48 अम्बपाली के पुत्र प्रसव होना, उस शिशु को बिम्बसार के पास पहुंचाया जाना, राजगृह में भावी सम्राट के आदर में गण-नक्षत्र मनाना ।

४ कल्पनातिशायी

१/12 चम्पा जाते समय सोम और कुण्डनी का शम्बर असुर की नगरी में फँस जाना, चन्दनी द्वारा कुण्डनी का असुर-संहार और दोनों का सुरक्षित निकल जाना ।

२/21 पांचाल परिषद् का बुलाया जाना ।

३/30 सिंह के आक्रमण से योग द्वारा आम्रपाली की रक्षा, सोम के वीणा-वादन पर आम्रपाली का मोहित होकर उसे अपना शरीरार्पण करना तथा आम्रपाली के वैशाली लौट आने पर वैशाली में प्रसन्नता की लहर का दौड़ना ।

४/36 वैशाली में छाया पुरुष के कारनामे ।।

५/37 दस्यु दलभद्र (सोम) द्वारा अम्बपाली के आवास में लूटपाट करना, अम्बपाली का उसके पीछे मधुवन में जाना, वैशाली की सेना का दस्यु-सेना से डरकर भाग आना ।

६/44 देवजुष्ट पुण्डरीक (छाया पुरुष) के चुम्बन द्वारा कुण्डनी की मृत्यु ।

७/47 मार्या मातंगी द्वारा अम्बपाली, सोम आदि के वंश का रहस्योद्घाटन, मातंगी की मृत्यु, सोम द्वारा बिम्बसार को मुक्त करना और राजकाज छोड़कर चले जाना तथा बौद्धभिक्षु बनना।

नोट—(घटना-संख्याओं के दो क्रम हैं (१) देवनागरी-अंक अपने वर्ग की घटनाओं के क्रम-द्योतक हैं, (२) रोमन-अंक उपन्यास की सकल घटनाओं के द्योतक हैं।)

नगरवधू के घटना विश्लेषण का रेखाचित्र

घटना विश्लेषण के रेखाचित्र की व्याख्या

रेखाचित्र के अनुसार

पूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ	९=१८.३६%
इतिहास-संकेतित घटनाएँ	२=४.०८%
कल्पित किन्तु इतिहास अविरोधी घटनाएँ	३१=६३.२७%
कल्पनातिशायी घटनाएँ	७=१४.२९%
कुल घटनाएँ	४९=१००.००%

उपन्यास में इतिहास प्रस्तुत करने वाले तत्व =१८.३६%+ ४.०८% =२२.४४%
उपन्यास में रमणीयता प्रस्तुत करने वाले तत्व=६३.२७%+१४.२९%=७७.५६%

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उपन्यास को रोचक बनाने वाला अथवा रमणीयता लाने वाला अंश ७७.५६% है। अतः रस-दृष्टि से यह उपन्यास पूर्ण सफल है। इतिहास के स्थूल तथ्यों को प्रकट करने वाला अंश २२.४४% है। अतः वैशाली की नगरवधू इतिहास के सूक्ष्म सत्यों पर प्रकाश डालने वाला एक रोचक उपन्यास है।

उपन्यास का पात्र विश्लेषण

१. पूर्ण ऐतिहासिक

१/1 आम्रपाली। २/5 गौतमबुद्ध। ३/6 कुलपुत्र यश। ४/7 शाम्बव्य काश्यप। ५/10 वर्षकार। ६/12 उदयन। ७/14 बन्धुल मल्ल। ८/15 मल्लिका। ९/16 प्रसेनजित। १०/17 विदूडभ। ११/19 जीवक कौमारभृत्य। १२/21 दधिवाहन। १३/23 चन्द्रभद्रा। १४/25 कारायण। १५/26 बिम्बसार। १६/27 नन्दिनी। १७/28 कलिंग सेना। १८/29 मल्लिका। १९/30 चण्डमहासेन प्रद्योत। २०/33 अनाथपिण्डिक। २१/34 महावीर। २२/35 अजितकेश कम्बली। २३/36 योगन्धरायण। २४/42 अभयकुमार।

२ इतिहास संकेतित•

१/4 गणपति सुनन्द। २/9 कुण्डनी। ३/11 मार्या मातगी। ४/43 चण्डभद्रिक। ५/44 सेनापति सिंह।

३. कल्पित इतिहास-अविरोधी

१/2 महानामन। २/3 हर्षदेव। ३/13 ज्ञातिपुत्र सिंह। ४/18 माण्डव्य उपरिचर। ५/24 बादरायण व्यास। ६/31 सोण कोटिविश। ७/32 प्रभञ्जन। ८/37 स्वर्णसेन। ९/38 जयराज। १०/39 नन्दन साहु। ११/40 सूर्यमल्ल।

४. कल्पनातिशायी

१/८ सोमप्रभ। २/२० असुरराज शम्बर। ३/२२ शम्ब। ४/४१ पुण्डरीक।

नगरवधू के पात्र विश्लेषण का रेखाचित्र
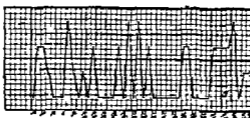
पात्र विश्लेषण के रेखाचित्र की व्याख्या

रेखाचित्र के अनुसार

पूर्ण ऐतिहासिक पात्र	२४=५४·५५%
इतिहास संकेतिक पात्र	५=११ ३६%
कल्पित किन्तु इतिहास-अविरोधी पात्र	११=२५ ००%
कल्पनातिशायी पात्र	४=९·०९%
कुल पात्र	४४=१००·००%

उपन्यास में इतिहास प्रस्तुत करने वाला तत्व =५४ ५५%+११·३६
=६५·९१%

उपन्यास में रमणीयता प्रस्तुत करने वाला तत्व=२५·००%+९०%
=३४ ०९%

घटना विश्लेषण की तुलना करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इतिहास प्रस्तुत करने वाली घटनाएँ केवल २४ ४४% है। इसका अर्थ यह हुआ कि पात्रों का चरित्र चित्रण इतिहास के अनुरूप नहीं किया गया है।]

वैशाली की नगरवधू की घटनाओं और पात्रो का अनुपात

घटनाओ मे ऐतिहासिक तत्व = २२·५४%
पात्रो मे ऐतिहासिक तत्व = ६५·६१%

कुल ऐतिहासिक तत्व = ८८·३५% ÷ २ = ४४·१७%

घटनाओ मे रमणीयता तत्व = ७७·६५%
पात्रो मे रमणीयता तत्व = ३४·०९%

कुल रमणीयता तत्व = १११·६५% ÷ २ = ५५·८३%

वैशाली की नगरवधू मे इतिवृत्तात्मक तत्व प्रस्तुत करने वाले अंश = ४४·१७
वैशाली की नगरवधू मे रमणीयता तत्व प्रस्तुत करने वाले अंश = ५५·८३

कुल अंश = १००·००%

सिद्ध हुआ कि उपन्यास रोचक है, सन्तुलित है।

लेखक का उद्देश्य

१ विशिष्ट उद्देश्य

'वैशाली की नगरवधू' के लिखने का लेखक चतुरसेन शास्त्री का क्या उद्देश्य है, इस रहस्य की खोज निकालने के लिये लेखक के कुछ कथनो पर दृष्टिपात करते हैं। इन्ही कथनो से कुछ सूत्र मिलेंगे।

उपन्यास मे प्रवेश करने के पूर्व इस उपन्यास के 'समर्पण' पर दृष्टि जाती है। यह कृति प० जवाहर लाल नेहरू को स्नेह भेंट की गई है। समर्पण के शब्द यू हैं—

'ओ ब्राह्मण'

तेरे राज्य मे शत प्रतिशत असुविधाओ और विपरीत परिस्थितियो मे जो हमने यह ग्रन्थ तैयार किया है। तू, जो पाश्चात्य राजनीति के ध्वस्त मार्ग पर—आपके कूडे कपट का भार लाद, उतावली मे देश को घसीट ले चला, और मानव सस्कृति का निर्माता तथा कोटि कोटि जनपद के शास्ता साहित्य जनो को एकबारगी ही भूल बैठा, इससे तुझ पर निर्भर रहने वालो और तुझे प्यार करने वालो को सिर धुन-धुन कर अपने ही कायर रक्त मे आचूड स्नान करना पडा।— यह अपनी प्रतिनिधि रचना तुझे भेंट करता हू।

'चतुरसेन'

उपन्यास के प्रारम्भ मे प्रवचन मे श्री शास्त्री लिखते हैं "यह सत्य है कि यह उपन्यास है। परन्तु इससे अधिक सत्य यह है कि यह एक गम्भीर रहस्यपूर्ण सकेत है, जो उस काले पर्दे के प्रति है जिसकी ओट मे आर्यो के धर्म, साहित्य, राजसत्ता और सस्कृति की पराजय और मिश्रित जातियो की प्रगतिशील सस्कृति की विजय सहस्राब्दियो से छिपी हुई है, जिसे सम्भवत किसी इतिहासकार ने आँख उघाडकर देखा नही है।"[१]

---

१ वैशाली की नगरवधू (प्रवचन), पृ. ५।

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों पर सूक्ष्म दृष्टिपात करने से निम्नलिखित प्रश्न उभरते दीख पडते हैं –

(१) सम्भवतया प० जवाहरलाल नेहरू का दिया गया 'ओ ब्राह्मण' सम्बोधन विश्व में किसी दूसरे ने नहीं दिया। इस सम्बोधन को देने वाले श्री चतुरसेन ही प्रथम और अन्तिम व्यक्ति है। कहने की बात नहीं कि प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू प० जी के नाम से प्रख्यात हैं। तो प्रश्न उठा कि श्री जवाहरलाल नेहरू को ओ ब्राह्मण कहने में लेखक का कौनसा निगूढ तत्व प्रच्छन्न है ?

(२) द्वितीय प्रश्न जो इस उद्धरण से उभरता है —तू (जवाहरलाल नेहरू) राजनीति के ध्वस्त मार्ग पर ...... उतावली में देश को घसीट ले चला।

१-कूटनीतिक ब्राह्मण का चित्रण

उपर्युक्त दोनों के संयोजन से एक बात यह निकली कि एक ब्राह्मण (केवल एक) (अपनी धुन में) राजनीति के ध्वस्त मार्ग पर, उतावली में देश को घसीट ले चला है।

हिस्ट्री रिपीटस इटसल्फ—इतिहास बार-बार मानव को चेतावनी देता है कि इन घटनाओं से कुछ सीखो—पर शायद मानव ने आज तक इतिहास की सीख नहीं मानी महमूद गजनवी की यवन सेना ने हमारे घर में ही घुसकर हमारी लाज लूटी, बलात्कार और भयङ्कर रक्त पात को लोमहर्षक विभीषिकाओं ने भारत भूमि को आक्रान्त किया। लेकिन इस ज्वलंत उदाहरण से भारतवासियों के कान पर जूं तक नहीं रेंगी और आधुनिक काल तक (पाकिस्तान बनने तक) गमीर के इतिहास की पुनरावृत्ति न जाने कितनी बार हुई पर हम इतिहास के उपदेश से अपने को लाभान्वित नहीं कर सके।

इतिहास की पुनरावृत्ति का एक बार उदाहरण देखिए—अब से ढाई तीन हजार वर्षों पूर्व तक का इतिहास साक्षी है कि राजा कोई भी रहा हो, किसी वर्ण का रहा हो परन्तु राज्य की बागडोर उस काल के एक विशिष्ट राजनीतिज्ञ कूटनीतिज्ञ के हाथ में रही और यह कूटनीतिज्ञ ब्राह्मण ही होता था। इन ब्राह्मणों ने अपने लिए कुछ भी अर्जित न करके अपनी कूटनीति के चक्र में राज्यों को आलोडित रखा। परिणाम उनकी राजनीति का कुछ भी रहा हो, भले ही विजय प्राप्त की हो परन्तु भयङ्कर नर संहार और हानि का सामना राज्यों को करना पडा। इस उपन्यास में भी वर्षकार नामक एक ब्राह्मण है जो मगध के पतन का एक प्रकार से कारण बना, इसके कारण कितना भयङ्कर नरसंहार हुआ, कि सदियों तक मगध और लिच्छवि गणतन्त्र की कमर सीधी नहीं हुई। बाद में चाणक्य हुए और आज भी भारत गणतन्त्र के भाग्य की बागडोर एक ब्राह्मण के हाथ में है। अस्तु

'वैशाली की नगरवधू' में मगध महामात्य आर्य वर्षकार की सृष्टि का एक गूढ उद्देश्य है। अब स्पष्ट हुआ कि प० जी को 'ओ ब्राह्मण' कहने में उनका उद्देश्य है। 'एक' के मन्त्रित्व में यदि राज्य संचालन होगा तो उसका परिणाम दुखान्त ही होगा और विश्व इतिहास इस बात की साक्षी दे सकता है। —अस्तु

अपनी बुद्धि की विलक्षणता से महान साम्राज्यों को बनाने वाले, भयङ्कर नर-संहार कराने वाले कूटनीतिक ब्राह्मण की सर्जना कर, उसमें आज के सजन महान ब्राह्मण प० जवाहरलाल नेहरू को भार दिन करना नगरवधू का एक गूढ उद्देश्य है।

२-ब्राह्मण विरोधी दृष्टिकोण

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की कृतियों में ब्राह्मण विरोधी दृष्टिकोण विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। वैशाली की नगरवधू में ब्राह्मणों के लिए उन्होंने अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है जिनमें से कुछ की बानगी इस प्रकार है—कायर पाजी ब्राह्मण पाखण्ड करके ऐसे धूर्त हैं...... वह नीच ब्राह्मण (पृष्ठ १५३), स्वार्थी लोलुप ब्राह्मण (पृष्ठ १५८), मोटे बछड़ों का मांस खाने वाले और सुन्दरी दासियों को दक्षिणा में लाने वाले (पृष्ठ १६६), मूर्ख ब्राह्मणों (पृष्ठ ३४४), अरे मूढ़ जनों मूर्खों, लालची पेटू ब्राह्मण (पृष्ठ १५६) आदि। उनका एक वाक्य इस तथ्य की पुष्टि करता है—मेरी खुली राय यह है कि जब तक ब्राह्मणत्व का जड़मूल से विनाश न हो जायेगा, तब तक हिन्दू राष्ट्र का संगठन होना किसी भाँति सम्भव नहीं। आज २१ वर्ष में से इन्हें (उपर्युक्त शब्दों को) छाती में छिपाये बैठा हूँ।[1] इन प्रमाणों से इतना निश्चित हो गया है कि आचार्य चतुरसेन को ब्राह्मण या ब्राह्मणत्व से चोट पहुँची है। भले ही इस चोट का प्रकाशन न हुआ हो। यही कारण है कि ब्राह्मणों पर, ब्राह्मण धर्म पर, श्री चतुरसेन करारी चोट करने से नहीं चूके हैं। श्री चतुरसेन शास्त्री को ब्राह्मण ही समझता था परन्तु कृतियों में ब्राह्मण विरोधी तत्वों को देखकर मुझे जिज्ञासा हुई कि इनके वंश की जानकारी करूं तो वे अब्राह्मण निकले सम्भव है यह सब आनुषंगिक हो, परन्तु एक कुशन सा ही सही प्रकाश अवश्य देता है।

द्वितीय उद्धरण, 'यह सत्य है'...... —उघाड़कर देखा नहीं है पर मनन करने के बाद चतुरसेन जी के गम्भीर रहस्यपूर्ण संकेत के उद्घाटन की लालसा प्रबल हो उठती है और उपन्यास के निम्नलिखित पात्रों पर दृष्टि जाकर ठहर जाती है, जो इस संकेत का उद्घाटन करते हैं। वे पात्र हैं—१-वर्षकार के पिता गोविन्द स्वामी, २-मगध महामात्य आर्य वर्षकार ३-दासी मातंगी, ४-सोमप्रभ, ५-आम्रपाली, ६-विदूडभ (प्रसेनजित का समर पुत्र)।

उपर्युक्त प्रथम पाँचों पात्रों के आपसी सम्बन्ध या वंश-वृक्ष पर दृष्टिपात करें तो इनके सम्बन्ध निम्न प्रकार ठहरते हैं।

१० गोविन्द स्वामी के दो सन्तानें हुईं—वर्षकार और मातंगी। मातंगी उनकी विवाहिता पत्नी से उत्पन्न थी, परन्तु वर्षकार पता नहीं किसके उदर से जन्मे थे। इस प्रकार एक पिता की दो सन्तानें, भले ही माता अलग-अलग हो, आपस में भाई बहिन हुए।

२-प्रसिद्ध धर्मनिष्ठ ब्राह्मण की पुत्री मातंगी ने, जिसका लालन पालन और शिक्षा दीक्षा एक ब्राह्मण कन्या की ही भाँति हुई, दो विभिन्न व्यक्तियों से दो सन्तानों को जन्म दिया—महाराज बिम्बसार से सोमप्रभ को और आर्य वर्षकार से अम्बपाली को। इस प्रकार सोमप्रभ और आम्रपाली दोनों भाई बहिन हुये, भले ही उन दोनों के पिता विभिन्न हों, पर माता एक ही थी।

३-चूँकि बिम्बसार का शारीरिक सम्बन्ध आम्रपाली की माँ से था अतः सम्राट बिम्बसार अम्बपाली के पिता-तुल्य हुये।

1. आचार्य चतुरसेन शास्त्री—हिन्दू राष्ट्र का नवनिर्माण पृ. २७।

४–आम्रपाली और सोमप्रभ का यौन-सम्बन्ध रहा।

५–आम्रपाली और बिम्बसार का यौन-सम्बन्ध रहा। इन दोनों का पुत्र मगध का भावी सम्राट बना।

इन सम्बन्धों पर विचार करने से अर्थात् यह जान लेने से कि पिता पुत्री, भाई बहिन आदि पावन सम्बन्धों की परिणति अवैध सम्बन्धों में दिखाई है तो आचार्य चतुरसेन के उस रहस्यपूर्ण संकेत का उद्घाटन होता है।

इन प्रसंगों से भी हमारी प्रथमत उस बात की पुष्टि होती है जिसे हमने लेखक का ब्राह्मण-विरोधी होना बताया है। संकरत्व की कितनी लम्बी शृंखला बनी है, और वह प्रारम्भ हुई ब्राह्मण-रक्त से। लेखक यदि संकरत्व का प्रभाव ही दिखाना चाहता था तो इस संकर-शृंखला का प्रादुर्भाव किसी अन्य रक्त से भी दिखा सकता था। ऐसे ही दो असाधारण संकर-पात्र शोभना और देवा की अभिसृष्टि लेखक ने अपने 'सोमनाथ' में की है।[1]

३–फ्रायड के सिद्धान्त की पुष्टि

इसके साथ ही पाठक सोचने को लाचार होता है कि कहाँ गए वे उच्च कुलोत्पन्न होने के संस्कार, कहाँ गई वह ब्राह्मण वंशानुगामिणी शिक्षा, जो इतने कुत्सित अवैध सम्बन्धों को जन्म मिला। तत्कालीन समाज का यह एक कोढ़ तो था ही। इसी कोढ़ का दर्शन कराना तो लेखक का उद्देश्य है ही पर इसके आगे भी कुछ और है। और वह 'कुछ' है लेखक की इस कृति द्वारा फ्रायड के सिद्धान्त की जोरदार शब्दों में वकालत।

आज का मनोवैज्ञानिक यह खोज निकालने में तल्लीन है कि मानव-विकास में वंशपरम्परा और वातावरण दोनों में से किसका और कितना प्रभाव है। कुछ विद्वान कहते हैं कि वंश-परम्परा अर्थात् संस्कार को अधिक श्रेय है, कुछ कहते हैं कि वातावरण ही सब कुछ है, संस्कार कुछ नहीं। जैसे वातावरण में बालक को रखोगे वैसा ही वह आगे चलकर बनेगा। कुछ लोग कहते हैं कि दोनों ही का भाग रहता है। आचार्य चतुरसेन ने अपने उपन्यास में ऐसे पात्रों की शृंखला का निर्माण करके, वंश-परम्परा अर्थात् संस्कारों की मान्यता को रद्द किया है।

४–संकर-सन्तान की विलक्षता दिखाना :

मनन करने से एक बात और हमारे सम्मुख स्पष्ट हुई। पिछले पृष्ठों में दिखाई गई संकर-शृंखला के समस्त वर्ण-संकर अप्रतिम प्रतिभाशील हुए हैं—आर्य वर्षकार–मगध जैसे राज्य को अंगुली पर नचाने में क्षम्य, आम्रपाली ६४ कलाओं की निष्णाता–महान से महान राजा अपने साम्राज्य को अम्बपाली के चरणों में समर्पित कर देने को लालायित, वैशाली जनपद को अपने ही लोहू में डूबने से बचाने वाली, सोमप्रभ—अपने समय का अप्रतिम वीर, योद्धा, कला पारंगत महान चित्रकार, भूमण्डल पर उदयन के पश्चात् केवल वही मंजुघोषा वीणा का बजाने वाला, परम विद्वान और रूपवान विदूडभ—अपनी बुद्धि और प्रताप से कौशल का महाराज बनने वाला।

तो स्पष्ट हुआ कि वर्णसंकर सवर्ण-रक्त से उत्पन्न सन्तान से अधिक गुणवान एवं प्रतिभाशील होता है। और यह नियम मानव के ही लिए लागू नहीं होता परन्तु पेड़, पौधों वनस्पति तक में हम नित्य-प्रति इस संकरता के गुणों को देखते हैं। इसी बात पर आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने कहा है, "··· यह आर्य बन्धुओं अथवा संकरजनों की नई नस्ल

[1] सोमनाथ, पृ० ६४–६५।

का विकास था जो आर्यों से अधिक सम्पन्न और मेधावी हो गए थे।[1] ... अब वर्ण संकरों का एक प्रबल संगठन खड़ा हो गया था और उन्होंने आर्यों की राजसत्ताएँ छीनली थीं।[2] ... इन संकर जातियों ने भारत में और भारत के बाहर भी बड़े-बड़े राज्य स्थापित किये। ... कदाचित् आज भी समस्त सभ्य संसार पर इन्हीं संकर-जातियों की सन्तति शासन कर रही है।'

५—संकरों की अधिकता का कारण

संकर-रक्त का प्रभाव दिखाना भी उपन्यासकार का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। वर्ण-संकरों के प्राबल्य एवं आधिक्य से एक महत्वपूर्ण प्रश्न और फूट पड़ता है, वह है—वर्ण-संकरों की यह बाढ़ कैसे आगई? कैसे ये लोग उस रेट से पैदा हो गए? इस प्रश्न का उत्तर निश्चित ही तात्कालिक सामाजिक धार्मिक अवस्था है। इसी सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थिति का चित्रण करना ही लेखक का महत् उद्देश्य है। "अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न वर्ण-संकर और अनेक अनार्य जातियों की स्त्रियों से आर्यों का संसर्ग होने पर उनसे उत्पन्न सन्तानों की अनेक शाखाएँ फैल गई थीं[3] जिस काल का वर्णन हमारे उपन्यास में है उस काल में विवाहों और उनसे उत्पन्न सन्तानों के उत्तराधिकारों को लेकर एक बहुत भारी संघर्ष का वातावरण देश में था। प्रसेनजित के विरुद्ध विडूडभ का संघर्ष इसी प्रकार का था। ... उच्चवर्ण के लोगों में यह भाव उत्पन्न हुआ कि आर्यों की सम्पत्ति अनार्य स्त्रियों की सन्तानों को नहीं मिलनी चाहिए जब ऐसी सन्तानें पिता की सम्पत्ति से वंचित हो गई तो यह स्वाभाविक था कि वे पिता के कुल-गोत्र से भी वंचित हो जाएँ और उनकी पृथक जाति बन जाए और ऐसा ही हुआ।[4]

इस प्रकार वर्ण-संकर जाति की अभिवृद्धि होती रही। ब्राह्मण और क्षत्रिय दो वर्ण इसके प्रसार के मुख्य कारण थे। क्षत्रिय राजाओं के अन्तः पुरों में अनेक दास-दासियाँ रहती थीं। प्रसेनजित से शूद्रा दासी के विडूडभ उत्पन्न हुआ था। इन राजाओं का इन दासियों के साथ मुक्त सहवास होता था और चूँकि इन दासियों में विवाह बन्धन नहीं था अतः वे निर्भीक होकर और सम्भवतः गर्वानुभव करके सन्तान उत्पन्न करती थीं।" (आर्यों ने द्रविड़ और कोल) जाति के स्त्री-पुरुषों को युद्ध-बन्दी बनाकर पहले पहल सेवा कार्य में लगा लिया। पीछे युवती स्त्रियों से सहवास करके उन्हें सम्पत्ति के तौर पर बेचा गया और इन स्त्रियों में सतति हुई तो उसे यथार्थ में दास दासी समझा गया और उनसे अवैध सन्तान उत्पन्न की गई।[5] ... इस बात के बहुत प्रमाण हैं कि नीच कुल की लड़कियाँ मोल ली जाकर बिना ही विवाह किये दासी बना ली जाती थीं। ... इन दासियों से बिना ही प्रतिबन्ध के सहवास होता था। ये दासियाँ खरीदी भी जाती थीं,[7] दान भी दी जाती थीं। क्षत्रियों और ब्राह्मणों के घरों में दासियों की भरमार थी।[8] उपनिषदों और ब्राह्मण-ग्रन्थों से यह हम सहज ही जान सकते हैं।[9] ऐतरेय ब्राह्मण से यह स्पष्ट है कि एक राजा ने

१. वैशाली की नगरवधू (भूमि), पृ० ८०४। २ वही ८१२।
३. वैशाली की नगरवधू (भूमि), पृष्ठ ८१६। ४ वही पृ. ८०५।
५. वैशाली की नगरवधू (भूमि), पृष्ठ ८१२। ६ वही पृ. ८३६।
७. वैशाली की नगरवधू (भूमि) पृ. ३५७। ८ वही पृ, ८३७।
९. वृहदारण्यक उपनिषद् : ४।१।।१८।१।३ २४। शतपथ ब्राह्मण : ३।२।४८। तैत्तिरीयोपनिषद् १।५।१२ (वैशाली की नगरवधू) पृ. ६२७)

दस हजार दासियों का दान किया था।[१]

साधारण सा अनुमान लगाया जा सकता है कि जब एक-एक राजा इतनी-इतनी दासियाँ ब्राह्मण को दान कर देते थे तो कितनी दासियाँ होती होंगी उस समय। फिर जिस ब्राह्मण को हजारों दासियाँ दान में मिलती होंगी तो क्या वह उन्हें बिठाकर खाना खिलाता होगा ? उसका एक ही कार्य रहता होगा कि वह उन्हें भेड़ बकरियों से भी सस्ते दामों में बेच डालता होगा। विदूडभ ने अपने राज्याभिषेक के समय सींगों में सोना मढ़कर सौ गाएँ तथा ग्यारह युवती सुन्दरी स्वर्णालंकारों से अलंकृता दासियाँ प्रत्येक श्रोत्रिय ब्राह्मण को दी।[२] अब सरलता से एक अनुमान लगाया जा सकता है कि तत्कालीन भारत में कितनी स्त्रियाँ ऐसी रही होंगी जो इस प्रकार के मुक्त सहवास से मनुष्यों की काम लिप्सा का परिशमन करती रही होंगी। और ऐसी स्त्रियों की सदृश-वृद्धि ज्यामितिक रीति या गुणोत्तर रीति अर्थात् १, २, ४, ८, १६ से होती रही होगी। थोड़े ही समय में सकर-सतानों और अभिरमणीय स्त्रियों की भरमार हो गई होगी। ऐसी स्थिति में चरित्र, नैतिकता पाप, पुण्य का क्या मानदण्ड रह गया होगा, इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

इसी से इस बात का भी अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज में नारी का क्या स्थान रह गया होगा, भोजन से अधिक क्या महत्व रह गया होगा उसका। "यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन कारणों से हिन्दू स्त्रियों का जीवन अधिकार-शून्य और आँसुओं तथा निराशा से परिपूर्ण दासी जीवन बन गया।"[३]

अस्तु ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण सकर जाति के प्रमुख कारण थे। ब्राह्मणों ने समाज एवं धर्म की व्यवस्था इस प्रकार की बनाई हुई थी। इसका सफल चित्रण आचार्य चतुरसेन ने अपने उपन्यास में किया है।

६—श्रमण-संस्कृति का प्रभाव दिखाना

उपर्युक्त चित्रण से अथवा कथन से एक और प्रश्न उत्पन्न होता है और इस प्रश्न का उत्तर लेखक का अन्य प्रमुख उद्देश्य है, अथवा तत्कालीन समाज और धर्म नीतियों के स्पष्टीकरण का पूरक अंश है। प्रश्न है — जब आर्यों की राजसत्ता को सकरों ने आक्रान्त कर दिया तो क्या उन्होंने ब्राह्मणों द्वारा सचालित धर्म-सत्ता पर आघात नहीं किया होगा ? जिस धर्म-बन्धन के कारण उन्हें पिता के कुल-गोत्र से च्युत होना पड़ा, अधिकारों से वचित होना पड़ा क्या शासन-शक्ति हाथ में आने पर अथवा प्रबल हो जाने पर वे उस धर्म-सत्ता को अपदस्थ नहीं करते ? उत्तर है, निश्चित ही करते। "इन सगठित सकर वर्णी जनों के मन में कुलीन आर्यों, खासकर ब्राह्मणों, के प्रति विद्वेष के गहरे भाव प्रकट हो गए।"[४] और इस कार्य की पूर्ति के लिए उपन्यासकार ने श्रमण महावीर एवं गौतम बुद्ध की सर्जना की। बुद्ध और महावीर इन दोनों महापुरुषों ने आर्यों से उत्पन्न सकर परम्परा में जन्म लेकर आर्यों की वैदिक संस्कृति के विपरीत जो श्रमण संस्कृति की स्थापना की, वह बड़ी विचित्र और बहुत बलशालिनी प्रमाणित हुई।[५] अस्तु,

१. ऐतरेय ब्राह्मण : ८ २२ (वैशाली की नगरवधू पृ ८३७)
२. वैशाली की नगरवधू पृ. ४६०। ३. वही ८१६।
४. वैशाली की नगरवधू पृ. ८१३। ५. वही पृ. ८४१।

बुद्ध और महावीर की योजना का उद्देश्य स्पष्ट हो गया। यह बात निर्विवाद सिद्ध हो गई कि इन दोनों के चित्रण में आचार्य प्रवर का प्रमुख उद्देश्य तत्कालीन समाज और धर्म का स्पष्ट चित्र अंकित करना था।

कई स्थलों पर आचार्य चतुरसेन ने अपने इस उपन्यास में श्रेष्ठि पुत्रों के जीवन का रेखा-चित्र प्रस्तुत है। इनका मुख्य उद्देश्य उस काल के विलास प्रिय, कोमल सुदरों का जीवन दर्शन कराना है और बुद्ध तथा महावीर स्वामी के प्रभाव को दिखाना है कि जो सेठिठ पुत्र कोमलता के कारण अपने महल से बाहर नहीं निकले वे सब कुछ त्यागकर भिक्षु बन गए, नग पैर चलने से उनके पैर लोहू-लुहान हो गए। यह सब कुछ बुद्ध और जैन धर्म का चमत्कार था।

२ : गौण उद्देश्य

देशकाल-चित्रण

देशकाल-चित्रण को मैंने लेखक का गौण उद्देश्य माना है। मेरी यह बात कुछ उल्टी सी लगती है, क्योंकि देशकाल-चित्रण तो, यदि प्रत्येक कृति का नहीं तो कम से कम ऐतिहासिक कृति का विशिष्ट उद्देश्य होता है। लेकिन मैं इसी बात को इस प्रकार कहता हूँ कि देशकाल चित्रण तो ऐतिहासिक कृति के लिए अनिवार्य है। यदि देशकाल चित्रण नहीं होगा तो वह कृति ऐतिहासिक कृति बन ही नहीं सकती। अस्तु, किसी कृति में देश-काल चित्रण चूँकि अनिवार्य है अतः वह उसके लिए विशिष्ट नहीं। जब हमने किसी कृति को ऐतिहासिक कह दिया तो निश्चित रूप से उसमें देशकाल चित्रण होगा अन्यथा वह इस श्रेणी में नहीं आती। हाँ उस कृति में कुछ ऐसी गूढ़ बातें भी प्रच्छन्न होती हैं जिन्हें उद्-घाटित करने के लिए मनन और चिन्तन की आवश्यकता है — वे गूढ़ बातें ही लेखक के विशिष्ट उद्देश्य के अन्तर्गत आतीं, ऐसा मैंने माना है।

'वैशाली की नगरवधू' में आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने बुद्धकालीन समाज, धर्म एवं राजनीति का सफल चित्रांकन किया है। इस उपन्यास से हमें जो कुछ ज्ञात होता है वह संक्षेप में निम्न प्रकार है।

बुद्धकाल में भारतवर्ष में दो प्रकार की शासन प्रणालियाँ प्रमुख थीं — राजतन्त्रात्मक और गणतन्त्रात्मक। मगध कोसल आदि में राजतन्त्रात्मक प्रणाली थी। वैशाली में गणतन्त्रात्मक प्रणाली का प्रचलन था। दोनों ही प्रणालियों का दर्शन उपन्यास में भली-भाँति होता है।

गणतन्त्र के नियमों का सुविकास नहीं हो पाया था। इसीलिए जनशक्ति के आधार पर अनुचित नियमों का कानूनन पालन कराया जाता था। तत्कालीन समाज की सर्व-सुन्दरी कन्या को 'जनपद कल्याणी' या 'नगरवधू' के पद पर अभिषिक्त किया जाता था। आम्रपाली इसी कानून का शिकार हुई थी।

गणराज्यों का सारा का सारा धन कुछ सेट्ठियों के हाथों में था, इससे गणों की दुर्बलता का परिचय मिलता है। इसी प्रकार के सेट्ठि राजतन्त्रीय राज्यों में भी थे। वे इतने विलासी और आलसी थे कि भूमि पर पैर न रखने के कारण उनके तलवों में रोम उत्पन्न हो गए थे। इनका सफल चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। इसके अतिरिक्त निम्न-

लिखित बातो के चित्रण मे आचार्य श्री को विशेष सफलता मिली है।

१—प्रत्येक सरकार का गुप्तचर विभाग अत्यन्त कुशल था। २—सुरा और सुन्दरी का व्यापक प्रयोग होता था। ३—ब्राह्मण ने यज्ञो को प्रधानता दे रखी थी। ४—ब्राह्मण तक भी मास-भक्षण यहाँ तक कि गौ-मास भक्षण करते थे। ५—दासो की बिक्री के बाजार लगते थे और खरीददार सुन्दरी दासियो की छातियो मे इस प्रकार हाथ डालकर उनकी पुष्टता देखते थे जिस प्रकार गाय, भैस खरीदते समय उनके थनो को देखा जाता है। ६—युद्ध-दर्शन कराना, विभिन्न प्रकार के आश्चर्यजनक शस्त्रास्त्रो का प्रयोग दिखाना।

इस प्रकार तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एव धार्मिक परिस्थितियो का चित्रण प्रस्तुत करना 'वैशाली की नगरवधू' का उद्देश्य रहा है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय मे 'तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा के अन्तर्गत दिखाया गया है कि बौद्ध कालीन भारत मे अनेक छोटे छोटे गणराज्य थे जो आपस मे लडते रहते थे। ब्राह्मणो ने अपने धर्म को जनसाधारण के लिए दुसाध्य बना रखा था और वे अपने को सर्वश्रेष्ठ कहकर इतर वर्णों पर अत्याचार करते थे। फलत एक क्रान्ति सभूत हुई और ब्राह्मण धर्म की जडें उखाडने के लिए जैन और बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ।

उपन्यास मे ऐतिहासिक तत्व और कल्पना तत्व के अन्तर्गत उपर्युक्त परिस्थितियो का चित्रण हुआ है। इस चित्रण से हमे निम्नलिखित सूत्र प्राप्त हुए —

१—उपन्यास मे प्रयुक्त अधिकाश पात्रों की सख्या तो ऐतिहासिक है परन्तु उन पात्रो का चरित्र-चित्रण इतिहास के अनुरूप नही हुआ है। इसका स्पष्ट अर्थ हुआ कि उपन्यासकार ने इतिहास क स्थूल तथ्यो की परवाह नही की है, उसने कल्पना का आश्रय अधिक मात्रा म लिया है। परन्तु य काल्पनिक घटनाएँ कुछ अपवादो को छोडकर इतिहास के विरुद्ध नही गई हैं। कल्पनाधिक्य के प्रयोग का यही कारण दीख पडता है कि जो इतिहास जितना सुदूरवर्ती होगा उसके विषय म प्रामाणिक तत्वों म उतनी ही कमी आती जाएगी, फलत उपन्यासकार को इतिहास की गहन गुफाओ म पडे गुप्त ऐतिहासिक तथ्यो को मूर्त रूप देने मे कल्पना के क्षेत्र का अधिक विस्तार करना होगा। आचार्य चतुरसेन ने बौद्धकालीन इतिहास की अधकारपूर्ण घाटियो मे ज्योति की ऐसी किरणें प्रकीर्ण की हैं कि उन्हे देखकर पाठक आत्मविस्मृत हो जाता है।

२—लेखक ने इतिहास के तथ्यो की जान बूझ कर उतनी परवाह भी नहीं की है क्योकि उसका उद्देश्य इतिहास-रस की अवतारणा का सफल प्रयोग करना था। और निश्चित रूप से वे इस उपन्यास की भूमि म कथित इतिहास-रस का अद्भुत उदाहरण देने मे सफल उतरे हैं।

३—तीसरी बात जो हमने इस अध्याय मे विशेष रूप से देखी यह है इतिहास रस की जननी नारी। आचार्य श्री ने इतिहास-रस के प्रसग मे कहा है कि इतिहास-रस की उद्भावना का प्रमुख कारण है नारी-प्रणय। कदाचित् इसीलिए आचार्य श्री ने नारी की धुरी पर तत्कालीन समाज के जीवन के सम्पूर्ण आन्तरिक और बाह्य जीवन के चक्र को घुमाया है। प्रारम्भ से अन्त तक उपन्यास की नायिका आम्रपाली छाई रहती है। आम्रपाली क कारण समस्त देश मे एक भूचाल सा आ गया था। शत्रु-राज्य (वैशाली) की नारी

(आम्रपाली) के चरणो मे सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य (मगध) विसर्जित हो गया था।

लाखो नरो के सहार के पश्चात् प्राप्त मगध की विजय श्री पराजय मे परिणत हो गई —नारी के कारण, महान सम्राट बिम्बसार बन्दी बनाया गया —नारी के कारण, फिर उसकी प्राण-रक्षा भी हुई – नारी के कारण, वैशाली का वैभव लुटा — नारी के कारण, कौशल का राजा अपदस्थ हुआ — नारी के कारण, और इतना ही क्यो, समस्त आर्य-सत्ता का अपहरण हुआ — नारी के कारण, उनकी धर्म-सत्ता को भी छिन्न-विच्छिन्न होना पडा — नारी के कारण और नारी के इगितो से आलोडित तत्कालीन उत्तरी भारत का मनोमुग्धकारी चित्रण हुआ है इस उपन्यास मे, जिसे हम इतिहास-रस का सप्राण, ज्वलत और अप्रतिम उदाहरण कह सकते है।

४–इस उपन्यास का सबसे मनोहारी पक्ष देशकाल चित्रण है जो कथोपकथन के माध्यम से अधिक स्पष्ट हुआ है। एक गणिका के चरणो मे साम्राज्य के साम्राज्यो का विसर्जन, मुक्त सहवास, प्रत्येक वर्ण के द्वारा मास-भक्षण, सुरा के पनाले बहना, दासी युवतियो का, उनके वक्ष मे हाथ डालकर, स्तनो की सुडौलता को देखकर भेड बकरियो की भाति क्रय-विक्रय, एक ब्राह्मण का साम्राज्यो मे भूडोल ला देना, एक सुन्दरी का बिना नर सहार के राज्य-सत्ता को केवल अपने चुम्बनो से ध्वस्त कर देना, वर्ण सकर सतान की प्रतिभाशीलता, जासूसी-कार्य मे पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो की अधिक महत्ता, गणराज्यो और राजतत्रात्मक राज्यो की गतिविधियाँ, महावीर और गौतम बुद्ध का अपना-अपना धर्म प्रचार आदि मोती इतिहास के विशाल समुद्र के गहन गर्भ मे सीपियो के अन्दर बन्द यत्र-तत्र बिखरे पडे थे आचार्य चतुरसेन ने इतिहास के महोदधि मे गहरे पानी पैठ कर सीपियो से उन मोतियो को निकालकर एक स्थान पर उनकी एक हाट सजा दी है। उन्होंने इतिहास के उन सूक्ष्म तत्वो का उद्घाटन किया है जिनके विषय मे इतिहास की वाणी मौन थी।

कोई ऐतिहासिक उपन्यासकार यदि इतिहास-सिद्ध पात्रो और घटनाओ का चित्रण तो न करे परन्तु वह उस काल के खान-पीन, वेशभूषा, रहन-सहन, धार्मिक वैमनस्य, राजनीतिक उथल-पुथल आदि के मनोहारी दर्शन करा दे तो क्या वह इतिहास के प्रति विश्वासघात करेगा ? क्या उसे ऐतिहासिक उपन्यासकार नहीं कहेंगे ? कुछ विद्वान हैं जो इसका विरोध करते हैं परन्तु वास्तव मे सच्चा ऐतिहासिक उपन्यास तो यही है। अस्तु-

वैशाली की नगरवधू स्वस्थ ऐतिहासिक उपन्यास के लक्षण से विभूषित है।

३

०००

सोमनाथ

उपन्यास का संक्षिप्त कथानक

सौराष्ट्र के दक्षिण-पश्चिम में समुद्र के किनारे वेरावल नाम का एक छोटा सा बन्दरगाह है। उसी के किनारे पर प्राचीन नगरी प्रभासपट्टन बसी हुई है। अबसे लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व इसी स्थान पर भारत का गौरवशाली वैभव-सम्पदा से परिपूर्ण अनुपम सोमनाथ का महालय था। इस मन्दिर की अपार सम्पदा को हस्तगत करने के लिए गजनी के शाह महमूद ने इस पर आक्रमण करने की ठानी। महमूद के आक्रमण की चर्चा समस्त भारत में फैल गई। मन्दिर की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए विभिन्न राजाओं की ओर से मन्दिर की चौकसी होने लगी। विभिन्न प्रान्तों के शस्त्रधारी क्षत्रिय सरदार और सामन्त मन्दिर की सुरक्षा और प्रतिष्ठा की रक्षा-हेतु रक्तदान देने के लिए आये हुए यत्र-तत्र दिखाई दे रहे थे।

इस मन्दिर के महा आचार्य गंग सर्वज्ञ थे। मन्दिर की देखरेख इन्हीं तपोनिष्ठ महासौम्य शान्तिदूत पूजक की सम्मति से ही होती थी। उस समय भारत में वैष्णव धर्म की अपेक्षा शैव-धर्म की प्रबलता थी। शक्ति की उपासना करने वाले अघारी साधुओं का भी प्रजा में अत्यन्त आतंक छाया हुआ था। अघारी शाक्तों का आचार्य रुद्रभद्र था। इनकी आराध्य देवी का नाम त्रिपुर-सुन्दरी था। इन शाक्तों से साधारण जन ही नहीं राजा तक भी प्रभावित होते थे। इसी से मरूच के वाममार्गी दद्दा चौलुक्य ने चौला नामक सुन्दरी को देवी त्रिपुर सुन्दरी के उपहार-स्वरूप भेजी थी क्योंकि दद्दा चौलुक्य को महा वामशैव रुद्रभद्र के आशीर्वाद से ही पुत्र प्राप्ति हुई थी।

उस अपार सौन्दर्य पूर्ण चौला को जब दूत त्रिपुर सुन्दरी के निर्माल्य रूप में लेकर आया तो वहाँ साधु के गुप्त रूप में गजनी का महमूद उस बाला के सौन्दर्य पर मुग्ध हो उसे पाने का दुराग्रह करने लगा। बात ही बात में देवालय में तलवारें खिंच गई और सहसा वहाँ गुजरेश्वर भीमदेव के आ जाने पर इस क्षणिक युद्ध ने और भी उग्र रूप धारण कर लिया। तभी सहसा मन्दिर के पुजारी गंग सर्वज्ञ ने बीच-बिचाव करके शान्त मुद्रा से महमूद को आशीर्वाद दिया। चौला को गंग सर्वज्ञ की आज्ञा से सोमनाथ के मन्दिर में देव सम्मुख नर्तकी के रूप में रहना पड़ा। इस वृत्तान्त को सुनकर वाममार्गी शैव रुद्रभद्र महाक्रुद्ध होकर देवी के सम्मुख उच्चाटनादिक क्रियाओं से 'ला विनाश' 'ला विनाश' का गंभीर घोष करने लगा। रुद्रभद्र ने अपने अनुयायियों की सहायता से चौला को सोमनाथ के मन्दिर से नृत्य की वेशभूषा-सहित मूर्च्छितावस्था में उस युवक के सहित प्राप्त किया जो युवक उसको त्रिपुर सुन्दरी के निर्माल्य-रूप में लाया था। गंग सर्वज्ञ और भीमसेन ने वहाँ आकर दोनों को रुद्रभद्र के पंजे से मुक्त कराया और त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर के पट बन्द करवा दिये।

सोमनाथ महालय के अधिकारी निष्ठावान ब्राह्मण कृष्णस्वामी थे। इनकी धर्म-पत्नी रमाबाई बड़े ही कर्कश स्वभाव की थी। कृष्णस्वामी ने घर के काम काज के लिए एक शूद्रा दासी को रख लिया था। वह दासी सुन्दरी थी। अतः अनायास ही कृष्णस्वामी का मन उधर भी आकर्षित हुआ। शूद्रा दासी गर्भवती हुई और उसने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम देवस्वामी रखा। उसी समय रमाबाई ने भी पुत्री को जन्म दिया जिसका नाम शोभना रखा गया।

जब शोभना केवल सात वर्ष की ही थी तभी उसके पिता कृष्णस्वामी ने शुभ लग्नशोध कर उसका विवाह कर दिया, किन्तु दुर्भाग्य ने उसे आठ वर्ष की आयु पूरी करने से पहले ही विधवा बना दिया। देवा और शोभना का शैशव-प्रेम अब तरुणावस्था के निकट आ गया था। वह भोला और अबाध बाल्यकालीन, प्यार पति पत्नी के प्रेम में शनैः शनैः परिणत होने लगा। देवा की माता की मृत्यु हो गई। कृष्णस्वामी देवा को शूद्र-समझकर उसे वेद वाक्यों का उच्चारण करने को मना करते थे, मन्दिर में प्रवेश नहीं करने देते थे। इस प्रकार ब्राह्मण पिता और विमाता के अत्याचारों से देवस्वामी के मन में इस धर्म के प्रति घृणा हो गई और वह एक दिन घर से निकल गया।

फकीर बने हुए अलबरूनी ने देवा को आश्रय दिया तथा यवन धर्म में उसे दीक्षित कर उसका नाम फतह मुहम्मद रख दिया। उसके बाद वह एक दिन गुप्तरूप से शोभना से मिला। उसे देखकर शोभना अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह शोभना को अपना मन्तव्य बताकर फकीर के पास लौट आया और उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा कि कब महमूद भारत पर आक्रमण करे।

दुर्दान्त ममलुक, बर्बर तुर्क, बिलोचियो, अफगानों और खिलजियों तथा क्रूर पठानों की पचपन हजार बाँके लड़ाकू धनुर्धारी वीरों की सेना के सेनानायक महमूद ने अपनी सेना को भारत की ओर चलने का संकेत दिया। सिन्धु नदी पार कर महमूद मुल्तान के द्वार पर आ पहुंचा। मुल्तान के चौहान राजा अजयपाल ने महमूद को मार्ग दे दिया। अमीर अपनी सागर के समान महती-वाहिनी को लिए उस मरुस्थल की ओर चल पड़ा जहाँ उसकी प्रतीक्षा ९० वर्षीय क्षत्रिय-मुकुट घोघाबापा कर रहे थे। उन्होंने अपने पुत्र सज्जन-सिंह को सोमनाथ की रक्षा के लिए प्रभासपट्टन भेज दिया और अपने आप केसरिया बाना पहनकर अपनी छोटी सी शौर्यशालिनी सेना से महमूद की सेना के साथ टक्कर ली। घोघा-गढ़ का सर्वस्व स्वाहा हो गया। वृद्ध ब्राह्मण नन्दिदत्त ने घोघाबापा की अन्तिम क्रिया की।

तत्कालीन गुर्जराधिपति चामुण्डराय सनकी थे। उन्हें इमारतें बनाने का अधिक व्यसन था। उनके दरबार में खुशामदी मसखरों का जमघट रहता था। उनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम वल्लभदेव था। वह योद्धा, विवेकी तथा न्यायप्रिय था। इनके विरुद्ध राजा से शिकायत की जाती थी। इससे राजा उसे सदा अपने से दूर-दूर रखता था। दूसरे पुत्र का नाम दुर्लभदेव था जो अत्यन्त दुष्ट तथा नीच स्वभाव का था। राजा के तृतीय पुत्र नाग-राज के पुत्र का नाम भीमदेव था। युवराज वल्लभदेव तथा भीमदेव में अत्यन्त अनुराग था। ये दोनों चचा भतीजे राजा के दुर्व्यवहार से असन्तुष्ट होकर किसी अन्य स्थान पर

रहते थे। गुजरात की उस समय भी ऐसी ही दशा थी जब गजनी का अमीर उसे ध्वस्त करने चला आ रहा था।

गुजरात के राजा चामुण्डराय को विष देकर मारने और वल्लभदेव और भीमदेव को बन्दी बनाने का षड्यन्त्र रचा गया। पाटन के कूटमन्त्री दामो महता ने इस षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ किया। गुजरात के परम तेजस्वी विद्या गुरु भस्माकदेव और राजस्व मंत्री विमलदेव दोनों के सहयोग से दामोदर महता अपने उद्देश्य में कृतकार्य हुए और इस प्रकार उसने गुजरात की गृहकलह का समाप्त किया।

घोघागढ़ से अमीर अजमेर पहुंचा जहां उसका पुष्कर के पास अजमेर के महाराज धर्मगजदेव से भयानक युद्ध हुआ। अमीर की हार हुई। उसने धर्मगजदेव से सन्धि करली तथा वापस लौट जाने के लिए धर्मगजदेव को विश्वास दिलाया। इसके पश्चात महमूद के भेदिए शाहमदार की चालाकी से और अजमेर के मंत्री पुत्र एवं उपसेनापति सोहल के विश्वासघात और स्वार्थ के फलस्वरूप रात्रि के अन्तिम प्रहर में महमूद ने पुष्कर पर आक्रमण किया जिसमें अत्यन्त नरसंहार हुआ और धर्मदेव अपने साथियों-सहित युद्ध भूमि में वीरगति को प्राप्त हुए। महमूद ने अजमेर से आगे गुजरात की तरफ कोससैन्य प्रयाण किया। नान्दौल के वन में आमेर के युवक राजा दुर्लभराय ने अमीर की सेना को बहुत क्षति पहुंचायी।

दूसरी ओर दुर्लभदेव ने महमूद से गुप्त मन्त्रणा करली थी कि वह उस मार्ग गुजरात को जाने देगा किन्तु जब वह गुजरात को जीतकर आये तो उसे गुजरात का राजा स्वीकार करे। और दामो महता का गुप्तचर चण्डशर्मा दुर्लभदेव की ओर से महमूद से मिलने गया और उससे कहा कि तुम सिद्धपुर और पाटन को नष्ट न करो हम तुम्हें सोमनाथ पाटण की राह देते हैं। महमूद के लिए तो यह दैवी वरदान हो गया। उस समय अकेला दुर्लभदेव ही यदि सिद्धपुर में उसकी राह रोक लेता तो वह अपने कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता था। चण्डशर्मा और भस्मांकदेव ने महमूद को सोमनाथ पट्टन की राह दे दी। वह सोमनाथ पट्टन की ओर अपनी विशाल सेना लेकर चला गया। युवराज भीमदेव अपने कूटमन्त्री दामो महता के साथ अठारह हजार रणबांकुरे गुर्जर योद्धाओं को लेकर प्रभासपट्टन में आ गए।

गंग सर्वज्ञ की आज्ञा से भगवान सोमनाथ के सम्मुख चौला को अन्तिम नृत्य के लिए प्रस्तुत किया। उस समय समस्त विशाल जनसमूह से गंग सर्वज्ञ ने सोमनाथ के अंतिम दर्शन करने के लिए कहा और अपनी गम्भीर घोषणा की कि आज से जब तक महमूद का आतंक दूर न होगा तब तक देवपट बन्द रहेंगे। देवार्चन मैं स्वयं करूंगा तथा अन्य मेरे सब अधिकार युवराज भीमदेव लेंगे। उन्होंने चौला का हाथ भीमदेव के हाथ में दे दिया।

फतह मुहम्मद जिसका पहला नाम देवा था शोभना से मिलने आया। उसने बता दिया कि मैं महमूद का सिपहसालार बन गया हूँ। सोमनाथ का ध्वंस करने के बाद तुम्हें भी अपने साथ ले चलूंगा, अब तुम्हें चौला के साथ ही रहना है और महमूद के लिए उसे तैयार रखना है।

गंग सर्वज्ञ की आज्ञा से युवकों के अतिरिक्त सभी को सम्मान जाना पड़ा। सो-

मना भी चौला के साथ खम्भात चली गई। खम्भात मे छाया की तरह शोमना चौला के साथ रहने लगी। किन्तु कृष्णस्वामी की पत्नी रमाबाई ने नगर से बाहर जाना स्वीकार नही किया। उधर रुद्रभद्र ने धर्म-सेनापति भीमदेव की आज्ञा नही मानी। वह त्रिपुर सुन्दरी के मन्दिर के सामने के आंगन मे विनाश ला' विनाश ला' का जप करने लगा।

पौष मास की पूर्णिमा के प्रभात म महमूद ने सोमनाथ पर आक्रमण किया। कई दिनो तक घमासान युद्ध हुआ। रुद्रभद्र अमीर से मिला हुआ था। उसने सब गुप्त रास्ते अमीर को बता दिए। भीमदेव घायल हुए और गुप्त मार्ग स अमीर ने महालय मे प्रवेश कर प्रथम गग सर्वज्ञ को और फिर ज्योतिर्लिंग को समाप्त किया। भीमदेव को बालुका-राय ने गदावा दुर्ग मे पहुचा दिया। फतह मुहम्मद (देव स्वामी) ने स्वय अपने हाथों से सोमनाथ का भगवा ध्वज फाडकर सोमनाथ के मन्दिर पर महमूद का हरा झण्डा फहराया।

कृष्णस्वामी और उसकी पत्नी रमाबाई को सैनिक बन्दी बनान लगे, तभी फतह मुहम्मद ने तलवार निकाल कर सैनिकों का रोक दिया। रमाबाई ने गरजकर कहा, "क्या तू ही वह अमीर है जिसने महालय को भग्न किया तथा सहस्रों मनुष्यों को मौत के घाट उतारा ?" इस प्रकार रमाबाई ने महमूद को खूब फटकारा। अमीर न कहा, माता की तरह तू मुझे आशीर्वाद दे। रमा न उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि तू शीघ्र ही इस देव पट्टन को छोडकर चला जा। फतह मुहम्मद और अमीर सब वहाँ से चले गए।

अमीर को यह मालूम हो गया कि भीमदेव गदावा-दुर्ग मे है। उसने गदावा दुर्ग को घेर लिया। यह देखकर भीमदेव को खम्भात ले जाया गया। वृद्ध कमालाखानी अपने ८० वीरो सहित वीरता से लडते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। इनकी वीरता मे अमीर हतप्रभ हो उठा। अमीर ने जब यह सुना कि चौला और भीमदेव दानों खम्भात मे है वह खम्भात जा पहुचा। अमीर के आने की सूचना पाकर चौला ने भीमदेव को आबू भेज दिया। तभी किले की दीवार लांघकर फतह मुहम्मद ने अन्दर प्रवेश किया और शोमना से चौला को माँगा। शोमना ने मना किया। फतह मुहम्मद के न मानने पर शोमना ने तलवार से उसका सिर काट लिया और चौला को गुप्त मार्ग से आबू के लिए निकाल स्वय चौला बन कर बैठ गई और अमीर के साथ पाटन चली गई।

उधर चौलारानी भटकती हुई, राह के अनेक कष्टो को भोगती हुई, एक ब्राह्मण परिवार मे कुछ समय तक पुत्री के रूप मे रहकर उस परिवार के वृद्ध ब्राह्मण के साथ पाटन मे आ गई। चण्डशर्मा इस ब्राह्मण का सम्बन्धी था। चण्डशर्मा के द्वारा ही चौला दासी के रूप मे शोमना के पास पहुच गई। शोमना ने चौला को तभी आबू चली जाने के लिए वापस भेज दिया। उधर अमीर जल्दी ही गजनी जाने की तैयारी मे था अनहिल्लपट्टन मे उसने आम दरबार किया। दरबार में दुर्लभदेव और वल्लभदेव के चर उपस्थित थे। दुर्लभदेव ने अमीर को नजराना भेंट किया अत अमीर ने उसे गुजरात का राजा घोषित किया। अब अमीर को मालूम हुआ कि आबू मे भालोर तक राजपूतों की एक लाख तलवार उसकी प्रतीक्षा मे हैं। यह सुनकर अमीर के होश-हवास उड गए।

अमीर के सैनिको ने विवश होकर लडने से इकार कर दिया। वह विवश होकर कच्छ के अगम्य महारन मे घुस गया। यहाँ भायात ठाकुर जागीरदार थे। उसे युद्ध

करना पड़ा। उनसे लड़ता हुआ वह एक हजार सैनिकों के साथ माण्डवी तक चला गया। समुद्र के किनारे पर बसे हुए मुन्द्रा नगर में अमीर को फिर परास्त होना पड़ा। ताहर की गढ़ी में आकर अमीर शोभना से अलग हो गया था। ताहर के डाकू ने उसे खोज दिया और असंख्य हीरे-जवाहरात पारितोषिक-रूप में अमीर से प्राप्त किए। कच्छ के महारन में अमीर को दैविक प्रकोप का सामना करना पड़ा। वह इस तूफान में मरणासन्न सा हो गया था। रेत के भयानक बवंडरों ने उसकी समस्त सेना को रेत से आच्छादित कर दिया। अमीर भी अपने घोड़े सहित इस रेत के तूफान में दब गया। शोभना उसे होश में लाई। वहाँ अमीर और शोभना के अतिरिक्त और कोई नहीं था। वह भूखा प्यासा शोभना की ओर निहार रहा था। शोभना सुरसागर तीर्थ से दूब रोटी, चावल लाई। अमीर ने हथेली पर रख रोटी खाई और चल्लू से पानी पिया।

शोभना ने अमीर से कहा—मैं चौला नहीं शोभना हूँ। मैंने तुम्हें धोखा देकर यह सब स्वांग रचा। तुम चाहो तो मुझे अपनी तलवार से कत्ल कर सकते हो। लेकिन अमीर उसके गुणों पर मोहित होकर उसको अपने साथ लेकर लाहौर होता हुआ अपने देश चला गया।

दामो महता की कूटनीति से युवराज भीमदेव का गुजरात के महाराज के पद पर अभिषेक हुआ। भीमदेव ने चौला देवी को महारानी के रूप में बुलाने की आज्ञा दी किन्तु विमलदेव ने इसका उल्लंघन किया। इस बात की चर्चा चौला तक पहुँची तो उसके आत्मसम्मान को ठेस लगी। भीमदेव के सामने आकर उसने कहा, "प्रियतम अब वह दैत्य चला गया, अब पट्टन में शीघ्र ही देव-प्रतिष्ठा होनी चाहिए। सहस्रों वेदज्ञ, ब्राह्मणों द्वारा देवपट्टन में शिवलिंग की स्थापना हुई। शत-सहस्रों कण्ठों से जय सोमनाथ की ध्वनि घोषित हुई। चौला देवी ने एक बार फिर देव-सामीप्य में नृत्य किया। गुजरात के राजा भीमदेव गजराज पर बैठकर चले गए। चौला उनके साथ नहीं गई और फिर देव-नर्तकी बन गई।

तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा

"विश्व इतिहास में इस्लाम-धर्म का अभ्युदय एक महत्त्वपूर्ण घटना है।······ राजनीतिक क्षेत्र में यह ऐसी घटना है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता।······भारतीय इतिहास को तो इस जाति ने इतना प्रभावित किया है कि उस प्रभाव की समता में स्वयं इस्लाम की जन्मभूमि अरब का इतिहास नहीं खड़ा हो सकता। लगभग ३ हजार वर्षों की परम्पराओं, रीतियों, नियमों, मान्यताओं आदि पर इस घटना ने जादू सा कर दिया था। भारतीय समाज की काया पलट सी कर दी।······राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि समस्त क्षेत्रों पर इस्लाम धर्म एवं जाति का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में पड़ा।"[1]

---

१. श्री रतिभानु सिंह नाहर : पूर्व मध्यकालीन भारत पृ० १७।

: १ राजनीतिक दशा

"मुसलमानो के भारतीय आक्रमण से पूर्व समस्त भारत विभिन्न राजनीतिक शक्तियो में विभाजित हो चुका था। उत्तर भारत म काश्मीर, नेपाल, आसाम, गान्धार, सिन्ध, मालव, गुजरात, उज्जैन अजमेर, कन्नौज, महोबा, चेदि तथा बंगाल दक्षिण में होयसल, यादव, चालुक्य, राष्ट्रकूट, कदम्ब गग, काकतीय, पल्लव, पाण्डय, चोल तथा चेरि वशो के छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो चुके थे। इन शक्तियो का मुख्य उद्देश्य साम्राज्य-विस्तार था, जिनके फलस्वरूप इन्हे पारस्परिक सघर्षों मे बहुधा रत रहना पडता था। इनकी सकीर्णता ने राजनीतिक एकता को समाप्त कर दिया था। यही कारण है कि वे सगठित होकर किसी बाह्य सत्ता का सामना करने मे पूर्णतया असमर्थ रहे।"[१]

गजनवी वश के आक्रमणो के समय भारत की राजनीतिक दशा अरबो की सिन्ध विजय के समय से एक प्रकार से बहुत भिन्न थी। आठवी शताब्दी के प्रारम्भ मे हमारे देश म कोई विदेशी उपनिवेश न था। विदेशी सत्ता की उपस्थिति का तो प्रश्न ही नही उठता था। पश्चिमी किनारे पर केवल कुछ अरब सौदागर रहते थे, जिनका मुख्य पेशा व्यापार था। इसके विपरीत दसवी शताब्दी म हमारे देश मे मुल्तान और मन्सूरा के दो विदेशी राज्य थे। इसके अतिरिक्त उन राज्यो की काफी जनता ऐसी थी, जिसे मुसलमान बना लिया गया था। दक्षिणी भारत मे भी विशेषकर मालाबार मे अरबो के उपनिवेश थे। वहाँ के शासको ने मूर्खतावश विदेशियों को देशी जनता को मुसलमान बनाने की आज्ञा दे दी थी। जिन लोगो ने विदेशी धर्म अगीकार कर लिया था वे विदेशी ढग का रहन-सहन भी पसन्द करने लगे और गजनी तथा मध्य एशिया से आने वाले अपने मुसलमान-भाइयों के साथ उनकी सहानुभूति थी। वास्तव मे उनके लिये यह स्वाभाविक भी था। सुबुक्तगीन महमूद गजनवी और उनके १५० वर्ष बाद मुहम्मद गोरी उस दृष्टि से भाग्यशाली थे कि उन्हे भारतीय जनता के एक अग की नैतिक सहानुभूति प्राप्त थी।

१ भारत के विभिन्न राज्य और राज्यवश

१–० मुल्तान और सिन्ध के अरब राज्य :—इन राज्यो मे आधुनिक मुल्तान और सिन्ध सम्मिलित थे और ८७१ ई० मे वे खिलाफत से सम्बन्ध विच्छेद करके पूर्ण स्वतन्त्र हो गए थे। किन्तु इस देश मे परदेशी होने के नाते उनकी स्थिति अधिक दृढ न थी। समय-समय पर उन राज्यो के शासक-वशो मे परिवर्तन होते रहते थे।[२] शेष भारत मे स्वदेशी राजवश शासन करते थे।

१–१ हिन्दूशाही राज्य :—'पहला महत्वपूर्ण हिन्दू राज्य चिनाव नदी से हिन्दूकुश तक फैला हुआ था। १० वी शताब्दी मे प्रसिद्ध जयपाल इस राज्य पर शासन करता था। उसके राज्य की स्थिति ऐसी थी कि गजनी से आने वाले आक्रमणकारी का पहला प्रहार उसी को झेलना पडता था।'[३]

१–२ काश्मीर :—'शकरवर्मन के मरने के पश्चात् काश्मीर के राजसिंहासन पर अनेकानेक शासक आए जो राजकाज के लिये पूर्णतया अयोग्य सिद्ध हुए। अन्त मे दिद्दा नामक एक शासिका ने राजसूत्र सभाला। सभवत इसी समय उसके किसी निकटस्थ ने

१. डॉ० रतिभानु सिंह नाहर पूर्व मध्यकालीन भारत पृ० १७।

२. डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव : दिल्ली सल्तनत पृ० ११। ३. वही—पृ० १२

जिसका नाम तुग था, महमूद गजनवी पर आक्रमण किया था, पर पराजित हुआ"[१]

१-३ कन्नौज — डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने कन्नौज को सम्राटों का क्रीडा स्थल कहा है।[२]

हर्ष के समय मे कन्नौज की ख्याति बहुत बढ़ गई थी। उसकी मृत्यु (६४७ ई०) के पश्चात् उसके निर्बल उत्तराधिकारी राज्य को अक्षुण्ण रख सके। निदान पड़ोसी राज्यों ने कन्नौज को अधिकृत करने का प्रयास किया।......शीघ्र ही यशोवर्मन ने कन्नौज की सत्ता पर अधिकार किया।"

१-४ कन्नौज के गहड़वाल —"यशोवर्मन के उपरान्त कन्नौज में गहड़वाल वंश का प्रभुत्व स्थापित हो जाता है, जिसका महान शासक गोविन्द चन्द्र (१११२-५४ ई०) था।"[३]

"प्रतिहार वंश का अन्तिम राजा राज्यपाल हुआ। वह दुर्बल शासक था। उसकी राजधानी कन्नौज पर महमूद गजनवी ने १०१८ ई० में आक्रमण किया।"[४]

१-५ बंगाल के पाल तथा सेन वंश :—"मौर्य और गुप्तकाल मे बंगाल, मौर्य तथा गुप्त साम्राज्य के अधीन रहा। गुप्त साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने के पश्चात् बंगाल स्वतन्त्र हो गया।......हर्ष की मृत्यु के पश्चात् बंगाल पर आसाम के शासक भास्करवर्मन का अधिकार हो गया। ८ वीं सदी के प्रारम्भ में कन्नौज-नरेश यशोवर्मन ने बंगाल पर आक्रमण किया था। इसके परिणाम स्वरूप बंगाल में अशान्ति का ताण्डव नृत्य होने लगा।"[५]

"पालवंश के शासक देवपाल ने ३६ वर्ष राज्य किया। उनके उत्तराधिकारी दुर्बल हुए। ११ वीं शताब्दी के प्रथम चरण में महिपाल प्रथम ने राज्य किया। वह महमूद गजनवी का समकालीन था।"[६]

१-६ मालवा के परमार :—मालवा में परमार-वंश के शासन का प्रतिस्थापक कृष्णराज (उपेन्द्र) था। उसने ९ वीं शताब्दी में मालवा में अपना अधिकार कर लिया था। परमार-वंश का एक प्रमुख शासक मुंज था। उसने दक्षिण के चालुक्य नरेशों से कई बार संघर्ष किया और "वह सफल भी रहा किन्तु ९९३-९७ ई० में उन्हीं द्वारा आहत हुआ और मार डाला गया। भोज (१०१०-६० ई०) इस वंश का महान शासक था जो अपनी वीरता तथा विद्वत्ता के लिये इतिहास में प्रसिद्ध है। उसने अपनी विद्यानुरागिता से प्रेरित हो धारा में संस्कृत कण्ठाभरण नामक एक महाविद्यालय स्थापित किया। उसके भग्नावशेष आज भी देखने को मिलते हैं।...... अपने दीर्घकालीन शासन के अन्तिम दिनों में उसकी शक्ति क्षीण हो गई। इसका कारण था उसका जीवन-पर्यन्त संघर्ष। अन्त में गुजरात के भीम और घन के कर्ण द्वारा वह पराजित हुआ और मार डाला गया। उसकी मृत्यु के पश्चात उसके निर्बल उत्तराधिकारी १२ वीं शताब्दी के मुसलमानी अभियान के समक्ष टहर न सके और मालवा पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।"[७]

१. श्री रतिभानु सिंह नाहर : पूर्व मध्यकालीन भारत पृ० १८।
२. डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव दिल्ली सल्तनत पृ० ३३।
३. श्री रतिभानु सिंह नाहर पूर्व मध्यकालीन भारत पृ० २०।
४. डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव दिल्ली सल्तनत पृ० ३३।
५. श्री रतिभानु सिंह नाहर पूर्व मध्यकालीन भारत पृ० २४।
६. डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव दिल्ली सल्तनत पृ० ३४।
७. श्री रतिभानु सिंह नाहर : पूर्व मध्यकालीन भारत पृ० २०।

१–७ गुजरात के सोलंकी —वल्लभी के नरेशों के ह्रास के पश्चात् गुजरात पर चपोटक का अधिकार हो गया किन्तु १० वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में चालुक्य राजकुमार मूलराज (९६०-९५ ई०) ने सोलंकी राजवंश की स्थापना की। मूलराज सामरिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। पड़ोसी राज्यों से वह निरन्तर लड़ता रहता था। उसके उत्तराधिकारियों में भीम एक महत्वपूर्ण शासक हुआ। भीम ने मालवा के नरेश से संघर्ष जारी रक्खा और अन्य पड़ोसी राज्यों पर अपना आतंक जमाया। उसने सिन्ध के राज्य पर आक्रमण कर दिया। इसी बीच मालव के शासक भोज की सेना ने भीम के राज्य पर आक्रमण कर दिया और उसकी राजधानी को लूट लिया। १०२५ ई० में महमूद गजनवी का प्रसिद्ध आक्रमण सोमनाथ के मन्दिर पर हुआ, जिसने भीम की शक्ति को चुनौती दी। इस अभियान से उसकी प्रभुता बिल्कुल घट गई।[1]

१–८ अजमेर के चौहान —११ वीं शताब्दी में चोहुमान (चौहान) वंश के अजयदेव ने अजमेर-राज्य की स्थापना की।··· आठवीं शताब्दी में चौहानों ने अरबों को सिन्ध से आगे बढ़ने से रोका था। इस वंश का प्रसिद्ध राजा विग्रहराज षष्ट या जो बीसलदेव के नाम से विख्यात था। इसने चौहान राज्य की सीमा को बढ़ाया। बीसलदेव के पश्चात् सोमेश्वर राज्य का अधिकारी हुआ जिसका उत्तराधिकारी पृथ्वीराज चौहान था।[2]

१–९ उज्जैन के गुर्जर प्रतिहार – हर्ष की मृत्यु के पश्चात् गुर्जर राजपूतों ने तीन केन्द्रों में अपनी शक्ति की स्थापना की—अवन्ति, भड़ौच एवं जोधपुर। 'उन्होंने नागभट्ट (७२५–४० ई०) की संरक्षता में मुसलमानों के आक्रमण का सफल सामना किया था। इस वंश का महान शासक भोज प्रथम (८३५–९० ई०) था उसने सिन्ध और काश्मीर को छोड़कर समस्त उत्तरी भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया किन्तु भोज के उत्तराधिकारियों की शक्ति दिन-दिन क्षीण होती गई। फिर भी गुर्जरों ने मुसलमानों को दसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक उत्तरी भारत में प्रवेश करने से रोका।[3]

१–१० महोबा (जेजाक भुक्ति) के चन्देले तथा चेदि (मध्यप्रदेश) के कलचुरि—जेजा चन्देल वंश का प्राचीन शासक था जिसके नाम पर इनका राज्य जेजाक भुक्ति कहलाता था।······हर्ष चन्देल ने अपनी चतुरता से वंश की ख्याति को बढ़ाया। इसका पुत्र यशोवर्मन (९३०-५० ई०) एक विजयी शासक था। उसने सबुक्तगीन के विरुद्ध स्थापित संघ में सक्रिय योग दिया।

चेदि के कलचुरियों ने कुछ काल तक महोबा के शासक कृतिब्रह्मदेव को आक्रान्त कर उनके राज्य पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था किन्तु बाद में पुनः चन्देलों ने अपना राज्य लौटा लिया। इनका शासन प्राचीन काल में मगध प्रान्त पर था और इन्होंने राष्ट्रकूटों, पालों चालुक्यों मालवा के भोज तथा कन्नौज के मिहिरभोज से युद्ध किये।····· कालान्तर में चेदि पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

जिस समय मुसलमानों ने भारत में राज्य संस्थापना किया उस काल तक दक्षिण भारत उनके आक्रमणों से पूर्णतया अछूता रहा।[4]

1. डा० राजबहादुर सिंह नाहर : पूर्व मध्यकालीन भारत पृ० २०,२१
२. वही—पृ० २१। ३. वही—पृ० २१—२२। ४. वही—पृ० २४।

दक्षिण भारत के राजवंशों में निरन्तर संघर्ष चलता रहा इसलिये वहाँ के निवासी अधिक उन्नति नहीं कर सके। जिस समय दक्षिण में चालुक्य और चोल निर्मम संघर्ष में रत थे, उत्तरी भारत में महमूद गजनवी बड़े-बड़े साम्राज्यों को धूल में मिला रहा था।[1]

१–११ चालुक्य :—चालुक्य राजस्थान के मूल राजपूतों के वंशज थे जिनका सम्बन्ध गुर्जर कुल से था। ईसा की छठी शताब्दी में ये लोग राजपूताने से दक्षिण भारत मे आकर बस गए। इस वंश का महान शासक पुलकेशिन द्वितीय था जो ६११ ई० में सिंहासनासीन हुआ। अपने प्राचीन शत्रु पल्लवों को भी उसने अपनी शक्ति का लोहा मानने को विवश किया और वह मालव, राजपूताना गुजरात तथा कोंकणों से जीवन पर्यन्त लड़ता रहा। ······ पुलकेशिन का प्रभुत्व दक्षिण भारत मे इतना बढ गया कि दक्षिण के राजे इसकी सामरिक शक्ति से भयभीत रहते थे। ······ पल्लवों ने पुलकेशिन का वध कर दिया और उसकी राजधानी वातापी को विनष्ट प्राय कर डाला। ··· इस प्रकार चालुक्य-सत्ता कुछ काल के लिए समाप्त हो गई।[2]

१–१२ राष्ट्रकूट —राष्ट्रकूटों का मूल निवास स्थान महाराष्ट्र था। ··· लगभग ७ ३ ई० मे दन्तिदुर्ग खडगाँव वाले ने राष्ट्रकूटों का शासन स्थापित किया। ··· कृष्ण प्रथम के बाद गोविन्द द्वितीय और गोविन्द तृतीय क्रमश राष्ट्रकूट के सिंहासन पर आए जिन्होंने ··· गुर्जरों, पल्लवों तथा चालुक्यों के विरुद्ध युद्ध किया। ८१५–८१६ ई० मे अमोघवर्ष गद्दी पर बैठा। अमोघवर्ष के पश्चात् कृष्ण द्वितीय अधिकारी हुआ। उसके अधिकारी इन्द्र तृतीय ने चेदियों की सहायता से उत्तरी भारत पर आक्रमण किया और गुर्जर प्रतिहारों की शक्ति को क्षीण कर दिया। इन्द्र के पश्चात् तो राष्ट्रकूटों का पराभव प्रारम्भ हो गया।

१–१३ कल्याणी के परवर्ती चालुक्य — तैलप द्वितीय ने १० वीं शताब्दी के अन्तिम चरण मे चालुक्य वंश का पुनरुत्थान किया और उन सभी राज्य पर अधिकार कर लिया जो चालुक्यों ने अधिकृत किया था। उसने परमार-नरेश मुंज को लगभग ६६५ ई० मे पराजित किया और उसका वध करवा दिया। तैलप के मरने के उपरान्त इस वंश का महत्वपूर्ण शासक सोमेश्वर प्रथम (१०४०–६६ ई०) हुआ जिसने अपनी सामरिक शक्ति से परमार नरेश भोज, अन्हिलवाडा के राजा भीम प्रथम तथा कलचुरी नरेश लक्ष्मीकर्ण को पराजित किया।[3]

१–१४ चोल :—इस वंश का इतिहास बहुत प्राचीन है किन्तु इसका पुनरुत्थान आदित्य प्रथम के समय से होता है। उसका पुत्र परान्तक था। इस वंश का महान शासक राजराज चोल (६८५-१०१६ ई०) हुआ जिसने अपने समस्त शत्रुओं, पाड्यों, चेरो, चालुक्यों, चोलो आदि को परास्त किया। उसके पुत्र राजेन्द्र चोल (१०१८–१०४२ ई०) ने भी अपने पिता की भांति अपने शत्रुओ को पराजित किया और आधुनिक बर्मा के कुछ प्रान्त, पूर्वी बंगाल, उडीसा तथा अडमन और निकोबार को अपने अधीन कर लिया। ······ उसकी मृत्यु के पश्चात् चोल राज्य का ह्रास होना आरम्भ हो गया।[4]

१- डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव दिल्ली सल्तनत, पृष्ठ ३४।
२- श्री रतिभानु सिंह नाहर पूर्व मध्यकालीन भारत, पृष्ठ २४-२५।
३- वही पृ० २६। ४- वही पृ० २८।

१—राज्य-व्यवस्था

तत्कालीन शासन राजतन्त्रात्मक था जिसका प्रधान राजा होता था। राजा का पद वंशानुगत होता था। राजा अपने शासन में स्वेच्छाचारी होता था किन्तु परम्परागत राजधर्म के अनुसार प्रजाहित के विरुद्ध वह कोई कार्य नहं करता था"" प्राय वह ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था।

सुप्रबन्ध की सुविधा के लिए सम्पूर्ण राज्य प्रान्तों (भुक्ति) जिलों (विषयों) और ग्रामों में विभाजित होता था। प्रान्त का शासक उपरिक भोगिक अथवा गोप्ता कहलाता था जो राजघराने अथवा प्रतिष्ठित कुल का सदस्य होता था।

केन्द्र म राजा को सहयोग प्राप्त करने के निमित्त मन्त्रियों की नियुक्ति होती थी जो अपने परामर्शों द्वारा राजा के उचितानुचित का ज्ञान कराते थे। ··· प्रथम श्रेणी म वे मन्त्री आते हैं जो राजा को विशेष अवसरों पर सुझाव देते थे। दूसरी श्रेणी में युद्ध और शान्ति स्थापित करने वाले मन्त्री जिन्हें सन्धि-विग्रहक कहते थे तथा अक्ष पटलाधिकृत जो राजा का लेखा रखते थे, आते हैं। धर्म की रक्षा के लिय राजपुरोहित होते थे। सेना की देखरेख के लिए महाबलाधिकृत एवं महादण्डनायक दो अधिकारी होते थे। न्याय का दायित्व राजा पर ही होता था।[1]

विचाराधीन युगीन शासक प्राय पड़ौसी राज्यों से संघर्ष किया करते थे। यह संघर्ष परम्परागत चलता था जिससे राज्य की आय का अधिकांश भाग इसी मध्य व्यय हो जाता था। इसके अतिरिक्त राज्य की आय शासन-प्रबन्ध और राजपरिवार में व्यय होती थी। ······ आय का प्रमुख स्रोत था भूमिकर जो उपज का छठा भाग वसूल होता था। सिंचाई, कर और चुंगी का भी प्रचलन था। संकटावस्था म नए कर भी लगाए जाते थे पर उस दशा म भी प्रजाहित का ध्यान रखा जाता था। दुर्भिक्ष के समय प्रजा की सहायता की जाती थी।[2]

· २ सामाजिक दशा।

अरबों की सिंध विजय के पश्चात् लगभग ३०० वर्षों तक हमारे देश पर बाहरी आक्रमण नहीं हुए। फलत दीर्घकाल तक विदेशी आक्रमण के भय से मुक्त रहने के कारण भारतवासियों म यह भावना घर कर गई कि भारतभूमि को कोई विदेशी शक्ति आक्रान्त नहीं कर सकती। कहा जाता है कि निरन्तर जागरूकता ही स्वाधीनता का मूल है, किन्तु उस युग में हमारे शासन सैनिक-विषयों म असावधान हो गए थे। उन्होंने उत्तर पश्चिमी सीमाओं की किलेबन्दी नहीं की और न उन पर्वतीय देशों की रक्षा का ही प्रबन्ध किया जिनमें होकर विदेशी सेनाएँ हमारे देश म प्रवेश कर सकती थीं। इसके अतिरिक्त हमारे लोगों ने उस नवीन रणनीति और युद्ध प्रणाली से भी सम्पर्क नहीं रखा जिसका विकास अन्य देशों म हो चुका था। यही नहीं राष्ट्रीय उत्साह और देशभक्ति की भावनाओं का भी हमारे देश म पूर्णतया लोप हो चुका था क्योंकि ये भावनाएं तो संकट के ही समय म अधिक बलवती होती हैं। प्रादेशिक देशभक्ति का तो वह युग भी नहीं था। देशप्रेम की

१- श्री रतिभानु सिंह नाहर पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० ३०-३१।

२- वही पृ० ३५।

जो कुछ भावना थी वह भी इसलिए जाती रही थी कि अधिकतर लोग समझते थे कि बाह्य आक्रमण से हम पूर्ण रूपेण सुरक्षित हैं। ८ वीं से ११ वीं शताब्दी तक के युग में विचारों की संकीर्णता हमारे देशवासियों के चरित्र का एक अंग बन गई थी। उनका विश्वास था कि हम सृष्टि के सर्वोत्तम जाति और ईश्वर के चुने हुए लोग हैं। दूसरे लोग हमारे सम्पर्क में आने योग्य नहीं हैं। अलबरूनी नामक प्रसिद्ध विद्वान महमूद गज़नवी के साथ हमारे देश में आया था। उसने यहां रहकर संस्कृत भाषा, हिन्दू धर्म तथा दर्शन का अध्ययन किया था। वह आश्चर्य के साथ लिखता है कि, 'हिन्दुओं की धारणा है कि हमारे जैसा देश, हमारे जैसी जाति, हमारे जैसा राजा, धर्म-ज्ञान और विज्ञान संसार में कहीं नहीं है।" वह यह भी लिखता है कि हिन्दुओं के पूर्वज इतने संकीर्ण विचारों के नहीं थे जितने इस युग (११ वीं शताब्दी) के लोग। उसे यह देखकर भी बड़ा आश्चर्य हुआ था कि हिन्दू लोग यह नहीं चाहते कि जो चीज एक बार अपवित्र हो चुकी है, उसे फिर शुद्ध करके अपना लिया जाए।'[1]

इस युग में हमारा देश शेष संसार से लगभग पूर्णतया पृथक था। यही कारण था कि हमारे देशवासियों का अन्य देशों से सम्पर्क टूट गया और वे बाहरी जगत में होने वाली राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक घटनाओं से भी सर्वथा अनभिज्ञ रहे। अपने से भिन्न जातियों और संस्कृतियों सेन स्पर्श न रहने के कारण हमारी सभ्यता गतिहीन होकर सड़ने लगी। वास्तविकता तो यह है कि इस युग ने हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पतन के स्पष्ट लक्षण दिखाई देने लगे। इस युग के संस्कृत-साहित्य में हम इतनी सजीवता और सुरुचि नहीं पाते जितनी कि ५ वीं और ६ वीं शताब्दियों के साहित्य में। हमारी स्थापत्य चित्रकला तथा अन्य ललित कलाओं पर भी बुरा प्रभाव पड़ा। हमारा समाज गतिहीन हो गया, जाति बन्धन अधिक कठोर हो गया उच्च वर्णों से विधवा विवाह की प्रथा पूर्णतया उठ गई और खान-पान के सम्बन्ध में भी अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए गए। अछूतों को नगर से बाहर रहने को बाध्य किया गया।[2]

"वर्तमान हिन्दू समाज स्मृतियों द्वारा अनुशासित है और उनकी रचना इसी युग में हुई थी। विचाराधीन काल में चारों वर्णों का अस्तित्व पूर्ववत् ही बना रहा।"[3] "महमूद कालीन अलबेरूनी ने उस समय में चार वर्णों का उल्लेख किया है।"[4] साथ ही प्रत्येक वर्ण अनेक शाखाओं में विभाजित हो गया। वर्णाश्रम धर्म का पालन और उसकी रक्षा राजा का प्रमुख कर्तव्य माना जाता था। बहुधा लोग विभिन्न प्रकार के कुटीर उद्योगों में लगते जा रहे थे। --- अनुलोम प्रतिलोम विवाहों का भी उपजातियों की उत्पत्ति में काफी हाथ है। -- उपजातियों में भी विभाग हुए। इन विभागों को कुटीं गोत्र या प्रकार कहा जाता है।

ब्राह्मण का स्थान प्राचीन भारत में काफी ऊँचा था। वे धर्म-कर्म में, शिक्षा-दीक्षा में, शासन आदि में समाज का पथ-प्रदर्शन करते थे। पूर्व मध्यकालीन समाज में भी उनको

१- डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव . दिल्ली सल्तनत, पृष्ठ ३५।

२- वही पृष्ठ ३६।

३- श्री रतिभानु सिंह नाहर - पूर्व मध्यकालीन भारत, पृष्ठ ३३।

४- साचूहत अलबेरूनीज इंडिया का अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द १, पृष्ठ १०१।

वही महत्व प्रदान किया गया था पर स्वयं ब्राह्मणों ने ही अपना गौरव खोना प्रारम्भ किया। परवर्ती नरेशों की सेवा में ब्राह्मण सेनापति का काम करने लगे थे। यह निश्चित हो गया कि अमुक गोत्र के ब्राह्मण की कन्या का व्याह अमुक गोत्र के ब्राह्मण से ही हो सकता है।

क्षत्रियों को समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त था और वे ब्राह्मणों की गणना में खड़े होने का दावा करते थे। क्षत्रियों (राजपूतों) के विषय में कर्नल जेम्स ने लिखा है कि, राजपूतों के बहादुर होने में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता और इस पर भी कोई संदेह नहीं कर सकता कि ये लोग आपसी फूट, ईर्ष्या और विरोध के कारण आज दुर्व्यवस्थाओं में है। मेरा विश्वास है कि अगर इन राजपूतों के प्रति सच्चा सम्मान प्रकट किया जा सके और इनकी आपसी लड़ाइयों में निश्छल तथा निस्वार्थ भाव से मध्यस्थता करके उनमें फैली हुई पारस्परिक ईर्ष्या और फूट निर्मूल की जा सके तो बिना किसी संदेह के ...... किसी भी शत्रु को चाहे वह विदेशी हो अथवा देशी, यहाँ के शक्तिशाली राजपूतों की सहायता से पराजित किया जा सकता है।"[1]

ब्राह्मणों की भाँति क्षत्रिय भी अनेक उपजातियों में बँटे थे। इस समय तक लगभग ३६ उपजातियाँ बन गई थीं। राजकाज के अतिरिक्त कृषि-कार्य में भी क्षत्रियों की बहुत बड़ी संख्या लगी हुई थी।"[2]

"वैश्यों ने कृषि-कार्य तथा तत्सम्बन्धी अन्य उद्योगों से अपना हाथ खींच लिया था और अब ये पूर्णतया वाणिज्य व्यवसाय में लग गये थे।

पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज में एक सर्वथा नवीन जाति का अभ्युदय होता है। वह जाति है कायस्थ।...... पूर्व मध्यकालीन लेखों में लिपिक के पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति को कायस्थ कहा गया है। चतुर्वर्ण से अलग ही यह एक अलग जाति बन गई।

शूद्रों में दो प्रकार के वर्ग पाए जाते हैं। एक वह वर्ग जो अस्पृश्य समझा जाता है और दूसरा स्पृश्य।[3]

१—*सती प्रथा और बाल हत्या —सती प्रथा की शीगणेश* प्राचीनकाल से ही हो गया था। हर्ष की माता तो पति की मृत्यु आसन्न जानकर ही सती हो गई थी। विचाराधीनकाल में इस प्रथा ने और भी जोर पकड़ लिया था। पति के देहान्त के बाद विधवाओं का जीना पाप समझा जाने लगा। डा० ईश्वरी प्रसाद ने बाल-हत्या का करुण चित्रण किया है जो उस समय समाज में प्रचलित था। किन्तु यह अवस्था राजपूत-वर्ग में ही अधिक थी। शेष *समाज इसका पालन इतनी कठोरता के नहीं करता था।*

२ भोजन वस्त्र तथा आभूषण —"पूर्व मध्यकालीन अभिलेखों में गोधूम, चावल तथा चने के नाम बार बार आते हैं, जिससे यह परिलक्षित होता है कि ये भोजन के प्रमुख अंग थे। मांस, मछली तथा मदिरा का उल्लेख अभिलेखों में किया गया है।......

१- जेम्स टाड द्वारा लिखित 'एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज आफ राजस्थान' नामक पुस्तक के हिन्दी अनुवाद 'राजस्थान का इतिहास' (अनुवादक श्री केशव कुमार ठाकुर) के टाडलिखित पृष्ठ से जेम्स टाड द्वारा लिखित 'राजस्थान' के सम्बन्ध में से उद्धृत।

२- श्री रतिभानु सिंह नाहर, पूर्व मध्यकालीन भारत पृ० ३३—३४। ३. वही—पृ० ३४

अल्हणदेवी के एक लेख से यह ज्ञात होता है कि ब्राह्मण भी मास-भक्षण करते थे। प्रतिहार बाउक के लेख से यह ज्ञात होता है कि ब्राह्मण तो मदिरापान नहीं करते थे पर क्षत्रियो मे सुरापान प्रचलित था। सुरा बेचने वाली स्त्रियों का बोध भी हमे कुछ लेखो से होता है।

स्त्रियाँ शृगार-प्रिय अवश्य थी किन्तु शृगारिकता का मापदण्ड आधुनिक युग की भाँति नग्नता न था। वे अपने शरीर को वस्त्रो तथा आभूषणों से पूर्णतया ढके रहती थी।"[1]

३—मनोरजन के साधन — उस समय शतरज का खेल बहुत प्रिय था। सगीत एव नृत्य विशेष सामाजिक एव धार्मिक अवसरो पर आयोजित होते थे। "धार्मिक अवसरो पर रथ-यात्रा की व्यवस्था की जाती थी। इनके अतिरिक्त द्यूतक्रीडा भी समाज मे प्रचलित थी जिनपर कर लगता था। " विभिन्न खेल-कूदो मे भी लोग भाग लिया करते थे। आखेट भी कुछ लोगो के लिए मनोरजन का एक साधन था।"

३ धार्मिक दशा

धर्म समुचित व्यवहार और नैतिकता का मूल माना जाता है, किन्तु इस क्षेत्र मे भी अध पतन होने लगा था। शकर महान ने हिन्दूधर्म को पुन सगठित किया था और उसे एक सुदृढ दार्शनिक आधार पर खडा किया था किन्तु सामाजिक दोषो को वे भी दूर न कर सके।

१ वाममार्ग

इस युग मे वाममार्गी सम्प्रदायो की लोकप्रियता बढने लगी, विशेषकर बगाल तथा काश्मीर मे। इनके अनुयायी सुरापान, मासाहार, व्यभिचार आदि दुर्व्यसनो मे लिप्त हो गये। 'खाओ, पीओ और मस्त रहो,' यही उनका सिद्धान्त था। इस प्रकार के दूषित विचार शिक्षा सस्थाओं मे भी प्रवेश कर गए। विशेषकर बिहार के विक्रमशिला के विश्वविद्यालय मे। उस विश्वविद्यालय की एक घटना से ज्ञात होता है कि नैतिक कोढ हमारे समाज मे किस हद तक घर कर गया था। एक विद्यार्थी के पास शराब की एक बोतल पकडी गई। विद्यालय के अधिकारियो द्वारा पूछे जाने पर उसने उत्तर दिया कि यह मुझे एक भिक्षुणी ने दी है। अधिकारियो ने उस विद्यार्थी के विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही करनी चाही, किन्तु इस प्रश्न को लेकर विश्वविद्यालय मे दो दल बन गये और एक सकट उपस्थित हो गया। जब एक उच्चतम शिक्षा-केन्द्र मे इस प्रकार की घटनाएँ हो सकती थी तो प्रमादमय और विलासमय जीवन बिताने वाले उच्च तथा मध्य श्रेणियो के लोगो की क्या दशा रही होगी, इसका भली प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है। हमारे देश मे अनेक बडे-बडे मठ थे। किसी समय वे शिक्षा तथा पवित्रता मे उच्च केन्द्र माने जाते थे अब वे भी विलास और प्रमाद के अड्डे बन गये। सन्यासियो का महत्व घट गया, यद्यपि साधारण जनता की उनके प्रति श्रद्धा बनी रही]

१—० देव-पत्नियो की पूजा · सर भडारकर के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही मुख्य देवता माने जाते थे। १८ पुराण इन्ही तीनो देवताओ से सम्बन्धित हैं। जहाँ

१. श्री रतिभानु सिंह नाहर : पूर्व मध्यकालीन भारत —पृ० ३६—३७ २. वही—पृ० ३८।

एक ओर परमात्मा के भिन्न-भिन्न नामों को देवता मानकर उनकी पृथक्-पृथक् उपासना प्रारम्भ हुई वहाँ ईश्वर की भिन्न-भिन्न शक्तियों और देवताओं की पत्नियों की भी कल्पना की गई और उनकी पूजा की जाने लगी। इसके अतिरिक्त भयावही और रुद्र शक्तियों की भी पूजा की जाने लगी जिनमें काली, कापाली कराली, चामुण्डी और चण्डी प्रमुख हैं। कापालिकों और कालामुखों से इनका सम्बन्ध है। कुछ ऐसी भी शक्तियों की कल्पना की गई जो विषय विलास एवं कामुकता की ओर ले जाने वाली हैं, जैसे आनन्दभैरवी, त्रिपुर-सुन्दरी, ललिता आदि। इनके उपासकों के मन्तव्यानुसार शिव और त्रिपुरसुन्दरी के संयोजन से ही संसार की निर्मिति हुई। नागरी वर्णमाला के प्रथम अक्षर 'अ' से शिव और अन्तिम अक्षर 'ह' से त्रिपुरसुन्दरी अभिप्रेत है। इस तरह दोनों का योग अह काम-कला का सूचक है।[1]

१-१ भैरवी चक्र —"भैरवी चक्र शाक्तों का एक मुख्य मनक है। इसमें स्त्री के मुख्य गुह्य भाग के चित्र की पूजा होती है। शाक्तों के दो भेद हैं कौलिक और समयिन। कौलिकों में दो भेद हैं, प्राचीन कौलिक तो योनि के चित्र की, दूसरे वास्तविक योनि की पूजा करते हैं। पूजा के समय वे मद्य, मांस, मीन आदि का भी भक्षण करते हैं।"[2]

कर्पूरमंजरी में कौलमत का वर्णन निम्न प्रकार है, 'मंत्र-तंत्र हम कुछ भी नहीं जानते ना ही हमारे पास गुरु की कृपा से हमें कोई ज्ञान हुआ है। हम मद्य पीते हैं और स्त्री रमण करते हैं तथा कुलमार्ग का रमण करते हुये हम मोक्ष प्राप्त करते हैं।

कुलटाओं को दीक्षित कर हम पत्नी बना लेते हैं तथा हम लोग मद्य-मांस पीते खाते हैं। भिक्षा हमारा भोजन है और चर्मखण्ड शैया। इस प्रकार का कौल-धर्म किसे रमणीय प्रतीत नहीं होता।'[3]

२-देवदासी प्रथा :

देवदासी प्रथा विचाराधीन काल में एक अन्य महान दोष के रूप में दिखाई पड़ती है। प्रत्येक मन्दिर में देवता की सेवा के लिये अनेक अविवाहित लड़कियाँ रखी जाती थी। इससे भ्रष्टाचार फैला और वेश्यागमन मन्दिरों में एक सामान्य नियम बन गया।

३-अश्लील साहित्य :

निकृष्ट कोटि की अश्लीलता में पूर्ण तांत्रिक साहित्य की इस युग में अधिक वृद्धि हुई। हमारे नैतिक जीवन पर इसका दूषित प्रभाव पड़ा। इस काल में महानतम विद्वानों के लिये भी अश्लील ग्रन्थ रचना बुरा न माना जाता था। काश्मीर के राजा के

१. सर रामकृष्ण भंडारकर वैष्णवेज्म शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजस सिस्टम्स, पृ० १४२-१४६, के आधार पर।

२. रायबहादुर डा० गौरीशंकर ओझा मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ० २७-२८।

३. मंताण तंताण ण किंपि जाणे झाणं च णो किंपि गुरुप्पसाओ।
मज्जं पिआमो महिलं रमामो मोक्खं च जामो कुल मग्ग लग्गा।
रंडा चंडा दिक्खिआ धम्मदारा—मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ।
भिक्खा भोज्जं चम्मखंडं च सेज्जा कोलो धम्मो कस्स णो भाइ रम्मो॥
श्री राजशेखर : कर्पूरमंजरी, श्लोक २२-२३, पृ० २४—२५।

एक मन्त्री ने 'कुटिनीमतम्' नाम की एक पुस्तक लिखी थी। सस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान क्षेमेन्द्र ने 'समयमातृका' (वेश्या की आत्मकथा) नामक ग्रन्थ रचा। "इस ग्रन्थ मे नायिका अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रो के अनुभवो का वर्णन करती है। वह एक दरबारी स्त्री, एक सामन्त की रखैल, सडको पर घूमने वाली, कुटिनी, कपटी भिक्षुणी, युवको को भ्रष्ट करने और धार्मिक स्थानो की यात्रा करने वाली की हैसियत से जीवन बिता चुकी है।"

"इस प्रकार की सब चीजो ने समाज के उच्च तथा मध्यम वर्गों के लोगो को भ्रष्ट किया। सभवत साधारण जनता प्रचलित साहित्य और वाममार्गी धर्म के दूषित प्रभाव से युक्त रहती।"[1]

४—शैवधर्म

बौद्ध और जैन-धर्म का ह्रास हो चुका था। शैवमत का प्राबल्य था। डा० ओझा के अनुसार शैवमत के मानने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार की शिव की मूर्तियो की पूजा करने लगे थे। सामान्य रूप से शैव सम्प्रदाय पाशुपत सम्प्रदाय कहलाता था। बाद मे इसमे से लकुलीश सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। पाशुपत सम्प्रदाय के अनुयायी शिव को ही सृष्टि का कर्त्ता, हर्त्ता एव धर्त्ता समझते हैं। योगाभ्यास और भस्म-स्नान को वे आवश्यक समझते है और मोक्ष को मानते हैं।[2]

४—ब्राह्मण धर्म का विकृत रूप

श्री रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं' 'धार्मिकता की अति ने देश का विनाश किया, इस अनुमान से भी भागा नहीं जा सकता और यह धार्मिकता भी गलत किस्म की धार्मिकता थी, जिसका उद्देश्य परमसत्ता की खोज नहीं प्रत्युत यह विचार था कि किसका छुआ हुआ पानी पीना चाहिये और किसका नही, किसका छुआ हुआ खाना चाहिये और किसका नही, किसके स्पर्श से अशुद्ध होने पर आदमी स्नान से पवित्र हो जाता है और किसके स्पर्श से हड्डी तक अपवित्र हो जाती है। बौद्ध-धर्म हिन्दुत्व का निर्यात किया जाने वाला रूप बन गया था। ...जावा और सुमात्रा मे पौराणिक सभ्यता को फैलाने को बौद्ध नहीं, ब्राह्मण ही गए होंगे। किन्तु बौद्ध ब्राह्मण सघर्ष के क्रम मे ब्राह्मणो ने विदेश यात्रा करने वाले बौद्धो को नीचा दिखाने के लिये, धर्मशास्त्रो मे यह विधान कर दिया कि विदेश जाना पाप है। .....फरिश्ता ने लिखा है कि पश्चिम मे अटक हिन्दुओ का अटक बन गया था और उससे आगे जाने वाला हिन्दू पतित समझा जाता था।..... सिन्ध और उसके आस-पास मुसलमानो की प्रभुता को फैलते देखकर ब्राह्मणों को यह नहीं सूझा कि राजाओ को इस खतरे से आगाह करे अथवा प्रजा को इस विपत्ति से भिड़ने के लिये तैयार करे। उल्टे, उन्होंने विष्णु पुराण मे कल्कि अवतार की कथा घुसेड दी और जनता को यह विश्वास दिलाया कि सिन्धु तट, दाविकोर्वी, चन्द्रभागा तथा काश्मीर प्रान्त का उपभोग व्रात्य, म्लेच्छ और शूद्र करेंगे। वे अल्पप्रज्ञा और बहुत कोप करने वाले होंगे।..... तब शबल ग्राम के विष्णु यश नामक प्रमुख ब्राह्मण के घर मे वासुदेव कल्कि का अवतार होगा और वह सब म्लेच्छो का उच्छेद तथा ब्राह्मण-धर्म की पुन स्थापना करेंगे।

१ डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव : दिल्ली सल्तनत, पृ० ३६—३७

२. श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा : मध्यकालीन भारतीय सस्कृति, पृ० २३।

जो वस्तुएँ परिश्रम और पुरुषार्थ से प्राप्त होती हैं उनकी याचना के लिए भी देवी-देवताओं से प्रार्थना करने का अभ्यास हिन्दुओं में बहुत प्राचीन था। अब जो पुराणों का प्रचार हुआ तो वे देश रक्षा, जातिरक्षा और धर्मरक्षा का भार भी देवताओं पर छोड़ने लगे। सोमनाथ मन्दिर में सहस्रों मनुष्य इस आशा से जा छिपे थे कि बाहर महमूद भले ही मार काट मचा ले किन्तु मन्दिर में वह आकर जीवित बाहर नहीं जा पाएगा देवता उसे खा जाएँगे। किन्तु देवता उसे खा नहीं सके। महमूद ही उन्हें तोड़कर अपने साथ ले गया। और सहस्रों मनुष्यों में से अनेक जो बाहर रहने पर शायद बच भी जाते मन्दिर में आसानी से मार डाले गए।[1]

"ज्यों-ज्यों हिन्दुओं का पुरुषार्थ और साहस घटता जाता था त्यों-त्यों उनकी एँठ बढ़ती जाती थी। उनका धार्मिक संस्कार निश्चित हो गया था और वे मानने लगे थे कि संसार में सबसे तुनुक चीज जनेउ और जात है, जो एक बार गई फिर वापिस नहीं लाई जा सकती है फिर भी, हम सबसे श्रेष्ठ हैं। इस अहंकार की वृद्धि होती गई। अलबरूनी ने लिखा है कि हिन्दू लोग समझते हैं कि उनके देश जैसा दूसरा देश नहीं, उनके राजाओं जैसे दूसरे राजे नहीं, उनके धर्म जैसा दूसरा धर्म नहीं और उनके शास्त्रों जैसा दूसरा शास्त्र नहीं।"[2] ब्राह्मण धर्म की रूपरेखा इस प्रकार थी।

६—धार्मिक वैमनस्य एवं धर्मान्धता

महमूद ने जिस समय सोमनाथ पर आक्रमण किया उस समय अघोरी कापालिकों का वामाचार अपनी चरम सीमा पर था। उनके भयंकर वेश और रौरव कृत्यों से जनता में एक आतंक छाया हुआ था। दूसरी ओर शुद्ध शैव मत का प्रचार था जो ब्राह्मण धर्म पर आधारित था। इन दोनों में स्पष्ट टक्कर थी।

जिस समय अमीर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय भारत में हिन्दू और बौद्ध धर्म का जोर था। हिन्दू-धर्म में विष्णु और शिव की उपासना होती थी। वैष्णव और शैव सम्प्रदायों की प्रबलता का उस युग में एक प्रमुख स्थान है। आये दिन बौद्धों और ब्राह्मणों का संघर्ष होता था। जैनों और शैवों में भी संघर्ष होता था। अपने अपने धर्म की विभुता को दिखाने का प्रयत्न किया जाता था। सातवीं शती से ईसा की दशवीं शताब्दी तक समस्त भारत में शिव की उपासना होती थी। 'ब्राह्मण वेदों को अर्थ समझे ही बिना कंठस्थ कर लेते हैं और बहुत थोड़े ब्राह्मण उनका अर्थ समझने की कोशिश करते है। ब्राह्मण क्षत्रियों को वेद पढ़ाते हैं वैश्यों और शूद्रों को नहीं।'[3]

वास्तव में उपर्युक्त शैव धर्म का वासना मूलक शाक्त धर्म के रूप में अघोरी साधुओं ने अपनाया। ये हिन्दू धर्म के जटिल कर्मकाण्ड की पद्धति का तिरस्कार करते थे। मदिरा पान करना, मांस भक्षण करना तथा अपनी आराध्य देवी त्रिपुर सुन्दरी देवी को प्रसन्न करना ही उनकी उपासना का प्रमुख रूप था। भैरवी चक्र की रचना करके उसके सामने पशु तो क्या मनुष्य की भी बलि देने में इन अघोरी साधुओं को तनिक भी संकोच

१. श्री रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० २६०। २. वही—पृ० २६१
३. साचूकृत 'अलबेरूनीज इंडिया' का अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द १, पृ. १२८।

नहीं होता था। समाज के सुख-दुख से इनको कोई सरोकार नहीं था। ये अपनी सिद्धि की प्राप्ति के लिए जनसमूह को अपने धर्म में लाने और अपने धर्म की श्रेष्ठता को दिखाने के लिए भोले-भाले जनों को अपने आतंक में फुसलाते थे। तत्कालीन धार्मिक नशे ने सर्वसाधारण को तो क्या राजाओं को भी अपने रंग में रंग दिया था। राजा लोग अपनी कन्याओं का देवार्पण भी कर दिया करते थे। निद मन्दिरों में अनन्त धन-राशि भरी रहती थी। हजारों ब्राह्मण इन मन्दिरों में वेद-पाठ करते, सहस्रों नर्तकियाँ अपने विलासमय नृत्यों से देवार्चन करती थीं। धार्मिक अन्धविश्वास ने जनसमूह में अपने पैर दृढ़ता से जमा रखे थे। दैविक आपदाओं से वशीभूत हो मनुष्य कर्त्तव्य-विमुख हो रहे थे। आडम्बर ढोंग और पाखण्ड का बोलबाला था।

जैन-धर्म अन्य धर्मों के साथ चल रहा था। समय-समय पर अपनी प्रभुता जमाने का अवसर जैनाचार्य देखते रहते थे। राजविद्रोह में जैनियों का भी हाथ अपने धर्म के प्रोत्साहन के लिए ही होता था। राजा की क्षीणता और अविवेकता से ये जैन अधिक लाभ उठाते थे। अधिकता हिन्दू धर्म की ही थी। हिन्दू धर्म ने प्रायः जैन-धर्म को नष्ट ही कर दिया था। शैवों और वैष्णवों की प्रबलता बढ़ रही थी। बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त परस्पर भयानक संघर्षों और धार्मिक अन्धविश्वासों में फँसे थे।

७—इस्लाम का प्रभाव

अनेक पन्थ, अनेक मतमतान्तरों में भटकती हुई जनता अन्धविश्वासों से ऊब गई थी। उस समय हिन्दुओं के अरक्षित जीवन से लाभ उठाकर मुसलमान साधु-फकीर दया और स्नेह का प्रदर्शन कर हिन्दुओं को मुसलमान बना रहे थे। एकता, दया, स्नेह और सहानुभूति के अभाव के कारण भटके हुए प्रताड़ित हिन्दुओं को समय-समय पर ये मुसलमान फकीर प्रेम से अपनाकर यवन धर्म में दीक्षित करते थे।

८—यज्ञ विधान

उस समय प्रसन्नता के अवसर पर अथवा राजा के विजयी होने पर देवों की कृपा का ही फल उसे समझ कर, यज्ञादिकों का अनुष्ठान हुआ करता था। इस यज्ञ में राज-परिवार तथा परिजन वर्ग भी भाग लेता था। इस प्रकार धार्मिक विधि-विधान का बोलबाला था।

: ४ : आर्थिक दशा

आर्थिक दृष्टि से देश समृद्ध था। खानों और खेती से उत्पन्न होने वाली सम्पत्ति अनेक पीढ़ियों से जमा होती चली आई थी। व्यक्तियों ने खूब धन संचित कर लिया था और मन्दिर तो उसके भण्डार थे।

१—आर्थिक वैषम्य

आर्थिक दृष्टि से समाज के विभिन्न वर्गों में गहरी असमानता थी। राजपरिवारों के सदस्यों, सामन्तों तथा दरबारियों का जीवन अत्यन्त समृद्ध तथा विलासपूर्ण था। व्यापारी लोग करोड़पति थे और करोड़ों रुपया वे दान आदि में व्यय किया करते थे। गाँव के साधारण लोग दरिद्र थे। यद्यपि अभाव-पीड़ित वे भी न थे। वे मितव्ययी थे। उनके पास थोड़ा सामान होता था। फिर भी संचित धन, शान्ति तथा व्यापार के कारण साधारणतया

देश की आर्थिक दशा अच्छी न थी। इसी प्रकार सम्पत्ति के लालच न ही वास्तव म महमूद गजनवी को भारत पर आक्रमण करने को प्रेरित किया। हमारे शासक यह नहीं जानत थे कि देश को बाह्य आक्रमणों से बचा कर उस सम्पत्ति की रक्षा कैसे करें। राजनैतिक ढाँचा अत्यन्त दुर्बल था। पूर्वकालीन संस्थाएँ अब भी विद्यमान थी, किन्तु जिस भावना से वे कार्य करती थीं वह अब गिर चुकी थी। नौकरशाही भ्रष्ट थी और जनता की शक्ति भी अनेक दूषित प्रभावों से क्षीण हो चुकी थी।[१]

२—कृषि

ग्रामीण जनता कृषि कार्य म लगी हुई थी। राज्य की ओर से सिंचाई का उत्तम प्रबन्ध किया गया। नहरें भी निकाली गईं। कुए तालाबों का निर्माण कराया गया।

३—वाणिज्य व्यापार एवं उद्योग

इस काल मे व्यापार की सुविधा के लिए व्यावसायिक अथवा श्रेणियाँ स्थापित की गई। कपडा, नमक, खाद्य पदार्थ, गन्ना, काष्ठ की मूर्तियाँ ढालने का, सोने चाँदी आदि का व्यापार होता था।

अन्तर्देशीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों व्यापार उन्नतावस्था मे थे।……सडकें थीं। … विनिमय के साधन सिक्के थे।[२]

"महमूद गजनवी के समय भारत की यह दशा थी। बाहर से शक्तिशाली दिखाई देने पर भी वह इस योग्य न था कि अपने धर्म और स्वतन्त्रता की रक्षा कर सके।"[३]

उपन्यास मे ऐतिहासिक तत्त्व

सोमनाथ आचार्य चतुरसेन का एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास को विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता। लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि 'ऐतिहासिक तत्वों की मैंने परवा नहीं की। इतना ही काफी समझा कि महमूद ने सोमनाथ का आक्रान्त किया था। उसने गुजरात को लाग लूटा थी।'

सोमनाथ का बीज मात्र ही ऐतिहासिक है, नाव को ही ऐतिहासिक कह सकते हैं, इस नींव पर खड़ा होने वाला उपन्यास का महल कुछ अशों को छोड़कर काल्पनिक है। परन्तु यह काल्पनिक अभिसृष्टि ऐतिहासिक तत्वों के प्रतिकूल नहीं गई है। उसमें ऐतिहासिक तत्वों के दर्शन होते हैं। श्री चतुरसेन शास्त्री का कथन है, फिर भी मुझे तत्कालीन वातावरण तथा घटनाओं की रूपरेखा बनाने म गुजराती साहित्य और गुर्जर विद्वानों के लिए संस्कृत प्राकृत अनेक ग्रन्थों का मनन करना पड़ा। उसकी वश, तत्कालीन, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति, अर्थ व्यवस्था, राजतन्त्र, कूटनीति चक्र, साम्प्रदायिक भावना सभी पर मैंने विचार किया।'[४]

इसका अर्थ यह है कि काफी घटनाएं और पात्र काल्पनिक हैं और इन काल-जाकर किले म रहा। महमूद सोमनाथ की तरफ चला। मार्ग म बहुत म किले भाय,

१ डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव : दिल्ली सल्तनत, पृ. ३७।
२ श्री रतिभानु सिंह नाहर पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ ३२।
३. डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव दिल्ली सल्तनत, पृ. ३७।
४. सोमनाथ (आ.र.) पृ० ९। ५. वही पृ० ८।

निक सृष्टि का मूल उद्देश्य इतिहास को पोषण देना है। उपन्यास में ऐतिहासिक तत्व निम्न प्रकार हैं —

१ महमूद का सोमनाथ पर आक्रमण

प्रसिद्ध इतिहास वेत्ताओं के अनुसार महमूद गजनवी के आक्रमण का विवरण निम्न प्रकार उपलब्ध है। ...

"हि० स० ४१६ (वि स० १०८२ ई० स० १०२५) में महमूद ने सोमनाथ (काठियावाड) पर चढाई की।'[१] ३० हजार सैनिकों के साथ ता० १० शाबान को महमूद गजनवी ने भारत के लिए प्रस्थान किया। वह रमजान के बीच मुलतान पहुँचा। उसके आगे मार्ग भीषण था सैकडों मीलों तक मार्ग जनशून्य था और रेगिस्तान था। अतः महमूद ने ३० हजार ऊँटों पर जल और भोज्यसामग्री लादकर अनहिलवाडे की ओर कूच किया। रेगिस्तान के पार कर लेने पर उसे मानव के दर्शन हुए। वहाँ उसने एक किला देखा। यह किला जोधपुर राज्य के नाडौल स्थान में था। वहाँ जल के अनेक कुएँ उसने देखे। अनेक नरों का सहार करके उसने उस किले को जीत लिया तथा वहाँ के मन्दिरों की मूर्तियाँ तोड डाली। वहाँ से फिर उसने ऊँटों पर जल भरा और प्रस्थान किया, वह जिल्काद के प्रारम्भ में अनहिलवाडे पहुँचा।"[२]

"कहा जाता है कि सोमनाथ के मन्दिर के पुजारियों ने यह शेखी मारी थी कि भगवान दूसरे देवताओं से अप्रसन्न हो गए हैं इसलिए बुतशिकन महमूद उन्हें तोडने में समर्थ हुआ है। ब्राह्मणों के इस अहंकार से क्रुद्ध होकर ही महमूद ने सोमनाथ पर आक्रमण करने का सकल्प किया।'[३]

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *'द लाइफ एण्ड टाइम्स आफ सुल्तान महमूद आफ गजनी'* में श्री मुहम्मद नाजिम कहते हैं कि "जब यामिनुद्दौला (महमूद) भारत में विजय पर विजय प्राप्त कर रहा था और देवालयों का विध्वंस कर रहा था कि सोमनाथ इन मूर्तियों से *अप्रसन्न हो गये हैं और यदि वे प्रसन्न हो जाएँ तो कोई भी उनका विध्वंस नहीं कर सकता,* उन्हें हानि नहीं पहुँचा सकता। जब यामिनुद्दौला ने यह सुना तो उसने सोमनाथ को नष्ट करने की प्रतिज्ञा की और ३०००० सैनिकों और सैकडों स्वय सेवकों के साथ १० अक्टूबर १०२५ को प्रात वह गजनी से चल पडा।"[४]

अनहिलवाडे का राजा भीम (भीमदेव) वहाँ से भागा और अपनी रक्षा के लिये

---

१. डा० ओझा-राजपूताने का इतिहास, पृ० २६१।

२. कामिलत्तवारीख के अंग्रेजी अनुवाद के आधार पर

३ डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : दिल्ली सल्तनत, पृ० ४८।

४. मुहम्मद नाजिम—द लाइफ एण्ड टाइम्स आफ सुल्तान महमूद आफ गजनी, पृ० ११५।

"When Yaminunddaula was gaining victories and demolishing temples in India, the Hindus said that somnath was displesead with these idols, and that if it had been satisfied then no one could have destroyed or injured then When Yaminuddaula heard this he resolved upon making a campairre to destory this idol" and left Gazni on the morning of Monday the 10th of Cctober, 1025, with an army of 30,000 regular cavalry and hundreds of volunteers

जिनमें सोमनाथ के दूतरूप बहुतेरी मूर्तियाँ थी जिनको वह शैतान कहता था। उसने वहाँ के लोगों को मारा, किले तोड़े, और मूर्तियाँ नष्ट की। फिर भी वह निर्जल रेगिस्तान के मार्ग से सोमनाथ की ओर बढ़ा। उस रेगिस्तान में उसको २००० वीर पुरुष मिले। उनके सरदारों ने उनकी अधीनता स्वीकार नहीं की। इस पर उसने अपनी कुछ सेना उन पर चढ़ाई के लिये भेजी। उस सेना ने उनको हराकर भगा दिया और उनका माल असबाब लूट लिया वहाँ से वह देहलवाड़े पहुँचा, जो सोमनाथ से दो मंजिल दूर था। वहाँ के लोगों को यह विश्वास था कि सोमनाथ शत्रु को भगा देंगे। जिससे वे शहर ही में रहे, परन्तु महमूद ने उसे जीतकर लोगों को कत्ल किया और उनका माल लूटने के बाद सोमनाथ की ओर प्रस्थान किया।"[1]

जिल्काद के बीच (पौष शुक्ल के अन्त में) गुरुवार के दिन सोमनाथ पहुंचने पर उसने समुद्र-तट पर एक सुदृढ़ किला देखा जिसकी दीवारों के साथ समुद्र की लहरें टकराती थीं। किले की दीवारों पर से लोग मुसलमानों की हँसी उड़ाते थे कि हमारा देवता तुम सबको नष्ट कर देगा। दूसरे दिन शुक्रवार को मुसलमान हमला करने के लिये आगे बढ़े। उनकी वीरता से लड़ता देख हिन्दू किले की दीवारों पर से हट गये मुसलमान सीढ़ियाँ लगा कर उन पर चढ़ गए। वहाँ से उन्होंने दीन की पुकार कर इस्लाम की ताकत बतलाई, तो भी उनके उतने सैनिक मारे गये कि लड़ाई का परिणाम संदेहयुक्त प्रतीत हुआ। कितने ही हिन्दुओं ने मन्दिर में जाकर दण्डवत प्रणाम कर विजय के लिए प्रार्थना की। फिर रात्रि होने पर युद्ध बन्द रहा।"[2]

"भीमदेव अपने कई सामन्तों के साथ सोमनाथ के रक्षण के लिये गया। उसने ३००० मुसलमानों को मारा।"[3] दूसरे दिन प्रातःकाल ही से महमूद ने फिर लड़ाई शुरू कर दी, हिन्दुओं का अधिक संहार कर उनको शहर से सोमनाथ के मन्दिर में भगा दिया। और मन्दिर के द्वार पर भयंकर युद्ध होने लगा। मन्दिर की रक्षा करने वालों के झुण्ड के झुण्ड मन्दिर में जाने और रो रोकर प्रार्थना करने लगे। फिर बाहर आकर उन्होंने लड़ाई ठान दी और प्राणान्त तक वे लड़ते रहे। थोड़े से जो बचे वे नावों पर चढ़कर समुद्र में चले गये, परन्तु मुसलमानों ने उनका पीछा किया। कितनों ही को मार दिया तथा औरों को पानी में डुबो दिया।"[4]

"सोमनाथ की विजय के बाद महमूद को खबर मिली कि अनहिलवाड़े का राजा भीमदेव कंदहत (कंदहत शायद कच्छ का कंथकोट नामक किला हो) के किले में चला गया, जो वहाँ से ४० फरसंग (२४० मील) की दूरी पर सोमनाथ और रन के बीच है। उसने वहाँ पहुँचकर कितने ही मनुष्यों से, जो वहाँ पर शिकार कर रहे थे, ज्वारभाटे के विषय में पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि पानी उतरने लायक है, परन्तु थोड़ी सी भी हवा चली तो उतरना कठिन होगा। महमूद ईश्वर से प्रार्थना कर पानी में उतरा और

१. रा० ब० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा राजपूताने का इतिहास, पृ० २६१।
२. 'हिस्ट्री आफ इण्डिया' लेखक इलियट जिल्द २ के आधार पर रा० बा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत राजपूताने का इतिहास नामक पुस्तक के पृ० २६२ से उद्धृत।
३. फरिश्ता (अंग्रेजी) अनुवाद भाग १, पृ० ७४, अनुवादक ब्रिग।
४. रा० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा . राजपूताने का इतिहास, पृ० २६२।

उसने अपनी सेना सहित वहां पहुंचकर शत्रु को भगा दिया। फिर वहां से लौटकर उसने मसूर की तरफ जाने का विचार किया जहां के राजा ने इस्लाम धर्म का परित्याग किया था। महमूद के जाने की खबर पाकर वह राजा खजूर के जंगल में भाग गया। सुल्तान ने उसका पीछा कर उसके साथियों में से बहुतेरों को मार डाला और कइयों को डुबा दिया, थोड़े से भाग भी निकले। वहां से वह भाटिया पहुंचा, वहां के लोगों को अपने अधीन कर गजनी की ओर चला और ता० १० सफर स० ४१७ हिजरी (वि० स० १०८३ ई० स० १०२६) को वहां पहुंचा।"[1]

किन्तु हां मुसलमान इतिहासकारों ने उपरोक्त वर्णन को बड़े अजीब ढंग से प्रस्तुत किया है। यह इतिहासकार का लक्षण नहीं। आधुनिक मुसलमान लेखक डा० हबीब ने महमूद के बारे में लिखा है कि गजनवी की सेना से भारतीय मन्दिरों का जो घोर विध्वंस हुआ उसको किसी ईमानदार इतिहासकार को छिपाना नहीं चाहिये और अपने धर्म से परिचित मुसलमान उसका समर्थन नहीं करेगा।"[2] इस कथन की पुष्टि श्री रामधारी सिंह दिनकर ने भी की है। "भारत में मुसलमानों का अत्याचार इतना भयानक रहा कि सारे संसार के इतिहास में उनका जोड़ नहीं मिलता। इन अत्याचारों के कारण, हिन्दुओं के हृदय में इस्लाम के प्रति जो घृणा उत्पन्न हुई उसके निशान अभी तक बाकी हैं। और पड़ोसी के हृदय में इतिहास ने जहर की जो लकीरें छोड़ी हैं उन्हें मुसलमान भी मन ही मन अनुभव करते हैं।"[3]

आचार्य चतुरसेन का सोमनाथ यूं तो सारा का सारा महमूद के आक्रमण से सम्बन्धित है परन्तु उसमें अन्य तत्वों का भी दर्शन कराया है जिनके विषय पर आगे इसी अध्याय में विचार किया गया है। संक्षेप में, उपन्यास में वर्णित महमूद का सोमनाथ पर आक्रमण इस प्रकार है—महमूद गजनवी एक विशाल सेना लेकर गजनी से चला, वहां से चल कर वह सिन्ध के मार्ग द्वारा मुल्तान आया और मुल्तान के राजा अजयपाल से मार्ग लेकर वह मरुस्थली के मुहाने पर स्थित घोघागढ़ आया। घोघागढ़ का पतन करने के पश्चात् वह अजमेर पहुंचा। अजमेर के राजा धर्मगजदेव की सेना के साथ उसका युद्ध हुआ। अपनी चालाकी और हिन्दुओं के साथ विश्वासघात के कारण अपनी पराजय को जय में परिवर्तित कर वह नान्दौल के वन में से होता हुआ अनहिल्लवाड़ा पहुंचा और वहां से प्रभासपट्टन पहुंचकर उसने सोमनाथ का विध्वंस किया और ज्योतिर्लिंग के तीन टुकड़े किये। सोमनाथ-रक्षण में घायल भीमदेव को गंदावा दुर्ग पहुंचा दिया गया। अमीर उनके पीछे-पीछे सेना लेकर गंदावा दुर्ग पहुंचा, गंदावा-पतन होते देख भीम को गुप्त मार्ग से खम्भात पहुंचा दिया गया। वहां भी अमीर ने उसका पीछा किया। महाराज भीमदेव को सम्मान से आबू भेज दिया गया। महमूद पाटन की ओर रवाना हुआ, वहां से वह अनहिल्लपट्टन पहुंचा। वहां गुजरात की गद्दी दुर्लभदेव को सौंपकर उसने सिन्ध के मार्ग के लिए कच्छकोट की

१ इलियट की हिस्ट्री आफ इण्डिया नामक पुस्तक के आधार पर रा० ब० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत राजपूताने का इतिहास, पृ० २६३ से उद्धृत अंश।

२. डा० राजबली पाण्डेय भारतीय इतिहास का परिचय।

३. श्री रामधारी सिंह दिनकर; संस्कृति के चार अध्याय, पृ० २९७।

और वाग मोडी। कच्छ के महारन में उसकी समस्त सेना रेत के सागर में विलीन हो गई। और महमूद सब कुछ गँवाकर लाहौर होकर गजनी लौट गया।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार वह मुल्तान से सीधा अनहिल्लवाडा पहुँचा, वहाँ से सोमनाथ पहुँचा और सोमनाथ का विध्वंस करके कच्छ के महारन के और पश्चिम में समुद्र के किनारे से वह सुरक्षित गजनी लौट गया।

कुछ इतिहासकारों ने महमूद का अजमेर के मार्ग से सोमनाथ पर आक्रमण करना बताया है। परन्तु आज यह बात बिल्कुल सिद्ध हो चुकी है कि वह अजमेर नाडौल आदि के मार्ग से नहीं गया क्योंकि 'अजमेर' उन दिनों था ही नहीं। फरिश्ता का अजमेर का उल्लेख अब अमान्य सिद्ध कर दिया गया है।[1]

फिर भी यह मेरा विषय नहीं है कि महमूद किस मार्ग से सोमनाथ पहुँचा। यह खोजना इतिहासकारों का काम है और यह खोज स्वयं में एक बहुत बड़ा शोध कार्य है। डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार महमूद अजमेर के मार्ग से नहीं गया जबकि राजपूताने के इतिहास के प्रकाण्ड पंडित टाड महोदय उसे अजमेर के मार्ग से गया हुआ मानते है। हाँ इतना आश्चर्य अवश्य हुआ कि इतिहासकार इस बात पर अभी तक एक मत नहीं हो पाए। हाँ बुद्धि यही कहती है कि वह रेगिस्तान के मार्ग से सीधा गया होगा। रेगिस्तान के कष्टों को झेलना उसने अधिक ठीक समझा होगा अपेक्षा इसके कि वह अजमेर के मार्ग से आकर पग-पग पर हिन्दू राजाओं से टक्कर लेता। खैर जो भी हो इतिहास अभी तक कोई निश्चित मत इस सम्बन्ध में स्थिर नहीं किया है।

महमूद का सेना सहित कच्छ के महारन में भटकना

उपन्यासकार ने घोघा बापा के पुत्र सज्जन से महमूद की सेना को रेगिस्तान में गलत मार्ग पर लगवाया है। सज्जन ने मूक मुमिया का अभिनय किया और महमूद से बदला लेने के लिये उस सेना सहित कच्छ के महारन में धकेल दिया।

इतिहास भी इस बात का साक्षी है। मुहम्मद नाजिम ने इसी प्रकार का वर्णन किया है।[2]

---

१ "Farishta says that he passed by Ajmer, but the Tarikh-e-Alfi, perhaps more correctly, says Jaisalmer, destroying all the temples on the way had massacred so many of the inhabitants that for some time no one could pass that way on account of the stench arising from the dead bodies"

इलियट एण्ड डाउसन हिस्ट्री आफ गजनी, पृ० १५३ के फुटनोट से उद्धृत।

२ "Here (in Cutch) he was led astray by a devotee of Somnath who had offered to act as a guide but to avenge the desecration of his deity, had intentionally brought the army to a place where water could not be procured After a few days of hopeless wandering, the Sultan was able to extricate his army from this perilous situation and cross rear to Sindh in safety."

मुहम्मद नाजिम द लाइफ एण्ड टाइम्स आफ सुलतान महमूद आफ गजनी, पृष्ठ ११६।

: २ : सोमनाथ मे वर्णित विशिष्ट पात्रों की ऐतिहासिकता

१– महमूद गजनवी

गजनी के बादशाह महमूद ने भारत पर अनेक आक्रमण किए। परन्तु राज्य स्थापित करने की उसकी इच्छा नहीं थी। इसलिए वह देश को उजाड़कर और लूटमार कर वापिस चला गया। गजनी के छोटे से राज्य को उसने एक साम्राज्य मे परिणत कर दिया और एशिया के देशों मे उसने पूर्णतया धाक जमाली। ...... महमूद विद्या-प्रेमी था। ... शाहनामा का रचयिता फिरदौसी उसके दरबार मे रहता था। ...... महमूद के साथ अलबरूनी नामक विद्वान भारत मे आया था। उसने कुछ काल तक यहाँ रहकर भारतीय दर्शन, ज्योतिष और कतिपय अन्य शास्त्रो का अध्ययन किया था।[१]

"महमूद के विषय मे प्रसिद्ध इतिहासज्ञ इलियट की पुस्तक 'हिस्ट्री आफ गजनी' मे लिखा है कि महमूद मे हृदय का धैर्य था और हाथ की शक्ति थी। इन दो गुणों के कारण वह सिंहासन पर बैठने योग्य था। उदारता के क्षेत्रमे उसे कोई सम्मान नहीं मिला। सीपी जैसे मोती की रक्षा करती है वैसे ही वह अपनी सम्पत्ति की रक्षा करता था। उसके कोष-रत्नो से परिपूर्ण थे, परन्तु एक भी निर्धन उससे लाभ नहीं उठा सका।"[२]

"महमूद अत्यन्त महत्वाकाक्षी युवक था। ... उसने प्रतिज्ञा की कि मैं प्रति-वर्ष भारत के काफिरों पर आक्रमण करूँगा। ... महमूद की आकृति राजाओं की सी न थी उसका कद बीच का और शरीर हृष्ट-पुष्ट था किन्तु देखने में वह कुरूप था। शूरत्व भी उसमे असाधारण कोटि का न था फिर भी वह महान सेना-नायक और उतना ही अच्छा सैनिक था। वह बुद्धिमान तथा चतुर था और मनुष्यों को परखने का राजोचित गुण उसमे विद्यमान था।... ऐसा कोई व्यक्ति न था जिसके बिना उसका कार्य न चल सकता हो। ... प्रो० हबीब का मत है कि जीवन के प्रति महमूद का दृष्टिकोण पूर्णतया सासा-रिक था। अन्य भक्ति पूर्वक मुस्लिम उलेमा की आज्ञाओं का पालन करने को वह तैयार न होता था। विद्वान लेखक की यह भी धारणा है की महमूद धर्मान्ध न था। ... उसका दरबारी इतिहासकार उसके भारत पर आक्रमणों को जिहाद समझता था जिसका उद्देश्य इस्लाम का प्रचार और कुफ्र का मूलोच्छेदन करना था। अपनी – 'तारीख-ए-यामीनी' मे वह लिखता है,' सुल्तान महमूद ने पहले सिजिस्तान पर आक्रमण करने का सकल्प किया, किन्तु बाद मे उसने हिन्द के विरुद्ध जिहाद (धर्म युद्ध) करना ही अधिक अच्छा समझा।"[३]

---

१ डा. ईश्वरी प्रसाद भारतवर्ष का नवीन इतिहास, पृष्ठ ११६।

२. "He had both wisdom of heart and strength of hand,
with these two qualities he was fit to sit upon the throne"
"From genrosity he derived no honour,
Like as the shell guards the pearl
So he guarded his wealth,
He had treasuries full of jewels
But not a single poor man derived benefit there from.
इलियट एण्ड डाउसन - हिस्ट्री आफ गजनी, भाग २ पृष्ठ १२८।

३. डा. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनत, पृष्ठ ४१-४२।

इलियट के अनुसार ३१ वर्ष राज्य करके ६३ वर्ष की आयु मे सुल्तान महमूद राजयक्ष्मा और यकृत के रोग से १०६० मे मर गया।[1]

उपन्यासकार के अनुसार महमूद एक जहाँ दुर्दान्त बर्बर, डाकू, लुटेरा, विश्वासघाती, हिन्दुओ का प्रबल शत्रु है दूसरी ओर वहाँ वह एक मनुष्य है। उसके हृदय मे भी प्रेम की सलिला बहती है। वीरो का सम्मान करता है, स्त्रियो पर अत्याचार करने वाले अपने सिपाहियो को दण्ड भी देता है। इसका विस्तृत वर्णन आगे 'लेखक का उद्देश्य' मे करेंगे।

२– गुर्जरेश्वर (मूलराज)

'गुर्जरेश्वर सोलकियो का मूल पुरुष, जिसने गुजरात मे पट्टन का राज्य स्थापित किया, मूलराज प्रथम है। उसने सपादलक्षीय राजा चौहान विग्रहराज और तेलग सेनापति बारप से युद्ध किए। इन युद्धो मे बारप मारा गया और उसके दस हजार घोडे और अट्ठारह हाथी मूलराज के हाथ लगे। सभवत चौहान राजा विग्रहराज से उसने सधि कर ली।[2] परन्तु प्रबन्ध चिन्तामणि मे आगे चलकर यह भी लिखा है कि मूलराज विग्रहराज से डरकर कन्था दुर्ग मे भाग गया। पृथ्वीराज विजय काव्य और हम्मीर महाकाव्य ··· भी मूलराज की पराजय को ही ध्वनित करते है।[3]

"मूलराज ने अनहिलपट्टन मे त्रिपुर प्रासाद नामक मन्दिर बनवाया था द्वयाश्रय काव्य के अनुसार मूलराज दान पुण्य करने की भावना से अपने बडे पुत्र चामुण्डराय को राजकाज सौंप कर सिद्धपुर मे जाकर रहने लगे और बाद मे वहाँ जीवित अग्नि समाधि ले ली।'[4]

' मूलराज ने विक्रम सम्वत् १०१७ से १०५२ तक राज्य किया "[5]

उपन्यास मे मूलराज के विषय मे कुछ नही है। केवल इतना ही है कि सोलकियो का पहला राजा मूलराज था। मूलराज मामा को मारकर गद्दी पर बैठा। इसने पश्चिम मे कच्छ और काठियावाड तक अपनी सत्ता स्थापित की। दक्षिण गुजरात के राजा बारप का उसने हनन किया ··· इस राजा ने अनहिल्लपट्टन मे त्रिपुर प्रासाद नामक एक देवालय बनवाया। वृद्धावस्था मे मूलराज वानप्रस्थ हो सरस्वती तीर श्रीस्थल मे रहने लगा।[6]

३– चामुण्डराय (मूलराज का पुत्र)

"उसने मालवे के राजा सिन्धुराज (भोज के पिता) को युद्ध मे मारा। तब से ही

---

१. "He died of consumption and liver complaint in year 421 H, (1031 A D). His age was 63 years and he reigned 31."
इलियट एण्ड डाउसन हिस्ट्री आफ गजनी, भाग २ पृष्ठ १३६।

२. प्रबन्ध चिन्तामणि ; सोमनाथ (आधार), पृ. ४६ से उद्धृत।

३ 'अप्पंयवीर क्न वीरवीर —समव्य मान कृमराद युग्मम्।
श्री मूलराज समरे निहत्य यो गुर्जर वसुन्धरा मनंदति। ६
(नयचन्द्र सूरिकृत हम्मीर महाकाव्य (सोमनाथ (आधार) पृष्ठ ४६ से उद्धृत)।

४. द्वयाश्रय काव्य सर्ग ६ श्लोक १०३-१०७ —ले० हेमचन्द्र आचार्य।

५ सोमनाथ (आधार) : पृष्ठ ४८ के आधार पर।

६. सोमनाथ : पृष्ठ १३०।

गुजरात में सोलंकियों और मालवे के परमारों के बीच वंशपरम्परागत वैर हो गया और वे बराबर लड़ते और अपनी बरबादी कराते रहे। चामुण्डराय बड़ा कामी राजा था। उसकी बहन (चाचिणी देवी) ने उसको पदच्युत कर उसके ज्येष्ठ पुत्र वल्लभराज को गुजरात के राजसिंहासन पर बिठलाया। उसके तीन पुत्र वल्लभराज, दुर्लभराज और नागराज थे।"[1]

चामुण्डराय का वर्णन हमें कुमारपाल चरित्र में भी मिलता है। इसमें लिखा है कि 'मदान्मत्त हाथी के समान सिन्धुराज को चामुण्ड ने चामुण्डा देवी के वर से सशक्त होकर मारा'।[2]

"बडा नगर से मिली महाराज कुमारपाल की प्रशस्ति में - जो विक्रम सं० १२०८ अश्विन शुक्ल १५ गुरुवार की है लिखा है-कि "उस मूलराज का पुत्र, राजाओं में शिरोमणि चामुण्डराज हुआ जिसके मस्त हाथियों के मद-गन्ध की हवा के सूँघने मात्र से ही मद-रहित होकर भागते हुए अपने हाथियों के साथ ही साथ राजा सिन्धुराज इस तरह नष्ट हुआ कि उसके यश की गन्ध तक नहीं रही।"[3]

'हेमचन्द्र आचार्य ने अपने द्वयाश्रय काव्य में चामुण्डराज को गुणी, कर्तव्यपरायण शत्रुसंहारक, परोपकारी और धनी दिखाया है।"[4]

गुजरात की सभी ऐतिहासिक पुस्तकों में मूलराज के पश्चात चामुण्डराय को ही गुजरात का राजा वर्णित किया गया है। ताम्र पत्रों से भी यह प्रमाण परिपुष्ट हुआ है कि मूलराज के पश्चात् चामुण्डराय ही गुजरात का राजा बना।[5]

परन्तु सोमनाथ का चामुण्डराय कायर, अफीमची, विलासी है। वह एक दुर्बल मन और कच्चे दिल का आदमी था। वह चारों ओर खटपटी खुशामदी और जीहुजूरियों से घिरा रहता था।......वह नाच तमाशे और ऐश आराम में गर्क रहता था। भांड, वेश्या, नट और ऐसे ही लुच्चे लफंगे लोग सदा उसके पास भरे रहते थे।[6]

आचार्य चतुरसेन ने प्रयोजनवश चामुण्डराय को ऐसा चित्रित किया है। वे कहते हैं—'मैं तो उसके काल से हिन्दू राजाओं के उस असावधान जीवन की ओर संकेत कर रहा हूँ कि जिसके कारण हिन्दू राजा हारते ही चले गए।"[7] अमीर की सेना चामुण्डराय की छाती पर चढ़ आई और उसे अपनी विलासी प्रवृत्ति के कारण इसका पता तक ही नहीं।

---

१. डा० गौरीशंकर हीराचंद्र ओझा राजपूताने का इतिहास, पृ. २१५-२१६।

२ श्री जयसिंह सूरि : कुमारपाल चरित्र, पृ. ११३।

३. 'सूनुस्तस्य बभूव भूपतिलकश्चामुण्डराजा ह्वयो।
यद्गन्ध द्विपदानगन्ध पवन घ्राणेन दूरादपि ॥
विध्वस्त मद गन्धभग्नकरिभिः श्री सिन्धुराजस्तथा।
नष्टः क्षोणिपतिर्यथास्य यशसा गन्धापि निर्णाशितः ॥
ऐपिग्राफिका इण्डिका जि० १, पृ २९७।

४. श्री हेमचन्द्र आचार्य : द्वयाश्रय काव्य, सर्ग ७ श्लोक १–५६।
(सोमनाथ (आधार), पृ. ४९-५० से उद्धृत)'

५. सोमनाथ (आधार)—पृ० ५२। ६. सोमनाथ—पृ० १२०—१२१।

७. सोमनाथ (आधार—पृ० ५६।

४–दुर्लभराज :

"इसका विवाह नाडौल के चौहान राजा महेन्द्र की बहिन दुर्लभदेव से हुआ था। ......*उसका उत्तराधिकारी इसके छोटे भाई नागराज का पुत्र भीमदेव हुआ।*"[1]

रत्नमालाकार ने दुर्लभराज को सेवाव्रती, कर्त्तव्यपरायण एवं ज्ञानवान बताया है।[2] द्वयाश्रय काव्य में उसके विषय में लिखा है कि एकान्तवाद को निर्मूल ठहराकर तत्त्वज्ञानी दुर्लभराज ने सत्यता ग्रहण की।[3]

दुर्लभराज ने अपनी इच्छा से राज नहीं छोड़ा भीमदेव ने बलात् उससे राज्य छीना। अनेक विद्वानों का यही मत है। ......कुछ इतिहासकार दुर्लभराज को दम्भी और पाखण्डी कहते हैं। जैसा कि इतिहासकारों का कथन है कि दुर्लभराज ने भी महमूद से युद्ध किया होगा, महमूद ने सिद्धपुर का रुद्रमहालय भी भग्न किया था। फिर दुर्लभ ने महमूद की अधीनता स्वीकार कर अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा भी नहीं की। गुजरात की प्रजा भी दुर्लभराज को चाहती न थी, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है।[4]

"कुछ इतिहासकार दुर्लभसेन को दगाबाज और साहूकार चोर कहते हैं। अपना मतलब सिद्ध करने के लिये वह अच्छे बुरे की परवाह नहीं करता था। वह किसी पर भरोसा भी नहीं करता था। न उसे भाई भतीजे पर विश्वास था। ......वह असतोषी पुरुष था और मतलब पूरा करने के लिये वह दया, माया, नीति, अनीति की तनिक भी परवाह नहीं करता था। कहा जाता है कि उसने महमूद से सन्धि कर ली थी और अपने भाई वल्लभदेव को शत्रु के सुपुर्द करने में सहायता की था।[5]

दुर्लभराज के विषय में विभिन्न ऐतिहासिक विद्वानों के विभिन्न मत है। द्वयाश्रय काव्य की टीकाकार के अनुसार महेन्द्र मारवाड का राजा था और उसकी बहिन से *दुर्लभराज का विवाह हुआ था। उस समय मारवाड में नान्दौल के चौहान राज्य करते थे।*[6]

फार्ब्स अपनी सम्पादित रासमाला पुस्तक में इस ऐतिहासिक तथ्य को विपरीत रूप देकर लिखता है। उसके अनुसार दुर्लभराज ने अपनी बहिन दुर्लभदेवी का विवाह मारवाड के राजा के साथ किया। गुजरात का कोई भी इतिहासकार इसका समर्थन नहीं करता। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि फार्ब्स ने द्वयाश्रय काव्य का अर्थ जानने में गलती की है।[7]

प्रबन्ध-चिन्तामणि के अनुसार दुर्लभराज अपने भाई नागराज के पुत्र भीमदेव को राजगद्दी पर बिठाकर स्वयं यात्रा के लिये काशी की ओर चल दिया। जब वह मालव देश को पार कर रहा था तब वहाँ के राजा मुंज ने कहा कि यदि यात्रा के लिये ही तुम्हें जाना है तो छत्रचामरादि का त्याग करके जाओ अन्यथा मुझसे युद्ध करो। धर्म-कार्य में

१. डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा राजपूताने का इतिहास, पृ० २१५–२१६।
२. रत्नमाला, रत्न २ पृ० ३२।
३. श्री हेमचन्द्र आचार्य : द्वयाश्रय काव्य, सर्ग ७, श्लोक ६४।
४. सोमनाथ (आधार)—पृ० ५६। ५. वही—पृ० ५६।
६. सोमनाथ (आधार)—पृ० ५३। ७. वही—पृ० ५३—५४।

विघ्न स्वरूप यह सारा हाल उसने भीमदेव को पहुंचा दिया और स्वयं यात्री के वेश में काशी चला गया। प्रबन्ध-चिन्तामणि के अनुसार तभी से मालव और गुजरात में शत्रुता की नींव रखी गई।[1]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने लिखा है कि सोलंकियों के राजा चामुण्डराय के च्युत होने पर वल्लभराज राजा बना। उसने मालव पर आक्रमण किया और वहीं उसका देहान्त हो गया।...... प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार उसने ५ महीने २६ दिन राज्य किया।[2]

उपन्यास का दुर्लभदेव एक नीच प्रकृति का पुरुष है। गुजरात की गद्दी हथियाने के लिये उसने क्या नहीं किया, अपने पिता चामुण्डराय को मार डालने का षड्यन्त्र रचा और अमीर की सहायता की। वह मन्द बुद्धि था।

५–वल्लभराज :

"उसने मालवे पर चढ़ाई की परन्तु मार्ग में ही बीमार होकर मर गया। उस लगभग छः मास तक राज्य किया। उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई दुर्लभराज हुआ।"[3]

६–भीमदेव

भीमदेव के चरित्र का उल्लेख संस्कृत-ग्रन्थों में काफी मिलता है। प्रबन्ध चिन्तामणि में भीमदेव की सिन्ध पर चढ़ाई का वर्णन है।[4]

"चन्द्रावती नगरी का राजा धुंधक वीरों का अग्रणी था। जब उसने राजा भीमदेव की सेवा स्वीकार नहीं की तब राजा भीमदेव उस पर क्रुद्ध हुआ।......राजा भीम ने प्राग्वाट् वंशी मन्त्री विमल को अर्बुद का मन्त्री बनाया। उसने विक्रम सम्वत् १०८८ में अर्बुद के शिखर पर आदि नाथ का मन्दिर बनवाया।[5] जिन प्रभु सूरि ने भी इसका समर्थन किया है।[6] आबू के राजा कृष्ण राज को भीमदेव द्वारा कैद कर लिया जाना भी वर्णित है।[7]

"जैसे भीमदेव ने आबू के परमारों को अपने अधीन किया वैसे ही नाडौल के चौहानों पर चढ़ाई करके उन्हें अपने अधीन बनाया।"[8]

"रत्नमालाकार ने भीमदेव का शरीर पुष्ट, लम्बा, रोमवाला और वर्ण श्याम बताया है।[9] प्रबन्ध चिन्तामणि में भीमदेव की तीन रानियों का उल्लेख है।"[10]

---

१. प्रबंध चिन्तामणि—पृ० ४९—५०।
२. सोमनाथ (आधार)—पृ० ५२।
३. डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : राजपूताने का इतिहास, पृ० २१२–२१६।
४ प्रबंध चिन्तामणि—पृ० ७६।
५. एँपिग्राफिका इंडिका—पृ० १५५—१५६।
(देलवाड़े के आदिनाथ के जैन मंदिर के विक्रम सं० १३७८ ज्येष्ठ सुदी ६ का शिलालेख)
६. जिन प्रभु सूरि तीर्थकल्प का अर्बुद कल्प।
७ एँपिग्राफिया इंडिका—पृ० ७५—७६।
८. सोमनाथ (आधार)—पृ० ६०। ९. रत्नमाला—पृ० ३३।
१०. प्रबंध : चिन्तामणि—पृ० १३१।

"भीमदेव ने विक्रम सम्वत् १०७८ से ११११० तक राज्य किया। देहान्त के समय उसकी आयु लगभग ६० के थी।"[१]

"इंडियन एण्टीक्वेरी में भीमदेव के दो ताम्रपत्रों का उल्लेख है। प्रथम वि० सं० १०८६ कार्तिक सुदी १५ का है। इसमें भट्टारक अजयपाल को कच्छ का मसूर गाँव देना उल्लिखित है।[२] द्वितीय ताम्र पत्र वि० सं० १०६३ का है। इसमें ब्राह्मण गोविन्द को महमचापा गाँव में एक हलवाह भूमि देने का उल्लेख है।"[३]

"ई० सं० १०२५ में जब गजनी के सुल्तान महमूद ने गुजरात पर चढ़ाई कर सोमनाथ के प्रसिद्ध मन्दिर को जो काठियावाड़ के दक्षिण में समुद्र-तट पर है, तोड़ा, उस समय भीमदेव ने अपनी राजधानी को छोड़कर एक किले (कन्थकोट कच्छ में) की शरण ली।·······"भीमदेव ने अपने अन्तिम समय में क्षेमराज को राज्य देना चाहा, परन्तु उसने स्वीकार न किया और अपने छोटे भाई कर्ण को राज्य देकर वह मडकेश्वर में जाकर तपस्या करने लगा।"[४]

मुहम्मद नाजिम के अनुसार भीमदेव महमूद के डर से, कन्थकोट के दुर्ग में जहाँ वह शरणापन्न था, भाग गया। महमूद ने उस किले को जीता तथा लूटा और कच्छ की ओर आगे बढ़ा।[५]

आचार्य चतुरसेन सोमनाथ में भीमदेव का चित्रण परम निष्ठावान चरित्रवान, वीर, देश-प्रेमी, भगवद् प्रेमी के रूप में किया है। अपने प्राणों पर खेलकर उसने सोमनाथ की लाज बचाने का प्रयास किया। जब तक वह मूर्च्छित नहीं हो गया तब तक उसने रण-स्थल का त्याग नहीं किया। जबकि इतिहास के अनुसार वह एक कायर राजा था। उसने अमीर के डर से भागकर एक अन्य दुर्ग में शरण ली थी।

७—चौला

भीमदेव की नर्तकी पत्नी चौला का वर्णन 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में मिलता है। ······ श्री मदण हिलपुर पत्तने वृद्दनि श्री भीमदेवे साम्राज्य पालयति श्री भीमेश्वरस्य पूरे चउला देवी नाम्नी पण्यांगना ··· तामन्न परेण्यवान।[६]

प्रबन्ध चिन्तामणि में बकुलादेवी के स्थान पर चौला देवी पाठ मिलता है। मेरुतुंग बकुलादेवी ··· चौला देवी को पथभ्रष्टा वेश्या बतलाता है। परन्तु किसी ग्रन्थ या

१. सोमनाथ (आधार)—पृ० ६२।
२. इंडियन एण्टीक्वेरि, जि० ६, पृ० १६३। ३. वही—पृ० १०६, जि० १८
४. डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा राजपूताने का इतिहास, पृ० २१५–२१६।
५. "When Bhim Deva heard the news of Sultan's approach he fled from the fort of Kanthkot where he had taken refuge. The Sultan took the fort, gave it up to plunder and resumed its march accross Cutch."
डा० मुहम्मद नाजिम : द लाइफ एण्ड टाइम्स आफ सुल्तान महमूद आफ गजनी, पृ. ११६।
६. श्री के० एम० मुन्शी : जय सोमनाथ, पृ. ८।

शिलालेख से इसकी पुष्टि नहीं होती। भीमदेव के तीन पुत्र बतलाए हैं। मूलराज, क्षेमराज और कर्ण। क्षेमराज बकुलादेवी (चौला) से और कर्ण उदयमती से हुए।[1]

चौला सोमनाथ की नायिका है। सारा कथानक अधिकांशतः उनके ही इर्दगिर्द घूमता है। वह सोमनाथ महालय की नर्तकियों की अधिष्ठात्री है और महाराज भीमदेव की प्रेयसी है। गगसर्वज्ञ ने उसे भीमदेव को सौंप दिया था। वह गुजरात की राजमहिषी बनती परन्तु कुछ मन्त्रियों ने इसे ठीक नहीं बताया, तो गुजरात को गृह-कलह से बचाने के लिए वह फिर सोमनाथ महालय में अपने पहले रूप में चली गई। ऐसी महती है 'सोमनाथ' की चौला।

८– घोघा बापा

"घोघा बापा का पराक्रम कल्पित नहीं है इसके लिए मैंने अपने अंग्रेजी लेख में उद्धरण दिए हैं लेकिन वे उद्धरण कहाँ से लिए इसकी खोज करने का अवसर मुझे फिर नहीं मिला। इतना अवश्य है कि राजपूताने में अब भी एक स्थान 'घोघा देव का स्थल' नाम से प्रसिद्ध है।"[2]

उपन्यास में वर्णित घोघाबापा वह वृद्ध वीर है जिसने देश की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया। अपने जीते जी उसने अमीर को सोमनाथ की ओर नहीं बढ़ने दिया।

९– विमलशाह

"विमलशाह के सम्बन्ध में किसी विद्वान का कोई लेख नहीं मिलता है। परन्तु आबू वाले विमलशाह के मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिए एक शिलालेख से हमें इतना ही पता चलता है कि वह प्रागवाट् (पोरवाड) जाति का महाजन दृढ जैन धर्मावलम्बी और वीर प्रकृति का योद्धा था। उसके आबू के मन्दिर को देखकर यह कहा जा सकता है कि उसके पास अपरिमित धन-समृद्धि थी"[3]

"(भीमदेव ने) आबू के परमार राजा धुंधक से जो उसका सामन्त था, विरोध हो जाने पर अपने मन्त्री पोरवाड जाति के महाजन विमल (विमलशाह) की आधीनता में आबू पर सेना भेजी।[4]

केवल इतना ही वर्णन विमलशाह के विषय में मिलता है।

आचार्य चतुरसेन ने विमलदेव शाह को एक बुद्धिमान, वीर एवं त्यागी दिखाया है। वह गुजरात के शुभचिन्तकों में से था और वह अमीर को मार भगाने की योजनाओं में क्रियाशील रहा।

: ३ : सोमनाथ में वर्णित विशिष्ट स्थानों की ऐतिहासिकता

१– सपादलक्ष

साम्भर और अजमेर राज्यों के आधीन सम्पूर्ण देश सपादलक्ष कहलाता था।[5] विग्रहराज वीसलदेव सपादलक्ष का राजा था, ऐसा प्रबन्ध चिन्तामणि में लिखा है।[6]

---

१ सोमनाथ (आधार) पृ. ६१।
२ श्री के० एम० मुन्शी : जय सोमनाथ, पृ. ७। ३. सोमनाथ (आधार), पृ. ३।
४. डा० ओझा : राजपूताने का इतिहास, पृ. २१५-१६।
५. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ. ३३०-३३२। ६ सोमनाथ (आधार) : पृ. ६४।

२- प्रभासपट्टन

"सोमनाथ की प्रसिद्धि के अनेक कारण हैं। प्रथम तो प्रभासपट्टन तीर्थ ही बहुत प्राचीन है। महाभारत काल में यहीं पर यादवों का विग्रह और कुलक्षय हुआ था। ... प्रभास प्रथम ही सुपूजित तीर्थ था। फिर मध्यकाल में वहाँ सूर्य-मन्दिर तथा जैन-मन्दिरों के निर्माण होने से इस महातीर्थ की गणना और अधिक व्यापक हो गई और वह भारत का प्रसिद्ध तीर्थ हो गया। उसके बाद प्रसिद्ध मूर्ति भंजक महमूद के अन्तिम अभियान के कारण जिसमें सोमनाथ भग्न हुआ, उसने एक ऐतिहासिक महत्व धारण कर लिया। ... सोमनाथ का प्राचीन महालय जो बाद में मस्जिद के रूप में परिवर्तित कर दिया गया था अब केवल खण्डहर ही रह गया।"[1]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने प्रभासपट्टन के विषय में लिखा है कि "सौराष्ट्र के नैऋत्य कोण में समुद्र के तट पर वेरावल नामका एक छोटा सा बन्दरगाह और आखात है। ... आखात के दक्षिणी भाग की भूमि कुछ दूर तक समुद्र में घंस गई है, इसी पर प्रभासपट्टन की अति प्राचीन नगरी बसी है। .. अबसे लगभग हजार वर्ष पहले इसी स्थान पर सोमनाथ का कीर्तिवान महालय था। ... भारत के कोने-कोने से श्रद्धालु यात्री ठठ के ठठ बारहों महीना इस महातीर्थ में आते और सोमनाथ के भव्य दर्शन करते थे।"[2]

३– सौराष्ट्र

आचार्य चतुरसेन का कथन है कि आज भी सौराष्ट्र के गाँव-देहातों में घर घर रमते योगी लोग एक गीत गाया करते हैं। उसका अभिप्राय यह है कि-सौराष्ट्र में पाच रत्न हैं – घोड़े, नदी, स्त्री, सोमनाथ और हरि का निवास। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध सोमनाथ का महालय है जो काठियावाड़ के दक्षिण समुद्र तट पर स्थित है। आज इस तीर्थ को काठियावाड़ कहते हैं। परन्तु इससे प्रथम उसका नाम सौराष्ट्र अथवा सोर राष्ट्र था। सौराष्ट्र का अर्थ है— उत्तम राष्ट्र, सोर राष्ट्र का अर्थ है – सूर्य का प्रदेश।"[3]

४– सोमनाथ

सौराष्ट्र के सोमनाथ की ऐतिहासिकता के विषय में कोई सन्देह नहीं है। शिव-पुराण के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से सौराष्ट्र का सोमनाथ भी एक है और महत्वशील है—

'सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्री शैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकाल ओंकारं परमेश्वरम्।
केदारं हिमवत्पृष्ठे त्र्यम्बकं गौतमीतटे।
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुका वने।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशंच शिवालये।
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सप्तजन्म कृतं पापं स्मरणेन विनश्यति।"

"इस मंदिर का वर्णन संक्षेप में यह है कि दक्ष प्रजापति ने अपनी २७ कन्याओं का विवाह चन्द्र के साथ किया परन्तु चन्द्र ने एकमात्र रोहिणी के प्रति प्यार दिखाया। दक्ष ने उसे क्षय होने का शाप दिया जिस पर प्रभास-तीर्थ में चन्द्र ने मृत्युंजय रुद्र की।

१. सोमनाथ (आधार) पृ. ९१। २. वही, पृ. १-२। ३. वही, पृ. ३२।

आराधना की और छः मास तक निरन्तर घोर तप किया जिससे चन्द्र को मुक्ति और अमरत्व प्राप्त हुआ और रुद्र ने उनसे कहा कि कृष्ण पक्ष में तुम्हारी एक कला क्षीण होगी। शुक्ल-पक्ष में उसी क्रम से बढ़ेगी और प्रत्येक पूर्णिमा को पूर्ण चन्द्र हो जाया करेगा। इसके पीछे चन्द्र ने ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में उसी क्षेत्र में रुद्र की स्थापना की। वही यह सोमनाथ देवाधिदेव हैं जिनकी बड़ी भारी महिमा महाभारत, श्रीमद्भागवत और स्कन्द पुराणों में की गई है।"[1]

इलियट ने लिखा है, 'इतिहासवेत्ताओं का मत है कि सोमनाथ एक विशिष्ट मूर्ति है जिसे हिन्दू सब मूर्तियों में महान मानते हैं। परन्तु शेख फरीदुद्दीन अत्तर से हम इसके विषय में विपरीत बात सुनते हैं। वह कहता है कि 'महमूद की सेना ने सोमनाथ में उस मूर्ति को प्राप्त किया जिसे लाट (Lat) कहते हैं। इतिहासवेत्ताओं के अनुसार सोमनाथ समुद्र के किनारे पर स्थित देवालय में प्रतिष्ठित था।'[2]

सोमनाथ के विषय में आचार्य चतुरसेन लिखते हैं–"सोमनाथ महालय के निर्माण में उत्तर और दक्षिण दोनों ही प्रकार की भरतखंड की स्थापत्य-कला की पराकाष्ठा कर दी गई थी। यह महालय बहुत विस्तार में फैला था ··· । सम्पूर्ण महालय उच्चकोटि के श्वेत मर्मर का बना था। महालय के मण्डप के भारी-भारी खम्भों पर हीरा, *माणिक, नीलम आदि रत्नों की ऐसी पच्चीकारी की गई थी कि उनकी आभा देखने से नेत्र थकते नहीं थे।* ······ ऐसे छः सौ खम्भों पर महालय का रंग-मण्डप खड़ा था। इस मण्डप में दस हजार से भी अधिक दर्शक एक साथ सोमनाथ के पुण्य दर्शन कर सकते थे। ······ मण्डप के सामने गम्भीर गर्भगृह में सोमनाथ का अलौकिक ज्योतिर्लिङ्ग था। गर्भ-गृह की छत और दीवार पर रत्ती-रत्ती रत्न और जवाहरात जड़े थे। इस कारण साधारण घृत का दिया जलने पर भी वहाँ ऐसी झलमलाहट हो जाती थी कि आँखें चौंधिया जाती थीं। इस भूगर्भ में दिन में भी सूर्य की किरणें प्रविष्ट नहीं हो सकती थीं। वहाँ रात-दिन सोने के बड़े-बड़े दीपकों में घृत जलाया जाता था तथा चन्दन, केसर, कस्तूरी की धूप रात दिन जलती रहती थी। ·· *नियमित पूजन और नित्यविधि के समय ५०० वेदपाठी ब्राह्मण सस्वर वेद पाठ करते और तीन सौ गुणी गायक देवता का विविध वाद्यों* के साथ स्तवन करते, तथा इतनी ही किन्नरी और अप्सरा सी देवदासी नर्तकियाँ नृत्य-कला से देवता और उनके भक्तों का रिझाती थीं। नित्य विशाल चाँदी के सौ घड़े गंगाजल से ज्योतिर्लिङ्ग का स्नान होता था, जो निरन्तर हरकारों की डाक लगाकर एक हजार मील से अधिक दूर हरद्वार से मँगवाया जाता था। · सोमनाथ का यह ज्योतिर्लिङ्ग

---

१. सोमनाथ (आधार) पृ. १४।

२. Historians agree that Somnath is the name of a certain idol which the Hindus believe in as the greatest of idols but we learn the contrary of this from Sheikh Fariduddin Attar in that passage where he says, "The army of Mahmood obtained in Somnath that idol whose name was Lat" According to historians Somnath was placed in an idol temple upon the shore of the sea.

इलियट एण्ड डाउसन : हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग २, पृ. १९४।

आठ हाथ ऊँचा था। इससे स्नान, अभिषेक, शृंगार आदि एक छोटी सी सोने की सीढ़ी पर चढ़कर किया जाता था। सब सम्पन्न हो जाने पर आरती होती थी। ... यह आरती चार योजन विस्तार में सुनी जाती थी। मण्डप में दो सौ मन सोने की ठोस शृङ्खला से लटका हुआ एक महाघट था जिसका वज्र-गर्जना के समान घोर-रव मीलों तक सुना जाता था। ...... दस हजार से ऊपर गाँव महालय को राजा महाराजाओं के द्वारा अर्पण किये हुए थे। ... महालय के चारों ओर असंख्य छोटे-बड़े मन्दिर, घर, महल और सार्वजनिक स्थान थे तथा जिनसे महालय की शोभा बहुत बढ़ गई थी।"[1]

इलियट और डाउसन का वर्णन भी कुछ-कुछ इसी प्रकार का है।[2]

उपन्यास में कल्पना

उपन्यासकार आचार्य चतुरसेन ने अपने उपन्यास 'सोमनाथ' में कल्पना को प्रमुख स्थान दिया है। उपन्यास का मुख्य आधार यही है कि महमूद ने सोमनाथ पर आक्रमण किया। इस प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना को कल्पना के मुलम्मे से मँढकर जो रूप दिया है, वह उपन्यास का कलेवर बन गया है। तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों के इतिवृत्त को मौलिकता में अपनाया है। राजपरिवार की भित्ति को हिलाने वाली दूषित मनोवृत्ति का सहारा लेकर षड्यन्त्र होता है। देशभक्ति के साथ-साथ व्यक्तिगत स्वार्थपरायणता, राज्य विस्तार की लालसा, मानवीय सबलता और दुर्बलता को यथा स्थान सँजोया गया है। स्वार्थान्ध, देशद्रोह के अग्रदूत और भारतीय एकता का खण्डित करने वाले सुदूर भूत के इतिवृत्तात्मक स्थूल तथ्यों का सहारा लेकर ही वर्तमान कालिक मानव-मस्तिष्क और बुद्धि को आलोडित करने वाले प्रत्यक्ष सत्यों का काल्पनिक धरातल पर साकार करने में आचार्य जी ने अपनी कल्पना शक्ति का ही आश्रय लिया है।

कल्पना केवल कपोल-कल्पित अथवा मिथ्या के झीने आवरण से युक्त नहीं है। उसमें अतीत के प्राणों की झंकार सुनाई देती है। परिस्थिति-वश ऐतिहासिक उग्रताओं के सूक्ष्म रूप का दर्शन वर्तमान में आस्वादक बन गया है। आस्वाद की इस अनुभूति को अपने तक ही सीमित नहीं रखा जा सका। और तब कल्पना का आश्रय लेकर उसे विधिवत सजाकर उसकी प्राण प्रतिष्ठा कर उसे आकर्षक बनाने में जिस कल्पना का सहारा लिया गया है उससे लेखक की कला की शक्ति प्रकट होती है। अपने इस काल्पनिक आधार बिन्दु के विषय में स्वयं लेखक ने कहा है "मैंने तो उपन्यास में केवल इतना ही इतिहास का सहारा लिया है कि सोमनाथ पर महमूद का आक्रमण हुआ, और यह उसका अन्तिम आक्रमण था। सोमनाथ और महमूद के इतिहास मूल को लेकर मैं फिर स्वच्छन्द अपनी उपन्यास की मूर्तियाँ को गढ़ने लगा।"[3] अपने इस कथन के आधार पर ही स्थूल घटनाओं को

१. सोमनाथ : पृ २-३।

२. Two thousand brahmans were always occupied in prayers round about the temple. A gold chain weighing 200 Mds, on which bells were fixed hung from a corner of that temple. Three hundred musicians and five hundred dancing slave girls were the servants of that temple and all the necessaries of life were provided for them.
इलियट एण्ड डाउसन . हिस्ट्री ग़ज़नवी, भाग २. पृ. १८१।

३. सोमनाथ (आधार) —पृष्ठ ११।

सूक्ष्म मनोयोग से कल्पना के द्वारा वर्णन करने में लेखक की मौलिकता और कलात्मकता के दर्शन होते हैं।

नगरों के वर्णन में, महालय के वैभव-दर्शन में, सेनाओं के संगठन में, मन्त्रियों के मन्त्रणा-भवन में, राजा, मन्त्री, पुजारी, देवदासी आदि के अनुचिन्तन में, विजयी तथा पराजित अमीर के अनुशीलन में, जो कल्पना की गई है, वह लेखक की कला एवं मौलिकता को प्रकाशित करती है। मूल में जो कथा बिन्दु निहित है, उसी के सहारे आदि से लेकर अन्त तक घटनाओं का चक्र भ्रमित होता रहता है। एक के बाद दूसरी घटना कुतूहल और जिज्ञासा को जन्म देती आगे बढ़ती है।

लेखक द्वारा कल्पित प्रसंग इस प्रकार हैं —

१–निर्माल्य

उपन्यास के प्रारम्भ में हमें सोमनाथ की नायिका चौला के दर्शन होते हैं जब वह दद्दा चौलुक्य के द्वारा एक युवक के हाथों त्रिपुर-सुन्दरी के निर्माल्य-स्वरूप रुद्रभद्र के पास भेजी जाती है। युवक उसे लेकर सोमनाथ के महालय की धर्मशाला में आता है तो छद्मवेशी अमीर की दृष्टि उसके सौन्दर्य पर पड़ती है, उसे प्राप्त करने के लिए अमीर और उस युवक में तकरार होती है तो बीच में भीमदेव भी आ जाते हैं। इसी समय गगसर्वज्ञ आकर बीच बचाव करते हैं।[१] चौला को गगसर्वज्ञ की आज्ञा से सोमनाथ महालय की नर्तकियों की अधिष्ठात्री बनाया जाता है।[२] चौला जैसी सुन्दरी के हाथ से निकलकर जाने पर रुद्रभद्र बड़ा कुपित हुआ।[३] इन स्थलों में उपन्यास में एक कौतूहल जागृत हुआ है पाठक जिज्ञासावश अगले पृष्ठों पर दौड़ता है।

२–रुद्र-भद्र

अघोरी साधुओं ने समाज में बड़ा अत्याचार और धर्मान्धता फैलाई हुई थी। साधारण जनता क्या राजा महाराजा भी उनके चगुल में फँस जाते थे। उनकी पूजा-विधि बड़ी अजीब थी। वे त्रिपुर सुन्दरी की पूजा करते थे, मांस, मदिरा, स्त्री का सेवन करते थे। इन सबको और उनके धार्मिक वैमनस्य को लेखक ने विभिन्न काल्पनिक अध्यायों में बड़ी मधुरता के साथ निर्वाहित किया है।

जब रुद्रभद्र को अपनी निर्माल्य चौला नहीं मिली तो उसने कुपित होकर उस युवक को सोमा नामक युवती से फुसलाकर त्रिपुर सुन्दरी के मन्दिर में बलि देने को मँगवा लिया और उसकी बलि देने की तैयारी की।[४]

भैरवी चक्र उसकी पूजा की अजीब विधि होती है जिसके बारे में हम तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा के अन्तर्गत कह आए हैं। रुद्रभद्र ने भैरवी चक्र के लिए चौला को उठवाकर मँगवा लिया और उसे नग्न करके उसके मुँह में शराब डाली जाने लगी। इसी बीच गगसर्वज्ञ गगा और भीमदेव के साथ वहाँ आकर उन दोनों को मुक्त कराते हैं और त्रिपुर सुन्दरी के मन्दिर के पट बन्द कर देते हैं।[५] अब उसके क्रोध की सीमा न रही। इसी को रुद्रभद्र ने विधि-भंग कहा और लोगों में ऐसा विश्वास फैल गया कि वह महाकाल

१. सोमनाथ पृष्ठ ५–७। २. वही पृ. १७–२३। ३. वही पृ. ३१।
४. वही पृ. २४–२६। ५. वही पृ. ३५–३७।

को विनाश का निमंत्रण देने गया है।[1] उसका यह वैमनस्य इतना बढ गया कि उसने अमीर को अघोर वन मे बुलाकर अपनी अघोर सम्पदा दिखलाई और उसे विनाश लाने की प्रेरणा दी।[2]

रुद्रभद्र का कोप इस सीमा तक बढ गया कि अमीर के द्वारा सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण करते समय दद्दा चौलुक्य के सिर म चिमटा मारकर उन्हे घायल करके उनसे द्वारिका द्वार की चाबी ले ली और अमीर की सेना को अन्दर प्रवेश कराने के लिए द्वार खोल दिया।[3] सोमनाथ के मन्दिर में एक गुप्त मार्ग था जिसका पता भी रुद्रभद्र ने अमीर को दिया, और अमीर के सैनिक उस गुप्त मार्ग से अन्दर परकोटे मे प्रवेश कर गए।[4] सोमनाथ के पतन म इसका बडा हाथ था। फतह मुहम्मद न इसका शिरच्छेद किया।[5]

महाकालमोचन[6] उपर्युक्त अघोरी साधुओ के क्रियाकलाप एव धर्माचार का घृणास्पद एव आतंक फैलाने वाले चित्रो की अवतारणा करता है। इसमे दिखाया है कि वर्ष मे एक बार कार्तिकी अमावस्या को कालभैरव की मूर्ति को समुद्र स्नान के लिए अन्ध-गुहा से निकाला जाता था। लोगो मे यह आतंक था कि कालभैरव के कुपित होने से भयकर नरसहार होता है, पता नहीं किस पर उस दिन कालभैरव की कुदृष्टि पड जाए, स्त्रियाँ बच्चो को ताले अन्दर बन्द कर देती थी। इस अध्याय मे अद्भुत, भयानक एव वीभत्स रसो की त्रिवेणी बहती है। वर्णन कितना प्रभावोत्पादक है– "मूर्ति बडी विशाल काले पत्थर की थी। उसकी आकृति बडी विकराल थी। मूर्ति का पेट बहुत भारी था। वह बैठी मुद्रा मे थी। मूर्ति की आँखो के बडे-बडे पलक नीचे झुके हुए थे, जो बडे डरावने लग रहे थे। मोटे-मोटे ओठों में दो नुकीले दाँत बाहर चमक रहे थे। मूर्ति जजीरो से जकडी हुई थी, जिन्हे एक हजार मनुष्य पकडे हुए थे। हिन्दुओ का विश्वास था यदि ऐसा न किया गया तो मूर्ति दासत्व से मुक्त होकर भाग जाएगी और सबका विध्वस कर डालेगी।[7]

कालभैरव को स्नान कराया गया। उन पर रक्त चन्दन और रक्त-पुष्प चढाए गए। और यज्ञ-मण्डप रचकर अघोर तान्त्रिक विधि से रौद्र-यज्ञ किया गया। · अधकार-मयी रात्रि थी। ·· ठौर-ठौर पर तान्त्रिक-जन बकरा, कुक्कुट, भैसा, सूअर आदि बलि लिए खडे थे। एक महाकृष्ण-वर्ण व्यक्ति लाल लगोटा कमर म लपेटे बडा भारी खाण्डा हाथ मे लिए रक्त के कीचड मे खडा था। · इधर-उधर यहाँ वहाँ सैकडो जन दो-दो चार-चार पशुओ को उधेड तथा उनके अग अग काट मास टोकरो मे भर-भर कर ले जा रहे थे। कालभैरव के सम्मुख कटे हुए पशुओ का ढेर लग गया था तथा मद्य की नदी बह रही थी। ···एक प्रमुख तान्त्रिक विचित्र रक्तवर्ण वस्त्र पहने नरमुण्डो की माला गले में डाले यज्ञकुण्ड की धधकती अग्नि के सम्मुख खडा था।"[8]

इस प्रकार लेखक ने अघोरी साधुओ के इन क्रिया-कलापो के चित्रण स उपन्यास मे भय, रोमाच, आश्चर्य एव कौतूहल की सृष्टि की है।

---

१ सोमनाथ पृ० ४२–४५। २. वही पृ० ४६–५८। ३. वही पृ० ३४१।
४. वही पृ० ३७३। ५. वही पृ० ३६१। ६. वही पृ० ५६–६२।
७. वही पृ० ६०। ८. वही पृ० ६१–६२।

३-गंगसर्वज्ञ

सोमनाथ में कल्पित पुरुष गंगसर्वज्ञ का एक विशिष्ट स्थान है। वह उपन्यास के प्रारम्भ से लेकर सोमनाथ के विध्वंस तक पाठकों के मन पर छाया रहता है। आचार्य चतुरसेन ने गंगसर्वज्ञ को निष्ठावान सुन्दर आकृति वाला एवं त्याग की प्रतिमूर्ति दिखाया है। गंग सर्वज्ञ को देखकर हमारे सामने बापू महात्मा गांधी का रूप निखर आता है। उन में बापू के प्रथम दर्शन पाठक को उसके उपन्यास के प्रारम्भ में ही हो जाते हैं जब वह अमीर को आशीर्वाद देता है कि 'प्रतापी सुल्तान महमूद तुम चिरंजीव रहो वत्स, साधु वेश तुमने धारण किया है, पर तुम उसे निभा न सके। देव-स्थान में भी लड़ पड़े अब तुम भी तलवार को म्यान में करो।"[१]

महमूद गजनवी जैसे हिन्दू-धर्म के प्रबल शत्रु को आशीर्वाद देना गांधी जी की ही हिम्मत और विशालता थी, किसी मन्दिर के पुजारी की नहीं। इसीलिए लेखक ने गंग सर्वज्ञ में गांधी जी की प्रतिष्ठापना की है।

रुद्रभद्र के लिए लाई गई निर्माल्य चौला को गंगसर्वज्ञ ने सोमनाथ महालय की नर्तकियों के अधिष्ठात्री पद पर सुशोभित किया। इससे गंगसर्वज्ञ की दृढ़ता, विचार-शीलता और निर्भीकता का परिचय मिलता है। और उनकी दृढ़ता तथा निर्भीकता का अधिक परिचय उस समय मिलता है जब उन्होंने भयंकर रुद्रभद्र के त्रिपुर सुन्दरी के मन्दिर में पहुंचकर चौला तथा एक युवक को बलि दिए जाने से मुक्त कराया तथा त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर के पट बन्द करवा दिए।[२]

गंगसर्वज्ञ इतने महान और सुपूजित थे कि बड़े-बड़े राजा महाराजा भी उन-की आज्ञा नहीं टाल सकते थे। उनकी आज्ञा सब शिरोधार्य करते थे। अमीर को सोमनाथ के निकट सेना लेकर आया देखकर गंगसर्वज्ञ ने कहा "आज आप सब अंतिम बार सोम-नाथ का दर्शन कर लीजिए, अब से जब तक गजनी के अमीर का आतंक दूर न हो देव-पट बन्द रहेंगे। ... केवल मैं देवदास, एकमात्र देवार्चन करूंगा, आज मैं इस देवधाम और देवनगर के सब अधिकार गुर्जर युवराज भीमदेव को सौंपता हूं। आज से नगर और महा-लय पर उन्हीं का अबाध शासन चलेगा। आप सब लोग पूर्ण अनुशासन से इस विपत्काल में उनके आदेशों का पालन करेंगे।'[३]

सोमनाथ के मन्दिर का विध्वंस निश्चय समझकर गंगसर्वज्ञ ने चौला का हाथ भीमदेव के हाथ में दे दिया।[४] गंगसर्वज्ञ की ही आज्ञा से पाटन के बालकों, स्त्रियों तथा वृद्धों को खम्भात जाना पड़ा। चौला की इच्छा भीमदेव के प्रेम के कारण जाने की नहीं थी, और भीमदेव भी उसे नहीं भेजना चाहते थे परन्तु गंगसर्वज्ञ की आज्ञा टाली नहीं जा सकी।[५]

इनकी निर्भीकता और देव के प्रति निष्ठा की पराकाष्ठा के दर्शन उस समय होते हैं जब वे काल-रूप महमूद को सामने देखकर तनिक भी विचलित नहीं हुए और अमीर के

१. सोमनाथ : पृ० ६। २. वही– पृ० ३६, ३७। ३. वही– पृ० २६५।
४. वही– पृ० २७२–२७३। ५. वही- पृ० २७६-२७६।

पूछने पर कि यहाँ कौन है, "मैं और मेरा देवता,"[1] शान्त स्वर में बोले। तब अमीर से गग सर्वज्ञ ने कहा, "वत्स महमूद कुछ क्षण ठहर जा।" और नितान्त शान्त मन से अपनी अर्चना विधि में लग गए। महमूद और उसके साथी इस अप्रतिम देव और उस देव के सेवा-पुरुष को निर्निमेष देखते खड़े रहे। शीघ्र ही सर्वज्ञ ने अर्चना-विधि समाप्त की फिर ज्योतिर्लिंग से सटकर बैठ गए और महमूद से कहा, 'अब तू अपना काम कर महमूद।"

और महमूद ने गुर्ज के प्रहार से गग सर्वज्ञ का प्राणान्त कर दिया।[2]

वास्तव में गांधी जी भी ऐसे ही निर्भीक और आत्मा की महान शक्ति लिए हुए थे। वे कभी किसी के समक्ष नहीं झुके। उन्होंने अपनी मर्यादा कभी नहीं छोड़ी। इंगलैंड को अपना नियम भंग करके उन्हें लंगोटी में ही बातचीत के लिए बुलाना पड़ा। नोआखाली में वे अपने प्राणों की चिन्ता किये बिना साम्प्रदायिकता की अग्नि में कूद पड़े। ठीक इसी प्रकार के गगसर्वज्ञ थे, वे भी बड़े से बड़े सम्राट के समक्ष कभी नहीं झुके, कभी मृत्यु से डरे नहीं।

उपन्यास में गगसर्वज्ञ के कारण काफी सजीवता आई।

४-अमीर के गुप्तचर

गुप्तचरों का राजनीति में बड़ा योगदान रहता है। पहले भी था और आज भी है। महमूद के भारत पर आक्रमण के समय हिन्दुओं की गुप्तचर-व्यवस्था नितान्त दुर्बल थी। अमीर ने इस विषय में भूल नहीं की। और सोमनाथ पर आक्रमण से पूर्व ही उसने अपने अनेक गुप्तचर स्थान-स्थान पर साधु, संतों और फकीरों के रूप में छोड़ दिये थे। अमीर की विजय के ये गुप्तचर बहुत बड़े कारण थे। उसके गुप्तचर निम्न प्रकार थे।

४-१ मौनी बाबा—यह सोमनाथ के आसपास एवं मन्दिर के खंडहर में रहता था और सोमनाथ के सम्बन्ध में सूचनाएं अमीर को भेजता था। चूंकि यह मौन धारण किये रहता था इसलिए लोग मौनी बाबा कहने लगे थे।[1]

४-२-पीरो मुर्शद—यह प्रख्यात ऐतिहासिक पुरुष अलबेरूनी था। उपन्यासकार ने उसका कल्पित रूप लिया है। इसने देव स्वामी को यवन-धर्म में दीक्षित किया और सब्जबाग दिखलाए। फलतः सोमनाथ के पतन में वह अमीर का बहुत बड़ा सहायक हुआ। अमीर को लेकर यह रुद्रभद्र से मिलने गया। इसने अमीर की काफी सहायता की।[4]

४-३-अलीबिन उस्मान अलहजवीसी अमीर का यह गुप्तचर लाहौर में रहता था। इसने अमीर की सबसे अधिक सहायता की। यह एक माना हुआ संत था। मुल्तान के राजा अजयपाल के इसकी दुआ से पुत्र उत्पन्न हुआ था, इसी धौंस में इसने अजयपाल से अमीर को रास्ता दिलवाया और अमीर की राह का सबसे बड़ा कांटा निकल गया।[५ क]

४-४-शाह मदार—अमीर का यह गुप्तचर अजमेर में था। इससे भी अमीर को बड़ी सहायता मिली। अजमेर के महाराज धर्मगज देव के पतन का यह सबसे प्रमुख कारण था। इसी ने अजमेर के मंत्री के पुत्र सोहल से अमीर के जीतने की योजना को क्रियान्वित कराई।[6]

१. सोमनाथ : पृ० ३७८। २. वही- ३७८-३७६। ३. वही—पृष्ठ ३८-४६।
४. वही—पृष्ठ ७१-७२। ५. वही पृष्ठ—६८-७०। ६. वही—पृष्ठ १६४-१६७।

उपन्यास में इन गुप्तचरों की कल्पना से कोई विशेष बात उत्पन्न नहीं हुई। केवल एक परिचय मिलता है कि अमीर कितना सतर्क था।

५–अमीर (महमूद गजनवी) की चारित्रिक विशेषताएँ

१–० अमीर का चौला के प्रति आकर्षण तथा प्रेम—उपन्यास के प्रारम्भ में ही जब अमीर निर्माल्य चौला को देखता है तो उस पर तुरन्त ही आसक्त हो उठता है और उसकी प्राप्ति के लिए पहले तो स्वर्ण-मुद्राएँ देता है फिर मोतियों की माला। इतने पर भी जब उस नहीं मिलती तो तलवार से उद्धत होता है।

मौनी बाबा से भी वह कहता है कि उस नाजनीन पर नजर रखना।[1] अमीर का चौला के प्रति मोह का दमन अलीदिन उस्मान अलहजवीसी के सम्मुख और रूप तीव्र में मिलता है। अमीर इस सत स कहता है कि चौला मेरा दीना ईमान है, इस्लाम से भी ऊपर है।[2]

इतिहास-प्रसिद्ध बात है अमीर महमूद इस्लाम का सबसे बड़ा समर्थक था। सोमनाथ के पुजारियों ने इससे कहा था कि जितना धन मांगोगे हम देंगे, तुम इसे भग न करो तो उसने उत्तर दिया कि महमूद मूर्ति तोड़ने वाला है बेचने वाला नहीं।[3] उस महमूद को उपन्यासकार ने एक स्त्री के प्रेम में इतना पागल बना दिया कि वह उस स्त्री के बदले सोमनाथ के विध्वंस को टाल सकता है।[4] उस स्त्री को अपने इस्लाम से भी ऊपर समझता है।

सोमनाथ के विध्वंस के पश्चात् वह चौला की खोज में खम्भात की ओर चलता है। वहाँ पहुँचकर वह कहता है, "बहादुरो, इन पत्थरों के उस पार गजनी के अमीर की इज्जत, गैरत और जिन्दगी बंद है जो कोई सबसे पहले फसील पर चढ़कर पहला बुर्ज दखल करेगा, उसे गजनी का अमीर अपनी आधी दौलत देगा।"[5] इसी से उसके प्रेम का अनुमान लगाया जा सकता है।

अमीर के प्रेम की पराकाष्ठा के दर्शन उस समय होते हैं जब वह कच्छ महारन में प्रवेश करने को लाचार हो उठता है और उसे अपने जीवन की कोई आशा नहीं रह पाती, तब उसने अपनी प्रेयसी से कहलाया, "खुदा का बन्दा महमूद दौराने गर्दिश में है, वह आपको आजाद करता है, आप जहाँ भी चाहे चली जाएँ। अब्बास अपने पाँच सौ सवारों के साथ आपकी रकाब के साथ हैं।"[6]

अमीर सम्बन्धी इन स्थलों में लेखक का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है जिसका वर्णन हम आगे 'लेखक का उद्देश्य' के अन्तर्गत करेंगे।

५–१–अमीर का मानवीय गुण—अमीर में मानव की प्रतिष्ठापना लेखक ने अपने विशिष्ट उद्देश्य मानववाद को दिखाने के लिए की है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिय लेखक ने इतिहास के महमूद को विकृत कर दिखाया है। आचार्य चतुरसेन के सोमनाथ का यह उद्देश्य उपन्यास का महाप्राण है।

अमीर में हमें सर्वप्रथम एक महामानव के दर्शन उस समय होते हैं जब सोमनाथ

---

१ सोमनाथ पृष्ठ७–८। २. वही—पृष्ठ ४१। ३. वही—पृष्ठ ७४। ४. वही—पृष्ठ २८३। ५. वही—पृष्ठ ३२५। ६. वही—पृष्ठ ४१५। ७. वही—पृष्ठ ४१३।

के पतन के बाद रमाबाई उसे फटकारती है तो वह रमा से कहता है—'औरत, तू माँ है, माँ के बिना महमूद पैदा ही न हो सकता था··· ···अब माँ आगे बढ़ और इस बच्चे के सिर पर हाथ रखकर इसे दुआ बख्श जिसने तीस वर्ष तक धरती को अपने पैरों से कुचल कर उसे लोहू से लाल किया है। ·· ···बहुत लोग मुझ से अपने राज्य और दौलत के लिए लड़े, लेकिन इन्सान के लिए आज तक मुझ से कोई नहीं लड़ा। ·· वह औरत जो मेरे सामने खड़ी है, उसने मुझे एक नई बात बताई है जिसे मैं नहीं जानता था। इसके हाथ में तलवार नहीं है, तलवार का डर भी इसे नहीं है। यह रोती और गिड़गिड़ाती नहीं। बादशाहों के बादशाह महमूद को फटकारती है, इन्सान के प्यार ने इसे इस कदर मजबूत बनाया है। ·· इसने महमूद को माँ की तरह नसीहत दी है··· इज्जत के साथ इस बादशाहों के बादशाह की माँ को उसके घर पहुँचा दें और इसका हर एक हुक्म बजा लाएँ। यह महमूद इस औरत का बेटा है और इतना ही नहीं, महमूद ने रमाबाई की आज्ञा से तुरन्त पाटन से कूच बोल दिया।"[1]

महमूद जैसे दुर्दान्त बर्बर डाकू के अन्दर लेखक ने एक मानव की प्रतिष्ठा की है। यह लेखक का बहुत बड़ा उद्देश्य था।

लेखक ने मानव की प्रतिष्ठापना के दर्शन महमूद में एक और स्थान में किये हैं। उपन्यास के अन्त में महमूद शोभना को लेकर लाहौर पहुँच जाता है। वह शोभना को चौला समझे हुए है। हम ऊपर बता आए हैं कि चौला महमूद के लिए उसके दीन ईमान से भी उपर थी। लाहौर पहुँचने पर शोभना उससे कहती है, "मैं शोभना हूँ, चौला नहीं। मैंने अमीर के वफादार सिपहसालार को कत्ल किया और अमीर को धोखा दिया है।"[2] इसका अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है कि यह अमीर की कितनी भारी पराजय थी और अमीर जैसा बर्बर क्या कुछ नहीं कर सकता था उस समय। पर 'सुनकर अमीर देर तक मौन बैठा रहा, फिर उसने कहा ··· ·· खुदा के बन्दे की नीयत बद थी, जिसकी सजा खुदा ने अपने बन्दे को दी। ···· महमूद ने जमीन तक झुककर शोभना का पल्ला चूम लिया। और जार-जार आँसू बहाने लगा।"[3]

इन काल्पनिक मनोहारी स्थलों में लेखक ने महमूद को इतना धोया माँजा है कि उसका सारा कलुष धुल गया और वह बर्बर डाकू केवल मानव रह गया—न वह बादशाह रहा न डाकू लुटेरा, वह रह गया केवल एक मानव जिसके अन्तर में पाप तक को भी पवित्र कर देने वाली प्रेम की गंगा बह रही थी।

५—२ अमीर का वीर सम्मान—चूँकि अमीर स्वयं वीर था इसलिए उसे वीर का सम्मान करने वाला होना चाहिए था। यद्यपि इतिहास के महमूद के विषय में कुछ इस प्रकार का वर्णन नहीं मिलता है। परन्तु उपन्यासकार ने उसे ऐसा ही वीर दिखाया है जो परम शत्रु वीर का भी सम्मान करे। यदि उपन्यासकार इतनी सी भी पच्चीकारी नहीं कर सका होता महमूद के निर्माण में तो उसमें और इतिहासकार में अन्तर ही क्या रह गया होता। इतिहास के महमूद को कौन गले लगा सकता है? वह महाघृणित है,

१. सोमनाथ पृष्ठ ३८६—८७। २. वही—पृष्ठ ३४१। ३. वही-पृष्ठ ३४२।
४. वही—पृष्ठ ३०१।

पर चतुरसेन महमूद को तो पाठक गले से लगाता है। यही तो कौशल है एक कथाकार का।

दामो महता, द्वन्द्व युद्ध मे महमूद को पछाड देता है। महमूद उसे अपनी छावनी मे ले जाता है और दामो महता के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता है। महमूद उससे कहता है " दोस्त, गजनी के अमीर की जान तुम्हारी अमानत है। अमीर उठकर महता के गले मिला। खीमे के द्वार तक साथ आया। खीमे के बाहर अमीर के साथ मनसबदारों ने उसे विदाई दी।[1]

इतना ही नहीं अमीर की विलक्षण वीर-पूजा के और स्पष्ट दर्शन तो हमें उस समय होते हैं जब वृद्ध कमालाखानी ने अपनी तलवार के जौहर से अमीर की सेना को कपा दिया। पर वह वृद्ध अमीर की विशाल वाहिनी के समक्ष क्या मूल्य रखता था। वह कट मरा। अन्तिम सांस लेते हुए वृद्ध कमालाखानी के शौर्य को देखकर अमीर ने लपक कर उन्हें अंक में भर लिया। उसकी आंखों में आंसू भर आये। उसने कहा, "कच्छ के विजयी महाराज, आपकी इस अकेली तलवार ने दिग्विजयी महमूद का जेर किया है। ··· ···अमीर ने हुक्म दिया, 'अय बहादुरो घोडों से उतर पडो, हथियार जमीन पर रख दो और बहादुरों के बादशाह इस बुजुर्ग की इस तलवार के सामने सिर झुकाओ।' ··· अमीर की आंखों से भर भर आंसू बह चले। उसने दोनों हाथों से वृद्ध क्षात्र की तलवार लेकर आंखों से लगाई। उसे चूमा और उस वीरवर के वक्षस्थल पर स्थापित कर अपना सिर भी उसके निस्सन्दित वक्ष पर झुका दिया। - ···अमीर ने बहुत खोज की, पर दुर्ग मे एक भी जीवित क्षत्रिय न मिला जो वीरवर कमालाखानी की, ऊर्ध्व दैहिक क्रिया करता। अमीर ने तब अपने उमराव क्षत्रिय सरदारों को आदरपूर्वक वीर की अन्तिम क्रिया धर्मानुसार करने की आज्ञा दी। वह स्वयं नंगे पांव ज्यादा कुछ दूर तक अर्थी के साथ चला।"[2]

भला इतिहास के महमूद का आंसुओं से क्या मतलब, किसी हिन्दू की ऊर्ध्व दैहिक क्रिया से क्या मतलब, किसी के प्रति गर्दन झुकाने से क्या मतलब ? वह तो नितान्त बर्बर और राक्षसी वृत्ति का असभ्य लुटेरा था। पर चतुरसेन ने अपने महमूद को पूर्ण सभ्य दिखाया है। उपन्यास में चतुरसेन को महमूद को धो माजकर निर्मल बनाने का मोह बराबर बना रहा है।

५-३ अमीर का न्याय—अमीर जैसा वीर था वैसा ही न्यायी था। उसके न्याय के हमें सर्वप्रथम दर्शन अजमेर के मंत्री पुत्र और उपसेनापति सोटल को पुरस्कार देते समय होते हैं। सोटल ने अजमेर को विजय दिलाने के बदले यह तय किया था कि जय के पश्चात् अमीर मुझे अजमेर का महाराजा मानते। सोटल को बुलाकर अमीर ने कहा, 'अपने वायदे के मुताबिक हम तुम्हें अजमेर राजा मंजूर करते हैं—लेकिन तुमने अपने मालिक से दगा की है इसलिये हम तुम्हें अजमेर के राजा के उत्तराधिकारी के सुपुर्द करते हैं और तुम्हारी कारगुजारी से भी उसे आगाह किये देते हैं।" और अमीर ने मीर मुंशी को हुक्म दिया, "इस आदमी की तमाम हकीकत लिखकर, इसे हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड कर राजपूतों के सुपुर्द कर दो।"[3]

१. सोमनाथ पृष्ठ–३०६ २. वही पृष्ठ–३६६-६७ ३. वही पृ० ३२०।

इस घटना के अतिरिक्त एक और काल्पनिक घटना है, जहाँ हमे अमीर की इसी प्रकार की न्यायप्रियता के दर्शन होते हैं। अमीर के एक सिपहसालार ने एक बन्दिनी पर बुरी नजर डाली तो अमीर ने उसे बुलाकर कहा, "तूने यह जानकर भी कि वह दूसरे की औरत है, तूने उस पर बद नजर डाली।''''''जग-जग है। लेकिन बुजग की वहाँ गुंजायश नहीं''''''न बदनीयती की।''''''मैं हुक्म देता हूँ कि वह औरत अपने हाथ से इस बदबख्त मसऊद को नंगा करके सब सिपाहियों के रूबरू पचास दुर्रे लगाए और वह खोटा और बेईमान मसऊद अब से सिपहसालार नहीं, अदना सिपाही रहे।"[1]

इतिहास का महमूद ऐसा नहीं था। उसने हिन्दुओं के भगवान की लाज नहीं छोड़ी उनकी औरतों की लाज तो क्या छोड़ता। पर उपन्यासकार तो पाठक को उस दुर्दान्त की अन्तरात्मा से झाँकने को विवश करता है, जहाँ ईश्वर का निवास है। यह बर्बरता तो एक रोग है जो समय की, वातावरण की औषधि से ठीक हो जायेगा। इस रोग के हो जाने पर मानव को काट डालकर फेंकने के पक्ष मे चतुरसेन नहीं, उसके सुधार की आशा रखने को वे कहते हैं।

माना कि वे इतिहास के महमूद म विकृति लाये हैं। पर इस विकृति से इतिहास की आत्मा का हनन तो नहीं हुआ। वह ज्यूं की त्यूं है। चतुरसेन के महमूद ने भी सोमनाथ का विध्वंस किया, सहस्रों नरो का संहार किया। उपन्यासकार श्री चतुरसेन ने इतना कर दिया है कि चूँकि वह मनुष्य था, इसीलिये इसक अन्दर सद्गुण भी थे, भले ही वे अल्प मात्रा मे हो और पाठक दुर्गुणी व्यक्ति म भी सुधार की आशा रखे, उसे गाँधी जी की भाँति गले से लगाये।

५-४ अमीर का अत्याचार —अमीर ने असंख्य नरो का संहार किया। उसके अत्याचारों की सीमा नहीं। उसने अपने सोमनाथ के सफल अभियान के पश्चात् बंदियों का एक बहुत बड़ा काफला अपने साथ ले लिया और उन्हें कत्ल करने की ठान ली। बंदियों के इस काफले पर अत्याचारियों ने घोर अत्याचार किए गए।[2]

इस अध्याय की कल्पना, पाकिस्तान बनने के समय के काफलों को, जो अपना सब कुछ लुटवाकर भारत के अन्दर को घुस आये थे, चित्रित करने के लिये की है। लेखक ने ऐसा स्वीकार किया है। इसका वर्णन हम 'लेखक का उद्देश्य' मे करेंगे।

६—कृष्णस्वामी और रमाबाई :

कृष्णस्वामी बड़े निष्ठावान ब्राह्मण थे। य सोमनाथ महालय के अधिकारी थे। अपनी पत्नी रमाबाई की सेवा के लिये इन्होंने एक शूद्रा दासी रखली जिसपर इनका मन ललच आया और विधि का विधान कि इनसे उस शूद्रा दासी के गर्भ रह गया और एक पुत्र (देव स्वामी) का जन्म हुआ। रमाबाई से इनके एक लड़की थी शोभना जो बचपन म ही विधवा हो गई थी।[1]

कृष्णस्वामी की कल्पना महत्वपूर्ण है। य ऐसे दो पात्रो शोभना और देवस्वामी के पिता हैं, जिनके आधार पर समस्त उपन्यास का चक्र घूमता है और ये दोनो पात्र

१. सोमनाथ -पृ० ४८१। २. वही—पृ० ४६३-४६७। ३. वही-पृ० ६३-६७।

विशेष उद्देश्य को लेकर कल्पना किए गये हैं। अब कृष्णस्वामी के विषय में कुछ कह देना आवश्यक था।

रमाबाई बड़ी विचक्षण थी। कानी-कलूटी भारी भरकम, मोटी आँखों वाली थी रमा। जब यह अमीर से नहीं घबराई तो बेचारे कृष्णस्वामी से तो क्या घबराती। अमीर के आक्रमण के समय सबको राजा की आज्ञा का पालन करना पड़ा कि सब स्त्रियाँ पाटन छोड़कर खम्भात चली जाएँ पर पतिव्रता रमा नहीं गई।[१]

७—शोभना .

शोभना उपन्यास की नायिका तो नही है, परन्तु नायिका से किसी भी अंश में इसका मूल्य कम नहीं है। यह ब्राह्मण-विधवा वैधव्य के नियमों को नहीं मानती थी। सब शृंगार करती थी।[२] देव स्वामी शूद्र था, यह जानते हुए भी यह उसे प्यार करती थी।[३] देवस्वामी ने यवन धर्म स्वीकार कर लिया। उसके इस पतन से भी यह ब्राह्मण विधवा नष्ट नहीं हुई।[४] ऐसा था इसका प्रेम। अपने इसी प्रेमी की इच्छा की पूर्ति के लिये यह चौला की प्रिय इसलिये बनी कि उसके पास रह सके और समय पड़ने पर चौला को अमीर के हवाले करवाने में फतह मुहम्मद की सहायता करे।[५] परन्तु चौला के सान्निध्य में इसे चौला से प्रेम हो गया और इसने चौला को देने से फतह मुहम्मद को मना ही नहीं किया अपितु अपने प्रेम के लिये फतह मुहम्मद से अमीर का सिर काट लाने को भी कहा। परन्तु वह नही माना और चौला को ले जाने की हठ करने लगा।[६] शोभना ने उसे एकान्त में ले जाकर तलवार से उसका शिरच्छेद कर दिया।[७] अमीर की सेना इस दुर्ग में प्रवेश कर गई थी। इस दुर्ग में केवल दो प्राणी थे शोभना और चौला। शोभना ने सोचा कि अब मेरे जीवन में क्या रह गया है इसका कुछ उपयोग होना चाहिये, तो उसने चौला को गुप्त मार्ग से निकाल दिया और स्वयं चौला का रूप धारण कर बैठ गई।[८] कितनी विचक्षण हो सकती है वह स्त्री जो त्याग की इतनी उत्कृष्ट चोटी पर पहुंच जाये कि अपने प्राणप्रिय तक का सिर तलवार से काट डाले। पर यह सम्भव नहीं है कि अपने प्रेमी का सिर काटकर वह शान्त बैठ जाए और आँसुओं को पी जाए। शोभना भी अपने हृदय के उफान को न दबा सकी और अमीर को आश्वस्त कर कि तुम्हारी शरण हूँ थकी हूँ अतः आराम करना चाहती हूँ, कहकर अन्दर से कुण्डा लगा लिया और फतह मुहम्मद के शव को छाती से लगाकर फूट पड़ी। हृदय का बहुत कुछ विष आँसुओं के माध्यम से निकल जाने पर उस वीर शोभना ने अपने देवा (फतह मुहम्मद) की अन्तिम क्रिया की। तलवार से गड्ढा खोदा और अपने हाथों से अपने प्रेमी को दफ्न कर दिया।[९]

अब शोभना अमीर के साथ वापस पाटन की ओर चली। आगे चलकर चौला उससे एक दासी के रूप में मिलने आई तो उसने चौला को तुरन्त ही वापस यह कहकर भेज दिया कि इस दुर्दान्त पशु को मैंने पालतू बना लिया है आप जाइये और महाराज भीमदेव की रक्षा कीजिये।[१०]

---

१. सोमनाथ—पृ० २८५–२८७। २. वही—पृ० ६४। ३. वही—पृ० ६६। ४. वही—पृ ७०।
५. वही—पृ० २८४। ६. वही—पृ० ४३५। ७. वही—पृ० ४३६। ८. वही—पृ० ४३६।
९. वही—पृ० ४५०–४५२। १०. वही—पृ ५०२।

अमीर महमूद कच्छ के महारन की ओर चला। सामने भयकर सकट देखकर उसने शोमना को, जिसे वह चौला समझे हुए था, मुक्त करने को कहा परन्तु शोमना ने स्वीकार नहीं किया। यहाँ शोमना का चरित्र एकदमविपरीत दिखाया है। आगे चलकर शोमना की विलक्षणता और भी बढ जाती है, जहाँ वह पाठको की आशा के अनुकूल अवसर मिलने पर भी महमूद का वध नहीं करती है और उल्टे रेत मे दबे हुए महमूद को, रेत से निकालती है और यह देखकर कि उसकी साँस चल रही है, उसका रोम-रोम नाच उठता है। वह धीरे से झुकती है और अमीर के सूखे निस्पन्द होठो पर अपने जलते हुए होंठ रख देती है।[1]

आचार्य प्रवर अपनी शोमना पर लट्टू हैं। वे कहते हैं—"जो स्त्री अपने एकान्त प्रेमी का सिर काट सकती है और धर्म और मानवता के शत्रु को अपना निश्छल प्यार अर्पण कर सकती है, उसको कितना प्यार दिया जाये और उसकी कितनी पूजा की जाए।[2] और हम लट्टू हैं उनकी कलम पर जिन्होंने अपनी शोभना की विलक्षणता इतनी बढा-चढाकर दिखाई कि उसे महमूद के साथ गजनी पत्नी रूप मे भेज दिया।[1] तेली पर जाट की कहावत की तरह, कि तेली रे तेली तेरे सिर पर कोल्हू, भले ही तुक न लगी हो पर तेली बोझ तो मरेगा, ऐसे ही बात हमे यहाँ दीख पडती है। भले ही शोमना में विकृति आगई हो पर वे तो उसे विलक्षण बना गए। माना कि लेखक शोभना के द्वारा महमूद की हत्या नहीं दिखा सकता था पर शोमना उस पशु को अधमरा करके तो वापस आ सकती थी। पर हिन्दुस्तान मे आचार्य जी की शोभना के लिये कोई पुरुष नहीं बचा था जो उसे ग्रहण करता, अत उसे उन्होने गजनी भेज दिया। यदि हिन्दुस्तान में उस स्त्री के लिये कोई पुरुष नहीं बचा था तो कम से कम तीर्थ स्थान तो थे, जहाँ वह अपने प्रेमी के पीछे, जिसका उसने सिर काट डाला था, साध्वी बनकर भ्रमण करती। शायद लेखक ने यही दिखाया है कि औरत को आदमी की जरूरत है और वह उसे जहाँ भी मिलेगा, ले आयेगी, या उसके पास पहुंच जाएगी। पर हम तो रात दिन ऐसी साधारण स्त्रियो को देखते हैं जो बचपन मे ही विधवा हो गई थीं और जिन्होने कभी पुरुष का मुख तक भी नही देखा। खैर अपना यह विषय नही है। अस्तु

शोभना सोमनाथ की ऐसी काल्पनिक सृष्टि है जो पाठक को चमत्कृत करती है, आश्चर्य मे डालती है। शोभना की सृष्टि मे उपन्यास म शृगार, वीर, अद्भुत, करुण आदि रसो की धाराएं बही हैं और उपन्यास मे अच्छी गति आई है, रमणीयता आई है।

८ चौला.

चौला यूं तो ऐतिहासिक पात्र है, परन्तु इसकी सृष्टि कल्पना के आधार पर की गई है। यह उपन्यास की नायिका है। वैसे तो सब कुछ इसी के कारण हुआ। पर शोमना जितना योगदान चौला का नहीं है। चौला परम सुन्दरी है, कला-निष्णाता है और इसी गुण गरिमा के कारण वह सोमनाथ की नर्तकियो के अधिष्ठात्री-पद पर सुशोभित की गई।[4] वह महाराज भीमदेव से प्यार करती थी। भीमदेव ने इसे अपनी राजमहिषी बनाने

१. सोमनाथ—पृ० ३३३। २. सोमनाथ (आधार) —पृ० ६। ३. वही—पृ० ३४२।
४ वही—पृ० १२-२३।

की इच्छा और प्रयास किया था परन्तु इस प्रश्न को लेकर उसके मंत्रियों मे विद्रोह की भावना जागृत हो गई थी उन्होंने चौला को राजमहिषी-पद पर अभिषिक्त किये जाने का विरोध किया।[1]

चौला ने स्थिति को भाँप लिया और अपनी बुद्धिमत्ता से गुजरात की गृह-कलह का संकट टाल दिया। उसने महाराज भीमदेव से कहा कि महमूद द्वारा ध्वस्त सोमनाथ के महालय का जीर्णोद्धार कीजिये। भीमदेव ने उसका जीर्णोद्धार किया। वह फिर देव-नर्तकी होकर देव सेवा मे लीन हो गई।

बीच-बीच मे पाठक को चौला का प्रेमिका रूप मिलता है। पाटन को खाली करने के समय चौला ने अपने जाने का विरोध किया और वह बिलख पड़ी। एक स्थान पर उसका महान गौरव शील रूप भी प्रकट होता है। महाराजा भीमदेव खम्भात दुर्ग मे कुछ साथियो के साथ हैं। अमीर की सेना चढ़ आई तो बालुकाराय ने कहा कि देवी हम आपको अकेले छोड़कर नही जायेंगे। इस पर उसने कहा कि जाओ, महाराज की रक्षा होनी चाहिये। पर बालुकाराय ने कुछ मना किया। उस पर वह राजमहिषी के गौरवशील स्वर मे क्रोधावेशित होकर बोली "क्या तुम दुर्गाधिष्ठात्री की आज्ञा नहीं सुन रहे हो सेनापति?"[2] और बालुकाराय घायल भीमदेव को लेकर चला गया।[3]

चौला चूँकि क्षत्रिय पुत्री थी, इसीलिये उसमे एक क्षत्राणी का तेज था। खम्भात दुर्ग को संकट मे पड़ा देख उसने भीम से कहा महाराज यह दुर्ग मुझे सौंपिये मेरे चरणो मे जैसा नृत्य-कौशल है हाथो मे वैसा ही युद्ध-कौशल भी है। महाराज, मेरा यह युद्ध-कौशल देखें।[4]

चौला की काल्पनिक सृष्टि के फलस्वरूप उपन्यास मे रोचकता आई है। उसकी बुद्धिमत्ता के क्रियाकलापो से पाठक चमत्कृत हो उठता है। खम्भात दुर्ग से निकलकर मार्ग मे अकेली आगे बढ़ती है। मार्ग मे वह एक ब्राह्मण के घर आश्रय लेती है और वहाँ एक सुगृहिणी की भाँति सब कार्यों को सँभाल लेती है। फिर वह पुरुष वेश मे उस ब्राह्मण के साथ चण्डशर्मा, दामो महता आदि से मिलती है और दासी का वेश धारण कर शोभना से भी मिलती है।[5]

इन स्थलो मे उपन्यास मे अच्छी औपन्यासिकता आई है।

६—राजपूतों का शौर्य वर्णन

जैसा कि पहले कहा गया है कि ऐतिहासिक उपन्यास मे युद्धों का वर्णन आवश्यक है। चूँकि इतिहास स्वयं युद्धो की कहानी है, इसीलिए उस कहानी को कहने के लिए ऐतिहासिक उपन्यासो मे युद्धो की अभिसृष्टि लेखक को अभिष्ट होती है। युद्धो के वर्णन के माध्यम से लेखक वीर, अद्भुत एवं वीभत्स रसो का परिपाक करता है।

राजपूतो के शौर्य का सर्वप्रथम दर्शन हमे, घोघा बापा को अमीर के साथ युद्ध मे होता है। ८० वर्ष के वीर घोघा बापा ने किस प्रकार अपना बच्चा बच्चा युद्ध मे झोंक कर अभूतपूर्व शौर्य का प्रदर्शन किया कि अमीर चकित हो गया। अपने जीते जी

---

१. सोमनाथ —पृ० ५४३–५४७। २. वही-पृ० ४२६। ३. वही—पृ० ४३०।
४ वही—पृ० ४२६। ५. वही-पृ० ४६६—५०३।

जी घोघा बापा ने देव-शत्रु को अवसर नहीं होने दिया। उनके अमीर के दूत के साथ कथोपकथन में पाठक के रोंगटे खड़े हो जाते हैं "तो उसे कहो कि यह लात ही मेरा उत्तर है।" उन्होंने कसकर लात उस हीरों से भरे थाल में लगाई और वहाँ से चल दिये।[१] घोघा बापा के परिवार में पुत्र, पौत्र, पौत्र दौहित्र सब मिलाकर ८२ पुरुष थे।[२] और ये सब ही युद्ध में काम आए।[३]

ब्राह्मण नन्दिदत्त का पुरुषार्थ भी राजपूतों के शौर्य से कम नहीं था। क्षत्रियों की स्वर्ग-यात्रा देखकर नन्दिदत्त ने एक विशाल चिता बनाई और घोघागढ़ की समस्त स्त्रियों को अग्नि रथ पर चढ़ाकर पतियों के पीछे स्वर्ग भेज दिया।[४] साथ ही लाशों के ढेर में से घोघा बापा का शव निकालकर उसका दाह संस्कार किया।

इस वर्णन में एक ओर हमें जहाँ राजपूतों में शौर्य के दर्शन होते हैं, सती होने की प्रथा का आभास मिलता है, ब्राह्मणों का राज्य में उच्च स्थान दीख पड़ता है वहाँ दूसरी ओर लेखक द्वारा इंगित राजपूतों की दूषित युद्ध-नीति का भी परिचय मिलता है। वे कट मरना जानते थे। धर्म उनके युद्ध में सर्वोपरि था। इसीलिए वे हारते रहे। अमीर की विशाल वाहिनी के समक्ष मुट्ठी भर घोघागढ़ के वीरों की क्या बिसात थी, एकदम युद्ध न करके उन्हें कुछ और ऐसा उपाय करना चाहिये था जिससे अपनी जन-हानि हुए बिना महमूद की सेना का संहार होता। इस प्रकार का एक उदाहरण लेखक ने दिया है आगे उसका वर्णन करेंगे।

इससे आगे अमीर की टक्कर अजमेर के महाराज धर्मगजदेव से होती है परन्तु वहाँ अमीर को मुँह की खानी पड़ती है और वह अपनी हार देखकर संधि कर लेता है और अवसर देखकर धोखे से धर्मराजदेव का संहार करता है। अमीर और धर्मगजदेव का युद्ध-वर्णन बड़ा सजीव हुआ है। इन स्थलों में अच्छी औपन्यासिकता आई है।

जब लेखक ने जूनागढ़ के राव का परिचय दिया तब भी राजपूतों के शौर्य पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।[५] पर दद्दा चौलुक्य के शौर्य को देखकर तो पाठक गद्गद् हो जाता है। दद्दा चौलुक्य को रुद्र भद्र द्वारा चाबी छीन लिये जाने पर, महाराज भीमदेव ने फाँसी की आज्ञा दी।[६] इस पर उन्होंने दो घड़ी के लिए प्राण-भिक्षा माँगी।[७] और इन दो घड़ी में दद्दा चौलुक्य ने अमीर की सेना में प्रलय मचा दी, अमीर के सैनिकों की लाशों के ढेर लगा दिये। और इस प्रकार द्वार को फिर अपने कब्जे में करके अपने पाप का प्रायश्चित कर दिया।[८] यहाँ वीर रस की बड़ी मनोहर उद्भावना हुई है। पाठक साँस रोककर उनके शौर्य का अनुभव करते हैं।

इससे भी उत्कृष्ट शौर्य का दर्शन हमें गंदावा दुर्ग की रक्षा करते समय वीर कमालाखानी की अठासी तलवारों में होता है।[९] उस वृद्ध के शौर्य को देखकर तो अमीर भी हतप्रभ हो उठा। इसके शौर्य के सामने अमीर को नतमस्तक होना पड़ा।[१०] उसके शौर्य

१. सोमनाथ पृ० १११। २. वही—पृ० १०७। ३. वही—पृ० ११६–१२३।
४. वही पृ० १२४–१२७। ५. वही—पृ० २११–२१४। ६. वही—पृ० ३२१।
७. वही—पृ० ३४६-३५२। ८. वही—पृ० ३५३-३५७। ९. वही—पृ० ३६४-३६६।
१०. वही—पृ० ३६६, ३६७।

को देखकर अमीर घोडे से कूद हुडा और बोला, "अय बुजुर्ग, तुझ पर आफ्रीं, तू कौन है ? अपना नाम बताकर महमूद को ममनून कर।"[1]

इन प्रसगो के अतिरिक्त राजपूती शौर्य के दर्शन हमे सोमनाथ महालय की रक्षा करते हुए अमीर की सेना के साथ राजपूतों के युद्ध मे होते हैं। इन युद्धों मे हमें भीमदेव, दामों महता आदि के शौर्य का स्पष्ट चित्रण मिलता है।[2]

यह कहने की आवश्यकता नहीं इन स्थलो म भय, आश्चर्य, रोमाच आदि की सृष्टि होने से उपन्यास मे अधिक रोचकता आई है।

१०—लेखक द्वारा सफल युद्धनीति का वर्णन

जैसाकि ऊपर बताया गया है कि लेखक ने राजपूतों की युद्ध-नीति की आलोचना की है। इसीलिए आचार्य चतुरसेन ने एक ऐसा उदाहरण दिया है कि अपनी हानि हुए बिना शत्रु-सेना को काफी हानि पहुचायी। अजमेर के पश्चात् अमीर की सेना ने आगे प्रस्थान किया और वह नान्दौल के वन मे पहुँचा। अजमेर के राजा धर्मगजदेव के आदेशानुसार आमेर का युवक राजा दुर्लभराय नान्दौल के राजा अनहिल्लराय के पास पहुँचा और उसने अपनी नीति के बारे में बातचीत की कि महाराज हमें इस म्लेच्छ से युद्ध तो करना ही नहीं ... मैंने जो योजना बनायी है वह ऐसी है कि इसमे धन-जन की कुछ भी हानि नहीं होगी और इस दैत्य को हम नाकों चने चबा देंगे। ... ... अभी नगर खाली कर देना चाहिये, धन रत्न, प्रजा परिवार सबको सुरक्षित दुर्गम-पर्वतों पर भेज देना चाहिये। दैत्य को चारा, जल, अन्न न मिले ऐसी व्यवस्था कर देनी चाहिये।[3]

और अमीर की सेना ने नादौल के गहन वन की घाटी मे पड़ाव डाला तो रात्रि मे उसने देखा कि चारो ओर से उसकी सेना को अग्नि की भयकर लपटों ने घेर लिया है। और इस प्रकार उसे काफी क्षति पहुँची।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि राजपूतो की भावना अपनी शक्ति के अनुसार युद्धनीति अपनाने की होती तो ये दिन देखने पड़ते।

११— राजाओं की विलास प्रियता

जिस समय महमूद ने सोमनाथ पर आक्रमण किया उस समय ऐसे विलासी राजा भी थे जो देशहित, प्रजाहित, धर्महित को भूलकर अपनी पिनक मे मस्त रहते। अमीर अपनी सेना को लेकर इनके सिर पर चढ आया पर इन्हें खबर तक ही नहीं कि स्थिति यहाँ तक गम्भीर हो चुकी है।

उपन्यासकार ने सोमनाथ मे ऐसे ही चामुण्डराय की कल्पना की है। यद्यपि चामुण्डराय ऐतिहासिक पुरुष है फिर भी तत्कालीन राजाओं की रुपरेखा प्रस्तुत करने के लिए उसके चरित्र मे लेखक ने इसकी कल्पना की है।[5] इसी दुर्गुण के कारण चामुण्डराय को दामों महता जैसे राष्ट्र-भक्तों ने गद्दी से उतार कर शुक्लतीर्थ भेज दिया और राज्य को सुव्यवस्थित करने के लिए योजना बनाई।[6]

१. सोमनाथ : पृ० ३६६। २. वही पृ० ३१०-३१२। ३१६-३२२। ३३१-३३६। ३५५-३५७।
३. वही पृ० २१२। ४. वही पृ० २१४। ५ वही पृ० १३३-१३६। ६. वही पृ० ३३८

इस काल्पनिक सृष्टि से उपन्यास में हास्य का पुट मिल गया है फलत मनोरंजकता की अभिवृद्धि हुई है।

१२– राज एवं गृह कलह तथा राजाओं की स्वार्थमयी नीति

भारतवर्ष का सबसे बड़ा दुर्भाग्य था यहाँ के राजाओं की आपसी कलह, गृहकलह एवं स्वार्थमयी नीति। इसी का लाभ मुसलमानों ने उठाया और इस फूट से वे यहाँ अपने राज्य स्थापित करने में सफल हुए। अमीर के सोमनाथ पर आक्रमण के समय यह विष भली प्रकार राजाओं के मन में व्याप्त था। इसका चित्रण लेखक ने अपने उपन्यास में करके मनोरंजकता के साथ तत्कालीन राजाओं की सच्ची स्थिति का रूप भी दिखाया है।

गुजरात की राजमहिषी दुर्लभदेवी ने अपने पुत्र दुर्लभदेव को गद्दी पर बिठाने के लिए अपने पति महाराज चामुण्डराय तक को विष देकर उसका प्राणान्त करने की तथा भीमदेव और वल्लभदेव को कैद करने की योजना कुछ मंत्रियों के साथ बनाई थी।[1] इससे उस समय की गृह-कलह का पता चलता है।

दुर्लभदेव तो अपने स्वार्थ के पीछे यहाँ तक गिर गया था कि उसने अमीर से साठ गाँठ करली कि मैं तुम्हें निरापद आगे बढ़ जाने दूँगा यदि तुम सोमनाथ को आक्रान्त करने के बाद मुझे गुजरात का महाराज स्वीकार करो।[2]

इसी प्रकार के एक घृणित स्वार्थ के दर्शन हमें अजमेर के मंत्री-पुत्र एवं उपसेनापति सोढल में होते है। इसने अजमेर की गद्दी के लिए अपने राज्य के प्रति विश्वासघात किया और अमीर से वचन-बद्ध होकर अमीर की सेना के विरुद्ध सेना नहीं भेजी फलत धर्मगजदेव का सहार हुआ और अजमेर का पतन।[3]

इन स्थलों में उपन्यास में अच्छी रोचकता आई है।

१३–दामों महता आदि की कूटनीति एवं शौर्य

हर राज्य में और हर समय ऐसे बुद्धिमान पुरुष भी होते हैं जो राष्ट्र, देव, धर्म, प्रजा के प्रति निष्ठावान होते हैं। ऐसा ही कूटनीतिक दामो महता है। दामो महता के सहायक मस्माकदेव, विमलदेवशाह, चण्डशर्मा ये तीन कूटनीतिज्ञ और थे। इन्होंने मिलकर दुर्लभदेवी के षड्यन्त्र का भण्डाफोड किया। इसकी वीरता और धीरता का पता उस समय लगता है जब वह दृढ़तापूर्वक महारानी और प्रधान मंत्री वीकणशाह को चामुण्डराय से बन्दी बनवाता है।[4]

इन्हीं की कूटनीति से ही दुर्लभदेव भी इनकी चाल में फँस गया और उसके द्वारा एकत्रित सेना भी भविष्य में इन्हीं के काम आई और अमीर अकार की नगर को बिना हानि पहुँचाए आगे बढ़ गया[5]

अमीर ने बहुत से हिन्दुओं को बन्दी बनाया और बंदियों के इस काफले को कत्ल कर देने की उसकी योजना थी। दामो महता आदि की कूटनीति से ही ये बंदी कत्ल किये जाने से बच गये। इन्होंने अमीर को सुझाया कि इन्हें कत्ल करने से क्या लाभ, इनसे दण्ड लेकर इन्हें छोड़ दो। चूँकि अमीर लालची था, इसलिए उसकी समझ में यह बात

---

१. सोमनाथ : पृ. ११७-१४३। २. वही पृ. २४७-२२८। ३. वही पृ. १६६-१८७।
४. वही पृ. १६४-१७०। ५. वही पृ. ३३०-३३४।

आ गई और उसने दण्ड लेकर उन बंदियों को छोड़ दिया।[1] चण्डशर्मा तो सोमनाथ पर अमीर के आक्रमण से पूर्व ही दुर्लभदेव के दूत के रूप में अमीर से जा मिला था और उसकी हर गति-विधि का परिचय प्राप्त करता रहता था।[2]

दामो महता जितना बड़ा कूटनीतिक था उतना ही बड़ा युद्ध विशारद भी था।[3] उसने अमीर को पछाड़ा और निर्भीक होकर उसकी छावनी में चला गया।[4] सोमनाथ के ध्वस्त होने तक दामो महता ने बड़ी चतुराई से चारों ओर नजर रखी। एक ओर जहाँ उसकी दृष्टि अमीर की सेना और उसकी गतिविधियों पर थी दूसरी ओर वह घर के शत्रुओं, रुद्र भद्र जैसे देशद्रोहियों का भी ताक रहा था।

दामो महता स उपन्यास का नायक बन मिला है।

१४– हिन्दुओं की धर्मान्धता

जिस समय महमूद ने भारत पर आक्रमण किया उस समय भारत में धर्मान्धता साधारण मनुष्यों में ही नहीं थी अपितु दद्दा चौलुक्य और अजयपाल जैसे विचारवान राजाओं मे भी थी।

रुद्रभद्र पर उनकी अपार श्रद्धा थी। उनके आशीर्वाद से उन्हें पुत्र-लाभ हुआ था। उन्हीं के रक्षा-कवच से उन्हें मरुच की गद्दी मिली थी। उन्हीं के तप के प्रभाव से वे जीते जाते हैं, ऐसा वे मानते थे। उन्होंने अपना प्रथम पुत्री चौला को उन्हीं के कहने से त्रिपुर-सुन्दरी को भेंट कर दिया था।[5]

ऐसी ही धर्मान्धता लेखक ने मुल्तान के राजा अजयपाल में दिखाई है। सत अलीबिन उस्मान अलहुज्वीरी पर उनकी अपार श्रद्धा के तीन कारण थे – एक यह कि इसी की कृपा सिफारिश और सहायता से उसे मुल्तान का राज्य प्राप्त हुआ था, दूसरे उसके आशीर्वाद से उसे एकमात्र पुत्र उपलब्ध हुआ था। तीसरे यह कि यह औलिया बड़े पहुँचे हुए खुदापरस्त और ··· साधु प्रसिद्ध थे।[6]

इन दोनों उदाहरणों से लेखक ने तत्कालीन धर्मान्धता का अच्छा दर्शन कराया हैं। यह धर्मान्धता हमारे लिये बडी महंगी पड़ी। इसी धर्मान्धता ने अजयपाल को मुल्तान से अमीर को निरापद आगे बढ़ जाने को मजबूर कर दिया। अमीर के आक्रमण के समय इस प्रकार के तत्व भारत मे काफी सक्रिय थे।

१५ –धर्म जटिलता के दुष्परिणाम

धर्मान्धता की अति ने एक ओर जहाँ देश का सत्यानाश किया हुआ था वहाँ ब्राह्मणों द्वारा बनाई वर्ण-जटिलता एवं धर्म के स्वरूप ने उस सत्यानाश को और बढ़ावा दिया। धर्म-जटिलता की प्रचंड प्रतिक्रिया को दिखाने के लिए लेखक ने दर्ण-स्वर देव स्वामी की अवतारणा की हैं। ब्राह्मणों ने उसे मन्दिर मे नहीं चढ़ने दिया, कृष्ण स्वामी उसे वेद-मंत्रों का उच्चारण करते देखकर तलवार से मारने दौड़े।[7] देवस्वामी पर इस धर्मान्धता और रूढिवादिता की ऐसी भीषण प्रतिक्रिया हुई कि उसने इस धर्म को छोड़-

१. सोमनाथ पृ. ४६२ २. वही पृ. २५३-२५४। ३. वही पृ. ३०३।
४. वही पृ ३०३-३०७। ५. वही पृ. ३३८। ६. वही पृ ९८-९९। ७. वही पृ. ६७

कर इस्लाम को स्वीकार किया।' उसने सोमनाथ को विध्वस कराने मे महमूद का बडा साथ दिया और चौला को महमूद को सौंपने के लिए उसने अपनी प्रियतमा की बात भी नहीं मानी।[२] उसकी हिन्दू-धर्म के प्रति घृणा इतनी बढ गई थी कि सोमनाथ के पतन के बाद उसने ही मन्दिर के भगवा-ध्वज को फाडकर उसपर महमूद का हरा झडा फहराया।'

सक्षेप मे आचार्य चतुरसेन शास्त्री न अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'सोमनाथ' मे इतना ही कल्पना का आश्रय लिया है।

उपन्यास का घटना-विश्लेषण

१—पूर्ण ऐतिहासिक

१/12 सोमनाथ पर आक्रमण करने के लिए गजनी से अमीर की सेना का सिन्धु नदी पार कर मुल्तान आना।

२/13 मुल्तान के राजा अजयपाल का अमीर को राह देना।

३/33 ज्योतिर्लिंग के अमीर द्वारा तीन टुकडे करना।

४/36 महालय के अधिकारी द्वारा कितना भी दण्ड लेकर महालय को नष्ट न करने के लिए कहना तथा उसका यह कहना कि मैं मूर्ति भजक महमूद हूँ मूर्ति बेचने वाला नही।

५/48 कच्छ के महारन मे सामन्त द्वारा अमीर को गलत मार्ग पर डाल देना एव अमीर की सेना की हानि।

६/52 भीमदेव द्वारा सोमनाथ महालय का जीर्णोद्धार।

२—इतिहास-सकेतित

१/1 दद्दा चौलुक्य के द्वारा भेजी हुई त्रिपुर सुन्दरी की निर्माल्य चौला को एक युवक द्वारा सोमनाथ महालय म लाया जाना, गग सवज्ञ का उस सोमनाथ की देव-नर्तकी बनाना।

२/3 *सोमा का चौला को लाने वाले युवक का त्रिपुर सुन्दरी के मन्दिर म ले जाना, रुद्र-*भद्र द्वारा चौला को मन्दिर मे मँगवाना, उसका नग्न कर उसके विविधागो का पूजन करना, गग सवज्ञ और भीमदव द्वारा उन दानो की रक्षा करना।

३/14 घोघागढ़ के घोघाबापा का अमीर स युद्ध, घाघाबापा का मारा जाना, पुरोहित नन्दिदत्त द्वारा उनका दाह-सस्कार।

४/23 गग सर्वज्ञ का भीमदेव का चौला को पत्नी-रूप मे स्वीकार करने के लिए कहना।

५/27 गजनी की सेना के साथ सोमनाथ मन्दिर म भयकर युद्ध एव सोमनाथ का विध्वस होना।

६/47 अमीर का कच्छ के मायानो से युद्ध एव पथ-भ्रष्ट होना।

---

१. सोमनाथ : पृ ९९ २. वही : पृ. ४१४-४१६। ३. वही पृ. ३८१।

३ – कल्पित किन्तु इतिहास-अविरोधी

१/4 महमूद का अपने गुप्तचर से मिलना और सोमनाथ पर आक्रमण के विषय में विचार-विमर्श करना।

२/5 गगनर्वज्ञ का त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर के पट बन्द करवा देना, इस पर रुद्रभद्र का कुपित होना।

३/7 कृष्णस्वामी का शूद्रा दासी से अनुचित सम्बन्ध, उससे देवा का जन्म, देवा को मन्त्रोच्चार करते देख कृष्णस्वामी का उसे तलवार लेकर मारने दौड़ना।

४/10 महमूद का अलीबिन उस्मान अलहुजवीरी का मुल्तान के राजा अजयपाल को सोमनाथ पर आक्रमण करने जाते समय महमूद को चुपचाप मार्ग देने को कहना।

५/11 गजनी में ईद के दरबार में अमीर का मुसलमानों को आक्रमण करने के लिए उत्साहित करना तथा अभियान की तैयारी करना।

६/15 राजमहिषी दुर्लभदेवी का चामुण्डराय को गद्दी से उतार कर दुर्लभदेव को गद्दी पर बिठाने का षडयन्त्र।

७/16 दामोमहता द्वारा चामुण्डराय के सामने षडयन्त्र का भण्डाफोड़, दुर्लभदेवी आदि को बन्दी बनाना।

८/17 दामोमहता द्वारा मम्माकदेव को दुर्लभदेव के पास यह कहने के लिए भेजना कि वह अमीर को निर्विरोध आगे बढने दे, इस बात पर दुर्लभदेव का राजी होना।

६/18 विमलदेव का प्रधानमन्त्री बनना, चामुण्डराय को गद्दी से उतार, शुक्लतीर्थ भेज देना।

१०/22 चौला का अन्तिम नृत्य भीमदेव, गग सर्वज्ञ आदि के द्वारा नगर की सुरक्षा का प्रबन्ध करना।

११/24 पाटन के सब बच्चे और स्त्रियों को खम्भात दुर्ग में भेज देना।

१२/28 रुद्रभद्र और सिद्धेश्वर का अमीर को सहायता देना, सोमनाथ मन्दिर का गुप्त मार्ग बताना, दद्दा चौलुक्य से चाबी छीन द्वारिका-द्वार खोलना।

१३/29 दामोमहता को आनन्द द्वारा फतह मुहम्मद और सिद्धेश्वर के गुप्त कार्यों का पता चलना, आनन्द का अमीर की छावनी पहुँचना तथा पकड़ा जाना।

१४/30 दद्दा चौलुक्य का युद्ध में लड़ते-लड़ते मारा जाना।

१५/31 युद्ध में घायल हुए भीम को गंदावा दुर्ग पहुँचाना।

१६/32 गंगा का सती होना, ज्योतिर्लिंग पर रखे हुए गग सर्वज्ञ के सिर पर महमूद का गुर्ज-प्रहार करना, गंग सर्वज्ञ का प्राणान्त।

१७/37 अमीर का गदावा दुर्ग में कमालाखानी से युद्ध करना, कमालखानी का मारा जाना एवं अमीर का उसके प्रति सम्मान।

१८/38 घायल भीमदेव को गदावा दुर्ग से खम्भात लाना, महमूद और फतह मुहम्मद का खम्भात दुर्ग में प्रवेश करना।

१६/39 महमूद का अत्याचार।

२०/50 चण्डशर्मा एवं मम्माकदेव का राज्यबन्धु तथा दामो का प्रमुख सन्धि वैग्राहिक

श्रामात्य की उपाधि प्राप्त करना।

४—कल्पनातिशयी

१/2 श्रमीर का चौला पर आसक्त होना, उसको प्राप्त करने के लिए श्रमीर का युवक और भीमदेव से युद्ध, गगसर्वज्ञ का उन्हें शान्त करन तथा श्रमीर को आशीर्वाद देना।

२/6 महमूद और अलबेरूनी का अघोर वन मे रुद्रभद्र की आश्चर्यजनक सम्पदा का देखना, रुद्रभद्र का श्रमीर को सोमनाथ को ध्वस्त करने के लिए प्रोत्साहन देना।

३/8 शोभना और देवा का प्रणय।

४/9 देवा का अलबेरूनी के पास आना, उसका फतह मुहम्मद बनना।

५/19 श्रमीर का अजमेर के राजा धर्मगजदेव से युद्ध, धर्मगजदेव का जीतना तथा श्रमीर को छोड़ देना, श्रमीर का अजमेर के मन्त्री-पुत्र सोढल की सहायता से विश्वासघात करके धर्मगजदेव से पुन युद्ध, धर्मगजदेव का मार जाना, सोढल को कैद कर श्रमीर का अजमेर के उत्तराधिकारी को सौंप देना।

६/20 आमेर के युवक राजा दुर्लभराय का श्रमीर की सेना को नान्दोल के वन मे क्षति पहुँचाना।

७/21 वीरो का पाटन म जमाव।

८/25 फतह मुहम्मद का शोभना से मिलना तथा उसे चौला के साथ रहने को कहना।

९/26 दामामहता का श्रमीर का द्वन्द्व-युद्ध म पछाड़ना तथा श्रमीर को प्राणदान देना, दामामहता का श्रमीर की छावनी म जाना और दोनो का मित्र बनना।

१०/34 फतह मुहम्मद द्वारा सोमनाथ का भगवा-ध्वज फाड़कर हरा झंडा फहराना।

११/35 रमादेवी का महमूद का फटकारना, महमूद का रमादेवी को माँ कहना।

१२/40 खम्भात दुर्ग मे फतह मुहम्मद का शोभना से मिलकर चौला माँगना, शोभना का मना करना, भीमदेव का आबू चले जाना, शोभना का फतह का सिर काट लेना, चौला को गुप्त मार्ग से भेज शोभना का स्वय चौला बन जाना, शोभना का महमूद के साथ पाटन चले जाना।

१३/41 सामन्त चौहान का शोभना द्वारा लिखे लेख को पढ़कर चौला के पीछे जाना।

१४/42 श्रमीर को अपने सरदारों द्वारा स्त्रियो पर अत्याचार करने का पता चलना, इस पर महमूद का क्रोधित होना।

१५/43 चण्डशर्मा का अपनी नीति से महमूद का जुर्माना देकर कैदियो को मुक्त कराना।

१६/44 चौला का ब्राह्मण के घर म आश्रय पाना, उसका पुरुष-वेश मे चण्डशर्मा के पास जाना शर्मा रूप मे शोभना से मिलना।

१७/45 श्रमीर का दुर्लभदेव को राजा स्वीकार कर पाटन म कन्थकोट की ओर प्रस्थान करना, महमूद का शोभना को आजाद करना शोभना का मना करना।

१८/47 श्रमीर का मुद्रा म डाकुओ को आत्मसमर्पण करना, डाकुओ का आग्रानों के युद्ध में खोई हुई शोभना का खोज कर लाना।

१९/49 शोभना का श्रमीर के साथ गजनी चले जाना।

२०/51 दामो महता द्वारा चौला को राजमहिषी बनाने का विरोध करना, चौला का भीमदेव को सोमनाथ महालय क पुन निर्माण के लिए कहना, और सोमनाथ की देवनर्तकी बनना।

नोट—घटना-सख्याओ के दो क्रम हैं (१) देवनागरी अक अपने वर्ग की घटनाओं के क्रमद्योतक हैं, (२) रोमन-अक उपन्यास की सकल घटनाओ के द्योतक हैं।)

सोमनाथ के घटना—विश्लेषण का रेखाचित्र
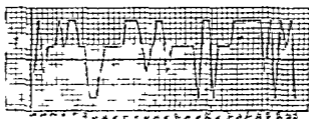
घटना विश्लेषण के रेखाचित्र की व्याख्या

रेखाचित्र के अनुसार

पूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ	६=११ ५४%
इतिहास-सकेतित घटनाएँ	६=११ ५४%
कल्पित किन्तु इतिहास अविरोधी घटनाएँ	२०=३८ ४६%
कल्पनातिशायी घटनाएँ	२०=३८ ४६%
कुल घटनाएँ	५२=१०० ००%

उपन्यास मे इतिहास प्रस्तुत करने वाले तत्व =११ ५४%+११.५४%=२३.०८%
उपन्यास मे रमणीयता प्रस्तुत करने वाले तत्व=३८ ४६%+३८ ४६%=७६ ९२%

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि उपन्यास को रमणीयता प्रदान करने वाले तत्व ७६ ९२% हैं। अत प्रमाण की आवश्यकता नहीं कि जिस उपन्यास का रमणीय तत्व ७६ ९२% हो वह सरस होगा। शेष २३·०८% तत्व इतिवृत्त प्रस्तुत करता है। अस्तु सोमनाथ उपन्यास घटनाओं के अनुसार काल्पनिक अधिक है ऐतिहासिक कम है, रोचकता इसमे काफी है।

उपन्यास का पात्र—विश्लेषण

१ पूर्ण ऐतिहासिक

१/1 भीमदेव। २/3 अमीर महमूद। ३/4 चौला। ४/9 अलबेरूनी। ५/15 अजयपाल। ६/16 घोघाबापा। ७/20 चामुण्डराय। ८/22 वल्लभदेव। ९/23 दुर्लभदेव। १०/24 नागराज। ११/30 भीमदेव।

२ इतिहास सपेक्षित

१/21 बीसण शाह। २/25 बालुका राय। ३/23 दुर्लभदेव। ४/36 घर्मगजदेव। ५/40 जूनागढ के राव नवघन। ६/43 दद्दा चौलुक्य। ७/49 बीसलदेव। ८/53 ढुण्डिराज।

३ कल्पित-इतिहास अविरोधी

१/2 गंग सर्वज्ञ। २/5 गंगा। ३/6 सोमा। ४/7 रुद्रभद्र। ५/८ मोनीबाबा।[1] ६/10 कृष्णस्वामी। ७/13 रमाबाई। ८/14 अमीबिन उस्मान अलहुजवीसी। ६/१७ तिलक हज्जाम। १०/18 सज्जन। ११/19 नन्दिदत्त। १२/26 बालचन्द्र खवास। १३/27 जैनदत्तसूरि। १४/29 चम्पक बाला। १५/31 दामोमहता। १६/32 आनन्द। १७/33 चण्ड शर्मा। १८/34 मस्मांक देव। १६/35 दुर्लभराय। २०/37 श्याम मदार। २१/38 सोढ़ल। २२/39 शुक्लबोध तीर्थ। २३/41 सामन्तसिंह। २४/42 सिद्धेश्वर। २५/43 कमालाखानी। २६/44 मदनजी सेठ। २७/45 देवचन्द सेठ। २८/46 कंचनलता। २६/47 मसऊद। ३०/51 मुन्द्रा का थानेदार। ३१/52 विमलदेव शाह।

४. कल्पनातिशायी

१/11 देव स्वामी। २/12 शोमना।

सोमनाथ के पात्र-विश्लेषण का रेखाचित्र
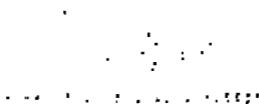
पात्र विश्लेषण के रेखा चित्र की व्याख्या

रेखाचित्र के अनुसार

पूर्ण ऐतिहासिक पात्र	११=२१.१५%
इतिहास-सपेक्षित पात्र	८=१५.३८%
कल्पित किन्तु इतिहास-अविरोधी पात्र	३१=५६.६२%
कल्पनातिशायी पात्र	२=३.८५%
कुल पात्र	५२=१००.००%

उपन्यास में इतिहास प्रस्तुत करने वाला तत्व =२१.१५%+१५.३८%=३६.५३%

उपन्यास मे रमणीयता प्रस्तुत करने वाला तत्व = ५९ ६२% + ३·८५% = ६३·४७%

= १००·००%

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि उपन्यास को रमणीयता प्रदान करने वाले तत्व ६३ ४७% हैं। अब यह सिद्ध है कि उपन्यास में रमणीयता काफी अंशों में है। ३६·५३% पात्र ऐसे हैं जो इतिहास की साक्षी देते हैं। अस्तु सोमनाथ उपन्यास पात्रों के अनुसार काल्पनिक अधिक है, ऐतिहासिक कम है, रोचकता इसमें काफी है।

सोमनाथ की घटनाओं और पात्रों का अनुपात

घटनाओ में ऐतिहासिक तत्व = २३ ०८%
पात्रों में ऐतिहासिक तत्व = ३६·५२%

कुल ऐतिहासिक तत्व = ५९ ६१% ÷ २ = २९·८०%

घटनाओ मे रमणीयता तत्व = ७६ ९२%
पात्रो में रमणीयता तत्व = ६३·४७%

कुल रमणीयता तत्व = १४०·३९% ÷ २ = ७०·२०%

'सोमनाथ' मे इतिवृत्तात्मक तत्व प्रस्तुत करने वाले अश = २९ ८०%
'सोमनाथ' में रमणीयता प्रस्तुत करने वाले अश = ७०·२०%

कुल अश = १००·००%

सिद्ध हुआ कि सोमनाथ रस-दृष्टि से सफल है, रोचक है परन्तु ऐतिहासिक कम है।

लेखक का उद्देश्य

प्रत्येक साहित्यिक-कृति के लेखक के उस कृति की अभिसृष्टि में प्राय. दो उद्देश्य होते हैं—विशिष्ट उद्देश्य और सामान्य उद्देश्य। विशिष्ट उद्देश्य के अन्तर्गत हम लेखक की अपनी उस धारणा को ले सकते हैं, जिसे उसने अपनी कृति में प्रच्छन्न कर दिया है। लेखक गुप्त रूप से कोई बात कहना चाहता है, अपनी धारणा का, अपने सिद्धान्त का, अपनी मान्यताओं का पोषण करना चाहता है। सामान्य उद्देश्य के अन्तर्गत हम देश-काल का चित्रण ले सकते हैं। चूँकि देशकाल का चित्रण तो हर कृति का उद्देश्य होता है अतः हम उसे उस कृति का सामान्य उद्देश्य मानते हैं। विशिष्ट उद्देश्य के अन्तर्गत हम उस असाधारण चित्रण को लेते हैं, जिसके पीछे लेखक का कोई निश्चित मत छिपा रहता है, उसकी अपनी बात छिपी रहती है।

अतः हम 'सोमनाथ' के लेखक के उद्देश्य को दो भागों में बाँट सकते हैं —
१ विशिष्ट उद्देश्य, २ सामान्य उद्देश्य।

१ विशिष्ट उद्देश्य

सोमनाथ का विशिष्ट उद्देश्य खोज निकालने के समय सर्व प्रथम हमारी दृष्टि सोमनाथ' के तीन असाधारण पात्रों पर जाकर ठहर जाती हैं। वे असाधारण पात्र हैं—
१ देव स्वामी, २. शोभना, ३ महमूद गजनवी।

इन तीनों के असाधारणत्व पर विचार करते हैं तो आँखें फटी-की-फटी रह जाती हैं और तुरन्त मन में प्रश्न उठता है कि आखिर क्यूँ इन पात्रों का असाधारणत्व से शृंगार कराया गया है? और तब हमें आभास होता है कि निश्चित ही यह लेखक का उद्देश्य रहा होगा। दुर्दान्त बर्बर महमूद को इतिहासानुसार ही चित्रित किया जाता तो देशकाल का चित्रण उतना ही सफल उतरता जितना कि अब उतरा है। फिर महमूद में लेखक ने यह व्यतिक्रम क्यों पैदा किया? इसी प्रकार के और प्रश्न उठते हैं, जिनपर आगे विचार करेंगे। पहले इन पात्रों के विषय में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करलें।

उपर्युक्त तीनों पात्र संक्षेप में निम्न प्रकार हैं —

२—देवस्वामी या देवा :

शूद्र को दूर से भी देख पाने पर स्नान करने वाले निष्ठावान ब्राह्मण और शूद्रा दासी से उत्पन्न देवा संकर पुत्र है। ब्राह्मण घराने में उसका पालन-पोषण होता है। तिरस्कृत होकर वह घर से बाहर रहता है। एक संन्यासी का अन्तेवासी होकर वह संस्कृत, व्याकरण, ज्योतिष आदि पढ़ता है तथा वेदमन्त्रों का शुद्ध उच्चारण करता है। ब्राह्मण-रक्त से उत्पन्न देवा का मंदिर प्रवेश निषिद्ध कर दिया जाता है, मन्त्रों का उच्चारण करते देख (ब्राह्मण) पिता उसे तलवार से मारने दौड़ते हैं।[१] उसके मन में हिन्दू धर्म के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है और वह यवन-धर्म स्वीकार करके फतह मुहम्मद बन जाता है और अमीर का सिपहसालार बन जाता है।[२] अन्त में सोमनाथ का भगवा ध्वज फाड़कर उस पर हरे रंग का यवन-ध्वज फहराने वाला सिद्ध होता है।[३]

२—शोभना :

शोभना का पिता भी वही ब्राह्मण था जो देवा का था। परन्तु शोभना संकर सन्तान नहीं थी, उसकी माता ब्राह्मणी थी। वह बाल विधवा थी। शोभना परमसुन्दरी थी, देवा भी सुन्दर था, दोनों का एक साथ रहने से प्यार हो गया और दोनों दाम्पत्य सूत्र में बँधने को व्याकुल हो गए।[४] वह देवा को इतना प्यार करती थी कि ब्राह्मण-संस्कारों में दीक्षित होने पर भी वह देवा का फतह मुहम्मद होना भी सहन कर गई।[५] सोमनाथ के पतन के बाद जब फतह मुहम्मद (देवा) शोभना से चौला को अमीर के लिये माँगने आया तो शोभना ने उसे मना किया पर वह नहीं माना तो शोभना ने तलवार से अपने प्राणों से प्यारे देवा की गर्दन काट डाली।[६] चौला की रक्षा के लिए वह स्वयं चौला बनकर अमीर के साथ चल दी।[७] स्वदेश लौटते समय अमीर ने अपने ऊपर भयंकर संकट आया देख

१. सोमनाथ-पृ० ६७। २ वही-पृ० ६६। ३. वही-पृ० ३८१। ४. वही-पृ० ६४-६७।
५. वही-पृ० ७०। ६. वही-पृ० ४३७। ७ वही-पृ० ४४६।

शोमना को मुक्त कराना चाहा पर शोमना ने मना कर दिया।[1] जिस अमीर के कारण शोमना ने अपने प्यारे देवा की गर्दन काट डाली थी उस अमीर को जान से मार देने की सामर्थ्य और अवसर रखती हुई शोमना ने उसे प्राण दान ही नहीं दिया अपितु वह धीरे से भुकी और अमीर के सूखे निस्पन्द होठों पर अपने जलते हुय होठ रख दिये।[2] रेत में दबे हुए महमूद को निकालकर जब शोमना ने उसकी नाक पर हाथ रखकर देखा—धीरे-धीरे साँस चल रही थी—शोमना आनन्द से विभोर हो गई।[3] और यहाँ तक कि वह ब्राह्मण कुमारी महमूद के साथ गजनी चली गई।[4]

३—महमूद :

अपने जीवन काल में लाखों नरों का संहारक, दुर्दान्त, बर्बर, कुरूप, अमीर महमूद विश्व प्रसिद्ध देव-प्रतिमा-भंजक है। वह सोमनाथ महालय को भग्न कर वहाँ की सम्पत्ति लूटने का संकल्प करता है। सोमनाथ महालय में वह चौला को देखता है तो आपा खो बैठता है। अपने को इस्लाम का सबसे बड़ा समर्थक और पोषक समझने वाला महमूद चौला को दीन-ईमान और इस्लाम से ऊपर स्थान देता है।[5] यहाँ तक कि अमीर चौला को प्राप्त करने के बदले सोमनाथ का सुरक्षित छोड़ सकता है।[6] मृत्यु की गोद में लेट हुए वृद्ध कमालाखानी की वीरता से प्रसन्न होकर अमीर ने उन्हें अंक में भर लिया। उसकी आँखों में आँसू भर आए। उसने कहा "कच्छ के महाराज आपकी इस अकेली तलवार ने दिग्विजयी महमूद को जेर किया है। महमूह की क्या ताब कि उसे छुए।"

अमीर ने (अपने योद्धाओं को) हुकुम दिया, "अय बहादुरो, घोड़ों से उतर पड़ो, हथियार जमीन पर रख दो और बहादुरों व बादशाह इस बुजुर्ग की इस तलवार के सामने सिर भुकाओ।"[7] और अमीर ने वृद्ध कमालाखानी की अन्तिम क्रिया हिन्दू धर्मानुसार करने की आज्ञा दी।[8]

चौला के रूप के प्यासे उस दुर्दान्त डाकू महमूद ने चौला (शोमना) का स्पर्श तक नहीं किया और वापस चली जाने को कहा। शोमना द्वारा अमीर पर यह प्रकट कर देने पर कि वह वह स्त्री नहीं है,[9] जिसके लिये अमीर अपने प्राणों पर खेला, अमीर शोमना से बोला, "... खुदा के बन्दे की नीयत बद थी, जिसकी सजा खुदा ने अपने बन्दे को दी ... अब जिन्दगी तेरे सदके।"[10]

अपनी इस भयंकर पराजय पर भी महमूद उस गुणगरिमामयी ब्राह्मण कुमारी के आँचल की छाँह में काबुल की दुर्गम राह पर, दुरूह खैबर के दर्रे में खो गया।[11]

इन चरित्रों पर दृष्टिपात करने से अलग-अलग प्रत्येक चरित्र से निम्नलिखित प्रश्न फूट पड़ते हैं :—

१—परमनिष्ठावान ब्राह्मण के वीर्य से उत्पन्न, वेद आदि ग्रन्थों में शिक्षित-दीक्षित, भगवान सोमनाथ के सान्निध्य में रहने वाले देवा का इतना पतन किस कारण हुआ कि वह फतह मुहम्मद बन जाता है और वह सोमनाथ के भगवा ध्वज को फाड़कर उन पर

१ सोमनाथ-पृ० ५१३। २ वही-पृ० ५३३। ३. वही-पृ० ५३३। ४. वही-पृ० ५४२।
५. वही-पृ० ७४। ६. वही-पृ० २६१। ७. वही-पृ० ३६६। ८ वही-पृ० ३६७।
९. वही-पृ० ५१३। १०. वही-पृ० ५४२। ११ वही-पृ० ५४२

इस्लाम का हरा झंडा फहराता है। कहाँ गये ब्राह्मणकुल में पैदा होने के संस्कार ? कहाँ गया वह धार्मिक वातावरण जिसमें देवा के रक्त का एक-एक अणु पनपा था ? कहाँ गया दण्डी स्वामी का वह सान्निध्य जिसने देवा को वेद, व्याकरण, ज्योतिष आदि के मार्ग पर लगाया ?

२—शोभना से सम्बन्ध में भी कुछ इसी प्रकार का प्रश्न उठता है। विशुद्ध ब्राह्मण रक्त से उत्पन्न, व तारण, शिक्षा-दीक्षा और संस्कारों की बेड़ियों से जकड़ा हुआ और कहीं से भी यौवन की रंगीन दुनिया में झाँक सकने में असमर्थ बनाने वाली वैधव्य की ऊँची चार दीवारी से घिरा हुआ शोभना का यौवन, साँस की एक ही उठान में उन शृंखलाओं को टूक-टूक कर देता है, उस चार दीवारी की एक एक ईंट धराशायी कर देता है, जिन्होंने उसके समूचे व्यक्तित्व को जकड़ा हुआ था। वह पक्षी की भाँति उन्मुक्त हो जाती है और वह अपने सामने पड़े हुए पहले ही पुरुष का वरण कर लेती है। यह जानते हुए भी कि वह हिन्दू-वर्ण के निकृष्टतम समझे जाने वाले शूद्र-वर्ण से सम्बन्धित है और यह जान कर भी वह आगे बढ़ती ही जाती है कि वह इतना पतित भी है कि उसने उस धर्म को ग्रहण किया है, जिसे समस्त हिन्दू धर्मावलम्बी और विशेषत ब्राह्मण घृणास्पद समझते हैं। आखिर क्यूँ वह इतनी गिरी ?

३—शोभना को लेकर दूसरा प्रश्न उठता है कि अपने प्राणों से भी प्रिय देवा (फतह मुहम्मद) की गर्दन अपने ही हाथों से काट लेने में वह किस प्रकार, किस कारण समर्थ हुई ?

४—तीसरा प्रश्न जिसे शोभना का चरित्र जन्म देता है, उठता है कि जिस व्यक्ति के कारण उसे अवर्णनीय नरसंहार, देव-मूर्ति संहार देखना पड़ता है, जिस व्यक्ति के कारण उसे अपने देवा का शिरच्छेद करना पड़ता है, जिस व्यक्ति के लिए वह देवा से कहती है, "जिसका पेशा लूट-हत्या, धर्म-द्रोह, अत्याचार और अन्याय है, जो लाखों मनुष्यों की तबाही का कारण है जो मृत्यु-दूत की भाँति सत्रह बार भारत को तलवार और आग की भेंट कर चुका, वह इस क्षण तुम्हारे हाथ में है, चंगुल में है, जाओ, अभी उसका सिर काट लाओ—शोभना देवी की यही तुमसे आरज़ू है।"[१] कितनी घृणा होगी उन व्यक्ति के प्रति शोभना के मन में, उसका केवल अनुमान भर लगाया जा सकता है वर्णन नहीं किया जा सकता। उस घृणास्पद व्यक्ति के प्राण लेने में बिल्कुल समर्थ होने पर भी शोभना ने उसके प्राण नहीं लिये अपितु उसे प्राणदान दिया, इतना ही नहीं उससे वह इतना प्यार करने लगी कि उसे अपना शरीर भी अर्पण कर दिया और अपने देश को छोड़कर उसके साथ गजनी चली गई मानव-चरित्र के ये दो चरम छोर आखिर क्यूँकर उसमें दीखते हैं ?

५—एक प्रश्न शोभना और देवा के संयुक्त-चरित्रों से उठता है। शोभना और देवा दोनों का पिता एक था, अत: दोनों भाई बहन, पति पत्नीवत किस प्रकार हो गए। यह आम धारणा है कि निम्न वर्ण में इस प्रकार की घटनाएँ आश्चर्यजनक नहीं समझी जाती परन्तु ब्राह्मण कुल की सन्तान में ऐसा हो तो वह एक आश्चर्य और विशिष्टता की बात बन जाती है। लेखक ने ये चरित्र ब्राह्मण रक्त से उत्पन्न दिखाये हैं। आखिर क्यूँ ? किसी अन्य वर्ण का भी दिखाया जा सकता था।

१. सोमनाथ : पृ० ४३४।

६– दुर्दान्त, बर्बर, डाकू, घृणास्पद एवं राक्षसी वृत्ति का, महमूद एक वृद्ध वीर के सामने झुकता ही नहीं अपितु उसका दाह-संस्कार भी हिन्दू रीति से कराता है। एक स्त्री चौला के लिए अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि ईमान, धर्म भी छोड़ने को तैयार हो जाता है। उस स्त्री को पूर्ण रूपेण अपने चंगुल में फँसा लेने के बाद भी उसके रूप का प्यासा महमूद उसका स्पर्श तक नहीं करता। बाद में यह जान लेने पर भी कि यह वह स्त्री नहीं है जिसके लिये उसने यह सब कुछ किया, वह अपनी पराजय से झल्लाता नहीं अपितु शोभना को ही स्वीकार करता है। चरित्र के ये उत्थान-पतन इतिहास के व्यतिक्रम के मूल्य पर भी आखिर उपन्यासकार ने क्यूँ दिखाये हैं ?

उपर्युक्त इन्हीं प्रश्नों के उत्तर से अब लेखक का विशिष्ट उद्देश्य निम्न प्रकार निकलता है।

१– मानववाद की प्रतिष्ठापना

आचार्य चतुरसेन ने विशुद्ध मानववादी दृष्टिकोण अपनाया है। वे कहते हैं, 'मैं मानववादी भी तो हूँ मनुष्य को मैं दुनिया की सबसे बड़ी इकाई समझता हूँ। मैं मनुष्य का पुजारी हूँ और मनुष्य मेरा देवता है। पर 'मनुष्य' 'मानवता' नहीं। मानवता का मैं पुजारी नहीं··· मैं केवल मनुष्य का पुजारी हूँ। वह मनुष्य जो घृणित, पापी, अपराधी, खूनी, डाकू, हत्यारा, लुटेरा, कोटी व्यभिचारी, गन्दे रोगों से आक्रान्त, मलमूत्र से लथपथ या पागल है – वह मेरा देवता है।"[1] यह उद्धरण आचार्य श्री के उद्देश्य की कुंजी है। समस्या का समाधान इस कुंजी से हो जाता है।

नहुष में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने एक बात बड़ी मार्के की कही है 'देव सदा देव तथा दनुज दनुज हैं, जा सकते किन्तु दोनों ओर ही मनुज हैं।"[2] देवता तो सदा देवता हैं, राक्षस सदा ही राक्षस है, दोनों में कोई विशेष बात नहीं विशेष बात तो मनुज में है जो देवता भी बन सकता है राक्षस भी। और मनुज का इन दोनों छोरों को छूना निर्भर करता है, परिस्थिति पर, वातावरण पर। यदि मनुष्य राक्षसत्व की परिधि में प्रवेश कर गया है तो वह सदा वहाँ नहीं रहेगा, निश्चित ही उसे फिर अपने मनुज में लौट आना है, देवत्व से भी उसे यहीं आना है। उसके हृदय, बुद्धि, मस्तिष्क पर बाह्य वातावरण के आघात लगते हैं, उसका पचतन्त्र प्रतिक्रियान्वित होता है और वह देवत्व अथवा राक्षसत्व की सीमा की ओर अग्रसर हो उठता है। और जहाज के पक्षी की भाँति वह फिर अपने प्राकृत रूप में लौट जाता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। हाँ उपर्युक्त प्रतिक्रिया की शक्ति वैयक्तिक अवश्य हो सकती है – किसी में कम, किसी में अधिक। सब मनुष्य अपने प्राकृत रूप में मनुष्य हैं। देवा मनुष्य है शोभना मनुष्य है, महमूद भी मनुष्य है। इन सबको अवगुणों ने आक्रान्त किया। इस कारण ये पतित हुए। अब प्रश्न उठता है कि क्या हम इन्हें गड्ढे में ही पड़ा हुआ मान लें अथवा इस बात की आशा रखें कि ये इस नारकीय कुण्ड से निकलकर नहा धोकर निर्मल होकर हमारे सामने आएँगे। यह आशा तो हमें रखनी ही चाहिए। जीवन से यदि आशावाद ही निकल जाये तो शेष कुछ नहीं बचेगा, फिर मानव की क्रियाशीलता किस लिए होगी ? मलमूत्र कीचड़ में सने हुए उन पात्रों को नहलाने

१. सोमनाथ (आधार) पृ० ११।
२. श्री मैथिलीशरण गुप्त : नहुष, पृष्ठ ११-

धुलाने का कार्य ही तो साहित्यकार करता है और यह कार्य कम नहीं है।

श्री चतुरसेन ने भी यही कार्य किया है। अमीर के कलुष-सर्वस्व को धो डालने में आचार्य श्री ने अपने कोष का सम्पूर्ण साबुन खर्च कर डाला है। वृद्ध कमालाख़ानी के समक्ष गर्दन झुकाते हुए महमूद को देखकर हर पाठक की इच्छा होती है कि उसे गले से लगा लें, उसी वृद्ध क्षत्रिय का दाह संस्कार हिन्दू रीति से कराते हुए देखकर इच्छा होती है कि उसके चरण स्पर्श कर लें और अन्त में शोभना के आंचल में आंसुओं से तर निरीह मानव महमूद को देखकर उसकी करुणा को बांट लेने की इच्छा होती है। लगता है जैसे महमूद ने अपने सब पापों का प्रायश्चित्त कर लिया है, वह अब दुर्दान्त बर्बर लुटेरा डाकू नहीं रहा है, वह फिर मानव बन गया है। यही तो हम चाहते थे कि उसे अपने किए का पश्चात्ताप हो उसे अपनी गलती महसूस हो। आंखों के मार्ग से महमूद के अन्तर का सब कलुष बहाकर लेखक ने उस कलुष को कच्छ के महारन में दफना दिया। तो इच्छा होती है कि उसे क्षमा कर दें।

अस्तु— उपन्यासकार ने महमूद का भावुक, कोमल एवं आतुर प्रेमी के रूप में दिखाकर *मानववादी तत्व के दर्शन कराए हैं।*

२—गांधीवाद एवं आर्यसमाज का पोषण

लेखक की इस रचना में गांधीवाद और आर्यसमाज का मिश्रित प्रभाव स्पष्ट है। अतः *गांधीवाद एवं आर्यसमाजी भावना का प्रतिनिधित्व करना लेखक का दूसरा विशिष्ट उद्देश्य है।* शोभना (ब्राह्मण कन्या) का महमूद (मुसलमान) के साथ चले जाना गांधीवाद का, विधवा-विवाह के प्रति जागृत करना आर्यसमाज का प्रभाव है, समाज के उन लोगों को एक चेतावनी है जो विधवा-विवाह का विरोध करते हैं। राक्षस महमूद को जब लेखक गले लगाता है तो नोआखाली के मुसलमानों को गले लगाते हुए गांधी जी का चित्र उभर आता है। गगसर्वज्ञ में हमें स्थान-स्थान पर गांधी जी के दर्शन होते हैं।

३—जटिल वर्ण व्यवस्था के दुष्परिणामों का दर्शन

देवा या देवस्वामी से सम्बन्धित प्रश्न पर जब दृष्टि डालते हैं, जब इस कारण को खोजते हैं कि देवा किस कारण इतना पतित हुआ कि वह यवन धर्म में दीक्षित हो गया। इतना ही नहीं उसने हिन्दू धर्म की ईंट से ईंट बजा देने की ठानी, तो इसका उत्तर हमें तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था तथा ब्राह्मणों की धर्म की ठेकेदारी में दिखाई पड़ता है। इतिहास साक्षी है कि भारतवर्ष में हिन्दू समाज की जटिलता ने पारस्परिक वैमनस्य को अत्यन्त उग्र रूप दिया। उस समय ब्राह्मणों के अत्याचार शूद्रों पर इतने होते थे कि उनका अन्तर चोट खाकर तड़पड़ाने लगता था, उनकी रग-रग में अपमान का विष व्याप्त हो जाता था और वे चोट खाए नाग की भाँति डसने की ताक लगाए रहते थे। प्रतिहिंसा की वह ज्वाला इतनी भीषण होती थी कि वह किसी भी मूल्य पर अपने मन की अग्नि को शीतल कर लेना चाहता था। इसी चोट ने देवा को फतह मुहम्मद बना दिया और सोमनाथ के भगवा ध्वज को फाड़कर उस पर महमूद का हरा झंडा लहराने पर भी सम्भवतः उसकी अन्तर्ज्वाला का शमन नहीं हो सका था। यह सोमनाथ के लेखक का एक और विशिष्ट उद्देश्य है।

४–नारी से प्रेम, त्याग और बलिदान का चित्रण

शोभना के चरित्र से सम्बन्धित प्रश्न पर मनन करने से कि क्यूँ आखिर उसके चरित्र मे इतने उत्थान-पतन आये, निम्न उत्तर प्रस्फुटित होता है। और यह उत्तर भी लेखक का एक विशिष्ट उद्देश्य होगा। शोभना ने देवा का फतहमुहम्मद होना स्वीकार कर लिया, वह उसका शुद्र होना जानकर भी उसे प्यार करती रही, इससे उसका प्रेममयी होना सिद्ध होता है। शोभना के माध्यम से लेखक ने नारी के प्रेम की पराकाष्ठा दिखाई है। साथ ही शोभना ही के द्वारा देवा की गर्दन कटवाकर नारी के त्याग और बलिदान की कथा का चित्रण बड़ा मनोहारी हुआ है।

शोभना का अमीर को प्यार करना तथा उसके साथ गजनी चले जाना दिखाकर लेखक ने भले ही कोई सूझ-बूझ की बात की हो, या कोई अद्भुत विलक्षणता पैदा करदी हो परन्तु मैं इससे मनुजलोक का चरित्र नहीं मानता वह नितात असम्भाव्य है। जिस व्यक्ति के कारण एक नारी को अपने प्रेमी की गर्दन काटनी पड़ी हो, उसी व्यक्ति के आलिंगन-पाश मे वह आबद्ध हो जावेगी ? कभी नहीं। अवसर मिलने पर बदला लिए बिना स्त्री तो क्या पशु भी नहीं चूक सकता। अधिक से अधिक इतना वह सकते हैं कि वह उसे क्षमा तो कर सकी थी पर अपना शरीर उसे देती, यह नहीं हो सकता। इससे तो यही कहा जा सकता है कि नारी मनोविज्ञान से आचार्य प्रवर अनभिज्ञ थे। विलक्षण चरित्र की सृष्टि के विषय मे लेखक ने कहा है कि 'नगर वधू' पर अभी भी मुझे मोह था। अम्ब-पाली, सोमप्रभ, बिम्बसार आदि असाधारण रेखा-चित्र हैं। परन्तु सोमनाथ मे तो मुझे नहले पर दहला मारना था प्रभावशाली नए चित्रो की सृष्टि करनी थी ··· दूसरी जिस अलौकिक मूर्ति की रचना मुझे करनी पड़ी– वह थी शोभना।[1] तो आचार्य जी ने विल-क्षणता लाने के लिये शोभना को इतना मरोड़ा है कि उसका प्राणान्त हो गया और वह हाड-माँस की नारी न रहकर पाषाणी बन कर रह गई। विलक्षणता के फेर मे पड़कर आचार्य जी महाराज ने भारतीय नारी के इस कुत्सित रूप को चित्रित कर यदि एक अप-राध नहीं किया है तो नारी के अपमान के पाप के भागी अवश्य हुए हैं।

५–इतिहास की पुनरावृत्ति का उदाहरण प्रस्तुत करना

प्रस्तुत उपन्यास उस समय की सृष्टि है जब रक्त की प्यासी यवन भावना भारत पर अपना प्रचंड रूप दिखा रही थी। भारत मा की लाडलियो की लाज लूटी जा रही थी और उसी भावना के फलस्वरूप मानव गाजर मूली की भाँति काटे जा रहे थे। यही कुछ दिखाना भी लेखक का उद्देश्य था। लेखक कहता है, "चाहे बीसवीं शताब्दी का सम्य-काल हो, चाहे चौदहवी शताब्दी का जगंली पठानों, खिलजियों और गुलामो का अन्ध युग। मुस्लिम भावना तो खून से तर है और रहेगी। जब तक इसका जड़मूल से विनाश न हो जायगा– इसकी खून की प्यास नहीं बुझेगी। यह सर्वथा मानव-विरोधिनी भावना है जो सास्कृतिक रूप से मुस्लिम समाज मे दृढबद्ध-मूल है।"[2]

इस मुस्लिम भावना का ताडव नृत्य लेखक ने पजाब में देखा और उसे आरोपित कर दिया महमूद के कारनामो मे। "खून खराबी, लूटपाट, अत्याचार और बलात्कार के जो

१ सोमनाथ (आधार) : पृ० ८६। २, वही पृष्ठ ५।

दृश्य घटनायें मेरे कानों और आँखों को आक्रान्त करने लगीं, उन सबको मैं अपने इस उपन्यास में–ग्यारहवीं शताब्दी के उस बर्बर आक्रान्त के उफानों में आरोपित करता चला गया।"[1] अस्तु–एक सहस्र वर्ष पुरानी घटनाओं को चित्रित करने वाला 'सोमनाथ' पाकिस्तान बनने के समय के नरसंहार की कथा भी कहता है।

और अत्युक्ति नहीं होगी, यदि कहा जाय कि 'हिस्ट्री रिपीट्स इटसेल्फ' के उपदेश से लेखक समाज को जागृत करना चाहता है, बताना चाहता है कि आँखें खोलो, इतिहास से कुछ ग्रहण करो। महमूद कालीन लोमहर्षक घटना के इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही है, तब से लेकर अनगिनत बार इसकी आवृत्ति हुई है। पाकिस्तान के रूप में आधुनिक युग में भी उसी विभीषिका के दर्शन हुए हैं, भविष्य के लिए सावधान हो जाओ और एक होकर ऐसे बर्बरों की गर्दन मरोड दो।]

६–सकीर्ण राष्ट्रीय भावना का खंडन.

लेखक ने उस सकीर्ण राष्ट्रीय भावना का खंडन किया है जो साम्प्रदायिकता के क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी है। गगसर्वज्ञ के रूप में लेखक ने कहा है– पुत्र इस 'मैं' शब्द को निकाल दो। इसमे ही अहं तत्व उत्पन्न होता है। कल्पना करो कि तुम्हारी भाँति ही दूसरे भी इस 'मैं' का प्रयोग करेंगे तो प्रतिस्पर्द्धा और भिन्नता का बीज उदय होगा सामर्थ्य का समष्टि-रूप नहीं बनेगा।"

(भीमदेव)–"तो भगवन् हम कैसे कहें?"

"ऐसे कहो पुत्र कि यदि कोई आततायी देव की अवज्ञा करेगा तो भारत उसे कभी सहन नहीं करेगा।"

काश, कि अखंड भारत की बात भारतवासी पहले ही समझ गये होते तो क्यों हमे अपने ही रक्त मे स्नान करना पडता, अपनी डफ़ली अपना अपना राग अलापना छोड़कर सब एक स्वर में हुंकार उठते तो एक शत्रु तो क्या पृथ्वी तक दहल उठती। कितने आश्चर्य की बात है कि भारत के वीर सेनानी अपने ही योद्धाओं को मारकर अपनी ही भूमि को छीन कर विदेशियों को सौंप रहे थे। अपने ही हाथों स्वतन्त्रता की लहलही खेती को उजाड कर परतन्त्रता के बीज बो रहे थे। और राजपूतों की स्वार्थमयी नीति ने हमें लगभग डेढ़ हजार वर्षों तक परतन्त्र बनाये रक्खा।

आज की परिस्थिति पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालना अप्रासंगिक नहीं होगा। आज जबकि हमें स्वतन्त्रता की साँस लेते हुए थोड़ा ही समय बीता है तो एक और आक्रान्ता ने अपना बर्बर रूप दिखाया है, चीन ने विश्वासघात का छुरा भारत के पेट में घोंपा है पर आज लगता है जैसे हम इतिहास से सबक सीख चुके हैं, जैसे गगसर्वज्ञ के रूप में कही गई आचार्य चतुरसेन की अखंड भारत वाली बात की गाँठ आज हम भारतवासियों ने पल्ले बाँध ली है और आज भारत के लद्दाख के और उपूसी क्षेत्र के उत्तरी भाग पर चीन का आक्रमण समस्त भारत पर आक्रमण समझा जा रहा है। इतना ही नहीं विश्व के कोने कोने में व्याप्त हर भारतवासी को लग रहा है जैसे उसे ललकारा गया है पर अभी कुछ दिनों पूर्व तक हम इस सबक को नहीं सीख सके थे।

इस चेतावनी का देना लेखक का एक महान् उद्देश्य है।

---

१. सोमनाथ (आमुख) पृ० ७

७-फ्रायड के यौन-सिद्धांत की सपुष्टि

वैशाली की नगरवधू की भांति आचार्य जी ने इस उपन्यास में भी फ्रायड के यौन-सिद्धान्त की पुष्टि की है। शोभना और देवस्वामी का भाई-बहन होकर भी दाम्पत्य सूत्र में आबद्ध होने का आकुल दिखाना, इस बात का प्रमाण है।

ब्राह्मण विरोधी लेखक का दृष्टिकोण

और लेखक के विशिष्ट उद्देश्य के अन्त में मुझे आचार्य चतुरसेन की वह बात फिर दोहरानी है जिसे मैंने 'वैशाली की नगर वधू' में उनका ब्राह्मण विरोधी दृष्टिकोण एवं सकर सतान की विलक्षणता दिखलाना कहा है। उनकी इन दोनों बातों की पुष्टि इन उपन्यास में भी उतनी ही प्रखरता के साथ होती है। देवा अथवा देवस्वामी ब्राह्मण पिता और शूद्रा माता से उत्पन्न सकर सन्तान है। ब्राह्मणों के लिए हिन्दू धर्म के लिए वह सकर कितना भयकर सिद्ध हुआ कि एक बार का तो इनकी जड़ें ही उसने हिला दी। ब्राह्मण-विरोधी मैं इसलिए कह रहा हूँ कि देवा को ब्राह्मण वीर्य से उत्पन्न दिखाया है। किसी अन्य वर्ण का सकर भी वह दिखाया जा सकता था। ब्राह्मण-विरोधी दृष्टिकोण की पुष्टि होती है शोभना के चरित्र चित्रण से। कई स्थानों पर लेखक ने इस प्रकार का व्यग्य कसा है। शोभना ने अमीर को रेत में से निकालकर उसके प्राण बचाए। फिर वह भोजन का प्रबन्ध करने को चली तो अमीर ने कहा— नहीं बानू।' इस पर शोभना ने कहा। बंदी हूँ, मागूँगी नहीं। लेकिन ब्राह्मण की बेटी हूँ। पुरुसागर तीर्थ में मेरे लिए भिक्षा भी कमी नहीं है[1]

'और वह दिग्विजयी महमूद, उस गुण गरिमामयी ब्राह्मण-कुमारी के आँचल की छाँह में —खँवर की दर्द में खो गया।'[2]

लेखक ने जानबूझकर 'ब्राह्मण' शब्द का प्रयोग किया है। उपर्युक्त उदाहरण में से 'ब्राह्मण' शब्द निकाल दिया जाता तो कमी नहीं आती। फिर शोभना का किसी अन्य वर्ण की सतान होना भी दिखाया जा सकता था।

इसे समाप्त करने के पूर्व एक बात और कह देना अप्रासंगिक नहीं होगा। ऐतिहासिक उपन्यासकार वर्तमान की घटनाओं को अतीत में आरोपित करता है। आचार्य चतुरसेन ने कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्ना को 'सोमनाथ' के देवा में आरोपित किया है। जिन्ना के बारे में प्रसिद्ध है कि वह उत्तरी भारत के एक ऐतिहासिक महापुरुष (ब्राह्मण) के वीर्य से उत्पन्न सकर सन्तान था। इस सकरता की विलक्षणता के विषय में पाकिस्तान से *विशाल और क्या प्रमाण दिया जा सकता है।*

: २ सामान्य उद्देश्य

ऐतिहासिक उपन्यास सोमनाथ में तत्कालीन इतिहास की धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक अवस्थाओं का भली भांति दिग्दर्शन लेखक ने कराया है। उनका मन्तव्य इन घटनाओं के मौलिक सगठनात्मक और विघटनात्मक उपकरणों तथा तत्वों को प्रत्यक्ष रूप से सर्व सम्मुख प्रस्तुत कर देना है। ऐसा ही लेखक ने किया है।

सोमनाथ में जाति सम्प्रदाय, रूढियों, अन्धविश्वासों और परम्पराओं के दिग्दर्शन से लेखक ने अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप इस कृति पर अंकित की है। इस व्यक्तित्व में लेखक का अहवाद तो नहीं उसकी दृढ विचारावली का ही दर्शन मिलता है।

१. सोमनाथ पृ० ३३६।　　२. वही—पृ० ३४२।

अपार सुखसम्पदा और शक्तिसम्पन्न भारत के क्षत्रिय नृपति महमूद गजनवी के आक्रमण को न रोक सके। वह यहाँ से अपने लक्ष्य को पूरा करके लौट गया। इसका क्या कारण था? उसका रूप दिखाकर इस प्रकार की पुनरावृत्ति फिर कभी न हो यही इस उपन्यास का मौलिक आधार है।

१—राजपूत राजाओं की स्वार्थमयी नीति पर प्रकाश डालना :

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति ही अमीर की विजय बनी। अमीर के भारत में प्रवेश करते ही उसको मुल्तान के राजा ने सोमनाथ का मार्ग सहर्ष दे दिया। उसने अन्य राजाओं को मार्ग देने के लिये प्रोत्साहित ही नहीं किया प्रत्युत स्वयं अमीर का दौत्यकर्म भी किया। मुल्तान के राजा की व्यक्तिगत स्वार्थमयी दूषित मनोवृत्ति का अनावरण कर उस समय की विनाशकारी राजनीति के नाटक का प्रथम दृश्य उपस्थित किया है। उस समय राजाओं की मन स्थिति विभिन्नता के लिए ही थी। अपने व्यक्तिगत सुख और राज्यैषणा के लिए उन्होंने देश के साथ द्रोह किया। उसके इस कृत्य की पुनरावृत्ति भी अनेक राजाओं ने की। उनके इस कुकृत्य का वर्णन कर लेखक ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि किस प्रकार लघु से लघु विनाशकारी तत्व भी बडी से बडा सत्ता को किस प्रकार लुञ्ज बना सकता है।

२—राजाओं का शौर्य-प्रदर्शन तथा दूषित युद्ध-नीति की आलोचना करना .

उपर्युक्त देश-द्रोहियों के विपरीत घोघागढ के घोघाबापा, सपादलक्ष के धर्मगजदेव, आमेर के दुर्लभराय आदि अनेक राजा ऐसे भी थे जिन्होंने प्राणपन से उस दुर्दान्त बर्बर अमीर का सामना किया। इस प्रकार इन स्वाभिमानी क्षत्रियों की वीरता की अमिट छाप इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है। वह समय के जल से प्रक्षालित नहीं हो सकती। लेखक ने इन राजाओं की दूषित युद्ध-नीति की तीव्र आलोचना की है कि वे युद्ध में केवल जूझ मरना ही अपना धर्म समझते थे, युद्ध जीतने की लालसा उतनी प्रबल नहीं थी। इसे ही लेखक ने हिन्दुओं की पराजय का मुख्य कारण बताया है।

३—धार्मिक अन्धविश्वास का चित्रण

धार्मिक अन्धविश्वास और रूढियाँ अविवेकियों पर अपना प्रभुत्व शीघ्र स्थापित कर देती हैं। प्रत्येक देश और समाज इनकी असह्य यातनाओं का शिकार होता है। भारत में भी उस समय उपर्युक्त परम्पराओं का बोलबाला था। धूप, दीप, नैवेद्य से तो देवार्चन होता ही है परन्तु इस वृत्ति की धर्मान्धता का उग्र रूप उस समय और अधिक घातक हो जाता है जब देवता की पूजा के लिए कुमारी बालिकाएँ भी देव-निर्माल्य के रूप में मन्दिर में छोड दी जाती थी। गंगा और चौला ऐसी ही कुमारियाँ थीं जिनको आजीवन देव-सम्मुख नृत्य कर अपने-अपने सुख-साधनों की तिल-तिल कर आहुति देनी पडी थी।

योग और भोग की लालसा परस्पर विरोधिनी होती है। सोमनाथ के मन्दिर के दर्शनार्थी इन परस्पर विरोधिनी दोनों वृत्तियों को एक साथ प्राप्त करने की कामना से ही सोमनाथ के मन्दिर में आकर आसन जमाकर बैठते थे। एक स्थान में एक ही साधना के अनुसार एक से ही उपकरणों से क्या ये दो योग और भोग से मानसिक और शारीरिक सुख प्राप्त हो सकते हैं। एक काल में एक ही भावना से इनकी प्राप्ति करने वालों को अन्त में निराश होना पड़ता है। उनकी निराशा रक्तपात, नरसंहार, लूटखसोट के वातावरण में और भी भयावही हो जाती है। अत समाज को अन्तश्चेतना को इन ऐन्द्रजालिक विषमताओं से अलग रहना चाहिए। यह इस उपन्यास का एक उद्देश्य है।

४–धार्मिक वैमनस्य की प्रतिक्रिया के दुष्परिणाम का चित्रण —

जिस समय का यह उपन्यास है उस समय देश में धार्मिक वैमनस्य विशेषत शैवों, शाक्तो और अघोरी साधुओं मे चरम सीमा पर था। इसका सफल चित्रण उपन्यासकार ने रुद्रभद्र और गगसर्वज्ञ के झगड़े के रूप मे दिखाया है। इन दोनों धर्मों के वैमनस्य की प्रतिक्रिया इस सीमा तक पहुँची कि महमूद को रुद्रभद्र ने बड़ी सहायता दी। अस्तु, तत्कालीन धार्मिक वैमनस्य का चित्रण दिखाना भी लेखक का एक उद्देश्य था।

५–राजगृह-कलह का चित्रण

प्रस्तुत उपन्यास म आचार्य चतुरसेन ने महमूद के आक्रमण के समय भारतीय राजाओं की गृह-कलह का बड़ा सुन्दर चित्रण उपस्थित किया है।

'सोमनाथ' के लेखक आचार्य चतुरसेन शास्त्री क उपन्यास लेखन के य ही उद्देश्य थे।

निष्कर्ष

सोमनाथ आचार्य चतुरसेन का एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास है। 'वैशाली की नगरवधू' के निष्कर्ष क अन्तगत इतिहास-रस की चर्चा करते हुए हमने उनकी दो प्रवृत्तियों की ओर इगित किया था। एक तो ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए इतिहास का अघानुकरण आवश्यक नही है, उसे इतिहास-रस की अवतारणा अभीष्ट है, दूसरे इतिहास-रस के उदय का एक प्रमुख कारण है नारी प्रणय। नारी प्रणय के खेल दिखाकर आचार्य श्री ने इस उपन्यास मे भी अपनी इतिहास-रस की अवतारणा का सफल प्रयोग किया है। सोमनाथ मे इतिहास के स्थूल तथ्यो के दर्शन तो बहुत कम होते हैं परन्तु तत्कालीन भारत के हृदय अवश्य ही सजीव होकर पाठक के नेत्रो के समक्ष चल-चित्र की भाँति तैरने लगते हैं। तत्कालीन भारत के धार्मिक वैमनस्य की पराकाष्ठा राजपूतों का दैवी गुण, उनका अप्रतिम शौर्य, उनके जीवन का कलक—उनकी आपसी कलह, स्वार्थमयी नीति, धर्म के नाम पर कट मरना आदि सभी ऐतिहासिक तत्व तो मुखरित हो उठते हैं इस उपन्यास में।

साहित्यकार का अथवा साहित्य का धर्म है सहितता, सामजस्य, सश्लेषण— और यह सहितता होती है दो विरोधी तत्वो मे। तभी तो आचार्य चतुरसेन ने साहित्यकार का निर्वाह करने के लिए इतिहास के व्यतिक्रम के मूल्य पर भी अमीर महमूद को राक्षस के साथ-साथ मानव भी दिखाया है। इतिहास के कुत्सित महमूद को चतुरसेन का साहित्यकार ही तो गले लगाता है, वही तो उसे मानवो की पक्ति मे ला बिठाता है। इसका अर्थ हुआ कि अपने इतिहास-रस की अवतारणा के फलस्वरूप आचार्य श्री ने इतिहास की चिंता न करके साहित्यकार का धर्म निभाया है। क्या इतिहास इस बात को दावे के साथ सिद्ध कर सकता है कि लाखों नरो का सहारक महमूद मानव नहीं था। राक्षस को भी किसी न किसी पर प्यार आता है महमूद को भी किसी न किसी पर अवश्य प्यार आता होगा, प्यार के इस कोमलतम मानवीय तत्व की ओर इतिहासकार की दृष्टि नहीं पहुँच सकी— जीवन का यह चिर सत्य साहित्यकार की पैनी दृष्टि से ओझल न रह सका और उसने इसे अपने इस उपन्यास 'सोमनाथ' मे चित्रित कर इतिहास-रस की स्रोतस्विनी बहा दी इसे हम इतिहास विरोधी भी तो नहीं कह सकते। महमूद का यह प्रेम तत्व इतिहास विरोधी तत्व नहीं कहा जा सकता, कोई प्राणी यदि प्रेम के इस तत्व से रहित मिल जाएगा, तो

प्रकृति का नियम भंग हो जाएगा, यह असम्भाव्य है।

इतिहास-रस के विषय में दूसरी बात नारी प्रणय की कही गई थी। इसके उदाहरण हम 'वैशाली की नगरवधू' में दे आए हैं। इस उपन्यास में भी हमें नारी प्रणय से सम्भूत आप्लावन की उत्ताल तरंगों से युक्त ज्वार-भाटे के दर्शन होते हैं। नारी-प्रणय से प्रलयकारी ज्वाला भभकी जिसने राजपूती वैभव को एक बार को भस्मीभूत कर दिया, भारत के कण-कण की हड्डियों तक को कँपा दिया और समस्त देश को भस्मसात कर डालने वाली महाविनाशकारी उस भयंकर ज्वाला को नारी ने ही पी डाला। सब बवंडर शान्त हो गया। अमीर को यदि चौला मिल जाती तो वह चुपचाप यहाँ से लौट जाता, परन्तु उसे चौला न मिली और चौला की प्राप्ति के लिए उसने ईंट से ईंट बजा दी। भारतीयों के देवताओं के महालयों को अपने घोड़ों की टापों से रौंद डाला। और जब उसे चौला मिल गई तो वह यहाँ से चुपचाप लौट ही नहीं गया वरन् उसने चौला (शोभना) के आँचल में मुँह छिपाकर इतने आँसू बहाए कि उसका सब कलुष धुल गया। उसमें मानव की प्रतिष्ठापना हो गई।

इस प्रकार 'सोमनाथ' में भी 'वैशाली की नगरवधू' की भाँति लेखक ने अपने इतिहास-रस का सफल प्रयोग करके दिखाया है। इस उपन्यास में हमें लेखक के इतिहास-रस का एक और दिशा में क्षेत्र-विस्तार दिखलाई पड़ता है और वह यह कि उन्होंने इतिहास की परम्परा में आबद्ध पात्रों के प्रति हमारे संकीर्ण मनोवेगों को उदार और मानवीय बनाने की सफल चेष्टा की है जैसे कि महमूद के चरित्र में।

कथानक गल्प साहित्य का प्राण होता है। यदि कथानक दुर्बल, लचर और कौतूहल से रहित होगा तो उस कृति का श्रेष्ठ बनना असम्भव है। जैसा कि हम इस अध्याय में देख आये हैं। सोमनाथ इस दृष्टि से बहुत भाग्यशाली है। देशकाल का चित्रण इस उपन्यास में बड़ा मनोहारी हुआ है। कैसे गजनी का धूमकेतु (सोमनाथ पर) भूचाल की भाँति आ धमका, कैसे सम्पूर्ण गुजरात के प्राण वहाँ आ जूझे, कैसे वह गगन स्पर्शी सोमनाथ महालय देखते ही देखते भूमिसात होकर, मलबे का ढेर हो गया, कैसे वहाँ की युग-युग की संचित सम्पदा ऊँटों और बर्बर सैनिकों के घोड़ों पर लदकर उड़छू हो गई। इसका सप्राण चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। तेरहवीं शताब्दी में ध्वस्त सोमनाथ महालय, स्वर्ण रत्न और नरमुंडों से परिपूर्ण, रूप यौवन से मत्त, देवदासियों की नूपुर-ध्वनि से गुंजित, सोलंकी भीमदेव की शमशेर से चमत्कृत और नवनीत-कामलांगी देवदासी चौला की सुषमा से भरपूर, कौल, अघोरी कापालिक और तान्त्रिकों के जटिल भयानक प्रयोगों से ओतप्रोत[1] शोभना की विलक्षणता आदि का सुचित्रण तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा के अनुसार उपन्यास में ऐतिहासिक तत्त्व, कल्पना और उद्देश्य के अन्तर्गत हमने देखा। 'वैशाली की नगरवधू' की भाँति इस उपन्यास में भी ऐतिहासिक पात्र तो बहुत हैं पर उनके चरित्र का विकास इतिहास के अनुसार नहीं हो पाया है। अपनी इतिहास-रस की स्रोतस्विनी बहाने के कारण उन्होंने स्वयं ऐतिहासिक तथ्यों की परवाह नहीं की है। शोभना और देवस्वामी की सृष्टि सोद्देश्य है।

---

१. चतुरसेन साहित्य, पृ. १०—११ पर आधारित।

४

पूर्णाहुति

उपन्यास का संक्षिप्त कथानक

इस उपन्यास का कथानक पृथ्वीराज रासो के आधार पर वर्णित है। लगभग एक हजार वर्ष पूर्व भारत की राजधानी दिल्ली में प्रबल प्रतापी महाराजा पृथ्वीराज का शासन था, जिनका प्रबल प्रताप दिग दिगन्त म फैला हुआ था।

एक बार वसन्त पचमी के दिन रमणीय राज-उद्यान (उपवन) में वसन्तोत्सव मनाया गया। महाराज पृथ्वीराज अपने रत्न-सिंहासन पर विराजे, जिनके साथ उनके विशिष्ट सामन्त, कवि चन्द, गुरुराम पुरोहित आदि अपने अपने आसनों पर बैठे थे। तभी कन्नौज से आए हुए एक ब्राह्मण ने राजा को आशीर्वाद देकर कन्नौजपति की तेरह वर्षीया पुत्री सयोगिता के अद्भुत रूप लावण्य का वर्णन करते हुए उस असाधारण राजनन्दिनी का महाराजा पृथ्वीराज के लिए अवतीर्ण होना बताया। सयोगिता का रूप-वर्णन सुनकर महाराजा आत्म-विस्मृत हो गये।

पिता की एक मात्र दुलारी पुत्री सयोगिता अपनी समवयस्का बालाओं के बीच तारागणों में चन्द्रमा के समान सुशोभित होती थी। एक दिन उसने कर्नाटकी दासी से महाराजा पृथ्वीराज के रूप-सौन्दर्य, तेज, वैभव, पराक्रम, दानशीलता, वीरता आदि के गुणों का श्रवण करके अपने हृदय से स्वय को पृथ्वीराज के लिए अर्पित कर दिया।

उधर कन्नौजपति ने राजसूय-यज्ञ की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी। चारों ओर से आए हुए दूतों ने जयचन्द को सूचना दी—"महाराज, भारतवर्ष के हिन्दू तथा यवन राजाओं ने सिर झुका कर श्रीमान का आदेश स्वीकार किया है।" कन्नौजपति जयचन्द ने अपने मत्री सुमन्त ने अपने मौसेरे भाई 'दल्लीपति पृथ्वीराज के पास जाकर उन्हें दिल्ली से मोरों तक की आधी भूमि प्रदान करने के लिए आदेश दिया। मत्री सुमन्त ने राजा की आज्ञा मानकर दिल्ली के लिए प्रस्थान किया।

दिल्ली पहुचकर सुमन्त ने महाराज पृथ्वीराज से जयचन्द का सदेश कहा। साथ ही कन्नज के दूतों न जयचन्द के राजसूय-यज्ञ करने की सूचना देते हुए महाराज पृथ्वीराज से कनौज चलकर कनौज-राज द्वारा नियत किए हुए दरवान के पद पर छड़ी लेकर काम करने का आज्ञा-पत्र प्रस्तुत किया। इसे सुनकर पृथ्वीराज पिंजरे में सेर्फ सिंह की तरह सन्न रह गए। परन्तु गोइदराय ने दूतों को सदेश दिया कि क्या जयचन्द दिल्लीपति पृथ्वीराज को नहीं जानते, जिनके दण्ड पर मुण्ड रहते यज्ञ करने की इच्छा केवल कल्पना ही कही जा सकती है। जयचन्द ने जब यह सुना तो वह क्रोध से भभक उठा। उसने द्वारपाल के स्थान पर पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा स्थापित करके यज्ञ का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

जब यह समाचार पृथ्वीराज को प्राप्त हुआ तो वे क्रोध से थरथर काँपने लगे

और उन्होंने अपने सामन्तों को बुलाकर उनसे परामर्श किया। कैमास ने प्रस्ताव किया, हमें युक्ति से काम लेना चाहिए और बालुकाराय को मार डालना चाहिए जिससे एक वर्ष का अशौच रहने से यह कार्य रुक जायगा क्योंकि बालुकाराय जयचन्द का भाई है, सभी ने स्वीकार किया। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। कान्ह ने बालुकाराय का सिर काट दिया। इस प्रकार पृथ्वीराज विजयी हुए।

उधर कन्नौज में जब बालुकाराय की स्त्री ने जाकर जयचन्द को अपने पति के वध और नगर के विध्वंस का समाचार सुनाया तो सभी मंगल-कृत्य बन्द हो गए। यज्ञ की आहुतियाँ वहीं रुक गईं। जयचन्द के हृदय में आग सी लग गई। वे लाल आँखें करके बोले, "दसों दिशाओं के देवताओं में किसी की भी शरण में जाकर पृथ्वीराज मेरे हाथ से जीवित नहीं बच सकता। मैं पृथ्वीराज को उसके बहनोई और सहायक रामसिंह सहित बाँध न लाऊं तो मैं अपने पिता का पुत्र नहीं।" उन्होंने अपनी चतुरंगिणी सेना सजाने की आज्ञा दी। किन्तु महारानी जाह्नवी के कथनानुसार जयचन्द ने संयोगिता के स्वयम्वर करने की तैयारी का आदेश दिया और कान्ह कमध्वज को सेना लेकर पृथ्वीराज को पकड़ लाने की आज्ञा दी।

संयोगिता ने जब सुना कि महाराज जयचन्द ने पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा द्वारपाल के स्थान पर स्थापित करके उसका अपमान किया है और उस पर कुपित हो रहे हैं तब उसने मन ही मन कहा– "जब तक इस तन पिंजर में प्राण-पखेरू हैं मैं सम्भरीनाथ को छोड़ और किसी को भी न वरूंगी।" राजा ने जब यह सुना तो वे विकल हो गए। उन्होंने क्रोध में आकर संयोगिता को बहुत खरी-खोटी सुनाई।

कन्नौज से एक दूत ने समाचार दिया कि जयचन्द ने संयोगिता के स्वयम्वर में महाराज पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा छड़ी लिए हुए द्वारपाल के स्थान पर स्थापित की है। जब स्वयम्वर के लिए संयोगिता जयमाला लेकर चली तब संयोगिता ने महाराज की स्वर्ण-प्रतिमा के गले में ही जयमाला डाल दी। इससे जयचन्द क्रोध से विह्वल हो गया और उस ने संयोगिता को गंगा किनारे के महलों में रहने की आज्ञा दी। संयोगिता महाराज की प्राप्ति के लिए अन्न-जल त्याग कर योग कर रही है।

इस समाचार से महाराज पृथ्वीराज अत्यन्त व्याकुल हो गए। चारों ओर से विपत्तियों के बादल घुमड़ते देखकर उन्होंने एक लम्बी साँस खींची जिसमें संयोगिता की स्मृति ओत-प्रोत थी। सामन्तों से परामर्श करने पर यह निश्चय हुआ कि चित्तौड़-अधिपति राजर्षि रावल समरसिंह जी को सहायतार्थ लिखा जाए। कैमास मन्त्री दस सामन्तों सहित दिल्ली की रक्षा करें। शेष योद्धाओं को लेकर पृथ्वीराज हाँसी-दुर्ग का उद्धार करने को प्रस्थान करें।

इधर से महाराज पृथ्वीराज और उधर से रावल जी अपने छोटे भाई अमरसिंह सहित हाँसी के मैदान में आ डटे। ततारखान खां और अमरसिंह में घोर युद्ध हुआ और अमरसिंह वीरगति को प्राप्त हुए। घमासान युद्ध होने पर यवन-दल परास्त होकर हट गया।

वसन्त का आगमन हुआ। महाराज पृथ्वीराज संयोगिता की विरहाग्नि में विकल होने लगे। एक दिन जब रात्रि के दो पहर बीतने पर भी उन्हें निद्रा नहीं आई तब उन्होंने

कवि चन्द को बुलाकर सयोगिता की प्राप्ति और जयचन्द से अपने अपमान का बदला लेने का उपाय पूछा। कविचन्द ने छद्म वेश धारण करके चलने का परामर्श दिया और यात्रा को गुप्त रखने के लिए कहा। अपनी रानियो के सहवास मे पृथ्वीराज का एक वर्ष व्यतीत हो गया। अब उन्हें फिर सयोगिता की स्मृति आने लगी।

एक रात्रि मे राजा को सफलता-सूचक स्वप्न दिखाई दिया। प्रातः विधिपूर्वक शिव की पूजा के पश्चात पृथ्वीराज ने ग्यारह सौ सवार सौ सामन्त छ निजी शूरमा और कविचन्द को साथ ले प्रस्थान कर दिया। मार्ग म विभिन्न प्रकार के शकुन तथा अपशकुनों को देखकर सब सैनिक भाँति-भाँति की कल्पना करने लगे। चलते-चलते कन्नौज के निकट गगा के किनारे पहुच गए।

जयचन्द को चन्द कवि के आगमन की सूचना दी गई। महाराज ने तुरन्त चन्द कवि को दरबार मे बुला लाने की आज्ञा दी। आगे-आगे चन्द कवि और पीछे खवास के वेश मे पृथ्वीराज ने सभा भवन मे प्रवेश किया। चन्द ने जयचन्द के दिव्य दरबार को देख कर राजा को आशीर्वाद दिया और उनके दरबार का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया। कर्नाटकी दासी ने पृथ्वीराज को देखते ही घूँघट निकाल लिया, फिर उसने कविचन्द के सकेत से झट घूघट खोल दिया। इससे सभी को पृथ्वीराज का दरबार में उपस्थित होने का शक हुआ क्योंकि कर्नाटकी दासी केवल पृथ्वीराज को ही पुरुष मानकर घूँघट निकालती थी। कविचन्द और पृथ्वीराज अपने स्थान पर चले गये। जब जयचन्द को पृथ्वीराज के होने का पूर्ण निश्चय हो गया तब उन्होंने दस लाख सेना से कवि चन्द के जनवासे को घेरकर युद्ध छेड दिया।

पृथ्वीराज कन्नौज नगरी की शोभा निहारते हुए गगा के किनारे पहुचे जहाँ सयोगिता का महल था। सयोगिता की एक दासी पृथ्वीराज को महल में ले गई, दोनो का गान्धर्व विवाह हुआ। सयोगिता को वहीं छोड राजा रणभूमि म लौट आये। हाथ में कगन बाधे अकेले पृथ्वीराज को देखकर कान्ह ने पृथ्वीराज की वधू को लाने की आज्ञा दी। पृथ्वीराज फिर महल मे जाकर सयोगिता को लाये। पृथ्वीराज और उनके वीर जयचन्द की सेना के साथ लडते-लडते अपनी सीमा पर आ पहुचे। यह देख जयचन्द अपने शूर वीरों का दाह-सस्कार कर अपनी राजधानी लौट आए। उधर पृथ्वीराज सयोगिता सहित दिल्ली आ पहुचे।

जयचन्द के द्वारा भेजे हुए श्री कण्ठ पुरोहित ने विवाह की सामग्री और अतुल दहेज लाकर निड्डरराय के यहाँ सयोगिता का पृथ्वीराज से विधिवत् सस्कार कराया। विवाहोपरान्त सयोगिता काम-कला शृ गार से पूर्ण होकर महाराज पृथ्वीराज के चित्त-चन्द्रमा की चादनी हो गई और सयोगिता को पाकर पृथ्वीराज ससार को भूल गए।

गजनी का शासक शहाबुद्दीन गौरी पृथ्वीराज से सात बार टक्कर ले चुका था। पृथ्वीराज ने सातो बार ही शहाबुद्दीन गौरी को पकड कर छोड दिया था। पृथ्वीराज सयोगिता के साथ भोग विलास में लिप्त हैं, यह जानकर शहाबुद्दीन गौरी ने गजनी से प्रस्थान किया और सिन्धु नदी पार कर भारत भूमि पर छावनी डाली।

चित्तौड के राजर्षि रावल समरसिंह ने जब दिल्ली की दुरवस्था सुनी तब वे

अपने पुत्र रतनसिंह का राज्याभिषेक सम्पन्न करके अपनी रानी पृथा सहित दिल्ली आ पहुंचे। कवि चन्द ने सबके कहने पर एक पर्चा राजा को भेजा, जिसमें सारी परिस्थिति का चित्रण किया गया था। राजा ने तुरन्त बाहर आकर दरबार किया और रावल जी के आने के समाचार को सुनकर उनको आदर पूर्वक महलों में ले आया।

गोरी से लोहा लेने के लिए रातों-रात दिल्ली में सेना की तैयारियां हुई और प्रातःकाल सेना ने कूच का नक्कारा बजाया। अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो महाराज ने प्रस्थान किया।

हाडा हम्मीर राजा का एक सामन्त था। वह राजा का विरोधी होकर कांगड़ा में बैठा था। कवि चन्द के बहुत कुछ समझाने पर भी हम्मीर राजा के पास आने के लिए तैयार न हुआ। और उसने छल से कविचन्द को मन्दिर में बन्दी बनाकर सेना-सहित शाह के पास प्रस्थान किया।

पृथ्वीराज और शाह दोनों की सेनाएं आमने सामने हुई। पावस पुण्डीर ने हम्मीर का सिर काटकर राजा को प्रसन्न किया। घमासान युद्ध कई दिन तक चला। अन्त में जिसने सात बार गजनी के शाह को पकड़-पकड़ कर, हँस कर छोड़ दिया था, आज वह तेज गवाँकर बन्दी हुआ।

दिल्ली में जब युद्ध का समाचार पहुंचा तो रानी संयोगिता ने तुरन्त प्राण-त्याग दिए और एक हजार राजपूत बालाएँ अग्नि रथ पर बैठकर अपने वीर पतियों के निकट सूर्य-लोक में पहुंच गई।

शाहबुद्दीन कूच करता हुआ गजनी जा पहुंचा। उसने पृथ्वीराज को बेणीदत्त ब्राह्मण की निगरानी में अपने महल के दक्षिण भाग में रक्खा। बहुत प्रयत्न करने पर भी राजा उस कठोर बन्धन से न छूट सका। एक दिन क्रोध में शाह ने राजा की आँखें निकल-वा कर उसे अन्धा कर दिया।

उधर जालंधरी देवी के मन्दिर में बन्दी कविचन्द राजा के समाचार को सुनकर पट खुलने पर दिल्ली की ओर चला। दिल्ली की दशा देख, अपनी स्त्री से राजा के विषय में जानकारी करके व्याकुल होता हुआ गजनी जा पहुंचा और शाह से मिला।

शाह को प्रसन्न करके चन्द ने उससे पृथ्वीराज के बचपन की, एक बाण से सात घड़े फोड़ने की, प्रतिज्ञा को पूरा करने का वचन ले लिया। चन्द ने राजा से मिलकर उसे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए तैयार कर लिया। राजा कवि का हाथ पकड़कर वहाँ पहुंचा। कवि के कथन से शाह ने राजा को उसकी कमान और तीर दिला दिया। कवि ने राजा को लक्ष्य करके एक कवित्त कहा जिसका संकेत समझकर राजा ने शाह की आज्ञा पाकर उसकी हुंकार का अनुसरण करके बाण छोड़ा। बाण शाह के मुंह में लगकर तालू फोड़कर पार निकल गया। शाह जहाँ-का-तहाँ छटपटाने लगा। लोगों में हलचल मच गई। सरदार तलवार लेकर राजा की ओर झपटे। कवि ने तुरन्त कटार निकालकर अपने पेट में मार कर राजा को दे दी। राजा ने भी गोविन्द का नाम लेकर कटार अपने पेट में भोंक ली।

इस प्रकार पृथ्वीराज और चन्द ने साका रचकर वीर-यज्ञ की पूर्णाहुति दी।

एक दिन एक ही नक्षत्र में जन्मे, साथ-साथ पले, खेले और सुख-दुख के साथी रहे, फिर एक साथ एक ही क्षण में लोहे की तीखी धार का रक्तपान कर अमर हुए।

तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा
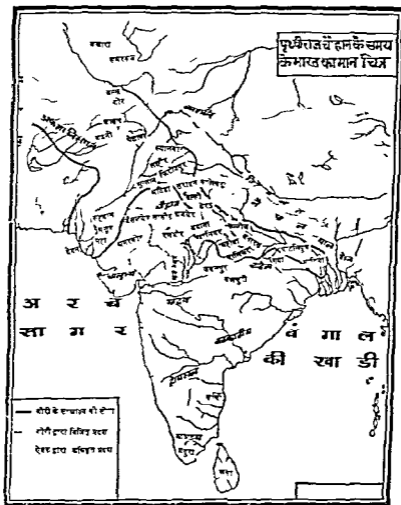
'पूर्णाहुति' राजपूत-काल के उत्तरार्द्ध के वैभवपूर्ण इतिहास पर आधारित उपन्यास है, जिससे तत्कालीन राजपूतों के जीवन के रेखाचित्र का बोध होता है। वह समय राजपूतों की वीरता, वैभव, आत्मगौरव तथा शक्ति के चरमोत्कर्ष का था। १२ वीं शताब्दी का यह युग राजनीतिक हलचल एवं घोर अशान्ति का था। महमूद गजनवी सत्रह बार भारत पर आक्रमण करके उसके वैभव को लूटकर ले जा चुका था। प्रसिद्ध सोमनाथ के

मन्दिर को उसने सन १०२५ ई० मे ध्वस किया था।[1] इसके पश्चात् शाहबुद्दीन गोरी ने भारत को आक्रान्त करना प्रारम्भ किया। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् कोई ऐसा शक्तिशाली शासक न हुआ जो सारे उत्तरी भारत का सगठन करके शासन करता। इस समय विभाजक-शक्तियो की इतनी अधिक प्रबलता हुई कि साधारण घटनाओ ने ही राज्यो के उत्थान और पतन का बीज बो दिया। उत्तर पश्चिम से आने वाले मुसलमानो ने धीरे-धीरे भारत पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया। इस काल का इतिहास अनेक छोटे-छोटे राज्यो के पारस्परिक सघर्ष एव उनके उत्थान-पतन की एक कहानी है। ये छोटे-छोटे राज्य शिशुओ की भाँति छोटी-छोटी बातो पर झगडना भी खूब जानते थे।[2]

१ राजनीतिक दशा

बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण म उत्तरी भारत अनेक छोटे छोटे राज्यो मे विभक्त था। उत्तर-पश्चिमी भारत मे पजाब, मुल्तान और तीन विदेशी राज्य थे।

पजाब को ग्यारहवीं शताब्दी मे महमूद ने जीतकर अपने राज्य मे मिलाया था। तब से वह सन ११८६ ई० तक गजनी के साम्राज्य का ही अभिन्न अग रहा।[3] महमूद के उत्तराधिकारियो के समय से पजाब के तुर्की राज्य का पतन होने लगा। सन् ११६७ ई० से चौहानो ने अपने राज्य की सीमा का विस्तार करके पजाब पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया था। मुल्तान म शिआ सम्प्रदाय के अनुयायी करमाथी मुसलमान राज्य करते थे। इस प्रान्त को भी महमूद ने जीत लिया था, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त करमाथी शासको ने फिर से अपने राज्य को स्वतत्र बना लिया था।[4] मुल्तान के दक्षिण मे सिन्ध नामक प्रदेश मे सुम नामकी एक मुसलमान जाति का राज्य था। महमूद ने इन पर अपना शासन स्थापित किया था किन्तु उसके बाद ये लोग भी स्वतत्र हो गये।[5]

शेष भारत म राजपूत राजाओ का राज्य था जो अपने देशो मे विभक्त थे। इनके अनेक छोटे-छोटे राज्य थे।

सम्राट हर्षवर्द्धन के शक्तिशाली साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने से कन्नौज की केन्द्रीय शक्ति भी लुप्त हो गई। प्रतिहारो के राज्य के अनन्तर कन्नौज मे गहडवाल वश का राज्य स्थापित हुआ।[6] गोविन्दचन्द्र के बाद उसका पुत्र विजयचन्द्र और फिर विजयचन्द्र का पुत्र जयचन्द्र सन् ११७० ई० मे कन्नौज की गद्दी पर बैठा।[7] जयचन्द्र ने कन्नौज को समृद्धिशाली बनाने मे यथेष्ठ परिश्रम किया और उसे एव वैभवपूर्ण राज्य बना दिया। मुसलमान इतिहासकारो ने जयचन्द्र की अपने इतिहास-ग्रन्थो मे अत्यन्त प्रशसा की है। चौहानवशी पृथ्वीराज से जयचन्द्र की घोर शत्रुता थी। सयोगिता के हरण के कारण घमासान युद्ध हुआ। उसने पृथ्वीराज के विरोध मे शाहबुद्दीन का साथ दिया।

गुजरात भी एक शक्तिशाली राज्य था। उसके चार महान शासको ने गुजरात

---

१. श्री रतिभानुसिह नाहर पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० ७८।

२. विसेन्ट ए० स्मिथ इम्पीरियल गजेटियर आफ इडिया, भाग २. पृ० ३०१।

३. डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव . दिल्ली सल्तनत, पृ० ५८। ४. वही पृ० ५६। ५. वही-पृ० ५६

६. श्री नाहर पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० २०।

७. डा० आ० ला० श्रीवास्तव : दिल्ली सल्तनत, पृ० ६०।

को सुसंगठित एवं शक्तिशाली बना दिया, प्रथम मूलराज, दूसरे भीम, तीसरे सिद्धराज और चौथे कुमारपाल। ये शासक सोलंकी कहे जाते हैं।[1] सिद्धराज जयसिंह ने मालवा के परमार राज्य का अधिकांश भाग जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था। चित्तौड़ के गुहिलोतों को उसने पराजित किया और नाडौल तथा काठियावाड़ में गिरनार को जीतकर अपनी विजय को परिपूर्ण किया था।[2] मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय मूलराज द्वितीय इस वंश का शासक था, जिसके राज्य में केवल गुजरात और काठियावाड़ ही शेष रह गया था। इनकी शक्ति और वीरता ने बड़े-बड़े राज्यों को प्रभावित किया और यवन आक्रमणकारियों का इन्होंने डटकर मुकाबिला किया।

कालिंजर में चन्देल और महोबा में चेदि वंश के राजपूतों का राज्य था।[3] चन्देलों ने ग्यारहवीं शताब्दी में गंगा-यमुना दोआब के दक्षिण भाग पर विजय प्राप्त की। बुन्देलखण्ड भी उनके राज्य का ही अंग था। इस वंश में मदनवर्मन प्रसिद्ध शासक हुआ था, जिसने मालवा के परमारों तथा गुजरात के सिद्धराज को पराजित किया था। आगे चलकर चन्देल भी गहड़वारों द्वारा पराजित किया गया। अजमेर के पृथ्वीराज तृतीय ने इस राज्य का बहुत सा भाग चौहान राज्य में मिला लिया था। मालवा के परमारों की राजधानी धार थी। इस वंश में भोज एक प्रतापी और शक्तिशाली राजा हुए जो योद्धा होने के साथ-साथ विद्वान और साहित्य प्रेमी भी थे।[4] बारहवीं शताब्दी में परमार वंश का भी अधःपतन हो गया। मुहम्मद गोरी के समय में इस वंश का शासक महत्वहीन एवं दुर्बल सामन्त था, जो गुजरात के चालुक्यों के अधीन था।

बिहार में पाल और बंगाल में सेन वंश के शासक राज्य करते थे। एक समय में पाल साम्राज्य में सम्पूर्ण बंगाल और बिहार सम्मिलित थे। बारहवीं शताब्दी में इस वंश के राजा रामपाल ने उत्कल, कलिंग और कामरूप को जीत लिया था। किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् पाल वंश का पतन हो गया, चारों ओर छोटे-छोटे सामन्त स्वतन्त्र बन गये और विशाल पाल साम्राज्य संकुचित होकर छोटासा राज्य रह गया। बिहार उनके हाथों से निकल गया। केवल उत्तरी बंगाल उनके राज्य में शेष रह गया। ग्यारहवीं शताब्दी में सेनों ने पूर्वी भारत में अपनी सत्ता की नींव डाली। इस वंश के एक शासक विजयसेन ने पूर्वी बंगाल पर अधिकार कर लिया। उसने कामरूप, कलिंग और दक्षिण-बंगाल में विजय प्राप्त की। उसने एकबार मिथिला के नान्यदेव को भी पराजित किया। लक्ष्मण सेन इस वंश के अन्तिम शासक हुए।

राजपूतों का एक महत्वपूर्ण राज्य अजमेर के चौहानों का था, जो राजपूतों में सबसे प्रतापी वंश माना जाता था। इनका साम्राज्य एक बड़े क्षेत्र में बिखरा हुआ था। इस वंश की स्थापना एक सामन्त द्वारा हुई थी। ग्यारहवीं शताब्दी में अजयपाल ने अजमेर की नींव डाली। अर्णोराज के शासन-काल में चौहानों को कुछ समय के लिए चालुक्यों के अधीन रहना पड़ा था।[5] किन्तु शीघ्र ही स्वतन्त्र होकर उन्होंने उत्तर पूर्वी राजपूताने पर

१. डा० ईश्वरी प्रसाद : भारतीय मध्य युग का इतिहास, पृ० १८।

२. डा० आ० ला० श्रीवास्तव : दिल्ली सल्तनत, पृ० ५६। ३. वही—पृ० ६१।

४. श्री नाहर : पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० २०।

५. डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : दिल्ली सल्तनत, पृ० ६०।

विजय प्राप्त करके अपनी शक्ति में अभिवृद्धि करली थी।

इस वंश का सबसे प्रतापी, शक्तिशाली, वीर, अन्तिम राजा पृथ्वीराज चौहान था। यह उत्तरी भारत का अन्तिम सम्राट माना जाता है। दिल्ली और अजमेर दोनों राज्यों का संगठन करके अनेक राज्यों पर अपना अधिकार करके पृथ्वीराज ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। दिल्ली और कन्नौज की परस्पर प्रतिद्वन्द्विता बढ़ रही थी। जयचन्द पृथ्वीराज से अपनी पराजय के कारण मन ही मन कुढ़ता था। शाहबुद्दीन गोरी ने भारत पर राजनीतिक आधिपत्य जमाना प्रारम्भ कर दिया था। वह बार-बार आक्रमण कर रहा था। पंजाब प्रदेश का विस्तृत भू-भाग हस्तगत करके उसने उत्तरी भारत के प्रसिद्ध राजपूत राजाओं पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिए।[1] कई बार वह पराजित होकर वापिस लौट गया, किन्तु पारस्परिक फूट ने उसे भारत पर राज्य करने का अवसर प्रदान किया।[2] सन् ११९१ ई० के तराइन के प्रथम महायुद्ध में, जयचन्द के अतिरिक्त, सब राजपूत राजाओं ने पृथ्वीराज की प्रधानता में गोरी को परास्त किया। सन् ११९२ ई० में तराइन के दूसरे महायुद्ध में पृथ्वीराज जयचन्द की कूटनीति से असफल हुआ और पकड़कर मार डाला गया। राजपूतों की इस पराजय ने हिन्दू राजाओं के घुटने टिका दिए। गोरी ने धीरे-धीरे कन्नौज, बिहार, बंगाल तथा कालिंजर पर विजय प्राप्त करके समस्त उत्तरी भारत में यवनों के साम्राज्य की नींव डाल दी।[3] पारस्परिक झगड़ों ने राजपूत राजाओं का विनाश कर दिया।

२ सामाजिक दशा

राजनीतिक परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप सामाजिक स्थिति में भी परिवर्तन प्रारम्भ हुए। प्राचीन वर्ण व्यवस्था ने वर्तमान जाति-पाँति का रूप धारण कर लिया। वर्णाश्रम धर्म का जो रूप हिन्दू समाज में चला आ रहा था वह विशृंखलित हो गया। मध्य युग में हिन्दू समाज में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र वर्गों की स्थिति बिगड़ने लगी, जीविका के विभिन्न साधनों, अन्तर्जातीय विवाहों तथा मुसलमानों के सम्पर्क से अनेक जातियाँ उपजातियाँ उठ खड़ी हुईं। डा० दशरथ शर्मा ने इसकी पुष्टि की है।[4] जातियों या वर्णों की निश्चित संख्या कितनी थी, इसका प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता। संस्कृत-साहित्य में विभिन्न प्रकार की संख्याओं का निरूपण हुआ है। श्री काणे के अनुसार स्मृतियों में वर्ण-संख्या में वैभिन्य पाया जाता है।[5] प्राचीन काल में ब्राह्मण समाज का नेता था। मध्य युग में ब्राह्मण का महत्व कम हो गया, उसका स्थान क्षत्रिय-वर्ग ने ले लिया। राजाओं और सामन्तों की प्रधानता प्रारम्भ हो गई। अतएव समाज में शौर्य और विलास का सम्मिलित प्रवतन हुआ। राजपूतों में युद्ध और विवाह को प्रमुखता दी गई। अनेक बार स्त्री ही युद्ध का कारण बन जाती थी। आत्म-गौरव की भावना का राजपूतों में प्राधान्य था। उनका अदम्य विश्वास अपनी शक्ति और तलवार पर रहता था। क्षत्रियों के

---

१. डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृ० ६६-६७ २. वही—पृ० ६९-७० ।

३. वही—पृ० ७१—७२

४. Under such conditions the sub divisions of the Brahmans were bound to multiply.

डा० दशरथ शर्मा : अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, पृष्ठ २४० ।

५. श्री पी० वी० काणे : हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र लिटरेचर, द्वितीय भाग १, पृ० २०

पश्चात ब्राह्मणों का महत्व था। ब्राह्मण राजा को ईश्वर का अंश बतलाते थे तो राजवर्ग ब्राह्मणों को पूज्य घोषित करता था। इनके पश्चात् वैश्यों का स्थान था। देश का व्यापार प्रधानतः इनके हाथ में था। इनके कोषों में अपार धन रहता था। ये भी वैभव-विलास का जीवन व्यतीत करते थे। शूद्र तथा साधारण जनता का जीवन अत्यन्त कष्टपूर्ण था। शूद्रों का न मान था और न उन्हें किसी प्रकार का अधिकार मिला था केवल सेवा करना ही उनका अधिकार था।

इस प्रकार इन चार वर्णों के अतिरिक्त कई ऐसी जातियाँ भी बनने लगी थीं जिन्हें अन्त्यज कहा जाता था। ये लोग पेशेवार आठ श्रेणियों में विभक्त थे— धोबी, चमार, मदारी, टोकरी और ढाल बनाने वाले, मल्लाह, धीवर, जुलाहे और चिड़ीमार।[१] ग्यारहवीं शताब्दी तक तो छूत-छात की कुरीति अलबेरूनी के कथनानुसार भी नहीं बढ़ी थी।[१] किन्तु इसके बाद ज्यों-ज्यों मुसलमानों का सम्पर्क बढ़ता रहा छूत-छात भी बढ़ती गई। सती की प्रथा भी समाज में खूब प्रचलित थी। यवनों के प्रभाव से उसमें भी वृद्धि हुई थी किन्तु स्त्री को बलात सती नहीं किया जाता था। मुसलमानों के आक्रमण का सबसे अधिक प्रभाव पर्दा प्रथा की अभिवृद्धि था। बाल-विवाह एवं विधवा विवाह का प्रचलन समाज में प्रचलित हुआ। साथ ही समाज में बहु विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी।

भौतिक जीवन की दृष्टि से भारतीय समाज पर्याप्त उन्नत था। कलाकौशल, गायन-वादन, खेल-तमाशे, मेले-त्यौहार आदि की ओर जनता की अभिरुचि थी। हिन्दू त्योहारों और मेलों का बहुत महत्व था। समाज में आनन्दोत्सव मनाए जाते थे। स्त्री पुरुष सभी उनमें सम्मिलित होते थे। घरों में लोग शतरंज और चौपड़ आदि के खेल खेलते थे। जुए का भी काफी प्रचार था परन्तु उस पर राज्य का नियन्त्रण होता था और कर वसूल किया जाता था। ऋतुओं के अनुसार वस्त्रों के पहनने की प्रथा थी। धनिक लोग बड़े-बड़े कीमती वस्त्र पहनते थे विवाह आदि के अवसर पर स्त्रियाँ अत्यन्त सुन्दर और मूल्यवान वस्त्र पहनती थीं। आभूषणों का भी खूब प्रचार था। फूल-मालाओं और गजरों की खूब प्रथा थी।

विद्वान और शिक्षित लोग अपना मनोविनोद साहित्य-चर्चा से करते थे। राजाओं के दरबार में विद्वानों और कवियों का आदर किया जाता था। भोजन इत्यादि में स्वच्छता का बहुत ध्यान रहता था। खाने के लिये सोने, चाँदी, पीतल और ताँबे आदि के पात्र प्रयोग में लाये जाते थे। भोजन प्रायः गेहूँ चावल आदि अनाज, फल सब्जी, घी, शक्कर मक्खन आदि का किया जाता था। सामान्य रूप से लोग शाकाहारी थे। कुछ प्रान्तों में मछली आदि खाने का भी प्रचार था। मुसलमानों के प्रभाव से राजपूतों में मांस खाने का अधिक प्रचार हो चला था। राज दरबारों से सम्बन्ध रखने वाले कर्मचारियों, सरदारों और राजाओं में मद्य-पान का प्रचार भी होने लगा था।

व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से भारतवासियों का चरित्र पवित्र और श्रेष्ठ रहा है। सभी विदेशी यात्रियों ने भारतवासियों की सरलता, सच्चाई, ईमानदारी आदि की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है।[१] राजपूत तो सच्चाई और ईमानदारी के नाम पर प्राणों की

१— डा० परमात्माशरण मध्यकालीन भारत, पृ. १२। २— वही पृ. १२।
३— वही पृ १४

बाजी लगा देते थे। उनकी पराजय का एक कारण यह भी था। भारतवासी अतिथि-सेवा और सत्कार करना अपना धर्म समझते थे। हिन्दू समाज में इसी समय से अनेक अन्धविश्वासों तथा कुरीतियों का प्रचलन होने लगा था।

ग्यारहवीं शताब्दी तक समाज में स्त्रियों की अवस्था सामान्यतया अच्छी थी। उनका अत्यन्त आदर होता था। स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने की प्रथा थी। इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। शंकराचार्य के साथ शास्त्रार्थ करने वाली मण्डनमिश्र की पत्नी एक विदुषी महिला थी। कविराज शेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी, भास्कराचार्य की पुत्री लीलावती, हर्ष की बहिन राज्यश्री इत्यादि अनेक विदुषी नारियाँ हिन्दू समाज में आदर और प्रशंसा की पात्र बन चुकी थीं।[1] स्त्रियों को देवी का स्वरूप माना जाता था। स्मृतियों में स्त्रियाँ आदरणीया और माननीया कही गई हैं। राजपूतों में स्त्री-जाति की रक्षा करना सर्वश्रेष्ठ धर्म माना जाता था। किन्तु कालान्तर में स्त्री जाति की अवस्था बदल गई। राजपूतों तथा समाज की अन्य जातियों के संकीर्ण विचारों एवं परिस्थितियों के फलस्वरूप स्त्रियों के आदर का भाव घटने लगा। स्त्रियों की रक्षा सम्पत्ति के समान समझी जाने लगी वे एक प्रकार से मनुष्य के मनोरंजन और क्रीडाओं का खिलौना बन गई। स्त्रियों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का महत्व समाप्त हो गया। वे मनुष्य के जीवन-यापन का साधन मात्र बन कर रह गईं। समस्त हिन्दू जाति में इस्लाम के प्रवेश और उसकी विजय के परिणामस्वरूप जिस प्रकार अनेक कुरीतियाँ तथा नैतिक एवं सामाजिक संकीर्णता एवं रूढ़ियाँ घर करने लगीं उसी प्रकार स्त्रियों में सती, बाल-विवाह, पर्दा आदि कुरीतियों की वृद्धि होने लगी।[2] स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र धीरे-धीरे घर की चार दीवारी में सीमित होने लगा। मुसलमानों के भय के कारण उनका लौकिक एवं बाह्य जीवन के कार्यों में भाग लेना प्रायः बन्द होने लगा और उनका स्वतन्त्र विकास अवरुद्ध हो गया।

इस प्रकार इस युग का सामाजिक जीवन राजनीतिक उथल पुथल एवं मुसलमानों के आक्रमण तथा राज्य-स्थापन से अस्त व्यस्त होने लगा। प्राचीन सामाजिक आदर्श एवं संगठन शिथिल हो चला। हिन्दू समाज में यवनों के प्रभाव से अनेक नई प्रवृत्तियों का समारम्भ होने लगा। साथ ही हिन्दुओं में पार्थक्य एवं छुआ छूत की मनोवृत्ति की अभिवृद्धि हुई। अपनी परम्परा तथा संस्कृति की सुरक्षा के लिए उन्होंने कठोर बन्धन कर दिए और समाज उच्च और निम्न दो वर्गों में प्रमुख-रूप से विभाजित प्रगति बन्द हो गई। समाज में अनेक उपजातियों के बन जाने के कारण हिन्दू समाज की प्राचीन पावन-शक्ति और सात्म्यीकरण की प्रवृत्ति समाप्त हो गई। जाति के बन्धन इतने कठोर हो गए थे कि उनमें नवीन तत्वों का प्रवेश निषिद्ध हो गया।[3]

३ धार्मिक दशा

राजनीतिक और सामाजिक जीवन के क्षेत्रों की भाँति धार्मिक जीवन के क्षेत्र में भी इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति विभिन्नीकरण एवं विश्लेषण की ओर थी। बौद्ध-धर्म का

१. श्री कालीशंकर भटनागर भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ. ३१०।
२. डा० परमात्मा शरण मध्यकालीन भारत, पृ. ३३।
३. श्री बी० एन० लूनिया भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, पृ. ३०८।

ह्रास हो चुका था और हिन्दू-धर्म जो अनेक सम्प्रदायों में विभक्त था, बौद्ध-धर्म के स्थान को ग्रहण करता जा रहा था। बुद्ध भी विष्णु के अवतार मान लिए गए। बौद्ध धर्म और हिन्दू-धर्म में अनेक समानताएँ हो गईं। अत लोग बौद्ध-धर्म त्याग कर हिन्दुत्व ग्रहण करने लगे। डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के मतानुसार बौद्ध-धर्म के पतन के कारणों में से एक यह भी था कि 'अत्यन्त प्राचीन काल से ईश्वर पर विश्वास रखती हुई आर्य-जाति का चिरकाल तक अनीश्वरवाद को मानना बहुत कठिन था।"[1] जैन-धर्म की भी कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। इस युग मे धार्मिक क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। वैदिक और पौराणिक धर्म के विभिन्न रूपों मे बौद्ध और जैन धर्म के अनुरूप ही अपन वास्तविक आदर्शों एवं सिद्धान्तो से पृथकता होती जा रही थी। बौद्ध महायान स वज्रयान सम्प्रदाय का विकास हुआ जो धीरे-धीरे सारे पूर्वी और पश्चिमी भारत म आच्छादित हो गया। उसके भी अनेक भेद उपभेद हुए। जिनम सहजयान और मन्त्रयान आदि उल्लेखनीय हैं। इनका दार्शनिक विवेचन जनसाधारण के लिए एक पहेली था। साथ ही व्यावहारिक पक्ष भी समाज के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ। बौद्ध-धर्म विहारों म ही केन्द्रीभूत हो गया जिसमें अन्धविश्वास, भ्रष्टाचार, घोर मतभेद और भिक्षुओं में आनन्द और भोग विलास की प्रवृत्ति की प्रधानता आदि दुष्प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो गई थी। फलत उसका पतन होने लगा।

बौद्धो के अतिरिक्त वैष्णवों के पांचरात्र, शैवों के पाशुपत, कालमुख, कापालिक, रसेश्वर आदि सम्प्रदायो का प्रचलन भी इस युग म हो रहा था जिन पर बौद्ध-धर्म की विकृत प्रवृत्तियो का प्रभाव था। इस प्रकार समाज का अधिकांश भाग इन वामाचारियों का क्रीडा-क्षेत्र बना हुआ था। वह अपनी अपनी रुचि और परम्परा स इन विकृत मार्गों पर चलकर समाज मे वासना और विनाशक प्रवृत्तियों का उद्भव कर रहे थे। इन सब वामाचार सम्प्रदायों म गुरु के माध्यम से सिद्धि की प्राप्ति सम्भव समझी जाती थी। बीच-बीच म सामाजिक और दार्शनिक नेताओं द्वारा इन वामपंथी सिद्धों और योगियों के चगुल से भोली-भाली जनता को छुडाने के प्रयास भी होते रहे। नाथो ने उपासना की तान्त्रिक पद्धति अपनाकर भी उसम योग की प्रतिष्ठा की और सयम और आचार को महत्ता दी। जिस प्रकार शैव-धर्म के प्रचार मे नयनार साधुओ को श्रेय दिया जाता है वैसे ही वैष्णव धर्म के प्रचार मे आलवार साधुओ को। चालुक्य होयसाल तथा गुप्त राजवंशो ने वैष्णव सम्प्रदाय को विशेष रूप से सरक्षण प्रदान किया था। किन्तु राजपूतों के अधिकतर राजवंश शैव मतानुयायी थे। शैवमत उनकी मनोवृत्ति के अनुकूल था किन्तु वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत अहिंसावाद की वृत्ति से उनका मेल न खा सकता था। अतएव राजपूत काल में विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों के अन्तर्गत शैवमत का प्राबल्य उत्तरी भारतवर्ष मे विशेष रूप से रहा था।[2] कालान्तर मे राजपूतों की शक्ति के विनाश के पश्चात् उत्तरी भारत मे वैष्णव-धर्म का प्रचलन हुआ। शंकर, रामानुज, निम्बार्क आदि आचार्यों ने अपने-अपने दार्शनिक

---

१. डा गौरीशंकर हीराचन्द ओझा . मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ ७।

२ श्री नाहर : पूर्व मध्यकालीन भारत, पृष्ठ २७।

सिद्धान्तों को ब्रह्मसूत्र, उपनिषद और गीता के आधार पर पुष्ट किया। रामानुज आदि ने लोक-व्यवहार के लिए शिव और नारायण की उपासना चलायी। साथ ही हिन्दुओं में आचार-विचार-व्रत-पूजा आदि की जैनों की भाँति वृद्धि होने लगी। आगे चलकर धर्म के इस व्यवहार पक्ष से भक्ति भावना का सरल रूप विकसित हुआ। वैष्णव धर्म में अन्य अवतारों की अपेक्षा राम तथा कृष्ण और उनमें भी कृष्ण को विशेष प्रधानता दी गई। राजा लक्ष्मणसेन के राजकवि जयदेव ने अपने गीत गोविन्द (बारहवीं शताब्दी) में राधा-कृष्ण के प्रेम की कहानी अत्यन्त मधुर शैली में गाई।[1] कुछ समय के पश्चात् कृष्ण और राम की भक्ति की विशाल धारा का देश में तीव्रता के साथ प्रचलन हुआ।

अन्त में मुख्यत दो बातों का उल्लेख करना है जो उस काल के समाज में दृष्टिगोचर होती थी। एक तो अन्धविश्वास जो सुशिक्षित व्यक्तियों तक में पाया जाता था दूसरे सहनशीलता, जो इतर धर्मों के प्रति समादार से सम्भूत होती थी। पुरातन प्रबन्ध-संग्रह में समन्वय की भावना प्रदर्शित करने वाले इसके प्रमाण है।[2]

४ : आर्थिक दशा

भारतवर्ष आर्थिक दृष्टि से एक समृद्ध देश माना जाता था। खानों और खेतों से उत्पन्न होने वाली संपत्ति अनेक पीढ़ियों से जमा होती आ रही थी। किन्तु भारतवर्ष की जनता का व्यवसाय प्राय कृषि था। राजा और सामन्तगण कृषकों के रक्षण-पोषण तथा सुभीते की ओर विशेष ध्यान देते थे।[3] सिंचाई के लिए तालाब, कुएँ और नहरों का निर्माण किया जाता था। प्रत्येक नगर अथवा ग्राम में तालाब या कुण्ड अवश्य होता था। राजा लोग बड़ी-बड़ी झीलें प्रजा के लिए बनवाते थे। बड़े-बड़े बाँधों द्वारा पहाड़ों के बीच की भूमि को झील के रूप में परिणत कर दिया जाता था। इस प्रकार की बहुत सी झीलें राजपूताने में अब भी वर्तमान हैं। ग्रामीण जनता गेहूँ, जौ, चना, सन, गन्ना आदि की खेती करती थी। कृषक गण अपनी अधिकृत भूमि की मालगुजारी देते थे जो ग्यारहवीं शताब्दी तक उपज के छठे भाग के रूप में राज्य को दी जाती थी किन्तु बारहवीं शताब्दी में सिक्कों के प्रचलन से नकद मालगुजारी दी जाने लगी थी।[4] बुनाई आदि के क्रियाएँ भी अति वैज्ञानिक ढंग की होती थी। देश में भिन्न-भिन्न प्रकार के फलों की भी बहुतायत थी। श्री कालीशंकर भटनागर लिखते हैं कि "कृषि-उत्पादन की विविधता और परिणाम ही ने भारत को विदेशों में समृद्ध देश प्रख्यात कर रखा था।"[5]

भारतवर्ष के अन्य व्यवसायों में उद्योग-धन्धों का स्थान सदैव ही ऊँचा रहा है। जिनमें वस्त्रोद्योग का स्थान प्रथम है। रेशमी, सूती, ऊनी और सनई के विभिन्न प्रकार के एवं अति महीन तथा सुन्दर बुनाई के वस्त्र देश के प्रत्येक भाग में बनाये जाते थे। मलमल

१. डा० परमात्माशरण . मध्यकालीन भारत, पृ. ३० ।

२. श्रोतव्य सौगतो धर्म, कर्तव्य पुनरार्हत ।
वैदिको व्यवहर्तव्यो ध्यातव्य परम शिव ॥ पुरातन प्रबन्ध-संग्रह, पृ. २० ।

३. डा० परमात्माशरण मध्यकालीन भारत, पृ. ३८ ।

४. श्री नाहर • पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ. २१ ।

५. श्री कालीशंकर भटनागर : भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ. ३१५ ।

तथा रेशमी वस्त्रो की विदेशो मे भी बडी प्रसिद्धि थी। देश मे धातुओ का व्यवसाय भी अत्यन्त उन्नत था। भारतीय लोग कच्चे लोहे को गलाकर उत्तम प्रकार का फौलाद बनाना जानते थे। कुतुबमीनार के पास वाला लोहे का विशाल स्तम्भ इतना भारी बताया जाता है कि आजकल भी कोई कारखाना ऐसा स्तम्भ नही बना सकता। पन्द्रह सौ वर्ष पुराना होने पर भी इस पर खुली हवा और वर्षा के कारण जग का निशान मात्र भी नही है।[१] बहुमूल्य सोने और चाँदी जैसी धातुओ के पात्र और रत्नजटित आभूषण भी बनाए जाते थे। भारतवासियो को आभूषण पहनने का बहुत शौक था। साथ ही हाथी दाँत, काँच सीप आदि की चूडियाँ तथा अन्य वस्तुएँ भी अत्यन्त सुन्दर बनाई जाती थी।

भारत के अतर्देशीय और अतर्राष्ट्रीय दोनो व्यापार उन्नत अवस्था मे थे। बडे-बडे नगर व्यापार के केन्द्र थे जिनमे अनेक धनाढ्य व्यापारी रहते थ। देश मे नदियो और राजमार्गो से नावो तथा बैलगाडियो से समान आता जाता था। उज्जैन और कन्नोज भारत के अति प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र थे। बाहरी देशा से थल-मार्ग और समुद्र-मार्ग के द्वारा व्यापार हाता था। निर्यात की वस्तुओ मे—मसाले, कीमती रत्न, रेशमी और सूती वस्त्र हाथी दाँत, नील इत्यादि प्रमुख थी।[२] भारत का व्यापारिक सम्बन्ध पश्चिम मे समस्त योरप तथा पूर्व मे जावा सुमात्रा, चीन आदि देशो से था। भारत मे आयात की मुख्य वस्तुएँ—मसाले, सोना, चाँदी ताँबा, सीसा, टीन, लोहा, रेशमी, कपडे, मेवे, घोडे आदि थी। तारीख-ए-फिरोजशाही के अनुसार वस्तुओं के मूल्य अत्यधिक सस्ते थे। गेहूँ का भाव साढे सात जीतल का एक मन था।[३] (जीतल वर्तमान काल के लगभग दो नए पैसे के बराबर और मन लगभग तेरह किलो के बराबर होता था)। इसका अर्थ हुआ कि उस समय गेहूँ लगभग सात आने प्रतिमन था।

साराश यह है कि आर्थिक दृष्टि से इस युग म भारत एक सुसम्पन्न एव समृद्ध देश था। धन धान्य की चारी लूटपाट नही होती थी।[४] उन्नत-कृषि, उद्योग-धन्धो, आतरिक और विदेशी व्यापार ने भारत को धन-धान्य से परिपूर्ण कर दिया था। समृद्धि की पुष्टि इस युग के विशाल मन्दिर, उनकी अतुल सम्पत्ति, अरब यात्रियो के द्वारा यहाँ के शासको के राजसी ठाट बाट के वर्णन और महमूद गजनवी की लूट खसोट की अतुल धनराशि[५] करती है। तत्कालीन सभी मन्दिरो के शिखर स्वर्ण मण्डित होते थे। सोमनाथ के मन्दिर के घण्टे की जजीर दो सौ मन के ठोस सोने से बनी बताई जाती है।[६] अतएव यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारत की आर्थिक दशा अति उत्तम थी जिसके आकर्षण ने विदेशियो को भारत मे आमन्त्रित किया था। तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरता का

१ डा० परमात्माशरण : मध्यकालीन भारत, पृ. १८।

२ श्री कालीशकर भटनागर : भारतीय सस्कृति का इतिहास, पृ० ३१६।

३. श्री इलियट एण्ड डाउसन : हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, तृतीय भाग, पृ. १९२।

४. धनमस्तीति वाणिज्य किंचिदस्तीति कर्षणम्।
सेवा ना किंचिदस्तीति नाहमस्मीति साहसम्॥ शार्गधर पद्धति सख्या १४४६।

५. श्री एम० आर० शर्मा : भारत म मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ. ४१।

६. श्री कालीशकर भटनागर : भारतीय सस्कृति का इतिहास, पृ. ३१६।

भारत की आर्थिक दशा पर अधिक कुप्रभाव नहीं पड़ा था और जहाँ उच्च वर्गों के लोग धनवान, वैभवशाली एवं विलासी थे। व्याज की दर बहुत ऊंची थी। बम्बई गजेटियर के अनुसार सूद की दर तीस प्रतिशत तक थी।[1] फिर भी मध्यम वर्ग और जन साधारण भी खुशहाल स्थिति में थे।

उपन्यास में ऐतिहासिक तत्व

ऐतिहासिक उपन्यास शुद्ध इतिहास नहीं हो सकते। कुछ ऐसी सीमा रेखाएँ होती हैं जो ऐतिहासिक उपन्यास को इतिहास से कुछ भिन्न कर देती है। इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यासकार के दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर होता है। इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास में बहुत कुछ समानताएँ होते हुए भी कुछ विभिन्नताएँ होती हैं। इतिहास में किसी विशेष काल की घटी घटनाओं का यथार्थ रूप में व्योरा और तत्सम्बन्धी पात्रों का एक लेखा-मात्र होता है किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों में उन घटनाओं और पात्रों को कल्पना के द्वारा रमणीय एवं आकर्षक बनाया जाता है।[2] कल्पना ऐसी की जाती है जिससे सीमा का अतिक्रमण न हो सके और जो न तो इतिहास की आत्मा को क्षति पहुँचा सके और न घटनाओं के स्वरूप और क्रम को अस्त-व्यस्त कर सके। ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास की भूमि में अपना महल निर्मित करता है। वह भूमि-परिवर्तन नहीं कर सकता। एक का लक्ष्य ही शुद्ध सत्य के निकट जाना है दूसरे का सत्य के साथ शिव सुन्दर की प्राप्ति भी। अतएव ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक तत्व को खोजने का अभिप्राय उन प्रमुख घटनाओं और तथ्यों का निरूपण करना है जिनके माध्यम से लेखक ने अपने उपन्यास की सृष्टि की है।

आचार्य चतुरसेन का 'पूर्णाहुति' उपन्यास राजपूत-कालीन इतिहास पर आधारित है। लेखक के कथानुसार उपन्यास का आधार महाकवि चन्दबरदायी कृत 'पृथ्वीराजरासो' है।[3] पृथ्वीराजरासो को अधिकतर विद्वानों ने अप्रामाणिक ही स्वीकार किया है। अप्रामाणिकता के सबसे अधिक प्रमाण डा० ओझा ने प्रस्तुत किये हैं।[4] 'पूर्णाहुति' उपन्यास के आधार-ग्रन्थ 'पृथ्वीराजरासो' को विद्वान चाहे पूर्ण प्रामाणिक न माने किन्तु फिर भी उसके चरित नायक की प्रामाणिकता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। अतएव 'पूर्णाहुति' की अधिकतर घटनाएँ भले ही इतिहास की कसौटी पर खरी न उतरती हों किन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसकी कुछ घटनाओं एवं तथ्यों को इतिहास भी स्वीकार करता है। 'पूर्णाहुति' का कथानक महाराजा पृथ्वीराज के उत्तर-कालीन जीवन से सम्बन्ध रखता है जिसमें उनके जीवन की महत्वपूर्ण एवं इतिहास को परिवर्तन की ओर ले जाने वाली प्रमुख घटनाओं का भी लेखक ने अपनी साहित्यिक एवं काव्यात्मक शैली में वर्णन किया है। 'पूर्णाहुति' के अन्तर्गत जिन ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं का वर्णन-साम्य मिलता है उनका ही निरूपण इतिहास को दृष्टि में रख कर किया गया है।

१. बम्बई गजटियर, भाग १, पृ. ४७४।
२. श्री शिवकुमार मिश्र वृन्दावनलाल वर्मा उपन्यास और कला, पृ. २२८।
३. पूर्णाहुति . 'दो शब्द'।
४. डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : ओझा निबन्ध संग्रह, पृ. ७८-१२८।

१—महाराजा पृथ्वीराज और कन्नौजपति राजा जयचन्द की प्रतिद्वंद्विता

पीछे राजनीतिक परिस्थितियो मे इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि दिल्ली और अजमेर मे महाराजा पृथ्वीराज जो चौहान-वंशी थे तथा कन्नौज मे राजा जयचन्द जो गहडवाल-वंश के राजा राज्य करते थे। दोनों मे एक दूसरे के प्रति प्रतिद्वन्द्विता वर्तमान थी। पहले से ही गहडवालो का चौहानो से वैर चला आता था[1] क्योंकि वीसलदेव के समय से ही चौहान-वंश और दिल्ली का महत्त्व बढता शुरु हो गया था।[2] साथ ही पृथ्वीराज ने दिल्ली मे अपना किला बनवाया और कन्नौज के गहडवालो को जो कुछ समय पूर्व भारत के सर्वश्रेष्ठ एवं शक्तिशाली शासक तथा अन्य राजाओ मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण गिने जाते थे, नीचा दिखाकर भारतीय राजनीति का नेतृत्व उनके हाथ से छीन लिया। उस समय भारतवर्ष मे स्वाधीनता तथा देश के गौरव की रक्षा एवं वीरता तथा शक्ति की दृष्टि से महाराजा पृथ्वीराज अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये थे। उनकी कीर्ति से जयचन्द का ईर्ष्या होना स्वाभाविक था। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि जयचन्द दिल्ली-पति पृथ्वीराज से मन ही मन शत्रुता रखता था। इतिहासकारों ने इस परम्परागत शत्रुता के अनेक कारण बताए हैं किन्तु पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता के अपहरण से दोनो वंशो की शत्रुता और बढ गई थी जो अपनी चरम सीमा पर यहा तक पहुच गई कि सन ११९३ ई० मे जब शहाबुद्दीन गोरी ने चौहानो पर चढाई की तो अपनी पारस्परिक शत्रुता के परिणाम स्वरूप ही जयचन्द ने देश के शत्रु शहाबुद्दीन का साथ दिया और सदैव के लिए अपयश प्राप्त किया।[3]

दिल्लीपति पृथ्वीराज की कीर्ति और शक्ति के निरन्तर विकास तथा कई बार शहाबुद्दीन गोरी को पराजित करने[4] के कारण अर्जित यश से जयचन्द मन-ही-मन कुढता था। फरिश्ता के अनुसार डेढ सौ सामन्त पृथ्वीराज की अधीनता मे लडे। उसकी सेना मे तीन लाख घोडे और तीन हजार हाथी थे।[5] टाड महोदय के आधार पर डा० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि पृथ्वीराज के सिंहासनारूढ होने पर जयचन्द ने न केवल उसका प्रभुत्व स्वीकार करने से ही मना किया प्रत्युत इस गौरवशाली राज्य पर अपना भी समानाधिकार जताया और पाटन अन्हिलवाड के नरेशो तथा मडोर के परिहारों ने भी जयचन्द के प्रभुत्व का जोरदार समर्थन किया। इतना ही नही पाटन तथा कन्नौज के शासकों ने तातार सैनिको को स्थान देकर भी भारी भूल की थी जिससे गजनी के शासक को उनके आन्तरिक झगडों से पूरा-पूरा लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हो गया। जयचन्द यह अवश्य चाहता रहा होगा कि पृथ्वीराज को दबाकर अपने राज्य की सीमाओं को विस्तारित करदे और इसी जोश मे उसने पृथ्वीराज के अधिकार को चुनौती दी हो।[6] आलोच्य उपन्यास में इस तथ्य का वर्णन मिलता है जो थोडा सा परिवर्तित रूप मे कहा गया है। राजसूय-यज्ञ के अवसर पर अपने

---

१. डा० राजबली पाण्डेय भारतीय इतिहास की भूमिका, पृ. २८४।
२ डा० परमात्मा शरण मध्यकालीन भारत, पृ. ७४।
३. डा० राजबली पाण्डेय भारतीय इतिहास की भूमिका, पृ. २८४–२८५।
४. वही, पृ. २८६।
५. ब्रिग्ग तारीख ए-फरिश्ता जिल्द १, पृ. १७५।
६. श्री नाहर पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ. ११५।

मन्त्री को आदेश देते हुए महाराज जयचन्द कहते हैं – "हे सुमन्त, मेरे पिता ने समस्त देश पर विजय प्राप्त करके दिग्विजयी पद प्राप्त किया था, इसलिए इस समय समस्त हिन्दू राज्यों में समर्थ मेरे मौसेरे भाई पृथ्वीराज के पास दिल्ली में स्वयं जाकर और दूत भेजकर कहला दो कि वह दिल्ली से लगाकर मोरो तक की आधी भूमि मुझे दे दें। उनसे यह भी कहला दो कि यद्यपि मातृपक्ष से हम तुम दोनों भाई बराबर हैं, परन्तु कमुध्वज वंश का राज्य अनादि है। चौहानों की आदि राजधानी समर है, इसलिए तुम अजमेर में राज्य करते रहो पर हमारे सार्वभौम राजसत्ता के विचार से और भाईचारे के हिसाब से दिल्ली की आधी भूमि हमें दे दो।"[1]

उपन्यासकार के इस कथन से तीन ऐतिहासिक तथ्यों की स्पष्ट पुष्टि होती है। प्रथम जयचन्द द्वारा राजा पृथ्वीराज के दिल्ली प्रदेश पर समानाधिकार का दावा, द्वितीय – तत्कालीन हिन्दू राजाओं में पृथ्वीराज को सबसे समर्थ राजा स्वीकार करना तथा तृतीय – पृथ्वीराज के राज्यविस्तार से ईर्ष्या करना। इन सब कारणों एवं परिस्थितियों के परिणामस्वरूप जयचन्द और पृथ्वीराज की प्रतिद्वन्द्विता एक ऐतिहासिक तथ्य है जिसने न केवल दोनों राज्यों को ही समाप्त कर दिया वरन् सम्पूर्ण देश को चिरकाल के लिए पराधीनता के गर्त में ढकेल दिया था।

२– जयचन्द का राज-सूय-यज्ञ

कन्नौज के राजा जयचन्द को भी तत्कालीन युग का एक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली राजा माना गया है। वह विजयी परम वैभवशाली एवं दानी कहा गया है।[2] पृथ्वीराज के बढ़ते हुए साम्राज्य एवं कीर्ति से उसे द्वेष था। अपने प्रभाव की व्यापकता एवं राज्य के विस्तार के लिए उसने अपने राज्य को पूर्व में गया तक विस्तृत कर लिया था। पृथ्वीराज को नीचा दिखाने एवं अपमानित करने के लिये उसने देवगिरि के यादवों, गुजरात के सोलंकियों एवं तुर्कों को कई बार परास्त करके अपनी विजयों के उपलक्ष्य में राजसूय यज्ञ का विधान किया था,[3] जिसमें पृथ्वीराज के अतिरिक्त सभी छोटे बड़े राजाओं को सादर निमन्त्रित किया गया था। कहा जाता है कि पृथ्वीराज का अपमान करने के लिए जयचन्द ने द्वारपाल के स्थान पर उसकी मूर्ति स्थापित कराई थी। इस तथ्य से सभी इतिहासकार सहमत नहीं हैं। किन्तु बहुत से इतिहासकार यह कहते हैं कि राजसूय-यज्ञ के अवसर पर ही जयचन्द ने अपनी पुत्री संयोगिता का स्वयम्वर रचा था और संयोगिता ने पृथ्वीराज की प्रतिमा के गले में जयमाला डाल दी थी जिससे जयचन्द अधिक कुपित हो गया था।

३–पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता का अपहरण

दिल्लीपति पृथ्वीराज द्वारा कन्नौज के राजा जयचन्द की पुत्री संयोगिता को नाटकीय ढंग से भगाने की कहानी का हिन्दुस्तान की सबसे अधिक लोकप्रिय गाथाओं में एक स्थान माना जाता है।[4] इस घटना को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार करने में यद्यपि इतिहासकारों में मतभेद है किन्तु अधिकांश इतिहासज्ञों के विचार से इस घटना को सत्य

---

१. पूर्णाहुति पृ. १५
२. डा० राजबली पाण्डेय : भारतीय इतिहास की भूमिका, पृ. २८४। ३– वही, पृ. २८४।
४. श्री एस० आर० शर्मा : भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ. ६।

माना गया है और इसे ही पृथ्वीराज से जयचन्द के घोर विरोध एवं शत्रुता का प्रधान कारण स्वीकार किया गया है जिसके कारण जयचन्द को गोरी द्वारा दामाद के पराजित किए जाने पर प्रसन्नता हुई थी और उसने उस युद्ध में कोई भाग नहीं लिया था[1]। राजसूय यज्ञ के अवसर पर संयोगिता का स्वयम्वर रचाया गया था। पृथ्वीराज की प्रतिमा को जयमाला डलाने पर पृथ्वीराज स्वयं उपस्थित होकर संयोगिता का अपहरण कर दर्पपूर्वक युद्ध करते हुए सुरक्षित दिल्ली पहुँच गए थे। डा० राजबली पाण्डेय लिखते हैं कि "स्वयम्वर के अवसर पर संयोगिता हरण ने जयचन्द को पृथ्वीराज का कट्टर शत्रु बना दिया।"[2] राजसूय यज्ञ एवं संयोगिता हरण की घटनाओं का पूर्णाहुति में सविस्तार वर्णन मिलता है जो लेखक ने काल्पनिक सौंदर्य का पुट देकर अतिरंजित रूप में लिखा है।[3]

४—पृथ्वीराज द्वारा मुहम्मद गोरी की पराजय

जिस समय राजा पृथ्वीराज सम्पूर्ण उत्तरी भारत में सर्वशक्तिमान तथा सर्वप्रसिद्ध शासक बनकर आसपास के राजाओं को परास्त कर विजय-दर्प से अपने चारणों की प्रशस्ति सुन रहा था तथा अपने रनिवास में सौंदर्य का मूल्यांकन कर रहा था, तब मुहम्मद गोरी पंजाब पर विजय प्राप्त करके लाहौर को केन्द्र बनाकर पृथ्वीराज पर आक्रमण की तैयारी कर रहा था। भारत के सिंहद्वार की यवनों के आक्रमणों से रक्षा करने के लिये चौहानों द्वारा भटिंडा तक अपने राज्य के सीमान्त नगरों की सुदृढ किले बन्दी करनी गई थी। पृथ्वीराज की थोड़ी सी गफलत से मुहम्मद गोरी ने पहला आक्रमण ११८९ ई० में भटिंडा पर किया और उसे घेर लिया।[4] तब तक पृथ्वीराज चौकन्ने हो चुके थे। उन्होंने विशाल सेना के साथ भटिंडा की ओर प्रस्थान कर दिया। ११९१ ई० में तराइन के मैदान में पृथ्वीराज और गोरी की सेनाओं की मुठभेड़ हुई।[5] जयचन्द के अतिरिक्त अन्य राजपूत राजाओं ने पृथ्वीराज की सहायता की। पृथ्वीराज की सेना ने मुल्तान पर भयंकर प्रहार किये और उसे बुरी तरह हराया। शहाबुद्दीन गोरी घायल हुआ और कठिनाई से अपनी जान लेकर भागा।[6] राजपूत सेना ने सरहिन्द के दुर्ग पर भी आक्रमण कर दिया। तेरह मास के घेरे के पश्चात किसी प्रकार सन्धि हुई और भटिंडा पुन: राजपूतों के अधीन हो गया।[7] शहाबुद्दीन को अपनी इस पराजय से बहुत अधिक सन्ताप हुआ। अपने अपमान और पराजय का बदला लेने के लिए वह निश्चेष्ट और निश्चित नहीं बैठा। वह भारत पर फिर से आक्रमण की तैयारी करने लगा। हम्मीर महाकाव्य के अनुसार भी इतिहासकारों ने लिखा है कि पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को कई बार हरा कर छोड़ दिया था।[8] यह ऐतिहा-

---

१ श्री एस० आर० शर्मा भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ० ७२।

२ डा० राजबली पाण्डेय : भारतीय इतिहास की भूमिका, पृ० २८६।

३. पूर्णाहुति-पृ० २१-२७, ६२-१२२।

४. डा० आ० ला० : श्रीवास्तव दिल्ली सल्तनत पृ० ६८।

५. श्री नाहर पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० ११४।

६ डा० राजबली पाण्डेय भारतीय इतिहास की भूमिका, पृ० २८६।

७. श्री नाहर : पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० ११६।

८. राजबली पाण्डेय : भारतीय इतिहास की भूमिका, पृ० २८६।

सिद्ध सत्य है कि मुहम्मद या शहाबुद्दीन गोरी को पृथ्वीराज के हाथ से पराजित होना पड़ा था। उस युद्ध में वह बुरी तरह घायल होकर भागा था और लाहौर में अपने घावों का इलाज कराकर गजनी लौट गया था।[1] उपन्यासकार ने इस तथ्य का वर्णन अपने ढंग से किया है—"दिल्ली और अजमेर का संयुक्त राज्य सबसे प्रबल था। दिल्ली के अधिपति पृथ्वीराज ने अपने शौर्य की धाक जमा दी थी। परन्तु उसके गर्व ने उसे अन्यों से संगठित नहीं होने दिया। यदि उत्तर भारत के राजा पृथ्वीराज से सम्मिलित होकर मुसलमानों से लोहा लेते तो क्रूर और भयंकर रक्त-लोलुप गीध पश्चिम के पहाड़ों से आकर भारत को रक्त और तलवार की भेंट न दे पाते। मुहम्मद गोरी ने दिल्लीपति चौहान से सात बार टक्कर ली। हर बार उसकी सैन्य संख्या बढ़ती गई। हर बार पृथ्वीराज के सामन्त उसे पकड़कर बाँध लाते और पृथ्वीराज उसे हर बार हँसकर छोड़ देता था।'[2]

इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पृथ्वीराज ने आक्रमणकारी मुहम्मद को करारी हार दी थी भले ही वह एक बार पराजित हुआ हो। उपन्यासकार की 'अतिरंजित शैली में उसका सात बार हराया जाना लिखा है किन्तु यह भी सम्भव हो सकता है कि सीमान्त पर पृथ्वीराज के सैनिकों द्वारा गोरी के सैनिकों को कई बार पराजित किया गया होगा। अतएव वह भी गोरी की पराजय ही माननी चाहिए।

५–मुहम्मद गोरी द्वारा पृथ्वीराज की पराजय

भारतीय इतिहास में एक महान परिवर्तन करने वाला मुहम्मद गोरी का ११९२ ई० का भारत पर आक्रमण है। अपनी पहली हार से चोट खाया हुआ सुल्तान कभी सुख की नींद नहीं सोया। पराजय का बदला लेने के लिए उसने भीषण तैयारियाँ कीं और एक लाख बीस हजार सैनिक लेकर वह फिर से भारतवर्ष पर चढ़ आया।[3] पृथ्वीराज ने अन्य राजपूत राजाओं को फिर से सहायता के लिए बुलाया। डा० राजबली पाण्डेय के कथनानुसार "इस बार कन्नौज के राजा जयचन्द ने संघ में सम्मिलित होना ही अस्वीकार न किया किन्तु तुर्कों को पृथ्वीराज पर आक्रमण के लिए निमंत्रण भी दिया।'[4] इसका कारण स्पष्ट था कि जयचन्द अपने शत्रु पृथ्वीराज को किसी प्रकार आक्रमणकारियों द्वारा ध्वंसित कराना चाहता था। श्री नाहर के विचार से किसी भी मुस्लिम इतिहासकार ने इस निमंत्रण का उल्लेख नहीं किया है।[5] अनेक आधुनिक इतिहासकारों के विचारानुसार मुहम्मद गोरी का पृथ्वीराज पर द्वितीय आक्रमण सामरिक प्रतिक्रिया का प्रतिफल बताया जाता है, जयचन्द का आमंत्रण नहीं।"[6]

कहा जाता है कि लाहौर पहुँचकर गोरी ने एक कूटनीतिज्ञ चाल चली और अपने एक दूत को पृथ्वीराज के पास भेजकर अपनी अधीनता स्वीकार करने को कहा।[7]

१. डा. गौ० ही० ओझा राजपूताने का इतिहास (पहली जिल्द), पृ. २७० ।
२ पूर्णाहुति—पृ १३२ ।
३. डा. परमात्माशरण मध्यकालीन भारत, पृ ७६ ।
४. डा राजबली पाण्डेय भारतीय इतिहास की भूमिका, प. २८६ ।
५. श्री नाहर पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ. ११६ । ६. वही—पृ. ११६ ।
७. डा. आ० ला० श्रीवास्तव दिल्ली सल्तनत, पृ ६६ ।

अपनी तैयारियों की पूर्ति एवं सेना के विश्राम के लिए उसने पृथ्वीराज को धोखे में डालने के लिये चाल चली थी। किन्तु चौहान नरेश पृथ्वीराज उसकी चाल में नहीं आया। उसने अपनी सेना के साथ तुरन्त ही भटिंडा की ओर प्रस्थान कर दिया। सुल्तान का जो दूत पृथ्वीराज के दरबार में आया था 'पूर्णाहुति' में उसे शाह का सेनापति कहा गया है।[1] पृथ्वीराज की सेना में असंख्य पैदल, तीन लाख अश्वारोही, तथा तीन हजार हाथी थे। इस विशाल सेना को लेकर पृथ्वीराज ने मुहम्मद की सेना से टक्कर ली। राजपूतों की तलवारों और बर्छों की मार से शत्रु-सेना आहत हो गई और आगे बढ़ने से रोक दी गई। तब मुहम्मद ने युद्ध-नीति से अपनी सेना को पाँच भागों में विभक्त किया। चार को उसने शत्रुओं पर चारों ओर से आक्रमण करने को भेजा और एक को रिज़र्व रक्खा। राजपूतों ने अत्यन्त वीरता से युद्ध किया किन्तु मुहम्मद की युद्ध-नीति के आगे वे जब चारों ओर के प्रहारों को झेलते हुए थक गए तब सन्ध्या के समय सुल्तान ने अपनी रिज़र्व टुकड़ी के द्वारा राजपूतों पर आक्रमण कर दिया। शाह की चतुराई के सामने राजपूतों की वीरता और शौर्य व्यर्थ रहे। उनकी हार हुई। पृथ्वीराज बन्दी बना लिया गया और मार डाला गया।[2] इस पराजय पर एस० आर० शर्मा ने विचार प्रकट करते हुये स्मिथ के कथन— ११९२ के तराइन के दूसरे युद्ध को निर्णायक कहा जा सकता है, क्योंकि इससे हिन्दुस्तान में मुस्लिम आक्रमण की अन्तिम विजय सुनिश्चित हो गई। इसके बाद मुसलमानों को जो अनेक विजय प्राप्त हुईं वे तो हिन्दुओं के संगठित मोर्चे की उस महान पराजय का परिणाममात्र थी जो उन्हें दिल्ली के उत्तर में स्थित ऐतिहासिक रण-क्षेत्र में भुगतनी पड़ी।"[3] का समर्थन किया है। डा० ईश्वरी प्रसाद ने राजपूतों की पराजय की गम्भीरता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—इस पराजय के फलस्वरूप भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग में ऐसी निराशा छा गई कि अब मुसलमानों के आक्रमणों का प्रतिरोध करने के लिए राजपूत नरेशों को एक ध्वजा के नीचे एकत्र कर लेने का दुर्दमनीय उत्साह रखने वाला कोई भी राजपूत योद्धा नहीं रह गया। अतः मुसलमानों का कार्य बहुत सरल हो गया[4]

'पूर्णाहुति' उपन्यास में सन्निहित उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं के अतिरिक्त इतिहास के अन्य तत्वों का भी समावेश है। वास्तविक घटनाओं एवं तथ्यों के साथ-साथ तत्कालीन पात्रों की सत्यता तथा स्थिति एवं देशकाल के विभिन्न वातावरण का चित्रण भी इतिहास के महत्वपूर्ण तत्व कहे जा सकते हैं जिनके आधार पर उस युग की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का बोध होता है। 'पूर्णाहुति' में पृथ्वीराज, जयचन्द, शहाबुद्दीन गोरी, संयोगिता आदि पात्र तो सभी इतिहास-लेखकों ने पूर्णरूप से स्वीकार किए हैं। कुछ पात्र ऐसे भी हैं जिनको कुछ इतिहासकारों ने स्वीकार किया है यथा चन्द बरदाई और कान्ह आदि। कुछ पात्र ऐसे भी हैं जिनका होना निश्चित है किन्तु इतिहासकारों तथा उपन्यासकार ने उनके नाम पृथक-पृथक कहे हैं। इतिहासकारों ने पृथ्वीराज के भाई का नाम गोविन्दराय लिखा है[5] तो उपन्यासकार ने गोइन्दराय। पृथ्वीराज के

1. पूर्णाहुति—पृ. १९७। 2. डा. परमात्माशरण : मध्यकालीन भारत, पृ. ८०।
3. श्री एस० आर० शर्मा : भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ. ७१—७२।
4. डा. ईश्वरी प्रसाद : भारतीय मध्ययुग का इतिहास पृ. १३४।
5. डा. एस० आर० शर्मा : भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ. ७१

सेनापति का नाम इतिहास मे खाडेराव[1] और उपन्यास मे चामुण्डराव[2] लिखा गया है। नामो के थोडा उलट-फेर से पात्रो की सत्यता मे शका की जा सकती।

देशकाल का चित्रण भी इतिहास का हा तत्व है। 'पूर्णाहुति' मे राजपूतकाल की सभी प्रवृत्तियों का चित्रण मिलता है। राजपूतो की युद्धप्रियता, शृगारिक मनोवृत्ति, पारस्परिक वैमनस्य, धर्म प्रियता आदि अनेक विशेषताओ तथा दुर्बलताओं का पता चलता है। लेखक के मतानुसार भी यह उपन्यास तत्कालीन राजपूतो के जीवन के रेखाचित्र के रूप मे वर्णित किया गया है।[3] आचार्य श्यामसुन्दर दास के मतानुसार कुछ उपन्यास तो स्वय ऐतिहासिक घटनाओ से ही सम्बन्ध रखते हैं पर कुछ ऐसे भी होते हैं जिनके कथानक का इतिहास से बहुत थोडा सम्बन्ध होता है और जिनमे किसी ऐतिहासिक काल के सामाजिक अथवा और जिनमे किसी ऐतिहासिक काल के सामाजिक अथवा और किसी प्रकार के जीवन का चित्र रहता है।[4] आचार्य चतुरसेन का 'पूर्णाहुति' ऐसा ही उपन्यास है जिसकी कथावस्तु की रचना ऐतिहासिक घटनाओ के आधार पर ही की गई है पर उसमे उस समय के आचार विचार, रीति रिवाज और राजनीतिक परिस्थिति तथा राजपूतो की प्रवृत्तियो का पूरा-पूरा दिग्दर्शन कराया गया है अतएव उसे ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी मे ही रक्खा जाएगा।

उपन्यास मे कल्पना

साहित्य मे कल्पना का एक अनिवार्य स्थान माना गया है।[5] उपन्यास साहित्य का ही एक अग है फलत वह भी कल्पना के माध्यम से ही अपना विस्तार करता है। उपन्यासकार कल्पना के रग से अपनी कथा को अधिक रोचक बना सकता है। डा० श्याम-सुन्दर दास के विचारानुसार 'आरम्भ मे उपन्यासकार को यह स्वतन्त्रता तो रहती है कि वह अपने मनोनुकूल, कला की सुविधानुसार, काल्पनिक कथा का निर्माण करे, परन्तु जब वह कथा के साथ आगे बढता है तब अनिवार्य-रूप से घटना, परिस्थिति-चक्र और व्यापारो की एक शृखला बना लेता है और मनुष्य जीवन की सभी वास्तविकताएँ उस पर अपना अधिकार जमा लेती हैं। तब वह स्वतत्र नही रह जाता, अपनी ही निर्माण की हुई औप-न्यासिक सृष्टि के नियन्त्रण मे आ जाता है।"[6] तात्पर्य यह है कि साधारण उपन्यासो मे कल्पना का मूलाधार लेकर चलने वाला उपन्यासकार भी अनर्गल कल्पना करने मे स्वाधीन नही रह जाता फिर ऐतिहासिक उपन्यासो मे कल्पना करने का अधिकार होते हुए भी उप-न्यासकार को कुछ सीमा-रेखाओ मे बडी सतर्कता के साथ रहना पडता है। यद्यपि ऐति-हासिक उपन्यास मे लेखक घटनाओ, पात्रो आदि मे कल्पना के पुट को ग्रहण करता है किन्तु उसमे उसे देशकाल की परिस्थितियो, सम्भावनाओं तथा तथ्यो को तत्कालीन रूप-रेखाओ के अनुरूप ही निर्मित करना होगा। ऐतिहासिक उपन्यास मे हमे ऐसा समाज और उसके

---

१ डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव : दिल्ली सल्तनत, पृ. ७०।
२. पूर्णाहुति—पृ. १५७।   ३ वही—'दो शब्द'।
४. आचार्य श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन, पृ. २११।
५. श्री शरच्चन्द्र पण्डित . साहित्य विमर्श, पृ० १७।
६. डा० श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन. पृ० १७६।

व्यक्तियों का चित्रण करना पड़ता है, जो सदा के लिए विलुप्त हो चुका है। किन्तु उनने पद-चिह्न कुछ जरूर छोड़े हैं, जो उनके साथ मनमानी करने की इजाजत नहीं दे सकते।[1] श्री त्रिभुवनसिंह ने लिखा है कि—"ऐतिहासिकता का रंग चढ़ाकर पात्रों एवं कथानकों की कल्पना करने की उपन्यासकार को वहीं तक छूट है, जहाँ तक ऐतिहासिक संगति का निर्वाह होता रहे।[2]

ऐतिहासिक उपन्यासकार का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐतिहासिक घटनाओं की नीरसता पर अपनी विधायिनी कल्पना-शक्ति के द्वारा उसमें सरसता का संचार करे एवं इतिहास के विविध स्रोतों से नाना प्रकार की घटनाओं का चयन करके उनको ऐसे सजीव रूप में चित्रित करे जिससे ऐतिहासिक होने पर भी उसमें इतिवृत्त की नीरसता न रहकर रस-पूर्णता की अनुभूति होने लगे। "काल्पनिक-कथा का संकेत उन कथा से है जो कल्पना की सहायता से अधिक मार्मिक, सुचरित और ग्राह्य बना दी गई हो, जिसमें सुन्दर चयन शक्ति की सहायता से जीवन के किसी उद्दिष्ट अंश की रोचक रूपरेखा खींची गई हो और जो पूर्णता की दृष्टि से आकाश में चन्द्रमा की भाँति चमक उठे।"[3] पूर्णाहुति नामक उपन्यास में लेखक ने ऐतिहासिक घटनाओं का सहारा लेकर अपनी कल्पना-शक्ति से तदनुसार चरित्र एवं वस्तु में विकास किया है। यह उपन्यास प्रमुख रूप से चन्द कवि-कृत पृथ्वीराज रासो पर आधारित है,[4] जो कवि की अनेक कल्पनाओं के आधार पर रचा गया है। इस उपन्यास में इतिहास का धरातल अवश्य ग्रहण किया गया है किन्तु लेखक ने अपनी मति के अनुसार अनेक घटनाओं और पात्रों की काल्पनिक सृष्टि की है, जिसमें सम्भावनाओं का अभाव नहीं कहा जा सकता। ऐतिहासिक उपन्यासों में जिस कल्पना-कौशल की अपेक्षा है वह 'पूर्णाहुति' में पूर्णरूप से सन्निहित है।

रचना-विधान की दृष्टि से उपन्यासकार घटना और पात्रों में ही अपनी कल्पना का सर्वाधिक उपयोग कर सकता है। 'पूर्णाहुति' में अनेक काल्पनिक घटनाएँ तथा पात्रों की सृष्टि की गई है। प्रमुख काल्पनिक घटनाओं का ब्योरा निम्न प्रकार से दिया जा सकता है जिनके द्वारा उपन्यास की कथावस्तु का विकास हुआ है और उसमें सरसता तथा रोचकता आई है।

१—पृथ्वीराज के दरबार में ब्राह्मण द्वारा संयोगिता के रूप का वर्णन :

दिल्लीपति महाराजा पृथ्वीराज वसन्तोत्सव मना रहे थे और अपने सभी सरदार तथा सामन्तों सहित राज-दरबार में बैठे थे, तब कन्नौज से आए हुए ब्राह्मण ने कन्नौज में होने वाले राजसूय यज्ञ तथा राजकुमारी संयोगिता के स्वयम्वर होने का समाचार दिया। साथ ही संयोगिता की उत्पत्ति महाराज पृथ्वीराज के लिये बताकर उसका नखशिख सौंदर्य इस प्रकार प्रस्तुत किया :—

'उस चन्द्र-वदनी, मृगलोचनी बाला के उज्ज्वल ललाट पर श्याम भ्रू-भाग ऐसा

---

१. आलोचना—१६६२, उपन्यास अंक—राहुल सांकृत्यायन का लेख, पृ० १७० ।
२. त्रिभुवनसिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० १४१ ।
३. डा० सूर्यकान्त : साहित्य मीमांसा, पृ० १६० ।
४. पूर्णाहुति – दो शब्द'।

सुशोभित होता है, मानो गगा की धारा मे भुजग तैर रहे हैं। उसकी कीर के समान नासिका, अनार के समान दन्त-पंक्ति, पतली-सी कमर, श्रीफल से उरोज और चम्पा के समान सुन्दर अग रग अजब छटा दिखाते हैं ... ।"[1]

ऐसी कल्पना से उपन्यास म कवित्व एव भावुकता का प्राधान्य हो गया है। अतएव उपन्यास के स्थान पर काव्य जैसा रस अनुभव होने लगता है।

२—पाठिका मदन ब्राह्मणी का सयोगिता को विनय-मगल का पाठ पढ़ाना :

दासी कर्नाटकी के मुख से चौहानराज की वीरता तथा सौंदर्य का वर्णन सुनकर मुग्ध हुई राजकुमारी सयोगिता को मदन ब्राह्मणी ने विनय-मगल का पाठ पढाते हुए पति को विनय से ही वश मे किये जाने का उपाय बताया और कहा "ज्यो-ज्यो विनय का अभ्यास बढता जायगा दाम्पत्य सुख भी बढता जायगा। विनय के जल से स्नेह की बेल को सींच, उसमें अमृत फल उत्पन्न होगा। विनय से बढकर वशीकरण और नहीं है। हे प्यारी पुत्री इस विनय-मगल को गाँठ बाँध, इससे तेरा कल्याण होगा।"[2] इस कल्पना से घटनाक्रम के विकास के साथ नैतिक भावनाओं का भी सुन्दर तथा शिव-पूर्ण सामजस्य दिखाया गया है।

३—कन्नौज जाने के लिये पृथ्वीराज का अपनी रानियों से पूछने जाना

सयोगिता का अपहरण करने के लिये राजा पृथ्वीराज ने कन्नौज जाने की तैयारी की और अपनी रानियों के महल म उनसे परामर्श करने गए कि वहीं राजा ने छःों ऋतुओं को व्यतीत कर दिया। लेखक ने रासो के अनुरूप ही षट् ऋतुओं का रानियों द्वारा सुन्दर चित्रण कराया है।[3] लेखक की यह कल्पना भी आलंकारिक एव रसपूर्ण है, जिससे उपन्यास में रोचकता का सचार हो गया है।

४—पृथ्वीराज का चन्द कवि का खवास बनकर जयचन्द के दरबार में जाना।

चन्द के परामर्श से महाराज पृथ्वीराज उसके खवास के रूप में कन्नौजपति जयचन्द के दरबार में पहुचते हैं। जहाँ कर्नाटकी दासी के घूँघट निकालने से पृथ्वीराज के दरबार में होने की शका जयचन्द को होती है। कवि चन्द की कुशलता से बात बन जाती है। कवि का स्वागत होता है और सम्मान पूर्वक उसके निवास की व्यवस्था कर दी जाती है। किन्तु राजा पृथ्वीराज की उपस्थिति का समाचार जब जयचन्द कवि चन्द से फिर पूछता है तब वह स्वीकार कर लेता है। बात की बात में लाखो सैनिको से कवि चन्द का जनवासा घिर जाता है और घनघोर युद्ध होता है।

५—पृथ्वीराज का सयोगिता से साक्षात्कार और गांधर्व विवाह

युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर भी राजा पृथ्वीराज कन्नौज नगरी की सैर करने चल देते हैं। उस अदमुत नगरी कन्नौज में भ्रमण करते हुए वे गगा-किनारे राज-महल में झाँकती हुई सयोगिता को देखकर चकित हो गए। पृथ्वीराज ने देखा—"गज पर सिंह, सिंह पर पर्वत, पर्वत पर भ्रमर, भ्रमर पर चन्द्रमा, चन्द्रमा पर सुधा, सुधा पर मृग और मृग पर दो चाप चढाए हुए कामदेव विराजमान हैं।"[4] उपन्यासकार की यह कल्पना भी

१. पूर्णाहुति—पृ० ७। २. वही—पृ० ११।
३ पृथ्वीराज रासो (चतुर्थ भाग) कन्दबरदाई, पृ० ३६७ से ३८७।
४. पूर्णाहुति—पृ० ८८।

कवि चन्द की ही कल्पना है।[1] सखियो द्वारा राजमहल में संयोगिता का गांधर्व-विवाह राजा पृथ्वीराज से सम्पन्न किया जाता है। गठबन्धन जोडकर राजा युद्ध-स्थल पर लौट आते हैं। कथावस्तु की सरसता में इस कल्पना से भी अभिवृद्धि हुई है।

६—जयचन्द और पृथ्वीराज का युद्ध तथा जयचन्द का संयोगिता के प्रति वात्सल्य :

जयचन्द की विशाल सेना पृथ्वीराज के वीरो पर टूट पडती है। दोनो ओर के वीर सामन्त और सरदार अपने प्राणो की बाजी लगाकर अपने-अपने स्वामियो के लिए अपनी-अपनी वीरता दिखा रहे हैं। *वीर रस की अत्यन्त सुन्दर कल्पना यहाँ की गई है।* कान्ह के आदेश से पृथ्वीराज वधू-संयोगिता को अपने साथ ले आए। कई दिन के घमासान युद्ध मे अनेक वीर सामन्त मारे गए। पृथ्वीराज चलते-चलते अपने राज्य की सीमा मे आ गए तब पीछा करते हुए जयचन्द जब पृथ्वीराज को पकडने चले तब उनकी निगाह पिता की ओर करुण नेत्रो से ताकती हुई संयोगिता पर पडी जिनके बाल बिखरे थे, होठ सूख रहे थे। तब कन्नौजपति यह कहकर कन्नौज लौट गए "हे कन्नौज के यज्ञ को बिगाडने वाले और मेरी प्राण-प्रिय पुत्री को हरने वाले पृथ्वीराज दिल्ली का राज्य, अपनी प्रतिष्ठा और लाज आज तुझे दान देकर मैं कन्नौज लौट जाता हूँ।"[2]

७—हम्मीर का चन्द कवि को बन्द करना .

संयोगिता के प्रेम-पाश मे फँसकर राजा विलास मे जीवन व्यतीत करने लगा। दरबार और सामन्त अस्त व्यस्त हो गये। शक्ति क्षीण होने लगी। एकता नष्ट हो गई। ऐसे समय मे मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण कर दिया। रावल समरसिंह यह समाचार सुनकर दिल्ली आए और पृथ्वीराज सहित सभी सामन्तो से मन्त्रणा की। कवि चन्द राजा का पत्र लेकर कांगडा मे हम्मीर से मिला जिसने छल से कवि को मन्दिर मे बन्द कर दिया और सेना-सहित शाह के पास चला गया। मुहम्मद गोरी ने उसे अपना मुसाहिब बना लिया। *उधर चन्द कवि कुछ दिन के लिए देश की गतिविधि से अपरिचित रह* कर व्याकुल होते हुए पडे रहे।

८—पृथ्वीराज का बन्दी बनना तथा अन्धा बनाया जाना :

सभी इतिहासकारो ने पृथ्वीराज का युद्ध मे मारा जाना ही लिखा है।[3] किन्तु रासोकार के अनुसार उपन्यासकार ने भी उसका बन्दी बनकर गजनी ले जाना लिखा है जहाँ जाकर पृथ्वीराज को शाह की *आज्ञा पर अन्धा बना दिया गया।* शहाबुद्दीन जब राजा पृथ्वीराज को कई दिन भोजन न करने पर उसे समझाने लगा तब राजा ने शाह के नेत्रो

---

१. कुंजर उप्पर सिंघ, सिंघ उप्पर दुय पब्बय
पब्बय उप्पर भ्रंग, भ्रंग उप्पर ससि सुभ्भय ॥
ससि उप्पर इक कीर, कीर उप्पर मग दिट्ठौ।
मृग उप्पर कोदंड, संघ कंद्रप्प वयट्ठौं ॥ ५८।२६८ ॥ पृथ्वीराज रासो (चतुर्थ भाग), पृ० ७१६

२. पूर्णाहुति पृ. १२२।

३. डा० राजबली पाण्डेय : भारतीय इतिहास की भूमिका, पृ. २८६।
श्री एम० आर० शर्मा : भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ. ७१।
डा० परमात्मा शरण . मध्यकालीन भारत, पृ. ८०।

से शाह को देखा। इससे कुपित होकर गोरी ने पृथ्वीराज की आँखें निकाल देने की आज्ञा दे दी। फलत भाग्यहीन राजा तडप कर रह गया। इस कल्पना से चरित नायक को ओर सहानुभूति और करुणा के भाव को जागृत करने में सफलता प्राप्त की है।

९–कवि चन्द की चाल और शाह की मृत्यु -

मन्दिर के पट खुलने पर कवि चन्द को होश आया और वह मुक्त हुआ। उसे दिल्ली की दुर्दशा और राजा के बन्दी होने के समाचार भी मिले। वह गाँव, नदी, नाले, जगल, पहाड पार करता भूख प्यास सहन करता अन्तत गजनी आ पहुँचा। शाह की आज्ञा से वह भीम खत्री का अतिथि बना। अपनी नीति और चतुरता स चन्द न शहाबुद्दीन से तीर चलाने की आज्ञा प्राप्त करली। भरे दरबार मे चन्द ने सावधान रहकर कवित्त पढ राजा को शाह के मार डालने का सकेत किया। बात की बात न शाह की तीसरी हुँकार के साथ ही पृथ्वीराज का बाण मुहम्मद गोरी के प्राणो को ले गया। दरबार मे हलचल मच गई। चन्द और राजा ने कटार से आत्मघात कर लिया। इस प्रकार पृथ्वीराज और चन्द ने साका रच कर वीर यज्ञ की पूर्णाहुति दी।

इस काल्पनिक घटना ने नायक पृथ्वीराज के गौरव की एव क्षत्रियत्व की रक्षा की है। पृथ्वीराज रासो के अनुरूप ही इस घटना का सगठन किया गया है।

इस प्रकार उक्त सभी प्रमुख कल्पनाओ के द्वारा उपन्यास के ऐतिहासिक यथार्थ मे किसी प्रकार की बाधा नही पहुँच सकी है। उपन्यास की ऐतिहासिक रूपरेखाओ के समानान्तर ही इन कल्पनाओ मे तत्कालीन इतिहास की ही प्रवृत्तियो एव तथ्यो का पूर्ण आभास मिलता है। किसी प्रकार की अस्वाभाविकता, अरुचिरता अथवा असम्बद्धता नही होने पाई है। वस्तुत ऐतिहासिक उपन्यास की सीमा के अन्तर्गत ही इन कल्पनाओ का सृजन तथा सगठन स्वाभाविक एव सरस बन गया है।

जिस प्रकार काल्पनिक घटनाओ से ऐतिहासिक उपन्यास के इतिवृत्त का विकास किया जाता है उसी प्रकार काल्पनिक पात्रो द्वारा भी उपन्यास के कलेवर म अभिवृद्धि की जाती है। ऐतिहासिक पात्रो के अतिरिक्त काल्पनिक पात्रो मे प्रमुख पात्रो का निम्न रूप से विभाजन किया जा सकता है :—

१– पृथ्वीराज से सम्बन्धित पात्र .

इतिहास मे पृथ्वीराज तथा उसके दरबार स सम्बन्ध रखने वाले पात्रो मे गोइंदराय[1] और चामुण्डराय जिसे इतिहास मे खाण्डेराव[2] लिखा है, का ही उल्लेख हुआ है। कुछ इतिहासकारो न चन्द[3] का स्थायित्व भी स्वीकार किया ह। प्रसिद्ध विद्वान इतिहासज्ञ डा० ओझा तो चन्द को पृथ्वीराज का समकालीन कवि स्वीकार ही नहीं करते।[4] इनके अतिरिक्त रासो के आधार पर ही पूर्णाहुति मे पृथ्वीराज के काका कान्ह चौहान, गुरुराम पुरोहित, चद पुण्डीर, निडडुर, सलखप्रमार आदि पृथ्वीराज क दरबार म रहने वाले[5] तथा

१. श्री एस० आर० शर्मा : भारत म मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ. ७१।

२. डा० आ० ला० श्रीवास्तव दिल्ली सल्तनत, पृ. ७०।

३. डा० राजबली पाण्डेय : भारतीय इतिहास की भूमिका, पृ. २८६।

४. डा० गौ० ही० ओझा . ओझा निबन्ध सग्रह, पृ. ११२।   ५. पूर्णाहुति : पृ. ५।

अचलेश खींची, मदनसिंह नरवाहन, नरसिंह, समरसी, मट्ट नग, मोरी, देवकरन, माकुला-सुर, भीम पुण्डार, जैतप्रमार, वगरी आदि हाँसी दुर्ग के रक्षक[1] एवं जैतराव, हरसिंह, प्रसंगराय भाला, विक्रमराज चौहान, परसाल, बाहरराय, पज्जन कछवाहा, रामराय बडगूजर हाडा हमीर रावत राम शूर, चामुण्डराय युद्ध में वीरता दिखाने वाले[2] अनेक शूरवीर सामन्तो राजाओं और दरबारियों की कल्पना की गई है। इन सभी पात्रों के नामकरण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनमें तत्कालीन नाम-परम्परा का पालन किया गया है जिससे वे कृत्रिम नहीं लगते।

२– जयचन्द से सम्बन्धित पात्र :

जयचन्द के अतिरिक्त उनके सभी सम्बन्धित पात्रों में संयोगिता को छोड़कर कल्पना ही की गई है, जिनमे मंत्री सुमन्त जयचन्द का भाई बालुकाराय, हेमन्तकुमार, कर्नाटकी दासी, रानी जाह्नवी, दलपति रावण, चन्दपुण्डीर, पहाड़राव तुंवर, मानराय कछवाहा, मालखा लीर केहरीराय मोरिय, मीर कमाम, जमाम खाँ, बाघसिंह बघेला, मेघ-सिंह आदि अनेक पात्रो की कल्पना की गई है।[3] सभी पात्र काल्पनिक होकर भी असम्भा-वित से प्रतीत नहीं होते।

३– शहाबुद्दीन से सम्बन्धित पात्र

शहाबुद्दीन को छोड़कर उनसे सम्बन्धित अनेक पात्र पूर्णाहुति में आए हैं। प्रमुख रूप से कमाल खाँ, खानखाना तातार खाँ, रुस्तम खाँ, हाजी खाँ फीरोज खाँ आदि जिनकी अधीनता मे शाह सेना लेकर बढ़ा आ रहा था[4] तथा खिलन खा, सभी खाँ महमूद गाजी, काजी हुजाब, हुसेन, नादी मातेक, अलोमा खाँ, हाहूलीराय तथा हम्मीर आदि बहुत से सरदार जो सेना के साथ[5], पात्रो की कल्पना की गई है। इन पात्रो मे हिन्दू और मुसलमान दोनो ही हैं। शहाबुद्दीन की सेना मे जयचन्द की सेना की भाँति दोनों जातियों के सैनिक और सरदार रहते थे।

इस प्रकार पात्रों के निर्माण में जो कल्पना की गई है उसमें किसी प्रकार की अस्वाभाविकता का आभास नहीं मिलता। वस्तुत: पात्रों की सृष्टि करने में तदनुरूपता अनिवार्य मानी गई है जो पूर्णरूप से उपन्यास मे दृष्टिगोचर होती है।

---

१. पूर्णाहुति : पृ० ३२। २. पूर्णाहुति : पृ. ८४। ३. पूर्णाहुति उपन्यास।
४. पूर्णाहुति : पृ १२८। ५. पूर्णाहुति : पृ. १६०।

उपन्यास का घटना-विश्लेषण

१—इतिहास-संकेतित

१/2 कर्नाटकी दासी का संयोगिता के समक्ष पृथ्वीराज की वीरता का बखान करना, संयोगिता का पृथ्वीराज से शादी करने का प्रण करना।

२/6 बालुकाराय की मृत्यु को सुनकर जयचन्द का क्रोध में आना और पृथ्वीराज से युद्ध के लिए अपनी सेना की तैयारी की आज्ञा देना, रानी जाह्नवी का संयोगिता के स्वयम्वर का सुझाव देना, जयचन्द का यह जानकर कि संयोगिता ने पृथ्वीराज से पाणिग्रहण का निश्चय किया है, संयोगिता को समझाने का प्रयास विफल होना और बुरा भला कहना तथा संयोगिता का पृथ्वीराज की प्रतिमा को जयमाल पहनाना।

३/7 हाँसी-युद्ध की पृथ्वीराज को सूचना मिलना, उनका दुर्ग के उद्धार के लिए सेना सहित कूच करना, रावल के छोटे भाई अमरसिंह का युद्ध मे मारा जाना पृथ्वीराज की जीत।

४/12 जयचन्द की सेना और पृथ्वीराज की सेना के मध्य युद्ध, पृथ्वीराज का गंगा के किनारे जाना और संयोगिता के साथ गान्धर्व विवाह होना और वापिस युद्ध भूमि मे लौट आना, काका कान्ह की आज्ञा से पुन अपने सामन्तो सहित जाकर संयोगिता को लाना, युद्ध करते-करते पृथ्वीराज का अपने राज्य की सीमा पर आ जाना, कन्नौजपति का वापिस लौटना, पृथ्वीराज और संयोगिता का दिल्ली पहुचना।

५/.7 पृथ्वीराज की पराजय सुनकर संयोगिता का प्राण त्यागना तथा अन्य रानियो का सती होना।

२—कल्पित किन्तु इतिहास अविरोधी

१/1 वसतपचमी के दिन कन्नौज के ब्राह्मण का आना और पृथ्वीराज के समक्ष संयोगिता के रूप का बखान करना।

२/3 सुमत मत्री के मना करने पर भी जयचन्द का राजसूय-यज्ञ की तैयारी करना।

३/5 कन्नौजपति का राजसूय-यज्ञ प्रारम्भ करना, पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा द्वार पर छड़ी लेकर खड़ी करना, पृथ्वीराज का यह सुनकर खोखन्दपुर पर चढ़ाई करना तथा जयचन्द के भाई बालुकराय का मारा जाना।

४/9 पृथ्वीराज का अपने विश्वस्त साथियो के साथ गुप्तरूप से कन्नौज की ओर प्रस्थान, मार्ग मे अनेक अच्छे बुरे शकुनो का आभास एव कन्नौज पहुचना।

५/10 पृथ्वीराज का चन्दकवि के खवास के रूप मे जयचन्द के दरबार मे प्रवेश करना, कर्नाटकी दासी का पृथ्वीराज को खवास के रूप मे दरबार मे देखकर घूंघट निकालना, चन्द का इशारे से दासी को घूघट खोलने को कहना, तथा उसका घूंघट खोलना।

६/11 कवि चन्द को रानी जाह्नवी के द्वारा भेंट दिया जाना, राजा जयचन्द को अपने चर द्वारा पृथ्वीराज की उपस्थिति की सूचना मिलना जयचन्द का चन्द को विदाई

देने उसके डेरे पर जाना, पृथ्वीराज का जयचन्द को पान देते समय उसकी हथेली पर जोर से अंगूठा गाड देना तथा जयचन्द को उसे पृथ्वीराज होने का विश्वास होना, जयचन्द का कवि चन्द को अपने दरबार में बुलाकर वास्तविकता पूछना और चन्द का पृथ्वीराज की उपस्थिति के लिए हाँ करना।

७/13 जयचन्द के पुरोहित का दिल्ली आकर संयोगिता का पृथ्वीराज के साथ विधि-विधान से विवाह करना।

८/14 दिल्ली के धर्मायन कायस्थ शाह के गोइन्दे द्वारा शाह को दिल्ली पर आक्रमण करने को लिखना गोरी का सेना सहित सिन्धु नदी पार कर भारत भूमि पर छावनी डालना।

९/15 चन्द कवि की प्रेरणा से पृथ्वीराज का संयोगिता में आसक्ति का कम होना तथा पुनः राजकार्य को सुव्यवस्थित करना।

१०/16 पृथ्वीराज का चन्द कवि को हाडा हम्मीर के पास गोरी के विरुद्ध अपनी सेना के साथ मिलने को कहलाने भेजना, हम्मीर का चन्द कवि को कैद करना, हम्मीर का गोरी से मिलना तथा सतलुज नदी के पास पृथ्वीराज और गोरी की सेना में युद्ध, गोरी का पृथ्वीराज को बन्दी बनाकर गजनी ले जाना।

११/18 शाहबुद्दीन गोरी का पृथ्वीराज की आँखें निकलवा लेना।

३—कल्पनातिशायी

१/4 पृथ्वीराज का उद्यान में जाना, गन्धर्वराज की मण्डली का नृत्य, गायन देखना तथा संयोगिता को प्राप्त करने के लिए गन्धर्वराज से सिद्धि-मन्त्र लेना।

२/8 पृथ्वीराज का संयोगिता का हरण करने के लिए अपनी रानियों से पूछने जाना तथा उनके द्वारा पृथ्वीराज को एक वर्ष के लिए रोक लेना।

३/19 चन्द कवि का जालन्धरी देवी के मन्दिर से छूटकर शाह के पास गजनी जाना, चाल से शाह को भरे दरबार में पृथ्वीराज के द्वारा तीर का निशाना देखने को राजी कर लेना, शाह का तीन हुंकार पर पृथ्वीराज का गोरी के मुँह में बाण मारना एवं गोरी की मृत्यु, चन्द कवि का जड़े से कटार निकालकर अपने पेट में घोंपना और कटार पृथ्वीराज को देना, पृथ्वीराज का अपना प्राणान्त करना।

नोट—घटना-सूत्रों के दो क्रम हैं (१) देवनागरी अंक अपने वर्ग की घटनाओं के क्रम-द्योतक हैं (२) रोमन अंक उपन्यास की सक्रम घटनाओं के द्योतक हैं।)

पूर्णाहुति के घटना-विश्लेषण का रेखाचित्र
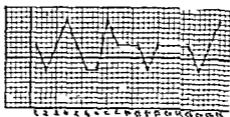
घटना विश्लेषण के रेखाचित्र की व्याख्या

रेखाचित्र के अनुसार

पूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ	०=०० ००%
इतिहास-सकेतित घटनाएँ	५=२६ ३२%
कल्पित किन्तु इतिहास अविरोधी घटनाएँ	११=५७ ८९%
कल्पनाश्रित घटनाएँ	३=१५ ७९%
कुल घटनाएँ	१९=१०० ००%

उपन्यास मे इतिहास प्रस्तुत करने वाले तत्व =०० ००%+२६ ३२%=२६.३२%
उपन्यास म रमणीयता प्रस्तुत करने वाले तत्व=५७ ८९%+१५ ८९%=७३ ६८

=१०० ००%

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उपन्यास को रोचक बनाने वाला अथवा रमणीयता लाने वाला अश ७३ ६८% हैं। अत इस दृष्टि से यह उपन्यास पूर्ण सफल है। सूत्र रूप मे कहा जा सकता है कि पूर्णाहुति इतिहास के स्थूल तथ्यो पर कम प्रकाश डालता है, यह अश केवल २६ ३२% है। अत पूर्णाहुति इतिहास के सूक्ष्म सत्यो पर प्रकाश डालने वाला एव रोचक उपन्यास है।

उपन्यास का पात्र-विश्लेषण

१ पूर्ण ऐतिहासिक

१/1 पृथ्वीराज। २/2 जयचन्द। ३/3 शहाबुद्दीन गोरी। ४/4 गोइन्दराय। ५/8 कवि चन्द। ६/12 सयोगिता।

२ इतिहास-सकेतित

१/5 निड्डरराय। २/7 गुरुराय। ३/10 चामुण्डराय। ४/15 सुमन्त। ५/15 काका कान्ह। ६/17 वालुकाराय। ७/19 कैमास। ८/26 इच्छनी। ९/27 पुण्डीरनी। १०/28 इन्द्रावती। ११/29 कूरमी। १२/30 हम्मीरनी। १३/32 जाह्नवी। १४/37 राजकुमार रेणसी।

३ कल्पित इतिहास अविरोधी.

१/6 सलख प्रमार। २/9 चन्दपुण्डीर। ३/11 लखन बघेला। ४/13 कर्नाटकी दासी। ५/14 मदन ब्राह्मणी। ६/18 खुरासान खाँ। ७/20 जैत प्रमार। ८/21 जामराय जादव। ९/22 माहा चन्देल। १०/23 ततार खाँ। ११/31 हेजम कुमार रघुवशी १२/33 लगरीराय। १३/34 रावण। १४/35 श्री कण्ठ। १५/36 धर्मायन कायस्थ। १६/38 हाड़ा हम्मीर। १७/39 पावस पुण्डीर। १८/40 वेणीदत्त। १९/41 हुजाब खाँ। २०/42 भीम खत्री। २१/43 मीरा खाँ।

४. कल्पनातिशायी

१/24 रावल समरसिंह । २/25 अमरसिंह ।

पूर्णाहुति के पात्र-विश्लेपण का रेखाचित्र

पात्र-विश्लेपण के रेखा चित्र की व्याख्या

रेखाचित्र के अनुसार

पूर्ण ऐतिहासिक पात्र	१०=२३·२५%
इतिहास-सकेतिक पात्र	१०=२३·२५%
कल्पित किन्तु इतिहास-अविरोधी पात्र	२१=४८·८४%
कल्पनातिशायी पात्र	२=४·६६%
कुल पात्र	४३=१००·००%

उपन्यास मे इतिहास प्रस्तुत करने वाले तत्व =२३·२५%+२३·२५ =४६·५०%

उपन्यास मे रमणीयता प्रस्तुत करने वाले तत्व=४८·८४%+४·६६%=५३·५०%

=१००·००%

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उपन्यास के ४६·५०% पात्र ऐतिहासिक हैं। परन्तु घटना विश्लेषण की तुलना से पता चलता है कि ऐतिहासिक घटनाएँ २६·३२% हैं। फलत यह उपन्यास भी इतिहास के अनुरूप पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत करने मे असफल रहा है।

पूर्णाहुति की घटनाओ और पात्रों का अनुपात

घटनाओ मे ऐतिहासिक तत्व = २६·३२%

पात्रो मे ऐतिहासिक तत्व = ४६·५०%

कुल ऐतिहासिक तत्व = ७२.८२%÷२=३६·४१%

घटनाओं मे रमणीयता तत्व = ७३.६८%
पात्रों मे रमणीयता तत्व = ५३.५०%

कुल रमणीयता तत्व = १२७.१८% ÷ २ = ६३.५९%

'पूर्णाहुति' मे इतिवृत्तात्मक प्रस्तुत करने वाले अश = ३६.४१%
'पूर्णाहुति' में रमणीयता प्रस्तुत करने वाले अश = ६३.५९%

कुल अश = १००.००%

सिद्ध हुआ कि उपन्यास रोचक है, इतिहास कम प्रस्तुत करता है।

लेखक का उद्देश्य

साहित्य की भाँति उपन्यास का भी महत्वपूर्ण उद्देश्य जीवन की व्याख्या होता है।[1] *यद्यपि उपन्यास के द्वारा मनोरंजन होना भी उसका एक अनिवार्य लक्ष्य माना जाता* है किन्तु उसके साथ ही उसमे जीवन के विभिन्न पहलुओं पर भी दृष्टिपात किया जाता है। वस्तुत उपन्यास एक ऐसा साहित्यांग है जिसमे जीवन की अभिव्यजना अन्य साहित्यांगो की अपेक्षा अधिक मात्रा मे हो सकती है।[2] ऐतिहासिक उपन्यास का उद्देश्य किसी भी युग की वास्तविकता को समझ लेना ही सच्चा ऐतिहासिक *यथार्थ कहा जा सकता है।*[3] यह आवश्यक नही है कि ऐतिहासिक उपन्यास शुद्ध इतिहास के इतिवृत्त एव घटनाओं को यथा-तथ्य रूप मे चित्रित करे। ऐतिहासिक उपन्यासकार तो देशकाल के अनुरूप अति कुशलता से *युग का प्रतिबिम्ब उपस्थित करता है जिसके आधार पर तत्कालीन युग की विभिन्न प्रवृ*त्तियों का हमे रजन के साथ-साथ ज्ञान भी हो सके।

'पूर्णाहुति' उपन्यास का मूलाधार पृथ्वीराज रासो का कथानक ही है। केवल कथानक ही नही अपितु भाषा, भाव और वर्णन शैली भी लेखक ने रासो से *ही ग्रहण की* है।[4] *अतएव उपन्यास का लक्ष्य रासो के वीर और शृगार रस की सरस धारा का अपनी* शैली मे उद्घाटन करना है। लेखक ने स्वय लिखा है कि "पाठक इस छोटी सी पुस्तक को *ऐतिहासिक भावना से नही तत्कालीन राजपूतों के रेखाचित्र की भाँति देखें और इसका रसास्वादन करें।*[5] *इस दृष्टि से विचार करें तो विदित होता है कि लेखक का यह उद्देश्य* उसके सम्पूर्ण उपन्यास मे स्थल-स्थल पर स्वत ही अभिव्यक्त होता चलता है। सामन्तकालीन राजपूतो की सभी प्रवृत्तियों एव परिस्थितियों के चित्रण करने मे उपन्यास पूर्ण सफल कहा जा सकता है। इस उपन्यास के द्वारा तत्कालीन राजपूत राजाओं की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सभी प्रवृत्तियों का बोध होता है। उनकी युद्ध प्रियता,

---

१. डा० श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन, पृष्ठ २१४।
२ डा० सोमनाथ गुप्त आलोचना और उसके सिद्धान्त, पृष्ठ ११४।
३. डा० त्रिभुवन सिंह हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ १४१।
४. पूर्णाहुति . 'दो शब्द'। ५. पूर्णाहुति . 'दो शब्द'।

वीरता, आन पर मर मिटने की प्रवृत्ति, स्वयम्वर प्रथा, वीरत्व एव शृगारत्व की मनोवृत्ति, धर्मपरायणता, पारम्परिक वैमनस्य, सगठन का अभाव आदि सभी गुण एव दोषो की स्थितियो का आभास हो जाता है। लेखक ने अपनी कुशलता से बडे स्पष्ट रूप से इन्हें दिखाने का प्रयास किया है। डा० सूर्यकान्त के विचारानुसार "इतिहास के किसी एक युग को फिर से सजीव और सरस बनाकर पाठको के सम्मुख प्रस्तुत करने म ही एतिहासिक उपन्यासकार की इतिकर्त्तव्यता है।"[1] अतएव उपन्यासकार द्वारा वर्णित युग विशेष म घटित होने वाली घटनाओ आदि के वर्णन मे सत्यता होनी चाहिए किन्तु इसस भी अधिक अपेक्षित बात यह है कि उसकी रचना मे उस युग-विशेष मे प्रचलित रीतिरिवाज, आचार-विचार तथा लोगो का रहन-सहन जिन्हे किसी युग की आत्मा अथवा मापदण्ड कहा जाता है—आदि का सच्चा-सच्चा प्रतिफलन होना चाहिए। इस दृष्टि से 'पूर्णाहुति' मे हमे उद्देश्य की पर्याप्त सफलता लक्षित होती है।

अधिकाश कलाकार उपन्यास के उद्देश्य को मनोरजन से ऊचा बताते हैं।[2] यह माना जा सकता है कि समाज सुधार राजनीतिक परिवतन या किसी प्रकार का नैतिक प्रचार, उपन्यास क उच्च उद्देश्यो म स्वीकार न किए जाएँ किन्तु यह निश्चित है कि मनुष्य-चरित्र के भीतर डूबकर जीवन क नए-नए स्तर खोलना उपन्यासकार के लिए उपयुक्त और वास्तविक उद्देश्य होगा। एतिहासिक उपन्यास के उद्देश्य म भी यह तथ्य स्वभावत निहित है भल ही उसका वस्तु के आधार-पात्र अतीतकालीन अथवा इतिहास क निकटतर हो। पूर्णाहुति म मानव चरित्र के वीरता-पूर्ण तथा प्रेमपूर्ण जीवन स सम्बन्ध रखने वाले तथ्यो को उदघाटित करन का उद्देश्य अतर्निहित है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार का उद्देश्य तथ्यो पर अधिक ध्यान देना होना है। वह कभी तो अतीत और कभी कभी प्राचीन किसी चरित्र-विशेष क चित्राकन के लिए उपन्यास-रचना करता है। इन दोनो ही स्थितियो मे वह इतिहास का आश्रय लेता है किन्तु उपन्यास चू कि इतिहास नही है अतएव इतिहास का आधार लेने पर भी उपन्यासकार को कल्पना का सहारा लेना पडता है जिससे वह अपने उद्देश्य के अनुरूप वस्तु और पात्र मे परिवर्तन कर सकता है। 'पूर्णाहुति' के लेखक ने अपन उद्देश्य की पूर्ति के लिए वस्तु और पात्रो मे पर्याप्त परिवर्तन किया है किन्तु उससे कथा की सरसता तथा स्वाभाविकता में बाधा नही पडती। ऐतिहासिक उपन्यासकार के उद्देश्यो मे यह भी निहित होता है कि वह उसमे किसी प्राचीनकाल के जीवन का पूर्ण और विस्तृत वर्णन कर सके जिससे पाठकों के सामन उस काल का जीता जागता चित्र उपस्थित हो जाय। भले ही उपन्यासकार को तथ्यो घटनाओं और पात्रो मे सुविधानुसार परिवर्तन करना पडे। डा० श्यामसुन्दर दास के शब्दो मे "ऐतिहासिक उपन्यासो के पाठक तो उन्ही लेखक का सबसे अधिक आदर करते हैं जो किसी विशिष्ट अतीतकाल का बिल्कुल सच्चा जीता जागता, और साथ ही मनोरजक वर्णन कर सके।"[3] आलोच्य उपन्यास मे युग-दर्शन की दृष्टि से निश्चित ही लेखक को सफलता मिली है।

---

१ डा० सूर्यकान्त साहित्यमीमासा पृष्ठ २१४।
२. डा० रामरतन भटनागर साहित्य समीक्षा, पृष्ठ १६४।
३. डा० श्यामसुन्दर दास साहित्यालोचन, पृष्ठ २१२।

ऐतिहासिक उपन्यासों में जिनमें इतिहास का इतिवृत्त तो रहता ही है उपन्यासकार की कल्पना भी चार चाँद लगा देती है। इनका लक्ष्य देशकाल का चित्रण होना है। शुद्ध बौद्धिक धरातल पर इतिहास की सूक्ष्म घटनाओं तथा तथ्यों की आशा करना मानो ऐतिहासिक उपन्यास के महत्त्व और लक्ष्य को न समझने की अल्पज्ञता ही है। वस्तुतः 'पूर्णाहुति' उपन्यास अपने चरित-नायक के शौर्य और शृंगारपूर्ण जीवनगाथा की अभिव्यक्ति में सफल हुआ है, जिसमें उसके युग की राजपूती मनोवृत्तियों तथा प्रवृत्तियों का बोध होता है।

निष्कर्ष

जैसा कि पहले कहा गया है कि आचार्य चतुरसेन का 'पूर्णाहुति' उपन्यास महाकवि चन्द वरदायी के पृथ्वीराज रासो पर आधारित है। आचार्य श्री के पहले दो आलोच्य उपन्यासों की भाँति यह उपन्यास भी ऐतिहासिकता के अधिक निकट नहीं है। यह कल्पना के छोरों को अधिक स्पर्श करता है। इस उपन्यास में भी नारी-प्रणय से उद्भूत राष्ट्र विप्लव होता है और भैरव नरसंहार की भेरी बजती है। संयोगिता इसको एक अच्छी गति देती है उसी के कारण एक बवण्डर आया जो कन्नौज और दिल्ली के वैभवों को मटियामेट कर गया, भयंकर नरसंहार हुआ। इतिहास-रस की वैसी ही स्रोतस्विनी यहाँ भी प्रवाहित होती है। पृथ्वीराज चौहान के समय की राजपूती जीवन उद्घाटित होकर पाठकों का मनमुग्ध करता है। तत्कालीन राजनीतिक उथल पुथल, सामाजिक चेतना की स्पष्ट उद्भावना इस उपन्यास में प्रतिलक्षित होती है। यहाँ भी हमें इतिहास-रस के पोषक तत्व उसी मात्रा में दिखाई पड़ते हैं। पृथ्वीराज चौहान के समय का रहन सहन, खानपीन, वेश-भूषा, राजपूती शौर्य राजपूती राजाओं की विलासी प्रवृत्ति, पर आन पर सर्वस्व न्यौछावर करने वाले, आपसी कलह आदि का स्पष्ट चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। इस उपन्यास में स्थूल ऐतिहासिक तत्वों के दर्शन तो बहुत कम होते हैं पर सूक्ष्म ऐतिहासिक सत्यों पर निखार आया है। वह काल सजीव होकर पाठकों के सम्मुख आ बैठा है और पाठक का उस युग से तादात्म्य होता है। फलतः यह उपन्यास पहले दो उपन्यासों की भाँति आचार्य श्री की इतिहास-रस की सलिला को गति देता है।

इस अध्याय से स्पष्ट हुआ कि ऐतिहासिक घटनाएँ तो काफी हैं परन्तु पूर्ण ऐतिहासिक घटना एक भी नहीं है। घटनांश तो पूर्ण ऐतिहासिक मिलते हैं परन्तु एक भी पूरी घटना पूर्ण ऐतिहासिक नहीं है।

५

●●●

सह्याद्रि की चट्टानें

उपन्यास का संक्षिप्त कथानक

एक दिन एक अँधेरी रात में शिवाजी और यांधू जी चले जा रहे थे। मार्ग में उन्हें घायल अल्पवयस्क बालक ताना जी पड़ा मिला। दोनों ने उनके घावों को मरहम-पट्टी की। अपने घायल होने का कारण बताते हुए ताना जी ने कहा कि मैं अपनी बहिन को विदा कराके ले जा रहा था। ५०० यवन सैनिकों ने हम पर आक्रमण किया और मेरे आठों साथियों को मारकर बहिन का अपहरण कर ले गए।

शिवाजी जीजाबाई के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म जुन्नर शहर के पास शिव-नेर के पहाड़ी किले में सन १६२७ में हुआ। जीजाबाई और उनके शिशु पुत्र को मुसलमानों ने कब्जे में कर लिया। तब ६ वर्ष के शिवाजी मुसलमानों के भय से इधर-उधर छिपते-फिरते थे। सन् १६३६ तक शिवाजी अपने पिता का मुख तक न देख सके।

पति की उपेक्षा का जीजाबाई के मन पर भारी प्रभाव पड़ा और उनकी वृत्ति अन्तर्मुखी होकर धार्मिक हो गई। एकाकीपन ने शिवाजी को माता के अधिक निकट ला दिया और वे माता को देवी के समान पूजने लगे। इस उपेक्षा और एकाकी जीवन ने शिवाजी को स्वावलम्बी, दबंग और स्वतंत्र विचारक बना दिया। शिवाजी ने मावले तरुणों को चुनकर एक छोटी सी टोली बनाई और उनके साथ सह्याद्रि की चोटियों, घाटियों और जंगलों में चक्कर काटना प्रारम्भ कर दिया, जिससे उनका दैनिक जीवन कठोर और सहिष्णु हो गया। धर्म-भावना के साथ चरित्र की दृढ़ता ने उनमें स्वातन्त्र्य प्रेम की स्थापना की और उनमें विदेशियों के हाथ से महाराष्ट्र का उद्धार करने की भावना पनपती गई।

तभी बचपन में शिवाजी को शाह जी की आज्ञा से बीजापुर दरबार में उपस्थित होना पड़ा। उन्होंने शाह को साधारण सलाम किया, न मुजरा किया न कोर्निस। शाही अदब भंग हो गया। दरबारी अदब से कोर्निस न करने का कारण बताते हुए शिवाजी ने शाह से कहा, 'मैं जैसे पिताजी को सलाम मुजरा करता हूँ, वैसे ही आपको की है, पिता के समान समझ कर।" शाह यह जवाब सुनकर हँस पड़े। शाह ने कहा कि उसने मा बदौलत को अपना बाप कहा है अतः हम उसकी एक शादी करेंगे और हम खुद बाप की एक रसम अदा करेंगे। बीजापुर में शिवाजी का नया विवाह हुआ।

१६४६ में दादा जी कोण्डदेव की मृत्यु हो जाने पर शिवाजी ने अपनी स्वतन्त्रता की हुंकार भरी और तोरण का किला लेकर पहली विजय प्राप्त की। तोरण से ५ मील दूर पहाड़ी की एक चोटी पर राजगढ़ नाम का एक नया किला बनवाया और उसे अपना केन्द्र-स्थान निश्चित किया। कुछ दिन बाद बीजापुर का कोण्डाना किला भी कब्जे में कर

लिया और शाह जी की पश्चिमी जागीर के उन सभी भागों को अपने अधिकार में कर लिया जिनकी देखभाल दादा कोणदेव करते थे।

बीजापुर दरबार को शिवाजी की हरकतें बुरी लगीं। शाह ने शाहजी से भी कहा। पर उन्होंने साफ मना कर दिया कि शिवाजी ने सब कुछ मेरी इच्छा के विरुद्ध किया है, मैं उसका उत्तरदायी नहीं हूँ। शिवाजी किले पर किले लेते रहे। आदिलशाह एक दम आपे से बाहर हो गया। उसने शिवाजी को दंड देने को एक भारी सेना भेजी।

बीजापुर की सेना तोरण दुर्ग पर आक्रमण करने वाली थी। शिवाजी के पास इस आक्रमण का सामना करने की सामग्री न थी, सैनिकों का देने के लिये भोजन भी नहीं था। उसी समय एक फ्रांसीसी उनसे मुलाकात करने आया। उसने कहा कि मेरे पास तोपें, बन्दूकें आदि की काफी युद्ध सामग्री है। शिवाजी ने उससे सारी युद्ध सामग्री खरीद ली।

तभी किसी ने आकर सूचना दी कि बीजापुर के शाह का एक भारी खजाना ५ हजार सैनिकों की रक्षा में चला जा रहा है। केवल ५ सौ सैनिकों की रक्षा में से शाही खजाने को लूट कर वहीं रवाव शिवाजी ने कगारी टोंगट कोट, मोरपा, कादरी और लोह-गढ़ को भी कब्जे में कर लिया।

इन खबरों को सुनकर आदिलशाह तिलमिला उठा। उसने शाह जी का तर-कीब से कैद कर लेने की आज्ञा दी। बाजी घोरपड़े ने शाह जी का दावत पर बुलाया और कैद कर लिया। उन्हें एक अंधे कुएँ में डाल दिया गया। कुएँ का मुंह बन्द कर दिया गया। केवल एक सूराख छोड़ दिया। शिवाजी से कहला दिया कि यदि वह अपनी हरकतें बन्द नहीं करेगा तो वह सूराख भी बन्द कर दिया जाएगा और शाह जी को जिन्दा दफना दिया जाएगा। इस समाचार से शिवाजी को बड़ी चिन्ता हुई। परन्तु शिवाजी की बुद्धि कठिनाई में बड़ा काम करती थी। उन्होंने शाहजहाँ से सम्पर्क स्थापित करके शाह जी को छुड़ा लिया।

आदिलशाह भीतर ही भीतर घुटकर रह गया। उसने शिवाजी को मरवा डालने का षड्यन्त्र रचा। शिवाजी को जीता या मरा लाकर शाह के हुजूर में पेश करने का बीड़ा एक मराठा सरदार बाजी शामराव ने उठाया। शिवाजी को इसका पता चल गया। शिवाजी ने इस पर आक्रमण किया पर वह जावली के राजा चन्द्रराव मोरे की सहायता से बचकर निकल भागा। मोरे गुप्त रूप से बाजी शामराव के षड्यन्त्र में शामिल था। शिवा-जी ने चन्द्रराव मोरे को मरवा डाला और ... केवल छः घंटे में जावली के दुर्ग पर अधि-कार कर लिया।

बीजापुर का नया शासक अभी बच्चा ही था। उसकी माँ बड़ी साहिबा के नाम से सब कामकाज देखती थी। उसने सोचा कि इस अवसर पर अपने उठते हुए शत्रु शिवा-जी को खत्म कर दिया जाय। उसने अफजल खाँ को भेजा। प्रसिद्ध सेनापति अफजल खाँ की सेना के नाम से शिवाजी के माथे में चिन्ता की रेखाएँ उभर आईं। परन्तु शिवाजी ने अपनी बुद्धि से अफजल खाँ का वध कर दिया। इस घटना को सुनकर आलमगीर का कले-जा भी काँप गया।

अफजलखाँ के मरने और उसकी सेना के संहार द्वारा प्राप्त विजय से उन्मत्त

मराठे अब दक्षिणी कोंकण और कोल्हापुर जिलो मे जा घुसे। मराठों ने पन्हाला के प्रसिद्ध दुर्ग पर कब्जा कर लिया तथा बीजापुरी सेना को खदेड़ते हुए दुर्ग पर दुर्ग अधिकार मे करते हुए शिवाजी की वह सेना बीजापुर की ओर बढ़ने लगी। विजय प्राप्त करती हुई शिवाजी की सेना बीजापुर की सीमा मे जा घुसी। बीजापुर मे अफजलखाँ का मातम छाया हुआ था। शिवाजी का सामना करने के लिये एक बडी सेना भेजी गई। शिवाजी तेजी से पीछे लौटे और पन्हाला दुर्ग मे आश्रय लिया। सिद्दी जौहर के १५ हजार सवारों ने पन्हाला दुर्ग को घेर लिया और पास की पहाडी पर मोर्चा बाँध कर तोपों से आग उगलना प्रारम्भ कर दिया। किले को घेरे पाँच महीने हो गए। शिवाजी के पास बहुत कम सेना और रसद थी। बाजी प्रभु ने सिद्दी के पास संधि का प्रस्ताव भेजा। युद्ध बन्द हो गया। दूतों का आना जाना अभी जारी था कि शिवाजी अवसर देखकर दुर्ग से भाग निकले। शिवाजी के अतिरिक्त उनके शेष सब साथी वहीं कट मरे।

शिवाजी की तूफानी हलचलों से घबराकर औरंगजेब ने अपने मामा शाइस्ताखाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा। बीजापुर के आदिलशाह के साथ योजना बनाकर शाइस्ताखाँ ने शिवाजी पर आक्रमण किया पर उसे बहुत हानि उठानी पडी। युद्ध-सामग्री और हथियार आदि छोड मुगल सेना भाग गई। शाइस्ताखाँ ने बडी चतुराई से पूना में अपने निवास का प्रबन्ध किया। पर शिवाजी ने बडी सूझ बूझ के साथ उस पर आक्रमण करने की योजना बनाई। शिवाजी और उनके १६ साथी एक बारात के बाजे वालों के साथ मिलकर भीतर प्रवेश कर गये। शिवाजी शाइस्ताखाँ पर झपटे। तलवार के आघात से उसका एक अंगूठा कटा। इस घटना मे शिवाजी की मामूली सी हानि हुई पर मुगलो को काफी क्षति पहुची। शाइस्ताखाँ घबराकर दिल्ली भाग गया। औरंगजेब ने उसे सुनकर अपनी दाढी नोंच ली और शाइस्ताखाँ पर बहुत बिगडा। अब दक्षिण की सूबेदारी शाहजादा मुअज्जम को दे दी और शाइस्ताखाँ को बंगाल भेज दिया गया।

जिस समय औरंगाबाद मे सूबेदारी की यह अदला-बदली हो रही थी, शिवाजी ने अपने दो हजार चुने हुये मराठे योद्धाओं को लेकर सूरत को लूटा। परन्तु लौटकर उन्होंने सुना कि शाह जी का स्वर्गवास हो गया है। जीजाबाई सती होने को तैयार हुई तो शिवाजी ने उन्हें रोक दिया।

जयसिंह ने पुरन्दर के किले को घेर लिया और बज्रगढ के किले पर आक्रमण करके उसे जीत लिया। पुरन्दर का किलेदार मुरारजी बाजीप्रभु बडा वीर था। वह शाही सेना के साथ लडते लडते युद्ध-भूमि मे जूझ मरा। पुरन्दर के किले में मराठा अधिकारियों के बहुत से परिवार बसे हुये थे। उनकी समाप्ति के भय से शिवाजी ने जयसिंह के पास संधि-प्रस्ताव भेजा।

जयसिंह ने यथोचित सम्मान से शिवाजी का स्वागत किया और शिवाजी से संधि कर ली।

पुरन्दर की संधि के अनुसार शिवाजी को औरंगजेब के दरबार मे आगरा जाना पडा। अपने स्वागतार्थ किसी विशिष्ट व्यक्ति को न आया देखकर शिवाजी बड़े क्रुद्ध हुए

और जब उन्हें दरबार में पांच हजारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा किया गया तो उनके क्रोध की सीमा न रही। औरंगजेब ने उन्हें कैद कर लिया।

तानाजी ने शिवाजी को कैद से मुक्ति दिलाने में बड़ी सहायता दी। छद्मवेश धारण करके वे उनसे मिलते रहे और कैद से निकल भागने में शिवाजी की सहायता करते रहे। शिवाजी मिठाई के टोकरे में बैठकर निकल भागे और ताबड़तोड़ दक्षिण जा पहुंचे।

दक्षिण आने पर माता की इच्छा से शिवाजी ने सिंहगढ़-विजय की ठानी। *ताना जी ने सिंहगढ़ को जीतने का बीड़ा उठाया। सिंहगढ़ तो जीत लिया गया,* परन्तु ताना जी वीरगति को प्राप्त हुए।

तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा
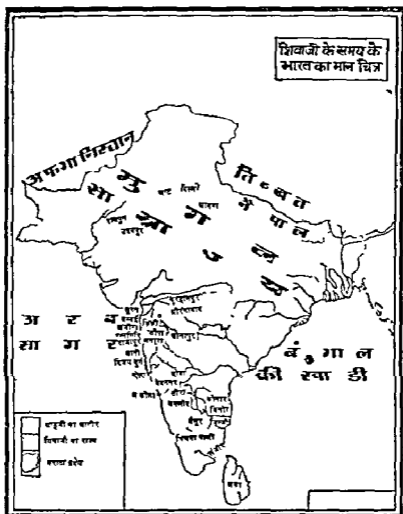
ऐतिहासिक उपन्यास सह्याद्रि की चट्टानें शिवाजी से सम्बन्धित हैं। शिवाजी औरंगजेब-कालीन थे। ऐतिहासिक उपन्यास 'आलमगीर' औरंगजेब से सम्बन्धित है। अतः इन दोनों उपन्यासों से सम्बन्धित अध्यायों में 'तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा' एकसी ही रहेगी। इसीलिए इस अध्याय में तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा के सम्बन्ध में संक्षेप में कुछ विशिष्ट बातों पर विचार करेंगे। तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा का विस्तृत वर्णन हम अगले अध्याय में देंगे। यहाँ हम मराठा इतिहास से सम्बन्धित कुछ बातों पर विचार करते हैं। इस अध्याय की सामग्री केवल दो पुस्तकों से ली गई है—मराठों का उत्थान और पतन, लेखक श्रीगोपाल दामोदर तामसकर[1] और भारत का बृहद् इतिहास[2] लेखक श्रीनेत्र पाण्डेय, कारण कि इस विषय में इतिहासकार एक मत हैं।

१ मराठा इतिहास की विशेषताएं

दो दृष्टिकोणों से मराठों के इतिहास का अनुशीलन किया जाता है। पाश्चात्य देश के इतिहासकारों ने मरहट्टों को लुटेरा तथा डाकू बतलाया है। परन्तु आधकांश भारतीय इतिहासकार इस बात से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार लुटेरे और साहसिक प्रवृत्ति के लोग ऐसे साम्राज्य के निर्माण करने में सफल नहीं हो सकते जो पीढ़ियों तक चलता रहता है। मराठा संघ न केवल अपने विरोधियों के विनाश को देखकर मुस्कराया वरन जितनी ही अधिक भयानक आँधियों तथा आपत्तियों का उसे सामना करना पड़ा, उतना अधिक बल उसमें आता गया। जब हम मरहट्टों के इतिहास को इस दृष्टिकोण से देखते हैं, तब उसका नैतिक महत्व बहुत बढ़ जाता है और इसमें हम निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं —

विलुप्त स्वतन्त्रता की पुनःस्थापना

जिस स्वतन्त्रता को राजपूत अपना सर्वस्व न्योछावर करके भी सुरक्षित न रख सके थे, उनके पुनः प्राप्त करने और हिन्दू-गौरव को पुनः स्थापित करने का श्रेय मरहट्टों को ही प्राप्त है। लगभग ५० वर्षों तक दिल्ली में सम्राटों के बनाने तथा बिगाड़ने का कार्य मरहट्टे करते रहे। बंगाल तथा मद्रास के समुद्र-तट को छोड़कर शेष भारत पर मरहट्टों की सत्ता तथा उनका प्रभुत्व स्थापित हो गया था।

२—राष्ट्रीयता का विकास

मरहट्टों की शक्ति का उत्कर्ष भारतीय राष्ट्रीयता का प्रतीक है। मरहट्टा सत्ता की स्थापना केवल एक साहसी व्यक्ति द्वारा नहीं की गई थी वरन यह सम्पूर्ण जनता की क्रान्ति का परिणाम था जो भाषा, जाति, धर्म तथा साहित्य की एकता के सूत्र में बँधी थी। भारतवर्ष में मुस्लिम सत्ता के स्थापित हो जाने के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन का यह प्रथम प्रयास था। इस राष्ट्रीय आन्दोलन में सभी वर्गों के लोगों ने सहयोग प्रदान किया परन्तु सबसे अधिक सहयोग इस काम में ग्रामवासियों का था। महाराष्ट्र के नेताओं के पीछे जनता की महान शक्ति थी जिससे वे दिल्ली में हिन्दू पादशाही के स्थापित करने के स्वप्न देखने लगे। अतएव रानाडे ने ठीक ही कहा है कि टीपू तथा हैदरअली का इतिहास बेंद-

१. श्रीगोपाल दामोदर तामसकर : मराठों का उत्थान और पतन,

२. श्रीनेत्र पाण्डेय : भारत का बृहद् इतिहास, भाग २,

त्रिक इतिहास है परन्तु शिवाजी का इतिहास मरहठों का इतिहास है।

३–सामाजिक तथा धार्मिक क्रान्ति

महाराष्ट्र में न केवल राजनैतिक क्रान्ति का जन्म हुआ था वरन् राजनैतिक क्रान्ति के आरम्भ होने के पूर्व ही सम्पूर्ण महाराष्ट्र में धार्मिक तथा सामाजिक क्रान्ति की लहर फैल गई थी। इस सामाजिक तथा धार्मिक-क्रान्ति ने सम्पूर्ण जनता में स्फूर्ति उत्पन्न कर दी और राजनैतिक क्रान्ति में शक्ति तथा जीवन का संचार कर दिया। यह धार्मिक क्रान्ति किसी विशेष वर्ग अथवा सम्प्रदाय की क्रान्ति न थी वरन् एक सार्वजनिक क्रान्ति थी जिसके अधिकांश साधु महात्मा निम्न वर्ग के थे। ब्राह्मणों का आन्दोलन न होने के कारण इस क्रान्ति में धार्मिक कट्टरता का सर्वथा अभाव था। तुकाराम, रामदास, वामन पंडित, एकनाथ आदि महात्माओं ने मरहठों में नवजीवन तथा नवस्फूर्ति उत्पन्न कर दी। इनसे लोगों में स्वतन्त्रता, स्वावलम्बन तथा आत्माभिमान के भाव जागृत होने लगे।

४–संघ स्थापना

महाराष्ट्र के इतिहास की एक सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि वह इतिहास संघ राज्यों का इतिहास है।

५–चार महान आपत्तियाँ

मराठों के इतिहास में चार महान आपत्तियों के काल आते हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है :—

१–० प्रथम आपत्ति-काल वह था जब औरंगजेब ने शिवाजी और उसके पुत्र को आगरा में कैद कर लिया था।

२–० दूसरा आपत्ति काल वह था जब सम्भाजी कैद कर लिया गया था और राजाराम को दक्षिण में शरण लेनी पड़ी।

३–० तीसरा आपत्ति काल वह था जब युद्ध में अहमदशाह अब्दाली ने मराठों की सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था।

४–० चौथा आपत्ति-काल वह था जब नारायणराव पेशवा का वध कर दिया गया था और मन्त्रियों ने राघोबा को हटाकर शासन का कार्य अपने हाथों में ले लिया था।

महाराष्ट्र संघ के लिए यह बड़े श्रेय की बात है कि इन चारों आपत्तियों के समय वह राष्ट्र को विनाश से बचा सका। जितनी ही अधिक गम्भीर स्थिति तथा भयानक आपत्तियाँ होती थीं उतनी ही अधिक मराठा संघ में शक्ति, धैर्य तथा साहस उत्पन्न हो जाता था।

महाराष्ट्र-देश के राजनैतिक इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर एक शृंखलाबद्ध इतिहास हमारे नेत्रों के समक्ष उपस्थित हो जाता है। सर्वप्रथम उत्तरी भारत के प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपनी राजसत्ता महाराष्ट्र देश पर स्थापित करली थी। फिर अशोक ने भी महाराष्ट्र पर शासन किया। इसके बाद लगभग ३०० वर्षों तक आन्ध्र तथा सातवाहन राजाओं ने महाराष्ट्र पर शासन किया। चौथी तथा पाँचवीं शताब्दी ईसवी में गुप्त सम्राटों ने महाराष्ट्र में अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया। छठी शताब्दी ईसवी के प्रारम्भ में चालुक्य वंश की सत्ता का महाराष्ट्र में उद्भव हुआ। इसके पश्चात् महा-

राष्ट्र मे लगभग २२५ वर्षों तक राष्ट्रकूट वंश ने शासन किया। इनके पश्चात् उत्तरकालीन चालुक्यों ने फिर राष्ट्रकूटों को पराजित करके महाराष्ट्र में २०० वर्षों तक राज्य किया। इसके बाद ११८७ ई० तक यादव वंश ने महाराष्ट्र मे शासन किया। फिर मुसलमानों की राज-सस्था स्थापित हुई। सर्वप्रथम अलाउद्दीन खिलजी ने मुस्लिम राज-सस्था स्थापित की। और फिर क्रमश तुगलक वंश, बहमनी राज्य, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब ने शासन किया।

२ : स्वराज्य के लिए संघर्ष के कारण

१ प्राकृतिक सुविधाएँ

मराठा प्रदेश को कुछ ऐसी स्थिति तथा जलवायु की सुविधाएँ प्राप्त हैं जो देश के अन्य भागों को उपलब्ध नहीं है। महाराष्ट्र प्रदेश की एक बहुत बडी विशेषता यह है कि यह दो ओर से पर्वत मालाओं से घिरा है। सह्याद्रि पर्वत की श्रेणियाँ उत्तर से दक्षिण की ओर सतपुडा तथा विन्ध्याचल की श्रेणियाँ पूर्व से पश्चिम की ओर जाती हैं। इन पर्वतों पर स्थित दुर्गों का महाराष्ट्र के राजनैतिक इतिहास मे बहुत बडा महत्व रहा है। पर्वतीय प्रदेश होने के कारण इसकी जलवायु भी बडी अच्छी है। भूमि अनुपजाऊ है। अतः यहाँ के निवासियों को अपनी जीविका के लिए संघर्ष करना पडता है। फलत इस प्रदेश के लोग बडे परिश्रमी, वीर तथा साहसी होते हैं। अतएव स्वतंत्रता तथा स्वराज्य की स्थापना के लिए इस प्रदेश मे संघर्ष होना स्वाभाविक ही था।

२—जातीय विशेषता

उत्तर भारत मे आर्यों का इतना अधिक प्रभाव रहा है कि आर्यों का व्यक्तित्व बिल्कुल कुंठित हो गया। परन्तु दक्षिण मे द्रविडों का प्रभुत्व बना रहा और उसका विकास मन्द नहीं पडा। महाराष्ट्र म सभी जातियों का समन्वय हुआ है और सभी का विकास हुआ है। अत स्वतन्त्रता प्राप्ति और स्वराज्य की स्थापना का संघर्ष स्वाभाविक है।

३—सस्थाओं का योग

महाराष्ट्र मे ग्राम सस्थाओं का प्रमुख स्थान रहा है। ये सस्थाएँ विदेशी प्रभावों से सुरक्षित रही हैं। ग्राम पंचायतों का इस प्रदेश मे विशेष स्थान रहा है। अत. स्वायत्त शासन की भावना महाराष्ट्र मे सदैव विद्यमान रही है।

४—धार्मिक क्रान्ति

१५ वीं तथा १६ वीं शताब्दियों मे सम्पूर्ण भारत मे धर्म-सुधार का एक प्रबल आन्दोलन चला था जिसे भक्ति आन्दोलन कहते हैं। इस आन्दोलन से मरहठे बडे प्रभावित हुए। महागोविन्द रानाडे के विचार से यह आन्दोलन साधारण जनता का काम था न कि समाज के उच्च वर्ग के लोगों का। इस आन्दोलन मे सभी वर्गों (प्राय निम्न वर्गों) के लोग सम्मिलित थे। इन सन्तों ने धर्म के बाह्याडम्बरों का खडन कर चरित्र की शुद्धता तथा भक्ति पर जोर दिया था। और छुआछूत तथा जाति-व्यवस्था का विरोध कर ब्राह्मणों के प्रभुत्व को अनावश्यक ठहराया। इस प्रकार लोकतन्त्रात्मक धर्म की स्थापना कर इन महात्माओं ने मराठा जाति को एकता के सूत्र मे बाँधा और उनमे राष्ट्रीयता की भावना जागृत की। इस प्रकार शिवाजी द्वारा राजनैतिक एकता स्थापित किए जाने के पूर्व सत्रह्व

शताब्दी में महाराष्ट्र में भाषा, धर्म तथा जीवन की अपूर्व एकता स्थापित हो चुकी था।

५- दक्षिण में हिन्दुओं के प्रभाव की प्रबलता

यद्यपि दक्षिण भारत पर मुसलमानों ने अपनी राजनैतिक सत्ता स्थापित करली थी तो भी दक्षिण के हिन्दुओं के ऊपर उनका इतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ा जितना उत्तर भारत में पड़ा था। महाराष्ट्र के लोगों के आचार व्यवहारों में तथा उनकी भाषा में मुस्लिम विजय के कारण कोई परिवर्तन न हुआ और न महाराष्ट्र में मुसलमानों की संख्या ही बढ़ी। दक्षिण की राजनीति में मरहठों के प्रभाव का प्राबल्य था और दक्षिण के मुसलमानों की वास्तविक शक्ति मरहठों के ही हाथ में थी। गोलकुण्डा, बीजापुर आदि राज्यों के समस्त पर्वतीय दुर्ग मरहठा जागीरदारों के हाथ में थे जो नाम मात्र के लिए इन सुल्तानों के अधीन थे।

६—नई आपत्ति

इस नई आपत्ति का तूफान उत्तर की ओर से आया था। मुगल सम्राटों ने एक बार फिर नर्मदा तथा ताप्ती नदियों के दक्षिण में अपनी सत्ता के स्थापित करने का प्रयास प्रारम्भ किया। औरंगजेब की धर्मान्ध तथा असहिष्णु नीति ने आपत्ति को और अधिक गम्भीर बना दिया। इस भीषण आपत्ति का सामना करने के लिए मरहठों की बिखरी हुई शक्ति को संगठित करके इसमें नवजीवन तथा स्फूर्ति का संचार करना था। इस श्लाघनीय कार्य को करने का श्रेय शिवाजी को प्राप्त है।"[1]

: ३ : स्वराज्य-स्थापना का प्रारम्भ

१—स्वराज्य स्थापना का प्रारम्भिक कार्य

प्रारम्भ में शिवाजी ने छुट-पुट हमलों से कुछ किले हस्तगत किये। दादाजी कोंडदेव की मृत्यु के समय तक शिवाजी के उदय में कोई विशेष बात नहीं झलकी। कदाचित् इस समय तक दादा जी कोण्डदेव का ही प्रभाव कार्य कर रहा था। दादा जी कोण्डदेव की मृत्यु के ५, ७ महीने के भीतर ही शिवाजी ने कोण्डाना नाम का किला लिया और उसका नाम सिंहगढ रखा। परन्तु शिवाजी को शीघ्र ही यह किला शाह जी की कैद से मुक्ति की एक शर्त के कारण बीजापुर को वापस देना पड़ा। इस प्रकार धीरे-धीरे शिवाजी की हिम्मत और ताकत दोनों बढ़ने लगी। निजामशाही के नष्ट होने पर कोंकण का उत्तरी भाग बीजापुर के राजा को मिला। आदिलशाह ने उसे मुल्ला अहमद नामक सरदार को जागीर में दे दिया। उस समय आदिलशाह बहुत दिनों तक बीमार रहा, इसलिए वहाँ कुछ गड़बड़ पैदा हुई। इसके कारण मुल्ला अहमद को आदिलशाह ने बीजापुर में बुला लिया। सूबेदार के कोंकण में न रहने के कारण वहाँ का बंदोबस्त कुछ ढीला पड़ गया। इस मौके का शिवाजी ने लाभ उठाया। कोंकण से बीजापुर को जो खजाना जा रहा था उस पर शिवाजी ने अचानक हमला किया, और उसे अपने कब्जे में करके राजगढ़ ले लिया। शीघ्र ही मागारी, तिकोना लोहगढ़ वगैरह किले भी उसने ले लिये और इस प्रकार उत्तर मावल को उसने अपने कब्जे में कर लिया। उधर आवाजी सोनदेव ने फौज लेकर कल्याण-भाग पर हमला कर दिया और किलो-समेत उसे अपने अधिकार में कर लिया।

[1] धीरेन्द्र पाण्डेय भारत का बृहद् इतिहास, पृ० ३२६-३३१।

२—शिवाजी द्वारा किले लेना

जजीरा के कई सरदारों ने पहले ही शिवाजी को यह संदेश भेजा था कि वह यदि कोंकण में आएँ तो हम तलें और घोसाला नामक किले लेने में मदद करेंगे। कल्याण लेने पर शिवाजी वहाँ गया और उन किलों को ले लिया। इसी चढ़ाई के समय जजीरा के सिद्दी का रायरी नामक पर्वत शिवाजी ने अपने कब्जे में कर लिया। यहाँ पर उसने विशाल नाम का मजबूत किला बनवाया जो आगे चलकर रायगढ के नाम से मशहूर हुआ।

३—दक्षिण कोंकण पर चढाई

दक्षिण कोंकण पर समुद्री किनारा जजीरा के सिद्दि के अधिकार में था। वहाँ राजापुर नामक एक समृद्ध शहर था। अतः इसने राजापुर पर भी चढाई करदी और उसे लेकर इस भाग में अपना अधिकार कर लिया। इस चढाई से विजय-दुर्ग, सुवर्ण-दुर्ग, रत्नागिरि आदि स्थान उसके कब्जे में आए।

इस प्रकार इस थोडे से काल में उसने महाराष्ट्र का बहुत सा भाग अपने कब्जे में कर लिया। जो जो भाग उसके कब्जे में आते, उनका बन्दोबस्त भी वह तुरन्त करता था। उसका प्रभाव चारों ओर जम गया और दूसरे लोग उसकी नौकरी में आने लगे। गोमा जी नाइक नामक अपने एक कर्मचारी की सलाह पर शिवाजी ने मुसलमानों को भी अपनी नौकरी में रखा। ये मुसलमान बीजापुर के थे।

४—विजयनगर की स्थिति

विजयनगर के राजवंश का श्रीरंगराय नामक राजा महत्वाकांक्षी था। उसकी इच्छा थी कि राक्षस-तागडी के युद्ध के बाद अपने घराने का जो ऐश्वर्य नष्ट हुआ उसे फिर से स्थापित करूँ। इस विचार से उसने जिंजी, तंजौर और मदुरा के राजाओं पर चढाई करके उन्हें रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया। पाल जिंजी और मदुरा के राजाओं ने उसका आधिपत्य न मानने की इच्छा से कुतुबशाह की मदद माँगी। इस पर कुतुबशाह ने श्री रंग के राज्य पर चढाई कर दी। तब उसने आदिलशाह से सहायता माँगी। वहाँ से मुस्तफा खाँ नामक सेनापति गोलकुण्डा वालों से लडकर जिंजी का घेरा उठवाने के लिए भेजा गया, किन्तु उसने गोलकुण्डा वालों से लडाई के बजाए सन्धि कर ली। इस समय शाहजी और प्रधान सेनापति मुस्तफा खाँ में मतभेद हुआ। इस मतभेद का कारण साफ-साफ नहीं जान पडता, तथापि सम्भाव्य कारण यही दीख पडता है कि मुस्तफा खाँ ने जो विश्वासघात का वर्ताव किया उसमें वह स्वयं शामिल नहीं होना चाहता था। इसलिए जिंजी के घेरे में शामिल होने से उसने इंकार कर दिया। मुस्तफा खाँ को तो यह शंका हुई कि शाहजी कहीं विरुद्ध पक्ष से न मिल जाए। इसलिए उसने आदिलशाह से उसे कैद करने की आज्ञा माँगी और एक दिन बडे सवेरे उसे कैद कर भी लिया। घोरपडे नामक एक मराठा सरदार ने इसमें मुख्य भाग लिया था।

पिता के कैद होने की खबर पाकर सम्भाजी ने बंगलौर में और शिवाजी ने पुरन्दर में अपनी-अपनी जागीरों की रक्षा करने का विचार किया। सम्भाजी पर मुस्तफा खाँ ने फराद खाँ, तानाजी डुरे और विट्ठल गोपाल नामक सरदार भेजे और बडी भारी

फौज फतेह खाँ के सेनापतित्व में शिवाजी की जागीर पर चढ़ आई। (इन लड़ाइयों में शिवाजी की विजय हुई)।

आदिलशाह ने शाहजी को मुक्त करने का विचार कुछ शर्तों पर किया। उस की मुख्य शर्त यह थी कि शिवाजी सिंहगढ़ किले को और सम्भाजी बंगलौर को उसे वापस दे दिया और शाहजी की मुक्ति हो गई। कुछ लोगों का मत है कि शिवाजी ने इस समय मुगल बादशाह शाहजहाँ की नौकरी में जाने का डर दिखा कर शाह जी की मुक्ति करवाई।

इस घटना के बाद चार वर्षों तक शिवाजी के कार्य का कुछ पता नहीं लगता। सन् १६५३ में कर्नाटक में बहुत से झगड़े उठ खड़े हुए और उनका बन्दोबस्त करने के लिए आदिलशाह ने शाहजी को भेज दिया। इसलिए अब शिवाजी अपना कार्यारम्भ करने के लिए स्वतन्त्र हो गया। पहला झगड़ा जो उठ खड़ा हुआ। वह जावली के मोरे से था। शिवाजी ने आक्रमण करके जावली पर विजय प्राप्त की और चन्द्रराव मोरे का वध किया।

५–शिवाजी और औरंगजेब का प्रथम सम्बन्ध

उत्तर की ओर शिवाजी की जागीर से मुगलों का राज्य मिला हुआ था और इस समय औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार था। किसी न किसी बहाने गोलकुंडा और बीजापुर से झगड़ा करके वह उन राज्यों से लड़ाई छेड़ना और उन्हें जीतकर मुगल साम्राज्य में मिलाना चाहता था। कर्नाटक और शाहजी और मीरजुमला के कई झगड़े पहले ही हो चुके थे। इसलिए शिवाजी को यह चिन्ता हुई कि मैं किस नीति का अवलम्बन करूँ। शिवाजी जी ने अपने प्रदेश का बन्दोबस्त किया और औरंगजेब के मन का पता लेना चाहा। इस विचार से उसने औरंगजेब के पास अपना दूत भेजा। औरंगजेब ने उससे कहा कि शिवाजी यदि हमारे कामों में शामिल होगा तो उसका फायदा ही होगा। मौका देखकर शिवाजी ने औरंगजेब से बातचीत जारी रखी। उधर बीजापुर दरबार से भी वह पत्र-व्यवहार करने लगा।

६–बीजापुर के कार्य में औरंगजेब का हस्तक्षेप

सन् १६५६ में आदिलशाह मर गया। उसके बाद अली नामक १८ वर्ष का लड़का बीजापुर की गद्दी पर बैठा। (इसको औरंगजेब ने जानबूझ कर वारिस नहीं बताया और इसी बहाने बीजापुर पर चढ़ाई करने के लिए सेना की तैयारी शुरू कर दी।) साथ ही बीजापुर के कुछ सरदारों को भी उसने प्रलोभन देकर अपने पक्ष में मिला लिया। फल यह हुआ कि बीजापुर में दो पक्ष हो गए और वे आपस में झगड़ने लगे। इसी समय कर्नाटक में जहाँ तहाँ बलवे हो रहे थे और उन्हें शान्त करने में शाहजी लगा हुआ था। बीजापुर के कुछ सरदारों ने इस समय शाहजी की जागीर में हस्तक्षेप करना चाहा।

७–मुगलों से अनबन

इधर इसी प्रकार शिवाजी को भी बीजापुर के विरुद्ध शिकायत करनी पड़ी। ये दोनों पक्ष (मुगल और बीजापुर) चाहते थे शिवाजी किसी से मिले। अन्त में शिवाजी ने बीजापुर से ही मिलने का निश्चय किया और मुगलों के राज्य पर चढ़ाई कर दी। यह

सुनकर औरंगजेब गुस्से से लाल हो गया और उसने अपने सरदारों को सख्त हुक्म दिया कि शिवाजी, उसके प्रदेश और लोगों को बिलकुल नष्ट कर दो। इसके अनुसार मुगलों ने *शिवाजी का पीछा करना शुरू कर दिया। शिवाजी मुगलाई से निकलकर पूना आया।* यहाँ भी मुगल सेना आने वाली थी। परन्तु दैव अनुकूल था। वर्षा के कारण नदियाँ पानी से उमड पडी थी। इसलिए मुगल सेनापति को अपनी सरहद पर चुपचाप खडे रहना पडा।

८–बीजापुर और मुगलों की लड़ाई

इसके अतिरिक्त औरंगजेब को एक दूसरे काम मे बहुत निराश होना पड़ा, यद्यपि उसे बीजापुर के साथ लड़ाई में अच्छी विजय मिली थी, पर बीजापुर के सरदारो ने सीधे शाहजहाँ से पत्र-व्यवहार किया। वहाँ दारा के हाथ मे सब कुछ था, वह नहीं चाहता था कि औरंगजेब प्रसिद्धि को प्राप्त हो, अत उसने बादशाह के नाम से चिट्ठी भिजवाई *कि बीजापुर से तुरन्त युद्ध बन्द करदो और सधि करलो।*

९–शिवाजी पर नई आपत्ति और उसका निवारण

इस प्रकार बीजापुर के राज्य को नष्ट करने के काम मे निराश होकर औरंगजेब वेदर का वापस चला गया। अब वह शिवाजी को उसके कार्यों के लिए भरपूर दण्ड देने को स्वतन्त्र हो गया। और बरसात के समाप्त होते ही उसने पूना सूपा पर चढाई करने का निश्चय किया। इससे शिवाजी बडी भारी कठिनाई मे पडा। उसे सूझता न था कि क्या किया जाए। परन्तु दिल्ली मे शाहजहाँ के सख्त बीमार होने की खबर दक्षिण में पहुँचते ही सारी बातें बदल गई।

पिता की बीमारी की खबर पहुँचने पर दक्षिण की अपेक्षा उत्तर की ओर *औरंगजेब को अधिक ध्यान देना पडा इसलिए शिवाजी से अब वह नरम बातें करने* लगा। शिवाजी ने भी मौका देखकर उससे जितना ऐंठते बने उतना ऐंठने का विचार किया और नम्रता का पत्र-व्यवहार रखा। परन्तु औरंगजेब कुछ कम चालाक न था। इधर तो शिवाजी को लिख दिया कि सब कुछ तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं कर दूंगा और उधर बीजापुर दरबार को लिख दिया कि शिवाजी को निकाल बाहर करो। इतना काम करके वह उत्तर की ओर अपने भाइयो से गद्दी लेने के लिए झगडने को चला गया।

१०–शिवाजी की कर्नाटक पर चढाई और अफजल खां का वध

बीजापुर वालों ने जो सधि कर ली थी उससे शिवाजी सकट में पड गया। *औरंगजेब के चले जाने पर बीजापुर से झगडा करने के लिए अब वह स्वतन्त्र हो गया। शिवाजी ने कर्नाटक पर चढाई करदी और कृष्णा नदी तक लूट मार मचा दी। तब बीजापुर दरबार ने शिवाजी को नष्ट करने के लिए अफजल खां को भेजा। अफजल खां ने कुछ डाट डपट का और कुछ मेलजोल का सदेश भेजा। शिवाजी को यह मालूम था कि* अफजल खां बीजापुर मे उसे यहाँ से पकडकर ले जाने की प्रतिज्ञा करके आया है। जब वह सधि की बातें करने लगा तो उस में उसे धोखेबाजी दीख पडना स्वाभाविक था। इसके लिए शिवाजी ने तरकीब से काम लिया। अपने को डरा हुआ दिखाया और एकांत में मिलने का प्रस्ताव रखा। खां को अपनी शक्ति पर पूरा भरोसा था। वास्तव मे वह था भी दैत्य के

समान शक्तिशाली। अफजल खाँ ने निश्चय कर लिया था कि शिवाजी ने मुझ पर विश्वास किया है। इस सिलसिले में दोस्ती का बहाना करके मैं इनके पेट में गुप्त कटारी घुसेड़ दूँगा और शिवाजी ने उसका यह कपट पहचान लिया था। और शिवाजी जिरह बख्तर आदि पहनकर गए। भेंट में खाँ ने शिवाजी पर वार किया, वार खाली गया, तभी शिवा जी ने बघनखे से उसका पेट चीर कर उसकी आँतें बाहर निकाली। खाँ का सिर काटकर शिवाजी के साथी प्रतापगढ़ किले में पहुँचे। खाँ की मृत्यु देखकर बीजापुर की सेना डर गई। शिवाजी की सेना ने उसको बहुत हानि पहुँचाई।

११–शिवाजी पर बीजापुर की दूसरी चढ़ाई

इस खबर से आदिलशाह बड़ा दुखी हुआ। उसने रुस्तमजमाँ को सेनापति बनाकर फिर से मराठों पर सेना भेजी। इसी बीच शिवाजी की सेना ने कई और किले ले लिये। बीजापुर की सेना में अफजल खाँ का पुत्र अफजल खाँ भी अपने पिता का बदला लेने के लिए गया। शिवा जी के नेताजी पालकर नामक सेनापति ने फाजलखाँ पर जो जोरों का हमला किया तो वह मैदान से भाग गया। मराठों की विजय हुई।

१२–बीजापुर की मुगलों द्वारा सहायता एवं बाजी प्रभु का पराक्रम

इस विजय के पश्चात् शिवाजी ने कुछ और स्थान ले लिए। अब तो बीजापुर वाले बहुत घबरा गए। इस कारण उन्होंने दिल्ली से मदद माँगी। पर उसके लिए समय की आवश्यकता थी। तब तक शिवाजी को रोक रखना बीजापुर वालों के लिए आवश्यक जान पड़ा। उधर औरंगजेब ने शाइस्ता खाँ को सेनापति बनाकर बड़ी भारी सेना शिवाजी के विरुद्ध भेजी। इस सेना ने मन्दिरों, मठों को नष्ट कर डाला, गाँवों को तहस-नहस कर डाला। इसी बीजापुर की सेना ने शिवाजी को पन्हाला के दुर्ग में, दुर्ग का घेरा डालकर रोक लिया। एक दिन रात को शिवाजी कुछ सैनिकों सहित इस घेरे से बचकर निकल आया और विशालगढ़ किले की ओर जाने लगा। यह खबर पाते ही बीजापुर की सेना ने शिवाजी का पीछा किया। शिवाजी ने अपने वीर सरदार बाजी प्रभु से कहा कि तुम इस सेना को रोको, हम किले में पहुँचते ही तोप दागेंगे। जब तक तोप दागी गई तब तक बीजापुरी सेना ने तीन हमले किए, बाजी प्रभु ने बड़ी वीरता से उन्हें पीछे धकेला और अन्त में बाजी प्रभु मारा गया।

१३–शिवाजी और बीजापुर के बीच संधि

फाजल खाँ वगैरह को दुर्गम घाटी में आगे बढ़ने की हिम्मत न हुई। वे वापस चले गए, शिवाजी ने देखा कि मुझे दो शत्रुओं से लड़ना होगा इसलिए उन्होंने पन्हाला का किला शत्रु को सौंप दिया। शिवाजी ने समय देखकर बीजापुर वालों से संधि कर ली। बीजापुर ने शिवाजी की सब शर्तें मंजूर की।

१४–मुगलों से प्रथम युद्ध (शाइस्ता खाँ पर हमला)

अब शिवाजी को शाइस्ता खाँ की ओर ध्यान देने का अवसर मिला। शाइस्ता खाँ पूना में आराम से रह रहा था। शिवाजी एक बारात के साथ मिलकर शहर में प्रवेश कर गए और मध्य रात्रि के समय शाइस्ता खाँ के डेरे पर हमला कर दिया। रमजान के दिन थे, इसलिए दिन भर के रोजे, के बाद लोग खूब खा पीकर सो रहे थे। शिवाजी ने आक्र

मरण बोल दिया। शाइस्ता खां हड़बड़ा कर उठा और खिड़की से कूद गया। शिवाजी की तलवार से उसकी तीन अंगुलियां कट गईं। कुछ दासियों ने उसे एक सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया। शाइस्ता खां का लड़का अब्दुल फतेह खां तुरन्त अपने पिता की मदद को दौड़ा आया परन्तु इस गड़बड़ मे मराठो ने उसका काम तमाम कर दिया। और फिर अपने साथियों को ले शिवाजी सुरक्षित लौटा आया। शाइस्ता खां अब शिवाजी से काफी घबरा गया। अन्त वह औरंगाबाद लौट गया। इस बात पर औरंगजेब अपने मामू पर बिगड़ा और उसे अपमानित करके बंगाल भेज दिया।

१५–मुरार बाजी का पराक्रम एवं पुरन्दर की संधि

इसके बाद सन् १६६४ मे शिवाजी ने सूरत पर हमला किया। वहाँ ६ दिन तक कर वसूल करता रहा। यह सब द्रव्य लेकर वह रायगढ़ को सुरक्षित वापस आ गया। अब औरंगजेब ने मिर्जा राजा जयसिंह और दिलेरखां को शिवाजी के विरुद्ध एक भारी सेना लेकर रवाना किया। पुरन्दर के किले का अधिकारी मुरार बाजी था। मुगल सेना और उसकी सेना (मराठा सेना) मे बड़ा घमासान युद्ध हुआ। मुरार बाजी ने बड़ा पराक्रम दिखाया और अन्त मे वह मारा गया। परन्तु किला मुगल नहीं ले सके।

अब शिवाजी को यह स्पष्ट दीख पड़ा कि पुरन्दर मुगलो के हाथ मे गए बिना न रहेगा और वे एक के बाद एक मेरे किले ले लेंगे। अतः उसने मुगलों से मेल करने का निश्चय किया। और शिवाजी और मुगलो के बीच संधि हो गई।

१६— शिवाजी का आगरा को प्रयाण, कैद और मुक्ति

पुरन्दर की संधि होने पर जयसिंह ने बीजापुर के राज्य पर चढ़ाई की और शिवाजी को अपनी मदद के लिये बुलाया। वादे के मुताबिक शिवाजी ने जयसिंह की मदद की। औरंगजेब इस बात से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने शिवाजी को आगरा आने का निमन्त्रण दिया। पर जाने के पहले उसने किलो का अच्छा प्रबन्ध किया और अपने राज्य का सारा कारोबार मोरोपंत पेशवा, अन्ना जी दत्तो सचिव और नीलो सोनदेव मुजुमदार नाम के तीन अधिकारियो के सुपुर्द कर दिया। इसके बाद शम्भाजी, कुछ विश्वास पात्र साथी तथा एक हजार सैनिक अपने साथ लेकर औरंगाबाद गया। दो महीने मे शिवाजी आगरे पहुंचा। औरंगजेब के पचासवें जन्म दिवस का जश्न मनाया जा रहा था। शिवाजी ने दरबार मे पहुंचकर औरंगजेब को भेंट दी। औरंगजेब ने उसे जसवन्तसिंह से नीचा दर्जा दिया इस पर शिवाजी क्रोध से आग बबूला हो गये। (जसवन्तसिंह शिवाजी से हार खा चुका था)। शिवाजी को रामसिंह उसके डेरे पर ले गया। शिवाजी के चारो ओर कड़ा पहरा बिठा दिया गया। शिवाजी की प्रार्थना पर उसकी सारी सेना दक्षिण भेज दी गई। शिवाजी को वापस जाने की आज्ञा नहीं दी गई। अब शिवाजी ने कहलवा दिया कि मैं बीमार हूँ। और फिर एक दिन शाम को शिवाजी और शम्भा जी पिटारे मे बैठकर पहरे से बाहर निकल आए। हीरोजी फर्जन्द शिवाजी के पलंग पर कपड़े ओढ़कर कुछ देर तक पड़ा रहा। फिर वह उठकर बाहर आया और पहरे दारो को उसने कह दिया कि महाराज आज ज्यादा बीमार है, मैं दवाई लाने बाहर जाता हूँ तुममें से कोई भीतर न जाना। यह कहकर वह दक्षिण की तरफ चल दिया। दूसरे दिन शिवाजी के गायब होने की सूचना मिली। दक्षिण की ओर

जाएँगे तो पकड़े जाएँगे, इस विचार से पहले शिवाजी उत्तर की तरफ मथुरा गया। शम्भा जी को वहाँ एक के पास छोड़ स्वयं वैरागी का वेश बनाकर शिवाजी प्रयाग, गया आदि स्थानों से होता हुआ रायगढ़ पहुँचा।

१७— शिवाजी और औरंगजेब की संधि

शिवाजी और औरंगजेब की फिर संधि हुई। इसमें शिवाजी को राजा की पदवी दी गई। दो वर्षों तक मामला शान्त रहा यह समय उसने राज्य की व्यवस्था करने में लगाया।

यह संधि बहुत दिनों तक न रही। इधर शिवाजी मुगल साम्राज्य में लूटमार कर ही रहा था, उधर औरंगजेब भी अपने छलकपट के दाव पेंच खेल रहा था। शिवाजी को मुगलों से युद्ध करने का और उन्हें दिए हुए किले वापस लेने का निश्चय करना ही पड़ा।

१८— सिंहगढ़ विजय

दिये हुए किलों में पुरन्दर और सिंहगढ़ नाम के किले महत्वपूर्ण थे। उन्हें खोने की बात शिवाजी और उसकी माता के हृदय में चुभी हुई थी। अतएव इन किलों के लेने से ही इस युद्ध का कार्य प्रारम्भ करने का विचार शिवाजी ने किया। सिंहगढ़ लेने का काम अपने बाल मित्र तानाजी मालसुरे को दिया। वह अपने भाई सूर्याजी तथा एक हजार चुने हुए मावले लेकर एक रात्रि के अंधेरे में सिंहगढ़ के नीचे पहुँच गया। मुसलमान बना हुआ उदयभानु नामक शूर राठौर सरदार वहाँ का किलेदार था। दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ। उसमें ५० मावले तथा ५०० राजपूत मारे गए। तानाजी और उदयभानु भी मारे गए। सिंहगढ़ का किला शिवाजी के हाथ लगा।

१९— राज्याभिषेक और अन्त

६ जून १६७४ को शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। इसके पश्चात् शिवाजी ने पुर्तगालियों पर चढ़ाई की तथा फलटण पर कब्जा किया, वेलोर तथा जिंजी पर विजय प्राप्त की कर्नाटक के कुछ भाग अपने कब्जे में किये, तुंगभद्रा और कृष्णा के दोआब पर कब्जा किया।

मुगलों ने बीजापुर पर आक्रमण किया पर शिवाजी ने बीजापुर को बचा लिया। बीजापुर की रक्षा का काम शिवाजी के जीवन का अन्तिम काम था। इसके बाद थोड़े दिनों की बीमारी के बाद वह शीघ्र ही मर गया। शिवाजी ने अपना कार्य केवल १८ वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ किया था। तब से मृत्यु पर्यन्त उसे कभी भी विश्रान्ति नहीं मिली। वह सदैव लड़ाई झगड़ों में लगा रहा। इस कारण कोई आश्चर्य नहीं कि केवल ५० वर्ष की अवस्था में, केवल सात दिन के ज्वर के बाद, गुडघी रोग से, उसका अन्त हो गया।

और वस्तुतः शिवाजी के अन्त के साथ ही मराठों के राज्य का भी अन्त समझना चाहिए क्योंकि बाद में तो केवल उनके पुत्र शम्भाजी जैसे विलासी और आलसी व्यक्ति राज्य के उत्तराधिकारी हुए।

उपन्यास में ऐतिहासिक तत्त्व

आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री का १५६ पृष्ठों का यह उपन्यास पूर्णतः ऐतिहासिक है। इसमें वर्णित लगभग सभी घटनाएँ इतिहास की कसौटी पर खरी उतरती हैं।

तिथियाँ भी इतिहास के अनुसार सही हैं उपन्यास में वर्णित घटनाओं का विवरण-क्रम तिथि के अनुसार निम्न प्रकार है।

१– शाहजी भोंसले का परिचय

उपन्यासकार ने शाहजी भोंसले के विषय में बताया है– "...... एक घराना भोंसले का था जो पूना प्रान्त के अन्तर्गत पाटस ताल्लुके में रहता था और वहाँ के दो गावों की पटेली भी करता था। ... इसी घराने में एक पुरुष हुए, जिनका नाम मल्लूजी था। ......इस समय निजामशाही में सबसे प्रमुख मराठा घराना सामन्त लखूजी जादोराव का था। ......

मल्लूजी भोंसले का बड़ा पुत्र शाहजी था। शाह जी का ब्याह जादोराव की कन्या जीजाबाई से हुआ।"[1]

शाह जी का उपर्युक्त परिचय इतिहास-सिद्ध है। इतिहास के अनुसार 'भोंसा जी नाम के एक पुरुष से ये लोग भोंसले कहलाने लगे। सम्भाजी के लड़के बापजी भोंसले—बापजी के मालोजी और विटोजी नामक दो लड़के थे। ..... आरम्भ में दोनों भाई लखू जी जाधाराव नामक एक सरदार के पास बारगीर बनकर रहने लगे। ...... जगपालराव निम्बालकर ने अपनी बहिन दीपाबाई का विवाह उससे (मालो जी से) कर दिया। उसके पहला लड़का हुआ और उसका नाम ...... शाहजी रखा गया। शाह जी का विवाह जाधवराव की लड़की जीजाबाई से हुआ।"[2]

२— शाहजी और जीजाबाई के विवाह की बात पक्की होना।

उपन्यास में जीजाबाई से शाहजी के विवाह का संयोग बड़े मनोरंजक ढंग में दिया है। यह इतिहास-प्रसिद्ध घटना है। घटना इस प्रकार है – एक बार वे (मल्लूजी) अपने पुत्र शाह जी को लेकर जादोराय के घर गए। जादोराय और मल्लू जी पुराने मित्र थे। तब बालिका जीजाबाई आकर शाह जी के पास बैठ गई। जादोराय ने हँसकर कहा – 'अच्छी जोड़ी है।' उसने लड़की से पूछा– क्या तू शाह जी से ब्याह करेगी?' यह सुनकर मल्लू जी उठकर खड़ा हो गया और कहा, 'देखो भाई, सबके सामने जादोराय ने अपनी कन्या का वाग्दान मेरे पुत्र शाहजी के साथ कर दिया है। अब जीजाबाई शाहजी की हुई।'[3] इसी प्रकार इस घटना का उल्लेख प्रसिद्ध इतिहासकार ग्रांट डफ ने किया है।[4]

३ – *मुग़ल इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा*

१६२७ में जहाँगीर मर गया, १६२८ में शाहजहाँ बादशाह हुआ।[5] शाहजहाँ का सेनापति खानजहाँ, शाहजहाँ से प्रसन्न न था। वह निजामशाह की शरण में पहुँचा। सेनापति को पकड़ने के लिये शाहजहाँ ने सेना भेजी। शाह जी भोंसले ने हिन्दू सरदारों को लेकर शाही सेना को खदेड़ दिया। इससे क्रुद्ध होकर शाहजहाँ ने खुद एक बड़ी सेना लेकर दक्षिण पर चढ़ाई की। अन्ततः खानजहाँ भाग खड़ा हुआ। इसी समय मलिक अम्बर की भी मृत्यु हो गई। तब शाहजी ने भी अपनी सेवाएँ शाहजहाँ को अर्पित करदी। परन्तु वह निजामशाह के शुभचिन्तक बने रहे। कुछ काल बाद निजामशाही के वजीर मलिक अम्बर

१. सह्याद्रि की चट्टानें : पृ० ६।
२. श्रीगोपाल दामोदर तामसकर : मराठों का उत्थान और पतन, पृ० २८-२६।
३. सह्याद्रि की चट्टानें : पृ० ७।　　४. ग्राट डफ : हिस्ट्री आफ मराठाज, पृ० ७०।
५. सह्याद्रि की चट्टानें : पृ० ८।

के पुत्र फत्हखां ने अपने बादशाह को कत्ल करके शाहजहां से संधि करली। तब शाहजी निजाम शाही छोड़कर बीजापुर दरबार की सेवा में आ गए।[1] ये सब घटनाएँ इतिहास प्रसिद्ध हैं।[2]

४ आदिलशाही और बीजापुर की गतिविधियां

इसके पश्चात् लेखक ने आदिलशाही बीजापुर की राजनैतिक गतिविधियों का उल्लेख किया है।[3] यह सब वर्णन इतिहास से ही लिया गया है, उपन्यास से यदि इसे निकाल भी दिया जाए तो उपन्यास के प्रवाह में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं होगा।

५–शिवाजी का कौटुम्बिक चित्र

उपन्यासकार शाह जी के विवाहों, उनकी सन्तानों के विषय में इतिहास प्रसिद्ध वर्णन देता है। शाह जी और जीजाबाई का अलग होना तथा शिवाजी का ६ वर्ष की आयु में मुसलमानों के डर से इधर-उधर डरते फिरना, आदि का वर्णन है।[4] शिवाजी के प्रारम्भिक जीवन के विषय में ऐतिहासिक तथ्यों के उल्लेख के बाद पाठक अनुभव करते हैं जैसे वे इतिहास के नीरस प्रहार से निकल कर उपन्यास की मनोरम वाटिका में पहुँचे हों। प्रारम्भ के १२ पृष्ठों में उपन्यासकार ने तत्कालीन दक्षिण इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत की है।

६–बीजापुर के दरबार में

मुरारजी पन्त जीजाबाई को शाह जी का सन्देश देते हैं कि शिवाजी को बीजापुर शाह को सलाम करने के लिए आना चाहिए। शिवाजी मना करते हैं। अपमान-सूचक पर वे जाते हैं, साधारण सा सलाम करते हैं। शाह नाराज हुआ पर शिवाजी ने अपनी वाक् चातुरी से शाह को प्रसन्न कर लिया, "मैं जैसे पिताजी को सलाम मुजरा करता हूँ वैसे ही आपको की है, पिता जी के समान समझकर।" इस पर प्रसन्न होकर शाह ने शिवाजी का दूसरा विवाह कराया।[5] इस घटना के विषय में इतिहास अधिकांशतः मौन है। इसमें आंशिक सत्य है कि शिवाजी ने शाह को सलाम करने का विरोध किया। शिवाजी के कई विवाह हुए इसका उल्लेख भी इतिहास में मिलता है।

७ दादा कोंणदेव

दादा कोणदेव भी ऐतिहासिक पुरुष हैं। वे शिवाजी के गुरु थे उन्होंने शिवाजी को राजनीति आदि की शिक्षा दी थी।[6] इतिहास के अनुसार दादा कोणदेव कुलकर्णी यानी पटवारी था। पूना और सूपा की जागीर पाने पर शाह जी ने इसे उसकी व्यवस्था सौंप दी। इस पुरुष ने इस जागीर की स्थिति बहुत सुधारी तथा शिवाजी को सब प्रकार की आवश्यक शिक्षा दी।[7]

८–शिवाजी का स्वराज्य के लिए युद्ध प्रारम्भ

---

१. सह्याद्रि की चट्टानें : पृ० ८।
२. श्रीगोपाल दामोदर तामसकर मराठों का उत्थान और पतन, पृ० ६१।
३. सह्याद्रि की चट्टानें पृ० ६–१०। ४. वही पृष्ठ ११। ५. वही पृ० १२।
६. सह्याद्रि की चट्टानें पृ० १३–१४।
७. श्रीगोपाल दामोदर तामसकर : मराठों का उत्थान और पतन, पृ. ७०।

दादा कोंडदेव की मृत्यु के पश्चात् शिवाजी ने अपनी स्वतन्त्रता को हुंकार भरी और पहला वार तोरण के किले पर किया।[1] यह इतिहास-प्रसिद्ध घटना है।[2]

इसके पश्चात् शिवाजी ने राजगढ़ नामक किला बनवाया। शिवाजी की हरकतों से आदिलशाह क्रुद्ध हुआ। उसने शाहजी से कहा कि अपने पुत्र को समझावे। शाहजी ने कह दिया कि वह मेरी इच्छा के विरुद्ध कार्य कर रहा है। आदिलशाह ने शिवाजी को दण्ड देने का एक बड़ी भारी सेना भेजी।[3]

इस समय तीन तरुण सरदार शिवाजी के उत्थान में सहायक थे—एक तानाजी मलूसरे, दूसरे येसाजी कंक और तीसरे बाजी प्रभु पासलकर।[4] प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता किनकेड ने भी इसी प्रकार का दर्शन किया है।[5]

९–अतिप्राकृत घटनायें

उपन्यासकार ने आगे वर्णन किया है कि स्वप्न में शिवाजी को भवानी ने दर्शन दिये कि उस मन्दिर के पास बहुत सा धन गड़ा पड़ा है। और भवानी का आदेश है कि उसे खुदवाओ। खुदवाने पर प्रचुर सम्पत्ति वहाँ से निकली।[6]

इस घटना का संकेत देते हुए मराठा इतिहास के पंडित गोपाल दामोदर तामसकर अपनी पुस्तक मराठों का उत्थान और पतन में लिखते हैं कि, 'कहते हैं इस किले (तोरणा या प्रचंड गड़) में एक जगह शिवाजी को बहुत सा गड़ा हुआ धन मिला और उसने घोषित कर दिया कि भवानी देवी ने प्रसन्न होकर यह द्रव्य मेरे काम के लिए दिया है। इस द्रव्य से उसने गोला बारूद आदि खरीदकर किले की रक्षा का प्रबन्ध कर लिया।"[7]

उपन्यासकार ने भी भवानी के प्रसाद स्वरूप धन से एक फिरंगी से गोला बारूद खरीदवाया है।[8]

१०–शिवाजी का शाही खजाना लूटना

इस इतिहास-प्रसिद्ध घटना का वर्णन उपन्यासकार ने बड़े रोचक ढंग से किया है। इसकी रोचकता यही है कि शिवाजी ने अपने बुद्धि-कौशल से बिना अपनी जन-धन की हानि कराए भारी शाही सेना के संरक्षण में कल्याण के हाकिम मुल्ला द्वारा भेजा हुआ खजाना लूट लिया और शाही सेना को हथियार छोड़कर तथा अपने प्राण बचाकर भागना पड़ा।

१. सह्याद्रि की चट्टानें पृ. १८।
२. श्री गोपाल दामोदर तामसकर : मराठों का उत्थान और पतन, पृ. ६८।
३. सह्याद्रि की चट्टानें . पृ. १६।
४. वही पृ. २१।
५. "Dadaji Kondev collected round Shivaji other boys of his own age. The best known were Tanaji Malusare, a petty baron of Umra the village in the Konacan. Baji Phasalkar the deshmukh of the village of Muse and Yesaji Kank, a small land holder in the Sahyadris."
किनकेड–ए हिस्ट्री आफ मराठा पिपिल, पृ. १२६।
६. सह्याद्रि की चट्टानें . पृ. २६–३०।
७. श्री गोपाल दामोदर तामसकर : मराठों का उत्थान और पतन, पृ. ६८।
८. सह्याद्रि की चट्टानें : पृ० ३१।

उपन्यासकार ने यहाँ एक सफल युद्ध नीति का उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसमें शत्रु पक्ष का तो प्रबल हानि उठानी पडे और अपनी कोई हानि न हो।[१] यह घटना ऐतिहासिक है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता ग्रांट डफ ने भी इसी प्रकार कहा है।[२]

११ – शाह जी का बन्दी बनाया जाना तथा मुक्ति

शाही खजाना लूटकर शिवाजी ने चढी रकाव बगारी ताहगढ आदि को कब्जे में कर लिया, कल्याण प्रदेश को लूटा, मुल्ला अहमद को कैद कर लिया। इन खबरों से आदिलशाह तिलमिला उठा, उसने बाजी घोरपडे की सहायता से शाह जी को कैद कर लिया।[३] ये सब घटनायें ऐतिहासिक है। शिवाजी के इतिहास के प्रकाण्ड पंडित डा० सर यदुनाथ सरकार ने भी ऐसा ही लिखा है।[४] परन्तु शाह जी ने कह दिया कि मुझे शिवाजी के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। वह जैसा आपका बागी है वैसा ही मुझ से भी बागी है।[५] ठीक ऐसी बात ग्रांट डफ कहते हैं।[६]

शिवाजी ने अपने पिता के छुटकारे के लिए शाहजहाँ से सम्पर्क स्थापित किया और शाह जी को छुटकारा दिलाने में सफल हो गया।[७]

१२–शाह जी के नामकरण का रहस्य

उपन्यासकार ने शाह जी के नामकरण के रहस्य का उदघाटन उस समय किया है जब शिवाजी का दूत मुराद के पास जाता है और शाह जी की मुक्ति के लिए कहता है, तो मुराद ने उससे कहा कि यह शाह जी नाम तो किसी हिन्दू का अजीबोगरीब है। इस पर दूत ने मुराद को उत्तर दिया "इनके वालिद बुजुर्गवार मालो जी भोसला का जब अर्से तक औलाद न हुई तो उनकी बीवी दीपाबाई ने बहुत दान पुण्य किया और मालोजी ने शाह

---

१ सह्याद्रि की चट्टानें पृ० ३७।

२ "Having heard that a large treasure was forwarded to court by Moorana Ahmad, Governor of Kallian, Shivaji put himself at the head of 300 horses, taken at Sopa, now mounted with Bargeers on whom he could depend and accompanied by a party of Mawules, he attacked and dispersed the escort, divided the treasure amongst the horsemen and conveyed it with all expedition to Rajgarh."

३. सह्याद्रि की चट्टानें पृ ३८।

४ As soon as the two Raos (Baji Rao Ghorpare and Jaswant Rao) arrived and he (Shivaji) learnt of there purpose, he in utter bewilderment took horse and galloped away from his house along Baji Ghorpare gave chase, caught him and brought him before the Nawab who threw him into the confinement

डा० यदुनाथ सरकार शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ. ३६।

५ सह्याद्रि की चट्टानें पृ ३८।

६. "Shahji persisted in declaring that he was unconnected with his son, that Shivaji was as much in rebellion against him as against the King's Govt "

ग्रांट डफ हिस्ट्री आफ मराठाज, पृ० ११३।

७. सह्याद्रि की चट्टानें पृ. ४१।

शरीफ की ज्यारत भी की उन्हीं की दुआ है उनके दो बेटे हुए जिनके नाम शाह जी व शरीफ जी रखे गए।"[1] इतिहासज्ञ ग्राट डफ भी इस घटना की पुष्टि देता है।[2]

१३–शिवाजी द्वारा जावली के चन्द्रराव मोरे का वध तथा जावली विजय

जावली के चन्द्रराव मोरे का वध करके शिवाजी जावली पर विजय प्राप्त कर ली।[3] प्रसिद्ध इतिहासकार सरकार[4] और ग्राट डफ[5] आदि ने इसका वर्णन किया है।

१४–दक्षिण की दशा

उपन्यासकार ने दक्षिण की राजनैतिक स्थिति पर संक्षिप्त प्रकाश डाला है। यह वर्णन इतिहास से ही लिया गया है इसमें दिखाया गया है कि निजामशाही की समाप्ति हो गई। बीजापुर का दक्षिण मे अकेला डका बज रहा था। परन्तु विलास में डूब जाने के कारण इस राज्य के अग धीरे-धीरे मुगल साम्राज्य मे विलीन होने लगे। आदिलशाह द्वितीय मर गया और नाबालिग सुल्तान के गद्दी पर बैठते ही बीजापुर के अधिकारियों में झगड़ा शुरू हुआ। शिवाजी को अब बीजापुर की हानि करके अपना राज्य बढाने का अवसर मिल गया।

१५–महाराष्ट्र की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक स्थिति

उपन्यासकार ने इतिहास की शैली में महाराष्ट्र की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एव धार्मिक स्थिति का वर्णन किया है।[6] वस्तुत ये पृष्ठ इतिहास के ही पृष्ठ हैं, उपन्यास से यदि इन्हें निकाल भी दिया जाए तो भी उपन्यास मे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। हाँ इतना अन्तर अवश्य पड़ेगा कि यदि इस प्रकार से पृष्ठ निकाल दिये गए तो उपन्यास के कठिनाई से १०० पृष्ठ रह जायेंगे।

१६–औरंगजेब और शिवाजी

उपन्यासकार ने औरगजेब और शिवाजी के चरित्रों की विशेषताएँ बताई हैं और उनके कार्यक्रमों का वर्णन संक्षेप मे इतिहास का दामन पकड़े हुए किया है।

१६५७ के ग्रीष्मकाल मे शाहजहाँ आगरा में बीमार पड़ा। औरगजेब सिंहासन-प्राप्ति के लिये उत्तर की ओर चला। उसने अपने बाप को कैद कर लिया, भाइयों को मारा और आलमगीर के नाम से मुगल तख्त पर आरोहण किया।[7]

---

१. सह्याद्रि की चट्टानें . पृ० ४०।

२ "He (Mallojee) had no children for many years. A celeberated Mohamedan saint or peer named Shah Shareef, residing at Ahmadnagar was engaged to offer up prayers to this desirable end, and Mallojee's wife having shortly after given birth to a son, in *gratitude to the peer's supposed benediction*, the child was named after him. Shah, with the Marhatta adjunct of respect 'Jee' and in the ensuing year, a second son was in like manner [named Shareef Jee"

ग्राट डफ · हिस्ट्री आफ मराठाज, पृ० ६६।

३. सह्याद्रि की चट्टानें · पृ० ४२।

४. डा० यदुनाथ सरकार · शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ० ४१।

५. ग्राट डफ . हिस्ट्री आफ मराठाज, पृ. ११७–११८।

६. सह्याद्रि का चट्टानें : पृ. ४६ ४८। ७. वही : पृ. ५१-५४।

१७–अफजल खाँ का वध

वैसे तो शिवाजी के द्वारा अफजल खाँ के वध की घटना इतिहास में बड़े मनोरंजक ढंग से मिलती है। उपन्यासकार ने इसे और अधिक रोचक बनाकर प्रस्तुत किया है। 'बीजापुर के सरदार अफजल खाँ ने शिवाजी के पकड़ने के लिए सेना-सहित प्रस्थान किया। वह बड़ा घमंडी था। शिवाजी के स्थान के पास पहुँच कर उसने अपने दूत कृष्णजी भास्कर को शिवाजी के पास भेजा और कहलाया कि तुम्हारा बाप मेरा दोस्त है। ... बस बेहतर है कि मुझसे आकर मिलो, मैं तुम्हें माफी दिलवाऊँगा। वास्तव में यह उसकी एक चाल थी कि किसी भी प्रकार शिवाजी फुसलावे में आ जाए और फिर उसे कैद कर लिया जाए। शिवाजी ने बड़ी चातुरी से कृष्णजी भास्कर से अफजल खाँ की यह चाल ज्ञात करली और शिवाजी ने अफजल खाँ से मिलने की अपनी स्वीकृति कृष्ण भास्कर को देदी। शर्त यह रखी कि दोनों अकेले मिलेंगे, दानों सेनाएँ दूर खड़ी रहेंगी। अफजल खाँ ने स्वीकार कर लिया। शिवाजी ने सिर पर फौलाद का शिरस्त्राण पहना, ऊपर पगड़ी बाँध ली सारे शरीर पर जंजीरी-कवच धारण किया, ऊपर सुनहरी काम का अंगरखा पहना, बाएँ हाथ की चारों उंगलियों में तीव्र व्याघ्र नख नाम का फौलादी अस्त्र और दाहिनी आस्तीन में बिछुआ छिपा लिया। अफजल शिवाजी से गले मिलने आगे बढ़ा। शिवाजी का सिर मुश्किल से उसके कंधों तक आया। अफजल खाँ ने शिवाजी की गर्दन अपने बाएँ हाथ से दबाकर दाहिने हाथ से खंजर निकाल उनकी बगल में घोंप दिया। खंजर जिरहबख्तर में लगकर खिसक गया। इसी समय खान जोर से चीख उठा। शिवाजी के बाएँ हाथ के बघनखे ने खान का समूचा पेट चीर डाला था। और उसकी आँतें बाहर निकल आई थी। इसी समय सैयद की तलवार का करारा हाथ शिवाजी के सिर पर पड़ा। वार से उनका झिलमिल टोप कट गया और थोड़ी चोट भी आई। इसी समय जीवाजी महला ने उछल कर सैयद का तलवार वाला हाथ काट डाला और उसका सिर भुट्टा सा उड़ा दिया। शम्भूजी ने खान का सिर काट लिया।'[1]

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता यदुनाथ सरकार ने भी इसी प्रकार का वर्णन कृष्णाजी भास्कर के सम्बन्ध में किया है।[2]

सी० ए० किनकेड ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ दी मराठा पीपिल' में अफजल खाँ के वध का वर्णन भी इसी प्रकार किया।[3]

१ सह्याद्रि की चट्टानें : पृ. ५५-६६

२. "Then came Afzal's envoy Krishnaji Bhaskar with the invitation to parley. Shivaji treated him with respect and at night met him in secrecy and solemnly appealed to him as a Hindu and priest to tell him of the Khan's real intention. Krishnaji yielded so far as to think the Khan seemed to harbour some plan of mischief."

डा० यदुनाथ सरकार. शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ. ६९।

३. "... and by a common trick of Indian Wrestlers, Afzal Khan was trying to dislocate Shivaji's neck by twisting his head. He (Shivaji) swung his left arm round the Khan's stomach and as he winced under the pain Shivaji freed his right arm and drove the dagger into his enemy's back .... Shivaji snatched a sword from Jiwaji Mehta . ... and struck the Khan through his shoulder. He fell calling for help Syed Banda .... . rushed up...... . Shambhaji then cut off the dying man's head and brought it back to Shivaji."

किनकेड. ए हिस्ट्री आफ मराठा पिपिल, पृ. १९२।

१८–पन्हाला दुर्ग का घेरा

अफजल खा के मरने और उसकी सेना के संहार द्वारा प्राप्त विजय से उन्मत्त मराठे अब दक्षिणी कोंकण और कोल्हापुर के जिलों में जा घुसे। इस प्रकार अन्य स्थानों पर भी कब्जा किया। अब अली आदिलशाह ने एक बड़ी सेना लेकर शिवाजी के विरुद्ध भेजी। शिवाजी ने पन्हाला दुर्ग में आश्रय लिया। आदिलशाही सेना ने, दुर्ग का घेरा डाल दिया, ५ महीनों तक घेरा डाले पड़ी रही। एक दिन रात्रि में शिवाजी निकल भागे। बीजापुरी सेना को बाजी प्रभु और उसके सैनिकों ने अपनी छातियों की दीवारों से रोक दिया। उनमें से एक-एक कट मरा। यहां शिवाजी को बड़ी हानि उठानी पड़ी।[1] ये समस्त घटनाएं ऐसी हैं जिनके विषय में इतिहासकारों में कोई मतभेद नहीं। ताम्हनकर इसकी पुष्टि करते हैं।[2]

१९–शिवाजी और बीजापुर की संधि

शाह जी शिवाजी के पास आदिलशाह की ओर से संधि प्रस्ताव लेकर आए। उन्होंने शिवाजी के सिर पर छत्र रखा और कहा कि आज से तू छत्रपति नाम से प्रसिद्ध हो और संधि हो गई।[3] इस प्रसंग में इतना ही सत्य है कि शिवाजी की बीजापुर के साथ संधि हुई और इसमें शाह जी ने मध्यस्थ का काम किया। ताम्हनकर लिखते हैं 'उस समय देख कर उसने (शिवाजी ने) बीजापुर वालों से संधि करली।"[4] उपन्यासकार ने इस ऐतिहासिक सत्य को थोड़े मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने दिखाया है कि पिता पुत्र के पास संधि-दूत के रूप में आये। इससे उपन्यास में औपन्यासिक तत्व का मिश्रण हुआ है।

२०–शिवाजी का शाइस्ता खा को घायल करना

औरंगजेब ने शाइस्ता खा को शिवाजी को पदाक्रान्त करने भेजा। परन्तु उसे निराश होना पड़ा। शिवाजी एक बारात के साथ मिलकर पूना नगर में प्रवेश कर गए और रात्रि में उन्होंने शाइस्ता खा के महल में घुसकर, उस पर आक्रमण कर दिया। एक दासी की सहायता से महल की छत से वह नीचे कूद पड़ा। शिवाजी की तलवार से उसकी अंगुलियां ही कट पाई और शिवाजी मुगलों को काफी हानि पहुँचा कर सुरक्षित लौट आए। औरंगजेब को बड़ा क्रोध आया और उसने शाइस्ता को वापिस बुला लिया तथा अपमानित करके बंगाल भेज दिया।[5] ये सब घटनाएँ इतिहास प्रसिद्ध हैं। यदुनाथ सरकार आदि ने इन घटनाओं की पुष्टि की है।[6]

२१–शिवाजी द्वारा सूरत की लूट एवं औरंगजेब की बौखलाहट

शिवाजी ने सूरत को लूटने की योजना बनाई।[7] और बड़े कौशल से शिवाजी ने चार दिनों तक सूरत को लूटा। कुल मिलाकर एक करोड़ रुपया सूरत की लूट से इनके

१. सह्याद्रि की चट्टानें : पृ. ७४।
२. श्री गोपाल दामोदर ताम्हनकर : मराठों का उत्थान और पतन, पृ ११६
३. सह्याद्रि की चट्टानें : पृ ७६।
४ श्री गोपाल दामोदर ताम्हनकर : मराठों का उत्थान और पतन, पृ. ११८
५. सह्याद्रि की चट्टानें पृ. ७७-८१।
६. डा० यदुनाथ सरकार : शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स : पृ. ६८
७ सह्याद्रि की चट्टानें पृ ८१-८३।

हाथ लगा। जब शिवाजी ने सुना कि नगर की रक्षा के लिये सेना आ रही है तो वे वहाँ से चल पड़े।

शाइस्ता खाँ की हार और सूरत की लूट ने औरंगजेब को बौखला दिया। उसने शिवाजी के विरुद्ध कठोर कदम उठाया।[1]

सी० ए० किनकेड ने इस घटना की पुष्टि की है।[2]

२२–औरंगजेब की शिवाजी को कुचलने की योजना और मुरार जी बाजी प्रभु का पराक्रम

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि शिवाजी की हरकतों से औरंगजेब बुरी तरह बौखला गया था अतः उसने शिवाजी को कुचल डालने के लिए मिर्जा राजा जयसिंह के नेतृत्व में दिलेरखां के साथ एक भारी सेना भेजी। मिर्जा राजा ने बीजापुर दरबार को अपने पक्ष में करके और बीजापुर के अन्य सारे शत्रुओं को अपने साथ मिलाकर सब ओर से एक साथ ही शिवाजी पर आक्रमण करने का आयोजन किया। इस संयुक्त सेना ने शिवाजी के पुरन्दर के किले को घेर लिया। दिलेरखां के नेतृत्व में किले पर आक्रमण हुआ। इस आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिये पुरन्दर के किलेदार मुरारजी बाजी प्रभु ने जो वीरता दिखाई उससे पाठक रोमांचित हो उठता है। उसने ५०० पठानों को मार गिराया। इसकी वीरता और साहस को देखकर दिलेरखां ने उसे संदेश भेजा कि यदि वह आत्मसमर्पण कर देगा तो वह उसे अपनी अधीनता में एक ऊँचा पद देगा। परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया और लड़ते-लड़ते युद्ध भूमि में जूझ मरा। इस प्रकार शिवाजी की पराजय निश्चित हो गई।[3] इतिहासकार श्री यदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' में ऐसा ही रोमांचकारी वर्णन किया है।[4]

२३–पुरन्दर की संधि

मुगलों के पुरन्दर पर आक्रमण के समय पुरन्दर के किले में मराठा अधिकारियों के बहुत से कुटुम्ब आश्रय लिये बैठे थे। अब शिवाजी को यह भय उत्पन्न हुआ कि पुरन्दर का पतन होने पर ये सब बंद हो जायेंगे और उन्हें अपमानित होना पड़ेगा। निरुपाय शिवाजी ने जयसिंह के पास संधि का प्रस्ताव भेजा। संधि के अनुसार चार लाख हून वार्षिक आय वाले शिवाजी के २३ किले मुगल साम्राज्य में मिला लिये गए और राजगढ़ के किले सहित एक लाख हून की वार्षिक आय वाले कुल १२ किले इस शर्त पर शिवाजी के पास रहने दिये गए कि वे मुगल साम्राज्य के राज्य-भक्त सेवक बने रहेंगे।[5] पुरन्दर की संधि इतिहास प्रसिद्ध घटना है। प्रत्येक इतिहासकार ने इसका विवरण दिया है। श्री यदुनाथ सरकार ने भी इसी प्रकार की बात कही है।[6]

२४–शिवाजी का मुगल सेना के साथ मिलकर बीजापुरी सेना पर आक्रमण :

२५ दिसम्बर १६६५ को शिवाजी की सेना के साथ मुगल सेना ने मिलकर

---

१. सह्याद्रि की चट्टानें—पृष्ठ ८१-८३।
२. सी० ए० किनकेड : ए हिस्ट्री आफ दमराठा पिपिल पृ २०६
३. सह्याद्रि की चट्टानें पृ. ८६-८७।
४. श्री यदुनाथ सरकार . शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ. ११६।
५. सह्याद्रि की चट्टानें · पृ. ८८।
६. श्री यदुनाथ सरकार : शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ. १२१।

बीजापुरी सेना पर आक्रमण किया। यह अभियान नितान्त असफल रहा। अपरिमित धन हानि होने और इस करारी हार की सूचना पाने से औरंगजेब जयसिंह से बहुत नाराज हो गया और उसे हुक्म दिया गया कि वह शाहजादा मुअज्जम को दक्षिण की सूबेदारी के अधिकार सौंपकर वहाँ से चले आए। अपमान से क्षुब्ध और निराशा से भरे हुए जयसिंह ने आगरे की ओर कूच किया। २८ अगस्त १६६७ को वह बुरहानपुर में मर गया।[१] ये घटनाएँ इतिहास की कसौटी पर खरी उतरती हैं। वस्तुतः यह वर्णन उपन्यासकार ने इतिहास के पृष्ठों से ही लिया है, इस वर्णन में औपन्यासिकता नहीं है।

२५—शिवाजी की अर्ध रात्रि की सभा :

शिवाजी ने आगरा जाने से पूर्व अर्ध-रात्रि में अपने मुख्य राजकर्मचारियों की एक सभा की। इसमें कुछों ने शिवाजी का आगरा जाने का विरोध किया कि आपका आत्मसमर्पण अनुचित है। इस पर शिवाजी ने कहा, 'आत्मसमर्पण केवल शिवा ने किया है मराठों ने नहीं। मेरे आत्म समर्पण का लाभ उठाकर तुम अपनी तलवारों की धार और तेज करलो। आज मैं दिल्ली जा रहा हूँ। कल उनकी जरूरत पड़ेगी।"[२] यहाँ उपन्यासकार ने थोड़ा हेर-फेर किया है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ किनकेड के अनुसार, शिवाजी ने पुरन्दर की संधि, जिसके अनुसार उन्हें आगरा सम्राट की सेवा में जाना था, होने से पूर्व अपनी माता तथा शेष अफसरों के साथ विचार विनिमय किया था। सबकी राय से ही वे जयसिंह से मिलने गये। उपन्यासकार ने अर्ध-रात्रि की सभा में शिवाजी के मुख से कहलाया है, तो मित्रो, हमने महाराज जयसिंह से संधि की है। हमारे और कपटी औरंगजेब के बीच वह वृद्ध राजपूत है, जिसकी तलवार की धार अटक से कटक तक प्रसिद्ध है। उन्होंने मुझसे कहा था कि जब सत्य से हिन्दू-धर्म की रक्षा न हुई, तो सत्य छोड़ने से कैसे होगी। वह बात मैंने गाँठ बाँध ली है और तब तक मैं सन्धि से बद्ध हूँ जब तक शत्रु संधि भंग न करे।"[३] इतिहासकार सी० ए० किनकेड के अनुसार शिवाजी ने पुरन्दर की संधि, जिसके अनुसार उन्हें आगरा सम्राट की सेवा में जाना था, होने से पूर्व अपनी माता तथा शेष अफसरों के साथ विचार विनिमय किया था। सबकी राय से ही वे जयसिंह से मिलने गए।

उपन्यासकार ने इस सभा का वर्णन शिवाजी के आगरा आने से पूर्व किया है। अतः इस घटना को हम ऐतिहासिक ही मानते हैं।

२६—शिवाजी का आगरा जाना तथा औरंगजेब के दरबार में जाना :

पुरन्दर की संधि के अनुसार शिवाजी आगरा पहुँचे। आशा के प्रतिकूल अपना स्वागत देखकर शिवाजी का मन खिन्न हो गया। दरबार में भी उन्हें पाँच हजारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा किया गया। उधर घंटे भर से खड़े रहने के कारण वे थक गये थे और इस अपमान से गुस्से से लाल हो उठे। औरंगजेब ने रामसिंह से कहा कि शिवाजी से पूछे कि उनकी तबियत कैसी है। रामसिंह के पूछने पर वे उबल पड़े। तुमने देखा है, तुम्हारे बाप ने देखा है। क्या मैं ऐसा आदमी हूँ कि जानबूझकर मुझे यों खड़ा रखा जाए।"[४]

---

१. सह्याद्रि की चट्टानें—पृ० ६७। २. वही—पृ० ६६। ३. वही—पृ० १००
४. सह्याद्रि की चट्टानें—पृ० १११।

सर यदुनाथ सरकार ने भी इसी प्रकार लिखा है।[1] फिर वे मुड़कर बादशाह की तरफ पीठ करके वहाँ से चल दिये और जाकर एक ओर बैठ गए। रामसिंह ने उन्हें समझाया पर उन्होंने एक न सुनी और कहा 'मेरा सिर काट कर ले जाना चाहो तो ले जा सकते हो, लेकिन मैं बादशाह के सामने अब नहीं आऊंगा।'[2] सर यदुनाथ सरकार ने भी इसी प्रकार लिखा है।[3]

इस प्रकार ये घटनाएँ इतिहास से ज्यूं की त्यूं ले ली गई हैं।

२७ – औरंगजेब द्वारा शिवा को कैद करना

शाइस्ताखाँ की स्त्री का औरंगजेब पर बहुत असर था। वह उस रात की घटना भूली नहीं थी, जब शिवाजी शाइस्ताखाँ के महल में घुस पड़े थे और शाइस्ताखाँ को अपने प्राण बड़ी कठिनाई से बचाने का अवसर मिला था। इसने तथा कुछ और ऐसे ही व्यक्तियों ने औरंगजेब के कान भरे और उसे शिवाजी के विरुद्ध भड़का दिया। औरंगजेब ने अब यही निर्णय किया कि आगरा आने पर या तो उन्हें मरवा डाला जाय या कैद कर लिया जाए। इसी से उसने दरबार में उसकी अवज्ञा की थी। औरंगजेब ने कहा कि शिवाजी को आगरा के किलेदार अन्दाजखाँ को सौंप दिया जाए। लेकिन रामसिंह ने इसका विरोध किया और उसने वजीर आमिनखाँ से कहा, 'मेरे पिता के वचन पर शिवाजी आगरा आए हैं, मैं उनकी जान का जामिन हूँ, पहले बादशाह हमको मार डाले और उसके बाद जो जी में आवे, करें, रामसिंह से मुचलका लिखवा लिया गया और शिवाजी को रामसिंह के सुपुर्द कर दिया गया। इतना होने पर भी औरंगजेब ने शहर कोतवाल सिद्दी फौलाद खाँ को हुक्म दिया कि शिवाजी के डेरे के चारों तरफ तोपें रखवा कर शाही फौजें बिठा दी जाएं। इस प्रकार शिवाजी को आगरा में कैद कर लिया गया।[4]

यह वर्णन इतिहास में बिल्कुल इसी प्रकार का मिलता है।[5] बल्कि यूँ कह सकते हैं कि उपन्यासकार ने इतिहास के पृष्ठों को उठाकर रख दिया है।

२८—शिवाजी का कैद से भागना·

शिवाजी ने वजीर आज़म जफर खाँ और दूसरे बड़े-बड़े उमरावों को घूस देकर

---

१. "Maratha Raja burst forth, "You have seen! your father has seen and your Padishah has seen what sort of man I am and yet you have wilfully made me stand up so long."
डा॰ यदुनाथ सरकार—शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ॰ १४२।

२. सह्याद्रि की चट्टानें—पृ॰ ११०—१११।

३. "The Kumar followed and tried to reason with him, but the Maratha King could not be persuaded, he cried out, "My destined day of death has arrived, either you will slay me or I shall kill myself. Cut off my head, if you like but I am not going to the Emperor's presence again."
डा॰ यदुनाथ सरकार—शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ॰ १४२।

४. सह्याद्रि की चट्टानें—पृ॰ ११३—११४।

५. श्री यदुनाथ सरकार—शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स पृ॰ १४३-१४५

अपने छुटकारे की सिफारिशें बादशाह से कराईं। पर उनसे कोई सिफारिश नहीं सुनी। अब शिवाजी ने चतुराई से काम लिया। उन्होंने बादशाह से कहलवाया कि मेरी सेना तथा सरदारों को दक्षिण भेज दिया जाए क्योंकि मैं शाही सुरक्षा में हूँ और इतना खर्च मैं कर नहीं सकूँगा। बादशाह ने इस बात का अपने पक्ष में समझा और उनकी सेना और सरदारों को दक्षिण लौटने की आज्ञा देदी।

शिवाजी ने अपने ऊपर सिद्धि फौलाद खाँ से दोस्ती गाँठ ली और उसे यह दिखाया कि मैं आगरा में प्रसन्न हूँ। साथ ही वे फौलाद को प्रायः अच्छी भेंट देते रहते थे। फौलाद खाँ की रिपोर्ट पर बादशाह ने शिवाजी पर से बहुत सी पाबन्दियाँ हटा लीं। कुछ दिनों बाद शिवाजी ने बादशाह से कहा कि मैं फकीर होकर किसी तीर्थ में दिन व्यतीत करना चाहता हूँ। इस पर बादशाह ने हंसकर जवाब दिया—ख्याल अच्छा है, फकीर होकर प्रयाग के किले में रहो। बहुत बड़ा तीर्थ है। वहाँ मेरा सूबेदार बहादुर खाँ तुम्हें हिफाजत से रखेगा।

अब शिवाजी ने बीमार होने का बहाना कर लिया। बड़े-बड़े हकीम आये पर शिवाजी अच्छे न हुये न मरे। और एक दिन प्रसिद्ध हो गया कि शिवाजी अच्छे हो रहे हैं, मुलाकातियों के आने की मनाही है। शिवाजी के अच्छे होने की खुशी में बड़े-बड़े झाब भर कर मिठाइयाँ मन्दिरों ब्राह्मणों और गरीबों को बाँटी जाने लगी। और एक दिन सन्ध्या के समय हीराजी फर्जन्द को अपने बिस्तरे पर सुलाकर मिठाई के झावे में बैठकर जा निकले, साथ, में पुत्र शम्भा जी को भी ले लिया। आगरा से ६ मील दूर उनके विश्वासी आदमी उन्हें मिले और वे मथुरा की ओर चले। मथुरा में मोरो जी पन्त की सुसराल थी वहाँ शम्भा जी को छोड़कर साधुवेश में शिवाजी ने अपने कुछ साथियों सहित काशी की ओर प्रस्थान किया और इस प्रकार वे औरंगजेब के सैनिकों से बचते बचाते दक्षिण जा पहुँचे।

हीराजी फर्जन्द को शिवाजी के बिस्तरे पर इस प्रकार सुलाया कि चादर में से उनका कड़े वाला हाथ दिखाई पड़ता रहा। पहरेदार समझते रहे कि शिवाजी सो रहे हैं।"[1]

यह वर्णन बिल्कुल इसी प्रकार इतिहास में मिलता है। इस घटना में ही क्या प्रायः हर घटना के विषय में लेखक ने अपनी लेखनी को अधिक कष्ट देने का प्रयास नहीं किया। इतिहास की पुस्तकों के उदाहरणों को ज्यूँ का त्यूँ या अनुवाद करके रख दिया है। यदुनाथ सरकार की पुस्तक शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स में इसी प्रकार का वर्णन मिलता है।"[2]

२९—आगरा से दक्षिण लौटने पर शिवाजी का कार्य

दक्षिण आने पर शिवाजी ने देखा कि परिस्थिति बहुत कुछ अनुकूल है। मुगलों का दक्षिणी पडाव आपसी ईर्ष्या द्वेष और गृहयुद्ध का अखाड़ा बना हुआ था। बीच-बीच में महाराज जसवन्तसिंह की लल्ली पत्ती करते रहे। शिवाजी अपनी दूरदर्शिता के कारण झगड़े टंटे सब अवसरों को टालते रहे। औरंगजेब से शिवाजी की सिफारिश की गई।

१ सह्याद्रि की चट्टानें—पृ० ११४-११५, ११८-११९, १२३-१२८।
२. श्री यदुनाथ सरकार—शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ० १४६-१४७।

फलत: १६६९ के आरम्भ में एक संधि हुई। वास्तव में यह संधि अल्पकालीन युद्ध विराम मात्र थी। औरंगजेब ने शिवाजी को पकड़ने या उसके लड़के को कैद करने की चाल चली शिवाजी ने अपना राज्य विस्तार का काम आरम्भ कर दिया। अब शिवाजी ने सूरत को दूसरी बार लूटा।[1] ये सब घटनाएँ बाद में इतिहास प्रसिद्ध हैं। उपन्यासकार ने एक त्रुटि की है—जो घटनाएं बाद में आनी चाहिए थी वे पहले दे दी और पहले आने वाली घटनाओं का विवरण बाद में दिया, जैसे सूरत की दूसरी विजय सिंहगढ़ के दुर्ग की विजय के बाद की घटना है परन्तु सिंहगढ़ विजय उपन्यास के सबसे अन्त में दी है।

२०—मुस्लिम धर्मानुशासन

उपन्यासकार ने मुस्लिम धर्मानुशासन का बखान किया है। इसके अतिरिक्त औरंगजेब की कट्टर राजनीति (मन्दिरों आदि का विध्वंस) तथा जजिया कर पर उपन्यासकार का व्याख्यान है। ये सब इतिहास के पन्नों से ही उद्धृत है।

२१—सिंहगढ़ विजय

जीजाबाई ने शिवाजी से सिंहगढ़ लेने को कहा। दोनों माता पुत्र चौसर खेलते हैं, शिवाजी हारते हैं—माँ हार के दण्ड स्वरूप सिंहगढ़ मांगती है।[2] इतिहास इस विषय में केवल यही कहता है "दिये हुए किलों में पुरन्दर और सिंहगढ़ नाम के किले महत्वपूर्ण थे। उन्हें खोने की बात शिवाजी और उनकी माता के हृदय में चुभी हुई थी।" उदयभानु से सिंहगढ़ लेने का काम तानाजी को सौंपा गया किन्तु गढ़ आया पर सिंह गया। यह इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि सिंहगढ़ तो जीत लिया पर तानाजी मारा गया।[4] यदुनाथ सरकार ने इस दुर्ग का नाम कोण्डाना बताया है और ताना जी की शूरवीरता के कारण उसका नाम सिंहगढ़ रखा गया।[5]

सह्याद्रि की चट्टानें 'नामक ऐतिहासिक उपन्यास में आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने यह प्रयास किया है कि कल्पना का कम से कम आश्रय लिया जाय यही कारण है कि इस उपन्यास में कल्पना का पुट नहीं के बराबर है। इसके अतिरिक्त घटनाओं के वर्णन को जब इतिहास में देखते हैं तो बिल्कुल वैसे ही मिलते हैं। इस बात से लगता है आचार्य प्रवर ने यह उपन्यास बहुत ही जल्दी में लिखा है। कितने ही स्थल तो ऐसे हैं जो इतिहास की पुस्तकों में अधिक मनोरंजक ढंग से लिखे मिलते हैं, कितने ही स्थल ऐसे आए हैं जिनका विकास किया जाता तो उपन्यास में प्राण पड़ जाते, अब तो यह केवल इतिहास पृष्ठों जैसा लगता है।

इस उपन्यास में प्रायः सब पात्र ऐतिहासिक हैं जिसका प्रासंगिक रूप से वर्णन इस अध्याय में हो चुका है। पात्रों की सूची पात्र विश्लेषण में दी गई है।

सह्याद्रि की चट्टानें

उपन्यास में कल्पना

जैसा कि पहले कहा गया है कि 'सह्याद्रि की चट्टानें' उपन्यास पूर्णत: ऐतिहा-

---

१ सह्याद्रि की चट्टानें—पृ० १३२-१३४। २. वही पृ० १४५-१४६। ३. श्रीगोपाल दामोदर तामसकर मराठा का उत्थान और पतन, पृ० १३५। ४ सह्याद्रि की चट्टानें : पृ० १३६।

५. डा० यदुनाथ सरकार-शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ० १९१।

"He (Shivaji) mourned the death of Tanaji as too high a price for the fort and named it Singhgarh after the lion heart that had won it"

मिश्र है। कल्पना का सहारा उपन्यासकार ने बहुत कम लिया है। किसी विशेष उद्देश्य को दृष्टि में रखकर ही उपन्यासकार ने काल्पनिक घटनाओं की सर्जना की है। इस उपन्यास में काल्पनिक अभिसृष्टि संक्षेप में निम्न प्रकार है।

१–तानाजी की बहिन का अपहरण

शिवाजी और उनका साथी धांधू जी रात्रि के गहन सन्नाटे में चले जा रहे थे। मार्ग में उन्हें घायल अवस्था में कराहते हुये तानाजी पड़ा मिला। घोड़े से उतर कर उन्होंने उस युवक तानाजी की मरहम पट्टी की और उसे पास वाले उसके बहनोई के ग्राम में छोड़ आये। उस घायल ने कहा, आपने मेरे प्राण बचाये, इसलिये प्राण आज से आपके हुए। तानाजी ने शिवाजी को बतलाया कि मैं अपनी बहन को विदा करके ले जा रहा था कि मार्ग में ५०० यवन सैनिकों ने धावा बोल दिया और मुझे घायल करके मेरी बहिन को ले गये।[1]

उपन्यास के प्रारम्भ में ही उपन्यासकार ने एक हिन्दू नारी का मुसलमान सैनिकों से अपहरण दिखाया है। मुसलमानों के आततायी रूप को दिखाकर उपन्यासकार जागरण का एक संदेश देता है। वह कहना चाहता है कि यह अपहरण किसी एक हिन्दू नारी का नहीं था अथवा तानाजी की बहन का नहीं था। यह तो युग युगों से हिन्दू स्त्रियों का मुसलमान आततायियों द्वारा होते हुए अपहरण का एक नमूना मात्र है। और वह अपहरण उस समय तक चलता रहेगा जब तक इस पाप को कुचल देने के लिये एक हिन्दू में प्रलयकारी रुद्र का तृतीय नेत्र नहीं खुलेगा, जब तक एक-एक हिन्दू की, इस राक्षसी वृत्ति को देखकर नींद हराम न हो जायेगी।

जहाँ लेखक ने पाप का एक नमूना प्रस्तुत किया है वहाँ इस पाप को भस्म कर देने वाले उस वीर पुरुष का भी नमूना प्रस्तुत किया है जिसने हिन्दुओं के समक्ष एक आदर्श उपस्थित किया। शिवाजी ही वह नमूना है। लेखक ने यहाँ साम्प्रदायिकता; दृष्टिकोण का का दर्शन नहीं कराया। उन्होंने मुसलमानों के आततायी रूप को ही पाठकों के समक्ष रखा है। फलतः पाठक को मुसलमानों की पाशविक वृत्ति से घृणा होती है, मुसलमान मानव से नहीं।

२–शिवाजी के बचपन की उठान

पूत के पाँव पालने में ही पहचाने जाते हैं। बाल्यकाल से ही शिवाजी में मुसलमानों के प्रति घृणा थी। उनमें स्वाभिमान जन्म से ही था। वे मुसलमान बादशाह को सलाम करना पसन्द नहीं करते थे। इसी बात के चित्रण के लिए लेखक ने कल्पना का आश्रय लिया है। उन्होंने दिखाया है कि जीजाबाई के पास बीजापुर दरबार से शाहजी का संदेश लेकर मुरारजी पन्त आये और उसने शिवाजी को बीजापुर दरबार में चलकर शाह को सलाम करने की बात कही। पर बालक शिवा ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और कहा, मैं नहीं करूँगा सलाम। पर माता के कहने से वे चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने दरबारी ढंग से शाह का मुजरा नहीं किया। इस पर शाह जी और शाह कुछ नाराज से हुये। शाह के पूछने पर शिवाजी ने कहा, 'मैं पिता जी को सलाम मुजरा करता

[1] सह्याद्रि की चट्टानें—पृ० १-४।

हूँ, वैसे ही आपको भी है पिताजी के समान समझकर।' शाह प्रसन्न हो गया। शाह बोला 'उसने मा बदौलत को बाप कहा है। बस, उसकी एक शादी हमारे हुजूर में होगी और हम खुद बाप की सब रसम अदा करेंगे। लड़की की तलाश करो। बीजापुर में शिवाजी का दूसरा विवाह हुआ।'[1]

इन घटनाओं के विषय में इतिहास मौन है। शिवाजी की दूसरी शादी हुई, वे इतने स्वाभिमानी थे शाह को सलाम करने को उन्होंने मना कर दिया था, इस घटनाओं पर तो इतिहास बोलता है। परन्तु उपन्यासकार ने जिस ढंग से इन्हें प्रदर्शित किया है, उस पर इतिहास मौन है। अतः इस सूक्ष्म ऐतिहासिक सत्य को लेखक ने कल्पना का आवरण पहनाया है।

३–माता और पुत्र

माता जीजाबाई ने शिवाजी को मीठी झिड़कियाँ दी कि तू अभी १८ वर्ष का भी नहीं हुआ और इतना उद्दण्ड हो गया है कि दादा के पास तेरी शिकायतें आई हैं। तू दिन भर रहता कहाँ है, बोल ?...उस दिन तूने दरबार में जाकर सलाम नहीं किया, सलाम करता तो शाही रुतबा मिलता।' शिवाजी ने कहा, 'वे गौ-ब्राह्मण के शत्रु हैं और मैं उन का रक्षक, मैं तो यही जानता हूँ।'[2]

माता और पुत्र के इस कथोपकथन में एक ओर हमें जहाँ वात्सल्य रस के दर्शन होते हैं, दूसरी ओर शिवाजी की दृढ़ता और तत्कालिक देश काल की स्थिति के दर्शन होते हैं। इस कथोपकथन से उपन्यास में रोचकता आई है।

४–गुरु और शिष्य

गुरु हरिनाथ स्वामी और शिष्य तानाजी मलुसरे के सम्वाद, शस्त्र संचालन का प्रदर्शन, शिवाजी का आकर तानाजी को उसकी बहन के अपहरण की घटना का याद दिलाना, शिवाजी द्वारा शिक्षा देना कि बहन का प्रतिशोध लो, बहन का अर्थ केवल हिन्दू अबला समझो, आदि का काल्पनिक वर्णन गुरु और शिष्य के सम्वाद में लेखक ने दिखाया है। शिवाजी तानाजी से कहते हैं, "मैंने तुम्हें गुरु जी की सेवा में तीन वर्ष के लिए इस लिए रखा था कि तुम शरीर आत्मा और भावना से गम्भीर एवं दृढ़ बनो, तामसिक क्रोध का नाश करो सात्विक तेज की ज्वाला से प्रज्वलित होओ।"[3]

इसी में गुरु ने तानाजी को उपदिष्ट किया, जाओ पुत्र, महाराज की सेवा में रहो, विजयी बनो। भारत के दुर्भाग्य को नष्ट करो। नवीन जीवन, नवीन युग का प्रवर्तन करो। धर्म, नीति, मर्यादा और सामाजिक स्वातंत्र्य के लिए प्राण और शरीर एवं पदार्थों का विसर्जन करो।"[4]

जैसा कि ऊपर कहा है कि इस कथोपकथन की सर्जना काल्पनिक है। इतना अवश्य है कि धार्मिक क्रान्ति उस समय महाराष्ट्र में हो रही थी और युवकों को सैन्य शिक्षा देने एवं संगठित करने का काम चल रहा था। स्वतंत्रता की लहर सारे महाराष्ट्र में फैल रही थी। काल्पनिक सर्जना से उपन्यास में रोचकता की वृद्धि हुई है।

५–शिवाजी की जयसिंह से अप्रत्याशित भेंट

---

१. सह्याद्रि की चट्टानें पृ० १२-१४। २. वही पृ० १९-१८। ३. वही पृ. २१। ४. वही पृ० २४।

पुरन्दर की संधि के पश्चात 'मर्यादित भेंट' काल्पनिक है।[1] इसमें शिवाजी मिर्जा राजा जयसिंह के पास जाते हैं और दोनों में हिन्दुत्व तथा तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों पर वार्तालाप होता है। दोनों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है और उनके व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। यह स्थल भी औपन्यासिक तत्वों की अभिवृद्धि करता है। उपन्यास के रोचकतम स्थलों में से यह एक है।

६–तानाजी उच गुमाश्ते और हकीम के रूप में

तानाजी का आगरा में पहले उच गुमाश्ते के रूप में और फिर छद्म वेष में हकीम के रूप में शिवाजी के पास आना और उनके भाग निकलने की योजना पर विचार करना दिखाया है। और वह शिवाजी की मुक्ति में सहायक होता है।[2] यह काल्पनिक सर्जन है। केवल इतना तो सत्य है कि तानाजी ने सहायता की। परन्तु वे उच गुमाश्ते और हकीम के वेश में शिवाजी के पास उनके छुटकारे की योजना बनाने गये इसके विषय में इतिहास मौन है। यहां उपन्यास में रोचकता आई है।

७–शिवाजी के दक्षिण लौटने पर

आगरा से लौटकर शिवाजी के दक्षिण आने पर माता और पुत्र का संवाद काल्पनिक है। इसमें कोई विशेष बात नहीं दिखाई। शिवाजी अपने साथी के साथ वैरागी के वेश में माता से आकर मिलते हैं। जीजाबाई उन्हें प्रणाम करने उठी तो एक ने तो "कल्याणमस्तु आशा पूर्ण होय" कहकर आशीर्वाद दिया, पर दूसरा दौड़कर जीजाबाई के चरणों में लिपट गया। जीजाबाई एकदम पीछे हट गई। उन्होंने कहा- 'यह क्या किया, वैरागी होकर गृहस्थ के चरण पकड़ लिए।" इसी समय वैरागी के सिर पर उनकी दृष्टि पड़ी। 'अरे मेरा शिव्बा है' कहकर उन्होंने उसे छाती से लगा लिया।[3] इस स्थल में भी हमें उपन्यास में कुछ रोचकता के दर्शन होते हैं।

८–साडनी सवार

अन्तिम काल्पनिक अभिनृष्टि है 'सांडनी-सवार का सन्देश।' तानाजी छुट्टी लेकर अपने गाँव गए हुए हैं। उनके लड़के का विवाह है। बारात चलने की तैयारी हो रही है कि इतने में शिवाजी का संदेश लेकर एक साडनी सवार आता है। शिवाजी की आज्ञा की वे उपेक्षा नहीं कर सके और विवाह को स्थगित करके तुरन्त ही शिवाजी के पास पहुँचे। शिवाजी ने उन्हें सिंहगढ़ विजय करने की आज्ञा दी।[4] इस काल्पनिक सृष्टि में उपन्यासकार ने तानाजी की चारित्रिक विशेषता के दर्शन कराये हैं। तानाजी की शिवाजी के प्रति अनन्तिम निष्ठा की पराकाष्ठा का परिचय लेखक ने इस घटना में दिया है। तानाजी शिवाजी के आदेश पर अपने पुत्र के विवाह को स्थगित करके तुरन्त शिवाजी के पास चले आते हैं और सिंहगढ़ विजय का बीड़ा ग्रहण करते हैं। इस बात से तानाजी की राष्ट्रनिष्ठा के भी दर्शन होते हैं।

इस प्रकार बहुत थोड़ी सी घटनाओं की काल्पनिक अभिनृष्टि उपन्यासकार ने की है।

---

१. सह्याद्रि की चट्टानें पृ० ८६-६४। २ वही–पृष्ठ ११२-११८।
३. वही–पृष्ठ १२०–१२६। ४. वही–पृष्ठ १४६–१४८।

उपन्यास का घटना–विश्लेषण

१– पूर्ण ऐतिहासिक

१/2 शाहजी और जीजाबाई का विवाह।

२/10 शिवाजी द्वारा बीजापुर का खजाना लूटना।

३/11 शिवाजी का कल्याण पर चढ़ाई करके मुल्लाअहमद को कैद करना और सोनदेव को सूबेदार बनाना।

४/12 आदिलशाह का घोरपड़े द्वारा शाह जी को निमन्त्रण दिलवाकर कैद करना।

५/14 शाहजी का बादशाह को शिवाजी के लिए कहना कि वह मुझ से भी बागी है।

६/15 शिवाजी का दूत को मुराद के पास शाहजी को छुटकारा दिलवाने के लिए भेजना, दूत का मुराद का शाहजी के नामकरण का रहस्य बताना, मुराद का शाह जी के छुटकारे का विश्वास दिलाना।

७/16 शिवाजी का चन्द्रराव मोरे को मार कर जावली विजय करना।

८/17 शिवाजी का जुन्नर लूटना।

९/18 शिवाजी का अफजल खाँ का वध करना।

१०/19 शिवाजी द्वारा बीजापुर प्रान्त लूटना, पन्हाला दुर्ग जीतना।

११/.1 शाइस्ता खाँ का शाह की सहायता से शिवाजी पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ना।

१२/22 शिवाजी का छिपकर शाइस्ता खाँ के महल म घुसना, उन पर आक्रमण तथा उस का निकलकर भाग जाना।

१३/23 औरंगजेब का शाइस्ता खाँ की हार पर खामना, शाहजादा मुअज्जम को दक्षिण की सूबेदारी देना, शाइस्ता खाँ को बंगाल भेज देना।

१४/24 शिवाजी द्वारा सूरत को लूटना।

१५/25 पुरन्दर के किलेदार मुरारजी बाजी पर दिलेर खाँ की चढ़ाई तथा बाजी प्रभु का मारा जाना।

१६/26 शिवाजी और जयसिंह की पुरन्दर की सन्धि।

१७/28 बीजापुरी सेना और मुगल सेना का दो बार युद्ध, मुगल सेना की हानि।

१८/30 अपने पुत्र के साथ शिवाजी का आगरा को प्रस्थान, मार्ग मे किसी बड़े आदमी द्वारा अपने स्वागत को न देख शिवाजी का भल्लाना।

१९/31 शिवाजी का औरंगजेब के समक्ष जाना, उचित सम्मान न देखकर क्रोध मे लाल होना।

२०/32 औरंगजेब का शिवाजी को कैद करना।

२१/34 शिवाजी का बीमार पड़ जाना।

२२/37 शिवाजी का मिठाई के टोकरो म बैठकर निकल भागना और पलग पर हीरोजी फर्जन्द को सुला देना।

२३/38 शिवाजी का मथुरा आना और साधु वेश मे प्रयाग, बनारस होते हुए दक्षिण पहुंचना।

२४/40 शिवाजी का सूरत को दूसरी बार लूटना।

२५/48 तानाजी का सिंहगढ विजय करना तथा मारा जाना, शिवाजी को सिंहगढ-विजय की सूचना मिलना और उनका कहना कि गढ आया पर सिंह गया।

२—इतिहास-सकेतित

१/8 शिवाजी को गड़ा हुआ धन मिलना, उससे शस्त्रास्त्र खरीदना।

२/20 शिवाजी और बीजापुर के बीच सन्धि, शाहजी का बीजापुर के दूत के रूप में शिवाजी के पास आना और शिवाजी के उत्थान से प्रसन्न हो आशीर्वाद देना।

३/42 जीजाबाई का शिवाजी से चौसर-खेल में हार के फलस्वरूप सिंहगढ दुर्ग को मांगना

४/45 तानाजी का सिंहगढ-विजय के लिए बीड़ा उठाना।

५/46 सिंहगढ विजय के लिए ताना जी को जगतसिंह का उदयभानु से अपनी पत्नी का उद्धार करने के लिए ताना जी को कहना तानाजी का जगतसिंह को अब्दुल्समद कौन है, बताने के लिए कहना।

३—कल्पित किन्तु इतिहास अविरोधी

१/3 शिवाजी का बीजापुर-दरबार में जाना तथा शाह को पिता-समान सलाम करना, शाह का प्रसन्न होकर शिवाजी की दूसरी शादी करना।

२/4 शिवाजी को उनकी उद्दण्डता पर जीजाबाई की मधुर ताडना।

३/6 फिरंगी से शिवाजी की शस्त्रास्त्र प्राप्त करने के लिए मुलाकात करना।

४/7 शिवाजी का अपने सरदारों को फिरंगी का जहाज लूटने का आदेश देना।

५/9 गड़े हुए धन से प्राप्त दस लाख रुपये की माला से फिरंगी को शस्त्रास्त्रों का मूल्य चुकाना।

६/13 आदिलशाह का शाहजी को अन्धे कुएँ में डाल देना।

७/29 आगरा-प्रस्थान से पूर्व शिवाजी का अपने साथियों की सभा बुलाना।

८/33 तानाजी का डच गुमाश्ता के रूप में शिवाजी के पास जेल में पहुँचना।

९/35 शिवाजी का घूस देकर पहरेदारों को प्रसन्न करना।

१०/36 तानाजी का हकीम बनकर शिवाजी के पास जाना।

११/39 शिवाजी का साधु के वेश में अपनी माता के चरण छूना।

१२/41 शिवाजी को औरंगजेब को जजिया न लगाने के लिए पत्र लिखना।

१३/43 शिवाजी का सिंहगढ जीतने वाले वीर को पान का बीड़ा उठाने को कहना परन्तु किसी का आगे न बढना, ताना जी का वहाँ पर न होना।

४. कल्पनातिशायी

१/1 शिवाजी को घायल ताना जी का मिलना।

२/5 हरिनाथ स्वामी का ताना जी को शस्त्रास्त्रों की शिक्षा देना।

३/27 शिवाजी का जयसिंह को एकान्त मे मिलना, उन्हें पिता के समान समझना और जयसिंह का शिवाजी को राजनीति समझाना।

४/44 ताना जी को बुलाने के लिए साँडनी सवार दौड़ाना, विवाह के लिए तैयार करने

पुत्र को छोड़ तानाजी का शिवाजी के पास आना।

५/47 *ताना का अपनी बहिन के अपहरणकर्त्ता को मारना।*

नोट–(घटना-संख्याओं के दो क्रम हैं (१) देवनागरी अंक अपने वर्ग की घटनाओं के क्रम-द्योतक हैं, (२) रोमन-अंक उपन्यास की सक्रम घटनाओं के द्योतक हैं।)

सह्याद्रि के घटना-विश्लेषण का रेखाचित्र
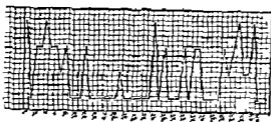
घटना-विश्लेषण के रेखाचित्र की व्याख्या

रेखाचित्र के अनुसार

पूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ	२६ = ५४.१६%
इतिहास संकेतित घटनाएँ	५ = १०.४२%
कल्पित किन्तु इतिहास अविरोधी घटनाएँ	१२ = २५.००%
कल्पनातिशायी घटनाएँ	५ = १०.४२%
कुल घटनाएँ	४८ = १००.००%

उपन्यास में इतिहास प्रस्तुत करने वाले तत्व = ५४.१६% + १०.४२% = ६४.५८%

उपन्यास में रमणीयता प्रस्तुत करने वाले तत्व = २५.००% + १०.४२% = ३५.४२%

= १००.००%

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उपन्यास को रोचक बनाने वाला अथवा रमणीयता लाने वाला अंश कठिनाई से ३५.४२% है। अतः रस-दृष्टि से यह उपन्यास असफल है। सूत्ररूप में कहा जा सकता है कि यह उपन्यास रमणीयता कम और इतिहास अधिक देता है। अस्तु 'सह्याद्रि की चट्टानें' *उपन्यास नीरस है।*

उपन्यास का पात्र-विश्लेषण

१–पूर्ण ऐतिहासिक

१/1 शिवाजी। २/2 ताना जी। ३/3 शाहजी भोंसले। ४/4 मालूजी भोंसले। ५/5 जादो राव। ६/6 मलिक अम्बर। ७/7 जीजाबाई। ८ 8 आदिलशाह। ९/9 दादाजी कोंडदेव। १०/10 मुरारजी पन्त। १ /11 पेसाजी कक। १२/12 बाजी प्रभु। १३/14

मुल्ला अहमद । १४/15 बाजी घोर पांडे । १५/16 रघुनाथ पंत । १६/17 मुराद । १७/18 चन्द्रराव मोरे । १८/19 औरंगजेब । १६/२० अफजल खाँ । २०/21 कृष्णजी भास्कर । २१/22 गोपीनाथ पंत । २२/23 सैयद बन्दा २३/24 जीवाजी मेहता । २४/25 शाइस्ता खाँ । २५/26 जसवन्तसिंह । २६/27 शाहजादा मुअज्जम । २७/28 मिर्जा राजा जयसिंह २८/29 मुरार बाजी । २६ 3- दिलेर खाँ । ३०/31 शम्भा जी । ३१/32 कुँवर रामसिंह ३२/33 सिद्दी फौलाद खाँ । ३३/34 जफर खाँ । ३४/३७ हीरोजी फर्जन्द । ३५/३८ उदयभानु ३६/ 0 सूर्याजी ।

२–इतिहास संकेतित—कोई पात्र नहीं ।

३–कल्पित किन्तु इतिहास अविरोधी

१/13 हरिनाथ स्वामी । २/35 माणिक । ३/३६ कनोरिन । ४/39 कमल कुमारी ।

४—कल्पनातिशायी—कोई पात्र नहीं ।

सह्याद्रि की चट्टानें के पात्र-विश्लेषण का रेखाचित्र
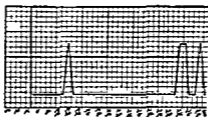
पात्र-विश्लेषण के रेखा-चित्र की व्याख्या

रेखाचित्र के अनुसार

पूर्ण ऐतिहासिक पात्र	३६=६०%
इतिहास-संकेतित पात्र	०=००%
कल्पित किन्तु इतिहास-अविरोधी पात्र	४=१०%
कल्पनातिशायी पात्र	०=००%
कुल पात्र	४०=१००·००%

उपन्यास मे इतिहास प्रस्तुत करने वाले तत्व	=६०·००%+००% =६०%
उपन्यास मे रमणीयता प्रस्तुत करने वाले तत्व	=१०·००%+००%=१०%
	=१००·००%

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उपन्यास के ६०% पात्र इतिहास का विवरण प्रस्तुत करने मे सलग्न हैं । केवल १०% पात्र ऐसे हैं जिनकी कल्पना लेखक ने की है और

इनके चरित्र-चित्रण का विकास करने का प्रयास किया है—फलत ये उपन्यास मे रमणीयता लाने वाले सिद्ध होते हैं—जो नगण्य हैं। घटनाओं से भी अधिक निराशा पात्रों से होती है। इस दृष्टि से भी उपन्यास इतिवृत्तमात्र प्रस्तुत करने वाला हो गया है। अत उपन्यास नीरस है।

'सह्याद्रि की चट्टानें' की घटनाओं और पात्रों का अनुपात

घटनाओं मे ऐतिहासिक तत्व = ६४ ५८%

पात्रों म ऐतिहासिक तत्व = ९० ००%

कुल ऐतिहासिक तत्व = १५४ ५८% – २ = ७७ २९%

घटनाओं म रमणीयता तत्व = ३५ ४२%

पात्रों मे रमणीयता तत्व = १०·००%

कुल रमणीयता तत्व = ४५·४२% ÷ २ = २२ ७१%

'सह्याद्रि की चट्टानें' मे इतिवृत्तात्मक प्रस्तुत करने वाले अश = ७७ २९%

'सह्याद्रि की चट्टानें' मे रमणीयता प्रस्तुत करने वाले अश = २२ ७१%

कुल अंश = १००·००%

सिद्ध हुआ कि उपन्यास रस-दृष्टि से नितान्त असफल है, इतिवृत्तमात्र प्रस्तुत करता है।

लेखक का उद्देश्य

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का यह उपन्यास शिवाजी-कालीन मराठा इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। वस्तुत "शिवाजी को यदि मराठा इतिहास से निकाल दिया जाए तो महाराष्ट्र का गौरव सूना हो जाएगा, उसकी आभा फीकी पड़ जाएगी। शिवाजी महाराष्ट्र के ही नहीं अपितु विश्व इतिहास के उन महान पुरुषों मे से हैं जिन्होंने अपनी चरित्र-शक्ति से, त्याग से, अलौकिक बुद्धि-कौशल से इतिहास की स्रोतस्विनी को एक नया मोड़ दिया है। छत्रपति शिवाजी ने अपने चरित्र-निर्माण के साथ ही साथ भारतीय आदर्शों के अनुकूल जिस शक्ति-शक्ति का निर्माण किया था वह उन्हें महापुरुष की संज्ञा से विभूषित करती है।'[1]

इसी महापुरुष की गाथा सुनाकर, उनके क्रियाकलापों के चित्रों को अपनी लेखनी की तूलिका से नव नवल रगों से सजाकर, उपन्यासकार श्री चतुरसेन न केवल भारतीय

---

१ डा॰ रामकुमार वर्मा . शिवाजी नाटक की भूमिका, पृ॰ १।

मानव को ही नहीं अपितु विश्व मानव को एक सदेश देते हैं कि अपने सांस्कृतिक और आदर्शों के प्रति मानव के हृदय में गौरव और अभिमान के स्वर गूंजने चाहिए। इसी प्रकार के महामानवों के चरित्र की, जीवन की, क्रियाकलापों आदि की सामग्री मानव के अध्ययन और मनन की वस्तु होनी चाहिए। लेखक के उद्देश्य का वर्गीकरण हम निम्न प्रकार कर सकते हैं।

१–राष्ट्र निष्ठा का जागरण

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' के आदर्श को शिवाजी के जीवन में प्रतिष्ठित करते हुए आचार्य चतुरसेन शास्त्री राष्ट्र निष्ठा सदेश देना चाहते हैं। शिवाजी ने राष्ट्र के लिए अपना तन, मन, धन अर्पण किया। राष्ट्र के लिए उन्होंने अपने प्राणों की आहुति तक देने की लालसा सदा अपने मन में रखी और यही कारण था कि शिवाजी राष्ट्र के लिए भयकर से भयकर आपत्ति मोल ले लेते थे। उन्होंने सदा अपने से ऊपर अपने राष्ट्र को रखा। वे चाहते तो मुगलों के यहाँ ऊँचे से ऊँचा पद प्राप्त कर सकते थे सारा जीवन आराम और ऐश्वर्य के साथ काट सकते थे पर अपनी पवित्र जन्मभूमि पर किसी के अपवित्र चरणों को न पड़ने देने की अन्तर की आग ने उन्हें शान्ति से नहीं बैठने दिया। राष्ट्र के लिए उन्होंने कितने कष्ट झेले, उनका जीवन कितना संघर्षरत रहा, इसका अनुमान केवल इसी बात से लगाया जा सकता है कि राज्याभिषेक के बाद केवल ६ वर्षों तक वे गद्दी पर बैठे। १६२७ में उनका जन्म हुआ और १६७४ में वे गद्दी पर बैठे, १६८० में उनका स्वर्गवास हुआ। ५३ वर्षों के जीवन में से ४७ वर्षों तक वे गिरि-श्रेणियों की धूल छानते फिरे, अपने राष्ट्रवासियों को संगठित करते फिरे, संघ शक्ति का निर्माण करते फिरे।

२–राष्ट्र विरोधी तत्त्वों का प्रकाशन

उपन्यास के प्रारम्भ में ही उपन्यासकार ने राष्ट्र-शत्रुओं की गतिविधियों का आभास दिया है। तानाजी को मूर्छित करके पाँच सौ यवन सैनिक उनकी बहन का अपहरण करके ले गये। "महाराज ने होंठ चबाया। एक बार उन्होंने अपने सिंह के समान नेत्रों से उस चोर लालटेन के प्रकाश में चारों ओर देखा–टूटी तलवार, बर्छा, दो चार लाशें और रक्त की धार।"[1] इसके द्वारा हमें तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का आभास होता है। शिवाजी का होंठ चबाना, इस अमानुषिक पाप के प्रति उनके हृदय की ज्वाला का प्रदर्शन करता है। इस अध्याय की परिकल्पना का लेखक का उद्देश्य यही है कि यवनों की राक्षसी-वृत्ति और शिवाजी के प्रतिरोध की झाँकी प्रस्तुत की जाए। उपन्यास में प्रवेश करते ही पाठक इस प्रभाव से आवृत होकर आगे बढ़ता है।

"पूना जिले का यह पश्चिमी भाग जो सह्याद्रि पर्वत शृंखला की तलहटी में घने जंगलों के किनारे किनारे दूर तक चला गया था, मावल कहलाता था। यहाँ मावले किसान रहते थे जो बड़े परिश्रमी और साहसी थे। शिवाजी ने उन्हीं मावले तरुणों को चुनकर एक छोटी सी टोली बनाई और उनके साथ सह्याद्रि की चोटियों, घाटियों और नदी किनारे जंगलों में चक्कर काटना आरम्भ किया, जिससे उनका दैनिक जीवन कठोर और

१. सह्याद्रि की चट्टान—पृ० ३।

सहिष्णु हो गया। धर्म-भावना के साथ चरित्र की दृढ़ता ने उनमें स्वातंत्र्य प्रेम की स्थापना की, और उनके मन में विदेशियों के हाथ से महाराष्ट्र का उद्धार करने की भावना पनपती गई।'[1] इन्हीं सब बातों की पुष्टि लेखक ने अपनी कृति में की है।

किशोरावस्था में ही उनके मन में राष्ट्र प्रेम था। स्वातंत्र्य की भावना थी।' शाहजी की जागीर में कोई किला न था और शिवाजी के मन में यह अभिलाषा थी कि कोई किला उन्हें हथियाना चाहिए। बस उन्होंने साथियों को अपने अभिप्राय से अवगत किया और उन्होंने उसका समर्थन किया। अब वे इसी धुन में रहने लगे कि कैसे कोई किला उनके हाथ लगे।'[2]

३–शिवाजी के राष्ट्र प्रेम के पोषक और विरोधी तत्व

अपनी अवस्था और सामर्थ्य के अनुसार शिवाजी के चरण राष्ट्र-स्वातंत्र्य के पथ पर पड चुके थे। शिवाजी, माता जीजाबाई से आशीर्वाद मांगते हैं, 'माता आशीर्वाद दो कि मरहठों की वीरता को दासता की कालिख से मुक्त करने में तुम्हारा शिवा समर्थ होगा।'[3]

इसी राष्ट्र प्रेम के पीछे शिवाजी ने अपने पिताजी की भी एक न सुनी, उनकी आज्ञाओं की अवहेलना की। 'शाहजी ने शिवाजी को भी खत लिखा कि ऐसी कार्यवाहियों से बाज आए। पर शिवाजी के हृदय में जो आग दहक रही थी, उसे वे क्या जानते थे।'[4] राष्ट्र-स्वातंत्र्य की इसी आग के तेज को दिखाना लेखक का उद्देश्य है। इसी आग के के कारण शिवाजी को अपने पिता जी की बातें अच्छी नहीं लगती थी। 'दरबार में अपने पिता को शाह के सामने दासता देख उनका जी दुख से भर गया। वे खिन्न रहने लगे।'[5]

इस सब का स्पष्ट अर्थ है कि शिवाजी की राष्ट्र के प्रति इतनी निष्ठा थी कि वे अपने पिता की भी अवहेलना कर सकते थे।

४–राष्ट्रीयता का प्रशस्त स्वरूप प्रस्तुत करना

शिवाजी की राष्ट्रनिष्ठा श्लाघ्य है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। परन्तु उन्होंने सदा केवल 'महाराष्ट्र' की बात कही। इससे उनकी राष्ट्रीयता की भावना में कहीं धब्बा तो नहीं दिखाई पड़ता परन्तु वह राष्ट्रीयता संकीर्ण थी, संकुचित धर्म का प्रतिपादन करने वाली थी और अत्युक्ति नहीं होगी यदि कहा जाए कि शिवाजी की राष्ट्रीयता प्रान्तीयता की भावना से आवृत थी।

पर साहित्य में संकीर्णता कहाँ? साहित्य यदि संकीर्ण प्रवृत्ति का पोषण हो तो वह चिरस्थायी नहीं रहेगा, उसमें तो सहितता होती है, संगठन का स्वरूप होता है, वह तो राष्ट्र के विच्छिन्न सूत्रों को एक करता है। इसी बात की पुष्टि के लिए आचार्य चतुरसेन ने गुरु और शिष्य के कथोपन की कल्पना की है।

सन्यासी हरिनाथ स्वामी अपने शिष्य तानाजी को अन्तिम उपदेश देता है, 'जाओ पुत्र, महाराज की सेवा में रहो, विजयी बनो। भारत के दुर्भाग्य को नष्ट करो।

---

१. सह्याद्रि की चट्टानें—पृ० १२। २. वही पृ० १५। ३ वही पृ० १८।
४. वही पृ० १९। ५. वही पृ० १४।

नवीन जीवन, नवीन युग का प्रवर्तन करो। धर्म, नीति, मर्यादा और सामाजिक स्वातन्त्र्य के लिये प्राण और शरीर एवं पदार्थों का विसर्जन करो।'[1]

यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि हरिनाथ स्वामी ने कहा है कि *भारत के दुर्भाग्य को नष्ट करो। यहाँ भारत के लेखक का विशिष्ट उद्देश्य है। शिवाजी महाराष्ट्र* की बात कहते थे, भारत की नहीं। लेखक भारत की बात कहता है। प्रस्तुत उपन्यास १९४७ के बाद की अभिसृष्टि है। लेखक ने इस उपन्यास की भूमिका जैसी किसी बात के लिए एक शब्द भी नहीं लिखा। हाँ उनकी अन्तर्ज्वाला के दर्शन 'सोमनाथ' उपन्यास के आधार में प्रकट होते हैं। इसी आधार के फलस्वरूप उनकी इसी भावना के दर्शन यत्र, तत्र सर्वत्र होते हैं। उनकी जिस अन्तर्ज्वाला के दर्शन हम 'सोमनाथ' में मिलते हैं, उसी के 'आलमगीर' में उसी के 'पूर्णाहुति में और उन्हीं के 'सह्याद्रि की चट्टानें' में मिलते हैं। वे लिखते हैं—इसी समय विभाजन का विभ्राट मेरी आँखों के समाने आया। दिल्ली में *रहकर दिल्ली और लाहौर के सारे लाल काले बादल मैंने अपनी आँखों से देखे। और विश्व* के मानव इतिहास का सबसे बड़ा महाभिनिष्क्रमण देखा। " कट्टरता के अभियोग से मैं हिन्दुओं को मुक्त नहीं कर सकता। परन्तु मैं उन्हें खूनी प्रवृत्ति का तो नहीं स्वीकार करता। जिन्ना का 'डाइरेक्ट एक्शन' और उसका सच्चा स्वरूप देख मैं समझ गया कि चाहे बीसवीं शताब्दी का सभ्य काल हो चाहे चौदहवीं शताब्दी का जंगली पठानों, खिलजियों और गुलामों का अन्ध युग। मुस्लिम भावना तो खून में तर है और रहेगी। जब तक तब इसका जड़मूल से विनाश न हो जाएगा—इनकी खून की प्यास बुझेगी नहीं। यह सर्वथा मानव विरोधी भावना है, जो साम्प्रदायिक रूप में मुस्लिम समाज में दृढ़बद्ध मूल है।'' खून खराबी, लूटपाट, अत्याचार और बलात्कार के जो दृश्य, घटनाएँ, मेरे कानों और आँखों को आक्रान्त करने लगी, उन सबको मैं अपने इस उपन्यास (सोमनाथ) में—ग्यारहवीं शताब्दी के इस वर्बर आक्रान्त के उत्पात में आरोपित करता चला गया।'[2]

२–मुस्लिम विरोधी

अभी आचार्य चतुरसेन की वह अग्नि शान्त नहीं हुई थी कि चीन के मन में कलुष उत्पन्न हुआ और महाभिनिष्क्रमण का वीभत्स दृश्य एक बार फिर लेखक के नेत्रों के समक्ष चक्कर काट गया। चीन ने मैकमहोन रेखा को पार किया, तिब्बती नारियों की लाज चीनी सैनिकों ने लूटी। लेखक का घाव जैसे फिर हरा हो गया और उसने इस उपन्यास की रचना कर डाली। उसे लगा जैसे मेरी माँ को आज फिर एक और विदेशी ग्रसने के लिये चला आ रहा है, वह भी उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालना चाहता है। इसका प्रतिरोध होना चाहिए और प्रतिरोध होगा राष्ट्रनिष्ठा से, संघ शक्ति से। 'संघे शक्ति कलोयुगे' का *पहला नायक था शिवाजी। अस्तु-सह्याद्रि की चट्टानों के बेटे शिवाजी की अवतारणा हुई* यही कारण है कि उनके अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास यवनों के द्वारा बहाए हुये खून से लथपथ हैं, अमानुषिक व्यापारों से ओतप्रोत हैं। अस्तु

प्रस्तुत उपन्यास में भी लेखक के नेत्रों के समक्ष भारत की दुर्दशा के चित्र घूम

१. सह्याद्रि की चट्टानें २४। २. आचार्य चतुरसेन-सोमनाथ का आधार, पृ ४।
३ वही पृ. ७।

रहे हैं। इसीलिये उन्होंने महाराष्ट्र शब्द का प्रयोग न कर 'भारत' का प्रयोग किया है। और इसी विष वृक्ष को जड़ से उखाड़ कर फेंक देने के लिये उनके शिवाजी ने जन्म लिया है। इन्हीं शिवाजी के दर्शनों से वे अपने पाठकों को कृतार्थ करना चाहते हैं।

इनके उपन्यासों में मुस्लिम विरोध प्रचंड रूप से उपस्थित है। परन्तु यह विरोध नैतिकता की पृष्ठभूमि पर आधारित है, जातिवाद या साम्प्रदायिकता की नहीं। कलाकार यदि किसी वाद के फेर में पड़कर रचना करेगा तो वह साहित्य के धर्म से गिर जाएगा। साहित्य का भी तो महान धर्म है—मानव कल्याण। लेखक की मुस्लिम विरोधी भावना के पीछे मुसलमानों का राक्षसत्व है, उनका आततायीपन है। मुसलमान लेखक का शत्रु नहीं, लेखक का शत्रु है आततायी मुसलमान। और चतुरसेन की महान कलाकारिता ने तो महमूद गजनवी जैसे पिशाच को भी गले से लगा लिया। उस भेड़िये को पालतू बना लिया। यही है उसका उदार दृष्टिकोण और चमत्कारिक प्रयोग। पर दुर्दान्त को पशु बनाने का अर्थ यह नहीं कि उसके आततायीपन को प्रकट न किया जाए, उससे घृणा न की जाए। घृणा की वस्तु तो पैशाचिक वृत्ति है, मुसलमान या हिन्दू नहीं।

और इसी आततायीपन के विरुद्ध सर में कफन बांधकर लड़ मरने को तैयार हो जाने की प्रेरणा लेखक अपने शिवाजी द्वारा देता है।

६—काल्पनिक घटनाओं से भी अधिक रोमांचकारी घटनाओं का चयन

इतिहास स्वयं में साहित्य ही है। दोनों में मौलिक अन्तर नहीं है, केवल दृष्टिकोण का अथवा शैली का अन्तर है। और इतिहास में तो कहीं-कहीं साहित्य से भी अधिक रोमांच पाया जाता है, इतिहास की अनेक घटनाएँ साहित्य से अधिक रोमांचकारी होती हैं। ऐसी घटनाओं के चयन से साहित्यकार को दो लाभ होते हैं—एक तो वह इतिहास के प्रति निष्ठावान सिद्ध होता है और दूसरे उसकी कृति में रोचकता, रमणीयता का मिश्रण हो जाता है। इसीलिए ऐतिहासिक उपन्यासकार ऐसी घटनाओं की खोज में विशेष रूप से रहता है। आचार्य चतुरसेन ने अपने इस उपन्यास में इसी प्रकार की रोंगटे खड़े कर देने वाली अनेक घटनाओं का चित्रण किया है। अनुमान लगाया जा सकता है कि औरंगजेब जैसे प्रतापी बादशाह के दरबार और राजधानी में जाकर जीवित लौट आना कितने बड़े साहस और कौशल का कार्य है, अफजल खाँ जैसे दैत्याकार सैनिक की भुजाओं में फँसकर निकल आना तथा उसे मार डालना, शाइस्ताखाँ जैसे महान सेनापति के अन्तःपुर में घुसकर उसे घायल करके सुरक्षित लौट आना, बीजापुरी सेना से घिरे हुए पन्हाला दुर्ग से भयंकर रात्रि में निकल भागना आदि घटनाएँ काल्पनिक घटनाओं से भी अधिक रोमांचकारी होने का प्रमाण हैं। ऐसे स्थानों को प्रस्थान करने से पूर्व उन्हें यह सम्भावना हो जाती थी कि मैं मारा भी जा सकता हूँ। अफजलखाँ से मिलने जाने पूर्व इन्होंने कहा, "यदि मैं मार डाला जाऊँ तो नेताजी पालकर पेशवा की हैसियत से राज्य का भार समालेंगे। पुत्र शम्भाजी राज्य का उत्तराधिकारी रहेगा।"[1] इन सब घटनाओं से उनके राष्ट्र प्रेम की पुष्टि होती है।

१. सह्याद्रि की चट्टानें; पृ. ६६।

मिर्जा राजा जयसिंह से पुरन्दर की सन्धि के समय शिवाजी कहते हैं, "हे महाराजाओं के महाराज, यदि आपकी तलवार मे पानी है और आपके घोड़े मे दम है, तो मेरे साथ कन्धा भिड़ाकर देश और धर्म के शत्रु का विध्वंस कीजिए।"[1] प्रस्तुत उपन्यास मे बार बार हमें लेखक के वे ही स्वर गूँजते सुन पड़ते हैं—कि देश से, इस पवित्र भारत भूमि से इन आततायियों को निकालो, माँ बहनों की लाज पर डाका डालने वाले इन बर्बर *राक्षसो को समूल उखाड़ फेंको। हर पाठक शिवाजी बन जाए, हर भारतीय के अन्दर अपने* देश के प्रति ऐसी अग्नि हो जो इन अमानवीय तत्वो को भस्मीभूत कर दे।

७—शिवाजी की अप्रतिम बुद्धिमत्ता के दर्शन

शिवाजी की गौरवगाथा ही लेखक कहना चाहता है। डा० रामकुमार वर्मा ने अपने शिवाजी नाटक की भूमिका म लिखा है, 'विषम परिस्थितियो म भी इनके हृदय में आशावाद का ऐसा अकुर निकले जो आगे चलकर आत्म-विश्वास और कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करने की क्षमता म पल्लवित और पुष्पित हो। समाज म चरित्र-गठन की आवश्यकता सर्व प्रथम है।"[2] डा० वर्मा विद्यार्थियो के लिए कहते है कि वे शिवाजी के चरित्र से सीखें कि विषम से विषम परिस्थिति म भी पड़न पर निराशा से ग्रसित न हो। उन्होंने शिवाजी के जीवन से यदि यह चीज सीख ली तो व भावी जीवन म कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने में समर्थ होंगे और यह उनके जीवन की सफलता का सबसे बड़ा सम्बल होगा।

टीक ऐसी ही बात कहन का उद्देश्य आचार्य चतुरसन का है। उन्होन इस उपन्यास मे *दिखाया है कि शिवाजी का काबू मे लाने के लिए आदिलशाह ने शाहजी का कैद कर लिया। "शिवाजी यदि अब भी अपनी हरकतें बन्द न करेगा तो ··· शाह जी को जिन्दा* दफन कर दिया जाएगा।"

"यह समाचार शिवाजी को मिला तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। एक तरफ पिता के प्राणों की रक्षा थी और दूसरी तरफ स्वतन्त्रता की बरसों की कमाई थी जिस पर अब फन आने वाला था।"

"परन्तु शिवाजी की बुद्धि कठिनाई मे बहुत काम करती थी।"[3]

और शिवाजी ने ऐसा मार्ग निकाला कि पिताजी को छुटकारा भी दिला दिया और कैद करने वाले आदिलशाह को मन्द मारकर हार भी माननी पड़ी।

हर मनुष्य यदि इतना दृढ चरित्र हा जाए ता उसका मार्ग निष्कटक हो जाए। और चरित्र की यह दृढता समाज, राष्ट्र, विश्व और मानव मात्र के लिए कल्याणकारी हो सकती है।

८—हिन्दू युद्ध नीति की समीक्षा

और अन्त मे लेखक के दृष्टिकोण के प्रति एक बात कहनी है—लेखक यह मन*वाने को लाचार करता है कि महाभारत काल से लेकर शिवाजी के समय तक हिन्दुओं की* युद्धनीति बड़ी ही दोषपूर्ण रही थी। वे केवल युद्ध म मरना-कटना ही अपना धर्म समझते

१. सह्याद्रि की चट्टानें . पृ ६०।

२ डा० रामकुमार वर्मा शिवाजी नाटक की भूमिका, पृ. १।

३. सह्याद्रि की चट्टानें : पृ ३६।

थे—युद्ध जीतना अपना धर्म नहीं समझते थे, और फल यह हुआ कि आक्रान्ता हिन्दुओं को बराबर हराता रहा। केवल शिवाजी ही ऐसे प्रथम व्यक्ति थे जिनकी रणनीति अत्यन्त सफल सिद्ध हुई। उन्होंने युद्ध जीतना अपना लक्ष्य बनाया और इसके लिए उन्होंने हर चाल चली। आदर्शवादी तराजू पर तौलने वाले उन्हें चालाक कह सकते हैं परन्तु वे प्रकाण्ड राजनीतिज्ञ थे। 'जैसे को तैसा' उनका मूल मंत्र था। मुगलों की चालाकी का उत्तर यदि वे चालाकी से न देते तो अपने जीवन के शैशव में ही समाप्त हो गए होते। औरंगजेब ने उन्हें फुसलाकर आगरा बुलाया और कैद कर लिया। यदि वे अपनी चातुरी से न भाग निकलते तो वहीं उनके जीवन की इति हो गई थी। यदि अफ्जल खाँ के चरित्र पर उनकी चाणक्य दृष्टि न पहुँचती तो वहीं उनका प्राणान्त हो गया होता। यदि वे बरात के बाजे वालों के साथ मिलकर पूना नगर में प्रवेश न करते तो शाइस्ताखाँ घबराकर वापस न भाग जाता। कितना रण-पाण्डित्य था उनमें कितने महान राजनीतिज्ञ थे वे, इसका अनुमान केवल इसी बात से लगाया जा सकता है कि अपने समय के विश्व के सबसे अधिक शक्तिशाली मुगल राज्य के सम्राट औरंगजेब को २५ वर्षों तक घोड़े की पीठ से उतरना नसीब नहीं हुआ और कहाँ शिवाजी के कुपढ मुट्ठी भर मावले वीर और कहाँ शस्त्रास्त्र-सज्जित मुगलों की लाखों की सैनिक-संख्या। निश्चित ही शिवाजी विश्व इतिहास में बेजोड़ राजनीतिज्ञ और रण-पंडित सिद्ध हुए हैं—'सच पूछा जाए तो महाभारत संग्राम से लेकर मुगल साम्राज्य के पतन काल तक हिन्दू रणनीति में सेनापतित्व का सर्वथा अभाव रहा।...... परन्तु हिन्दू योद्धाओं के इतिहास में शिवाजी ने ही सबसे प्रथम रण-चातुर्य प्रकट किया। वे कट मरने या युद्ध-जय के लिए नहीं लड़ते थे, उनका उद्देश्य राज्य-वर्द्धन था। युद्ध उनका एक साधन था। वे युक्ति, शौर्य, साहस, दूर-दर्शता और रण-पांडित्य सभी का उपयोग करते थे। इस प्रकार हिन्दुओं में शिवाजी महाभारत संग्राम के बाद पहले ही सेनापति थे।"[1]

१—विशिष्ट दृष्टिकोण

इतिहास-निष्ठ साहित्यकार का उद्देश्य इतिहास की घटनाओं और व्यक्तियों के प्रति एक निजी दृष्टिकोण स्थापित करना भी होता है। प्रस्तुत उपन्यास में भी लेखक ने एक मौलिक दृष्टिकोण उपस्थित किया है जिसके अनुसार शिवाजी भारतीय राजनीति की शृंखला में अत्यन्त महत्वपूर्ण, एक प्रकार से सर्वाधिक गौरवशाली स्थान के अधिकारी बन जाते हैं। और लेखक अपनी बात मनवाने में सफल उतरा। यह लेखक का इतिहास के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण है।

निष्कर्ष

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का यह उपन्यास पूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें आचार्य श्री ने प्रारम्भ से अन्त तक इतिहास का पल्ला पकड़े रखा है। यहाँ उन्होंने इतिहास के स्थूल तथ्यों का अधिक आश्रय लिया है। पहले तीन आलोच्य उपन्यासों की भाँति इतिहास के सूक्ष्म तत्वों का उद्घाटन करने का आचार्य श्री ने इस उपन्यास में प्रयास नहीं

१ सह्याद्रि की चट्टानें पृ. ७१-७२।

किया है, फलत उनकी इतिहास रस की सरिता यहाँ तक आते आते सूख गई और वे कोई रोचक कृति न देकर इतिहास की रूपरेखा मात्र प्रस्तुत करने में सफल हो सके हैं। इसका एक विशेष कारण यह भी है कि इस काल का इतिहास निकटवर्ती है, सुपरिचित है अत यहाँ कल्पना के क्षेत्र विस्तार की गुंजाइश नहीं के बराबर है। यहाँ आकर यह बात स्पष्ट हो गई कि इतिहास के स्थूल तथ्यों पर चलकर आचार्य श्री ने अपनी इतिहास रस की स्रोतस्विनी को सुखा डाला। कदाचित् यही कारण है कि यह कृति उतना कुछ न दे सकी जितना पहली कृतियों ने दे दिया।

वैसे नारी शक्ति के प्राबल्य से यह उपन्यास भी नहीं बच सका है। जीजाबाई की जरा सी इच्छा को शिवाजी नहीं टाल सके और उन्होंने अपने बाल-सखा परमवीर ताना जी के जीवन के मूल्य पर भी उनकी इच्छा पूर्ण की। नारी प्रेयसी के रूप में तो इस उपन्यास में नहीं है परन्तु माता के रूप में नारी का सशक्त रूप अवश्य प्रकट हुआ है। अस्तु, नारी प्राबल्य के दर्शन तो इस उपन्यास में अवश्य दीखते हैं परन्तु यहाँ आचार्य श्री कल्पना का आंचल तजकर इतिहास की महफिल में जा बैठे हैं फलत यह उपन्यास इतिहास रस का उद्रेक करने में असफल रहा है और इतिवृत्त प्रस्तुत करने में अधिक सतर्क रहा है, चतुरसेन का इतिहासकार उनके साहित्यकार पर छा गया है।

इस अध्याय पर दृष्टिपात करने से पता चला कि इसका कथानक श्रेष्ठ गुणों से विभूषित नहीं है, कथानक का समुचित विकास नहीं हो पाया है पात्र एवं दशकाल चित्रण का पक्ष भी नितान्त निर्बल रहा है।

६

●●○

आलमगीर

उपन्यास का संक्षिप्त कथानक

७ जुलाई १६५६ को दिल्ली में खूब चहल-पहल थी। शाहजहाँ प्रथम बार तख्ते ताऊस पर बैठकर दरबार करने वाले थे। सम्राट अपने सिंहासन पर बैठे तो सर्वप्रथम दारा ने झुक कर आदाब बजाया। मीरजुमला गोलकुण्डा में प्रधान बादशाह का वजीर था। इसके स्वागत के लिए आज दरबार की धूमधाम थी। शाहजहाँ उसे फारस भेजना चाहता था जबकि मीरजुमला दक्षिण में औरंगजेब के निकट रहना चाहता था अतः मीरजुमला ने, गोलकुण्डा, बीजापुर, जंजीबार, सीलोन जिनमें असंख्य हीरे जवाहरात भरे पड़े हैं जीतने की राय शाहजहाँ को दी।

दरबार की उपर्युक्त घटना से २६ वर्ष पहले १६३० के बैसाख मास में ईरानी घोड़ों का एक सौदागर गोलकुण्डा कुछ अच्छी नसल के घोड़े बेचने के लिए लाया था। उसी के साथ एक ईरानी नवयुवक नौकर था जिसका नाम मुहम्मद सैयद था। इस नवयुवक ने गोलकुण्डा में रहकर खूब धन कमाया और ख्याति प्राप्त की जिससे वह गोलकुण्डा का प्रधान मन्त्री बना दिया गया। शाह गोलकुण्डा की बेगम का मीरजुमला से प्रेम था जिसको शाह सहन न कर सका और उसकी जान का दुश्मन हो गया, इसलिए मीरजुमला रातों रात वहाँ से भाग गया और उसने गोलकुण्डा राज्य को समाप्त करने की ठान ली।

१८ वर्षीय औरंगजेब तब दक्षिण का हाकिम था। मीरजुमला ने उससे दोस्ती की और चुपचाप गोलकुण्डा पर आक्रमण के लिए कहा। वह किले पर शाह को गिरफ्तार करने गया पर कर न सका क्योंकि बादशाह शाहजहाँ ने उसे अपने सूबे पर वापस लौटने को कहा।

शाहजहाँ का सबसे बड़ा पुत्र दारा शिकोह था जो तब ४२ वर्ष का था। बादशाह ने काश्मीर, काबुल और लाहौर का इलाका दारा को जागीर में दे रखा था। दारा के सुलेमान शिकोह और सिपर शिकोह दो बेटे थे।

बादशाह की बड़ी लड़की जहाँआरा थी जो बड़ी बेगम के नाम से प्रसिद्ध थी। बादशाह का उससे प्रेम देखकर यह प्रसिद्ध हो गया था कि उसका बड़ी बेगम से अनुचित सम्बन्ध है। दरबार में इसका बड़ा रौब था।

शाहजहाँ का दूसरा बेटा शुजा था, तीसरा औरंगजेब और सबसे छोटा मुराद था। दूसरी बेटी रोशन आरा थी, यह औरंगजेब के पक्ष में थी।

अपनी काम-तृष्णा के परिशमन के लिए शाहजहाँ के हरम में सहस्रों स्त्रियाँ थीं। हर साल खिराज के तौर पर साम्राज्य भर के सूबेदारों को नियत तादाद में रंगमहल के लिए खूबसूरत लड़कियाँ भेजनी पड़ती थीं। इतने पर भी बादशाह के अवैध सम्बन्ध अनेक रईस

और उमरा की औरतों से थे, जो छिपे नहीं थे। अन्त में यही बादशाह के पतन और सर्वनाश का कारण हुआ।

बादशाह शाहजहाँ का साम्राज्य, गोलकुण्डा से गजनी कान्धार तक जो ढाई हजार मील से भी अधिक लम्बाई का प्रदेश है, फैला था।

शाइस्ताखाँ की स्त्री के साथ शाहजहाँ ने बलात्कार किया, वह इसी गम में मर गई। इसी कारण शाहजहाँ का साला शाइस्ताखाँ, शाहजहाँ का शत्रु हो गया। उधर जफर खाँ भी उसका शत्रु हो गया था। शाहजहाँ से बदला चुकाने के लिए ये दोनों औरंगजेब से जा मिले।

बादशाह होने पर शाहजहाँ ने हुगली के किले पर हमला करने को कासिम खाँ को भेजा। उसने ५००० पुर्तगालियों का परिवार सहित कैद कर लिया। उसमें एक जार्जियन लड़की थी जिससे दारा प्यार करने लगा था। दारा ने उसे हरम में रख लिया। वह उससे शादी करना चाहता था।

शाहजहाँ ने मीर जुमला को शाही तोपखाना और ५००० फौज देकर दक्खन पर हमला करने भेजा। साथ ही दारा की इच्छानुसार उसके सम्मुख कुछ शर्तें रखीं। एक तो वह औरंगजेब से नहीं मिल सकेगा और न ही इस चढ़ाई में औरंगजेब सम्मिलित होगा और औरंगजेब दौलताबाद से बाहर न जा सकेगा। दूसरी शर्त के अनुसार मीरजुमला के बाल-बच्चे आगरा में रहेंगे। उनका खर्च शाही खजाने से दिया जायेगा।

बीजापुर के सुलतान आदिलशाह के मरने पर उसके १८ वर्षीय पुत्र अली आदिलशाह को गद्दी पर बिठाया गया। इस पर दक्षिण के मुगल सूबेदार औरंगजेब ने बादशाह को सूचना दी कि वह मृत सुलतान का पुत्र नहीं है, वह एक अनाथ बालक है जिसे सुलतान ने हरम में रखकर पाला था। उसने बादशाह से बीजापुर पर आक्रमण करने की अनुमति माँगी। बादशाह ने अनुमति दे दी।

मीरजुमला ने औरंगजेब को साथ ले बीदर के दुर्ग का घेरा डाल दिया। वहाँ के किलेदार सिद्दी मरजान ने मुकाबला किया पर अन्त में केवल २७ दिनों में बीदर का दुर्ग औरंगजेब ने जीत लिया। फिर मीरजुमला ने कल्याणी का घेरा डाला। इस युद्ध में बूँदी के राव छत्रसाल हाड़ा ने वीरत्व प्रदर्शन किया। उधर बहलोल खाँ के बेटों ने राव रामसिंह सिसोदिया पर भारी दबाव डालकर उसे घायल कर दिया। अन्त में महावत खाँ ने आगे बढ़कर उसका उद्धार किया।

कल्याणी का औरंगजेब ने पतन किया। बीजापुर के सुलतान ने सन्धि की बात चलाई। आदिलशाह ने बीदर, कल्याणी और परेण्डा के किले और उसके आस पास का भू-भाग मुगलों को दे दिया। इसके अतिरिक्त क्षतिपूर्ति स्वरूप एक करोड़ रुपया भी दिया। शाहजहाँ ने औरंगजेब को लौट जाने की आज्ञा दी। औरंगजेब के लौटने पर मीरजुमला ने समूची मुगल-सेना-सहित कल्याणी दुर्ग में अपनी छावनी डाली।

इधर बादशाह बीमार हो गया। इससे दिल्ली का वातावरण क्षुब्ध हो गया। सबसे पहले सुलतान शुजा ने, जो बंगाल का सूबेदार था, अपने को बादशाह घोषित कर दिया और यह अफवाह फैलाई कि बादशाह को दारा ने जहर देकर मार दिया है। दक्षिण और गुजरात में औरंगजेब और मुराद ने भी यही किया।

१७ वी शताब्दी के साथ ही दक्षिण की राजनीति मे एक नई सत्ता मराठा शक्ति का उदय हुआ। उनके सरदार शिवाजी थे जो औरंगजेब के प्रतिद्वन्द्वी थे।

सन १६५८ म औरंगजेब मुगल तख्त का दावेदार बनने के लिए दक्षिण से चला और २४ वर्ष बाद सन् १६८२ मे वापस लौटा तो यहाँ उसे पूरे २५ वर्ष घोड़े की पीठ पर ही व्यतीत करने पड़े। इस बीच के २४ वर्षों मे दक्षिण म ५ सूबेदारो ने शासन किया।

जब १६५६ मे मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु होने पर औरंगजेब ने बीजापुर पर आक्रमण किया तो शिवाजी ने बीजापुर की सहायता की ठानी और दक्षिण पश्चिम म लूट-मार की। अभी इस घटना को एक वर्ष भी नहीं बीता था कि मुगल साम्राज्य के दक्षिणी सूबे के प्रधान नगर अहमदनगर की चार दिवारी तक इन मराठा सरदारो का उत्पात पहुँच गया। इस प्रकार मुगल तख्त की डगमगाहट के साथ-साथ ही दक्षिण मे शिवाजी के मराठा राज्य की नींव स्थापित हुई।

औरंगजेब ने मुराद को बादशाह बनाने का लालच देकर अपनी ओर कर लिया और उसे सूरत पर आक्रमण करने लिए कहा। अन्त मे मीरबाबा की सहायता से उसने सूरत जीता। इधर औरंगजेब ने गुजरात की ओर कूच बोल दिया, उधर मुराद माण्डो आ पहुँचा। दोनो भाइयो मे भेंट हुई। दोनों सेनाएँ धीरे-धीरे गुजरात की ओर बढ़ने लगी।

बगाल के सूबेदार शुजा ने बगाल से आगरा की ओर कूच किया। और इधर दारा के पुत्र सुलेमान शिकोह ने उसे रोकने के लिए कूच किया। बनारस मे ५ मील उत्तर मे बहादुर पुर के निकट एक पहाड़ी पर दोनो का युद्ध हुआ। इसमे शुजा की हार हुई।

बादशाह शाहजहाँ ने राजा जसवन्तसिंह और कासिम खाँ को औरंगजेब और मुराद को पीछे लौटने के लिए भेजा और यह भी कहा कि वे यदि न माने तो युद्ध किया जाए। अन्त म युद्ध हुआ जो धरमत के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध म औरंगजेब की जीत हुई। इस पराजय पर दारा ने स्वय कूच किया। १४ मई १६५८ को दारा फौज लेकर आगरा से चला।

उधर औरंगजेब की सेना उज्जैन और ग्वालियर उलांघकर चम्बल के उस ओर आ धमकी। यह समूह गढ का युद्ध था जिसम औरंगजेब जीत गया और दारा हारकर भाग गया और अपने परिवार सहित दिल्ली की ओर कूच किया।

औरंगजेब ने अपने पुत्र मुहम्मद सुलतान के द्वारा बादशाह शाहजहाँ को कैद कर लिया।

२९ मई १६५८ को उसने समूम गढ मे विजय लाभ की, पहली जून को आगरा पहुँचा, ५ जून को आगरा का किला घेरा, ८ जून का किला जीता, १० को शाहजहाँ को कैद किया, १३ तारीख को मथुरा के लिए रवाना हुआ, २५ तारीख को मुराद को बन्दी बनाया, २१ जुलाई को उसने अत्यन्त सादे ढग पर अपनी तख्त नशीनी की रस्म अदा की और आलमगीर गाजी के नाम से उसने अपने को मुगल साम्राज्य का बादशाह घोषित किया।

लाहौर मे दारा अपनी सेना की तैयारी कर रहा था। औरंगजेब ने सेना से उस ओर कूच किया।

सुलेमान शिकोह मे सुलह कर शुजा ने फिर से अपना सैन्य सगठन किया। २ जनवरी को औरंगजेब और शुजा के बीच खजुआ स्थान पर लड़ाई हुई। शुजा हारकर अपने लड़को और सैयद आलम के साथ रणक्षेत्र से भाग गया और इलाहाबाद पहुँचकर दम लिया। वहाँ से वह मुगेर पहुँचा तथा फिर सैन्य-सगठन किया। यहाँ मुहम्मद सुल्तान शुजा के साथ मिलन आया क्योंकि शुजा ने अपनी पुत्री गुलरुख बानू को ब्याह देने और तब

राजगद्दी प्राप्त करने मे उसकी मदद लेने को गुप्त वचन दिया था। लेकिन इस समय शुजा ने उसका विश्वास नहीं किया। और बाद मे वह फिर मीरजुमला के पास आ गया।

औरंगजेब ने इस समय मे ग्वालियर के किले मे मुहम्मद मुलतान को कैद कर लिया।

पहली मार्च को दारा और औरंगजेब मे दोराई की लड़ाई हुई जिसमे हार कर दारा सिन्ध की दक्षिणी सीमा की ओर गया और अपने दोस्त जीवन खाँ के पास चला गया। लेकिन उसने धोखा दिया और मीरवाना के साथ कर दिया। औरंगजेब ने उसे फटेहाल दिल्ली के बाजारों मे घुमवाया और उसे कत्ल करा दिया और लाश को शहर मे घुमवाने की आज्ञा दी।

शुजा ने औरंगजेब के डर से २० मई १६६० को बंगाल छोड दिया। वह अराकान पहुँचा और वहाँ के राजा के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। वहाँ के राजा ने उसे परिवार सहित कत्ल करा दिया।

और अन्त में उसने गढवाल के राजा पर आक्रमण किया जिसने सुलेमान शिकोह को आश्रय दिया था। गढवाल का राजा हार गया और सुलेमान शिकोह को कैद कर ग्वालियर के दुर्ग मे भेज दिया जहाँ उसे एक वर्ष तक पोस्त पिला-पिला कर मार डाला। मुराद को ग्वालियर के किले मे अहमदाबाद के सैयद से कत्ल करा दिया गया।

तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा
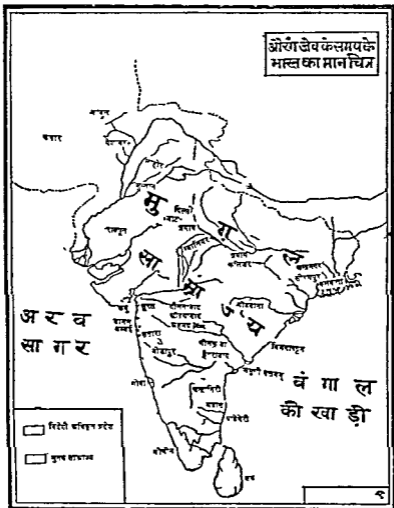
फरवरी सन् १६२८ ई० में शाहजहाँ, जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात मुगल साम्राज्य का शासक बना। वास्तव में शाहजहाँ के शासन-काल को मुगल साम्राज्य का चरमोत्कर्ष-काल कहा जा सकता है।[1] किन्तु उस काल के चरमोत्कर्ष ने उसके शासन में ही पतन के बीज बो दिए थे।[2] अकबर और जहाँगीर की अपेक्षा शाहजहाँ धार्मिक विचारों में अधिक कट्टर था।[3] बनारस के इलाके में उसने ७३ मन्दिर बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट करा दिए थे। यह औरंगजेब के शासन-काल में जाने वाली धर्मान्धता का पूर्वाभास कहा जाता है।[4] शाहजहाँ के शासन काल के पूर्वार्द्ध में उत्तरार्द्ध की अपेक्षा शान्ति और सुव्यवस्था अधिक थी। विवारणीय काल में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दशा संक्षेप में निम्न प्रकार थी।

(१) राजनीतिक दशा

"शाहजहाँ के शासन-काल में धार्मिक सहिष्णुता के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई थी वह औरंगजेब के समय में और भी बढ़ गई और साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई। ... हिन्दुओं के रहन-सहन तथा तथा धर्म पर आघात करने से हिन्दू जनता के हृदय में विद्रोह की आग धधकने लगी, यहाँ तक कि मुगलों के सच्चे सहायक राजपूतों ने भी उन्हें विपत्ति में कोई सहायता नहीं दी। हिन्दुओं ने इन प्रतिबन्धों का घोर विरोध किया और कई भयानक विद्रोह भी हुए जिनमें से गोकुल जाट सतनामियों और चूरामन जाट के विद्रोह उल्लेखनीय हैं। सिक्खों के गुरु तेगबहादुर का कत्ल करवा कर औरंगजेब ने सिक्खों से शत्रुता मोल ले ली। सिक्खों के अन्तिम गुरू गोविन्द सिंह ने इसका बदला लेने का निश्चय किया और उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाकर मुगलों से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। औरंगजेब का राजपूतों तथा मराठों के साथ युद्ध भी उसकी धार्मिक कट्टरता के कारण ही हुआ। उसके अत्याचारों ने हिन्दू और शिया मुसलमानों को राज्य का शत्रु बना दिया। ...... औरंगजेब के राज्यकाल में शासन अव्यवस्थित हो गया था और अनवरत युद्धों के कारण मुगल राज्य की जड़ें खोखली हो रही थीं।

मुगल पदाधिकारी एवं उच्चवर्गीय सामन्त आचरण भ्रष्ट हो गए। शाहजहाँ के राज्यकाल से ही अमीर वर्ग में चारित्रिक पतन के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे थे। ... — उनमें वीरता विद्वता एवं सदाचारिता के गुण न थे, वरन् वे मक्कार और घूसखोर हो गए थे।

शाही दरबार की दशा भी खराब हो गई थी। वह विलासप्रिय प्रपंची एवं चाटुकार व्यक्तियों का अड्डा बन गया था। बादशाह का दरबार सभ्यता का केन्द्र था, इसलिए अमीरों और सरदारों का वहाँ जमघट रहने से तरह-तरह की दलबन्दियाँ तथा षड्यन्त्र हुआ करते थे। बादशाहों में दरबारियों को दबाने की शक्ति न थी। इस कारण वह सारा अधिकार अपने हाथ में ले लेने की चेष्टा में थे। अधिकारों के लिये उनमें चील कौवों की तरह लड़ाई हुआ करती थी। इस प्रकार राज्य के सामन्तों में पारस्परिक कलह तथा

१. डा० ईश्वरी प्रसाद : भारत का इतिहास, भाग २, पृ० १११।
२. श्री बा० एन० लूनिया : भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, पृ० ३७२।
३. डा० ईश्वरी प्रसाद : भारत का इतिहास, भाग २, पृ० १११। ४. वही पृ० ४०६।

विद्वेष बढ गया था और इस प्रकार राज्य की प्रतिष्ठा भी न्यून हो गई थी।

युद्धो की अधिकता के कारण सहस्रो सामन्त तथा राजकुमार मारे जाते थे। ---
" मुगल सेना की दुर्बलता का पता सर्व-प्रथम शाहजहाँ के राज्य-काल मे मिलता है जबकि १६४६, १६५२, १६५३, ई० मे बडी-बडी सेनाओ के भेजे जाने पर भी कन्धार के किले को न जीता जा सका। औरगजेब की लम्बी लडाइयाँ और वीर तथा साहसी सैनिको की कमी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा था।...... मुगल शासको ने सामुद्रिक शक्ति की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया।"[1]

१—सिंहासन के लिये शाहजहाँ के पुत्रों मे सघर्ष :

"मुगल राजनीति मे उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम न था। प्राय. उत्तराधिकार का निर्णय बाहु बल से किया जाता था। ऐसी दशा मे सभी शाहजादो का सिंहासन प्राप्त करने का प्रयास स्वाभाविक ही था। शाहजहाँ के सभी पुत्रो मे बाहु-बल तथा उनके पास युद्ध के प्रचुर साधन थे।

जिस समय उत्तराधिकार का प्रश्न प्रारम्भ हुआ उस समय शाहजहाँ के सभी पुत्र युवावस्था को पार कर रहे थे। दारा की अवस्था ४३ वर्ष, शुजा की ४१ वर्ष, औरगजेब की ३८ वर्ष और मुराद की ३३ वर्ष थी। ये सभी शाहजादे भिन्न-भिन्न प्रान्तों के गवर्नर थे और सभी को युद्ध तथा शासन का पर्याप्त अनुभव हो चुका था।"[2]

"शाहजहाँ के जीवन-काल मे ही उसके पुत्रो मे सिंहासन के लिये घोर सघर्ष प्रारम्भ हो गया। वास्तव मे यह सघर्ष दो-चार विचारधाराओ मे था, जिनमे एक का प्रतिनिधि दारा था और दूसरी का औरगजेब। ...यद्यपि इसके पहले भी उत्तराधिकार के लिए सघर्ष हुए थे। परन्तु इस युद्ध का भारतीय इतिहास मे विशेष महत्व है। इस युद्ध में जितना रक्तपात हुआ उतना अन्य किसी उत्तराधिकार के युद्ध मे नहीं हुआ था। इसका कारण यह था कि किसी भी उत्तराधिकार के सघर्ष मे ऐसा सन्तुलन न था जैसा इस युद्ध मे। शाहजहाँ का साम्राज्य उसके जीवन-काल मे ही उसके चारो पुत्रो मे विभक्त हो चुका था। दारा पजाब तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश का सूबेदार था। मुराद मालवा तथा गुजरात मे शासन कर रहा था। औरगजेब को दक्षिण की सूबेदारी मिली थी और शुजा बगाल तथा उडीसा का शासन सभाल रहा था। ---चारो के पास अपनी-अपनी सेनायें थी और युद्ध करने के प्रचुर साधन थे।"[3]

शाहजहाँ अन्य सम्राटो की भाँति एक स्वेच्छाचारी तथा निरकुश शासक था। परन्तु उसकी स्वेच्छाचारिता अनियन्त्रित थी। उसे रीति रिवाज तथा लोकमत का ध्यान रखना पडता था। सम्राट स्वय शासन का प्रधान तथा सभी शक्तियो एव अधिकारो का स्रोत था। उसकी आज्ञाओ का पालन करना सबके लिए अनिवार्य होता था। स्वेच्छाचारी तथा निरकुश होते हुए भी शाहजहाँ का शासन उदार था और प्रजा के हित का सदैव ध्यान रखा जाता था। टैवर्नियर लिखता है कि शाहजहाँ इस प्रकार शासन नहीं करता था, जिस प्रकार राजा अपनी प्रजा पर करता है वरन् वह इस प्रकार करता था, जिस प्रकार पिता

१. डा० ईश्वरी प्रसाद मध्यकालीन भारत का सक्षिप्त इतिहास पृष्ठ ५५६—५५७।

२ श्रीनेत्र पाण्डेय : भारत का वृहद् इतिहास, पृष्ठ २५१। ३. वही—पृष्ठ २५१।

अपने परिवार पर करता है। यद्यपि सिद्धान्त राज्य पदाधिकारी सम्राट के नौकर के रूप मे होते थे, जिन्हे उनकी आज्ञाओ का पालन करना पड़ता था। परन्तु क्रियात्मक रूप मे वे सम्राट के परामर्शदाता होते थे। सम्राट इनका परामर्श लेने तथा मानने के लिए बाध्य नही होता था, परन्तु प्राय इस परामर्श का आदर किया जाता था यदि साम्राज्य की साधारण नीति से उसका विरोध नही होता था।"[1]

२—केन्द्रीय शासन

"साम्राज्य के केन्द्रीय शासन का सबसे बड़ा अधिकारी वकील कहलाता था। वास्तव मे वह शासन का प्रधान होता था··· शाहजहाँ ने आसफखाँ को अपना वकील नियुक्त किया था। वकील की सहायता के लिए अन्य कई अफसर थे।

वकील के नीचे दिवान होता था जो वजीर कहलाता था। यह अर्थ विभाग का स्थायी प्रधान होता था।... दिवान की सहायता के लिए दो सहायक दिवान होते थे। एक को दिवाने तन कहते थे, जो जागीरो की समुचित व्यवस्था करता था और दूसरे को दिवाने खालसा कहते थे जो खालसा भूमि की व्यवस्था करता था।

मुस्तौफी नामक अफसर सरकारी आय-व्यय का हिसाब रखता था।········· साहिबे मौजीह राजधानी के नौकरो को वेतन बाँटता था और आवार्जा नवीस प्रतिदिन की आय तथा व्यय का हिसाब रखता था।

मीर सामान, राज्य के सामान की, व्यवस्था करता था। यह पद बड़े ही विश्वसनीय व्यक्ति को सौंपा जाता था। अफजल खाँ, सादुल्ला खाँ तथा फाजिल खाँ इस पद पर वजीर होने से पहले रह चुके थे। मुशरिफ लगान विभाग का प्रधान लेखक होता था। और खजान्ची कोषाध्यक्ष का काम किया करता था। वाकेह नवीस सभी आज्ञाओं तथा घटनाओ को लिखा करता था।"[2]

३—प्रान्तीय शासन

"शासन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण साम्राज्य २२ सूबो मे विभक्त था।······ इन प्रान्तो मे सुप्रबन्ध के लिए सूबेदार अथवा सिपहसलार नियुक्त किए जाते थे, दिल्ली तथा अकबराबाद अर्थात् आगरा मे केवल सम्राट की अनुपस्थिति मे ही सूबेदार नियुक्त किए जाते थे।

सूबेदार को तीन प्रकार के कार्य करने पड़ते थे, शासन सम्बन्धी, न्याय-सम्बन्धी तथा सेना-सम्बन्धी। सम्पूर्ण सूबे के सुशासन के लिए वह उत्तरदायी होता था।"[3]

४—सरकार का शासन

"प्रत्येक प्रान्त को कई 'सरकारो' मे विभक्त कर दिया गया था। प्रत्यक सरकार मे कई 'परगने' होते थे। सरकार का प्रबन्ध एक फौजदार को सौंप दिया जाता था। सम्भवत. परगने के लिए कानूनगो तथा गाँव के प्रबन्ध के लिए पटवारी उत्तरदायी होता था।

---

१. श्रीनेत्र पाण्डेय : भारत का बृहत् इतिहास, पृष्ठ २६८।

२. श्रीनेत्र पाण्डेय, भारत का बृहत् इतिहास, पृष्ठ २६८—२६६। ३. वही—पृष्ठ २६६—२७०

५—दण्ड विधान

इस काल का दण्ड विधान बड़ा ही कठोर तथा बर्बर था। दण्ड-अपराधियों को सुधारने की भावना से नहीं दिया जाता था वरन् बदला लेने की भावना से दण्ड दिया जाता था। कभी-कभी साधारण अपराधों के लिये बड़े कठोर दण्ड दिए जाते थे। अंग भंग का दण्ड बहुत प्रचलित था और कभी-कभी अपराधियों को बिच्छुओं तथा सर्पों से कटवाया जाता था। राजनैतिक बंदियों अर्थात् राजद्रोहियों को ग्वालियर, रणथम्भौर तथा रोहतास के दुर्गों में बन्द करके रखा जाता था। साधारण तथा स्थानीय अपराधियों के लिए स्थानीय जेल होती थी, जो बन्दिग खाना कहलाते थे।"[1]

६—दक्षिण भारत की राजनीतिक दशा

दक्षिण भारत की राजनीतिक दशा के विषय में हम पाँचवें अध्याय में तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा में अन्तर्गत लिख आए हैं। शिवाजी और औरंगजेब दोनों समकालीन थे अत तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा एक ही थी।

२ सामाजिक दशा

मुगल शासन के सैनिक शक्ति पर आधारित होने के कारण ऐतिहासिक विद्वान उसे केन्द्रीभूत निरंकुश शासन समझने की धारणा कर बैठते हैं। सम्राट अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा के लिए अपने अलग अलग कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व समझता था। अपनी मुसलमान प्रजा के लिये वह धर्म और राज्य तथा सामाजिक कर्त्तव्यों की पूर्ति करने के लिये उत्तरदायी था। परन्तु हिन्दू जनता के लिये उसके केवल दो कर्त्तव्य थे। एक था शान्ति-स्थापन और दूसरा राज्य-कर वसूल करना। इस प्रकार हिन्दुओं के प्रति उसके कर्त्तव्य कम से कम थे। "उस समय सार्वजनिक शिक्षा राजकीय कर्त्तव्य के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों शिक्षा को धर्म का अंग समझते थे। यदि सम्राट शिक्षा पर कुछ भी धन व्यय करते थे तो यह कार्य उनकी व्यक्तिगत पारलौकिक भावना की सिद्धि के उद्देश्य से किया जाता था, राज्य का कोई उत्तरदायित्व नहीं था। इसी भाँति कला और साहित्य को प्रोत्साहन देने का कार्य सम्राट की व्यक्तिगत रुचि पर निर्भर था। इनका उद्देश्य शासक की अपनी प्रसन्नता अथवा गौरव प्राप्ति ही था जिसे हम किसी भी दशा में राष्ट्रीय संस्कृति के विकास का प्रतीक नहीं मान सकते।"

इस प्रकार उस समय समाज और शिक्षा के उत्थान का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सम्राट पर न होकर जनता तथा समाज पर होता था। इसीलिए हम कह सकते हैं कि उस समय शासन का उद्देश्य सीमित अथवा भौतिक प्रतीत होता है।

इस समय बादशाह ईश्वर का प्रतिनिधि समझा जाता था। वह प्रतिदिन प्रजा को झरोखे में से दर्शन देता था। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ इन तीनों के शासनकाल में यह प्रथा प्रचलित थी लेकिन औरंगजेब ने गद्दी पर बैठते ही इस प्रथा को बन्द कर दिया।

... "प्रो० यदुनाथ सरकार तथा उन्हीं की भाँति कुछ दूसरे विद्वानों ने मुगल शासन की न्यूनताओं पर प्रकाश डालते समय मुगल शासन की समता असभ्य तथा बर्बर

१ श्रीनेत्र पाण्डेय : भारत का बृहत इतिहास, पृष्ठ २७०

राज्यों से की है।"[1] इन इतिहासकारों की मनीषाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता। लेकिन हम इस बात को पूर्णतया बर्बर तथा असभ्य नहीं कह सकते हैं क्योंकि इस काल में कला, संगीत आदि में बहुत उन्नति हुई। शाहजहाँ का काल समृद्धि एवं वैभव के लिए प्रसिद्ध है। इसीलिए इस काल को स्वर्णयुग भी कहते हैं। प्रजा की भलाई के लिए अकबर के अथक प्रयत्न, जहाँगीर की न्यायप्रियता, शाहजहाँ की समृद्धि और औरंगजेब का विलक्षण कूटनीति का देखते हुए हम इस बात को पूर्णतया असभ्य तथा अविकसित नहीं मान सकते।

१—सामन्तवाद :

समाज का आधार सामान्तवाद था। इस समय सामन्तों का साम्राज्य में बोलबाला था। शासन के सभी पदाधिकारी अपने अभिभावकों का अनुसरण करते थे तथा उन्हीं के समान रास-रंग तथा आमोद प्रमोद में व्यस्त रहते थे। भोग विलास की सामग्री प्रायः विदेशों से मगाई जाती थी। इसलिए विदेशी व्यापार वृद्धि पर था। बादशाहों के अन्तःपुरों में सहस्रों की संख्या में स्त्रियाँ एवं नर्तकियाँ होती थीं। शासन के उच्च पदाधिकारी भी अपने बादशाह का अनुकरण कर सहस्रों की संख्या में नर्तकियाँ और स्त्रियाँ रखते थे। राज्य का अधिकांश रुपया शान शौकत एवं दावतों में व्यय होता था। रिश्वतखोरी का बाजार गर्म था। उच्चपदाधिकारी बहुत अधिक रिश्वत लेते थे यही कारण था कि श्रमजीवी तथा किसानों की दशा अच्छी नहीं थी।

–हिन्दुओं की महत्ता

"शाहजहाँ का शासन-काल शान्तिमय उन्नतिशील एवं समृद्ध था। ·· देश के कुछ भागों में मार्ग सुरक्षित न थे।······टैवर्नियर लिखता है भारतवर्ष में ८ लाख मुसलमान फकीर तथा १२ लाख हिन्दू साधु थे। डैलावैली, टैवर्नियर आदि यात्री हिन्दुओं की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि वे गम्भीर मितव्ययी और ईमानदार हैं। उनका नैतिक-स्तर ऊँचा है। विवाहोपरान्त वे अपनी पत्नियों के प्रति वफादार रहते हैं। उनमें व्यभिचार अप्राप्य है और उनमें अप्राकृतिक पाप सुनने में नहीं आता।"[2]

·······वर्नियर का लेख है कि उनमें (हिन्दुओं में) कोढ़, गुर्दे का दर्द पथरी इत्यादि रोग बहुत कम पाए जाते हैं। ब्राह्मण विद्या-प्रेमी हैं और जनसाधारण को मार्ग पर लाने की सदैव चेष्टा करते हैं। राज्य पर भी उनकी विद्वत्ता, पवित्रता तथा नैतिक उत्कृष्टता का प्रभाव है। राजपूतों की वीरता की यूरोपीय यात्री प्रशंसा करते हैं। उनका कथन है कि वे युद्ध में भागने की अपेक्षा मृत्यु को पसन्द करते हैं। वे अफीम खाते हैं और शान-शौकत से रहते हैं। परन्तु मुसलमान अमीरों की अपेक्षा उनका जीवन अधिक स्तुत्य है।

३—सामाजिक पतन :

औरंगजेब के शासन-काल में सामाजिक अवस्था बिगड़ने लगी। प्रजा की दशा में पतन के लक्षण दिखाई देने लगे। ·· मुगल पदाधिकारी एवं उच्चवर्गीय सामन्त आचरण भ्रष्ट हो गए। उनके सुधरने की कोई आशा प्रतीत नहीं होती थी। सामन्तों के लड़कों का पालन-पोषण हिजड़ों और स्त्रियों के मध्य होता था। अतः वे चरित्रहीन हो गए थे।

१. डा॰ ईश्वरी प्रसाद. मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ४६७ २. वही-पृष्ठ ४०८।

स्त्री और मदिरा के अनवरत साहचर्य ने उनमें नैतिकता का समूल नाश कर दिया था। .... हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही ज्योतिष में पूर्ण विश्वास करते थे। अतः समाज में साधुओं और फकीरों की पूजा की प्रथा बलवती हो गई और उसके साथ ही साथ लोगों में अन्ध विश्वास बढ़ने लगे। कभी कभी तो सिद्धियाँ पाने के लिए नर बलि भी दी जाती थी। शाही दरबार की दशा और भी खराब हो गई थी। वह विलासप्रिय, प्रपंची और चाटुकार व्यक्तियों का अड्डा बन गया था।"[1]

४–जनसाधारण :

भारतीय समाज के जनसाधारण का चरित्र विलासी दरबारियों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा था। नैतिकता का गुण जनसाधारण में विद्यमान था, इसी गुण के कारण भारतीय नाश से बच गए। जनसाधारण के नैतिक-स्तर को ऊँचा उठाने में, हिन्दुओं के धार्मिक आन्दोलनों और संत-कवियों की कविताओं का विशेष हाथ रहा था। जितने भी योरोपीय यात्री भारत में आए वे सब हिन्दुओं के सदाचार की प्रशंसा करते हैं।

५–मुगल साम्राज्य के प्रति हिन्दुओं का योगदान

'प्रारम्भ में ही मुगल शासन में हिन्दुओं का उच्च स्थान रहा। अकबर ने इस बात को भली भाँति परख लिया था कि बिना हिन्दुओं की सहायता एवं मित्रता के भारत में स्थायी तथा विशाल साम्राज्य स्थापित करना असम्भव है,"[2] और इसीलिए उसने राजपूत राजाओं की लड़कियों से शादी करके तथा हिन्दुओं को राज्य में महान पद देकर तथा उनके धर्म का सम्मान कर अपने राज्य की नींव को बहुत सुदृढ़ बना लिया। जबकि शाहजहाँ ने अकबर की उस उदार नीति का परित्याग किया, हिन्दुओं के मन्दिरों को तुड़वाया और इस प्रकार हिन्दुओं की सहानुभूति को राज्य के प्रति बहुत कम कर दिया। औरंगजेब के शासन-काल में भी महाराज जसवन्तसिंह तथा मिर्जा राजा जयसिंह ने साम्राज्य-विस्तार के हेतु कुछ उठा न रखा। परन्तु औरंगजेब के समय में हिन्दुओं पर अत्याचार हुए, हिन्दुओं के शिवालय तुड़वा दिए गए, मंदिरों का ध्वंस किया गया और राज्य-पदों पर हिन्दू न रखे गए। इसका परिणाम अहितकर सिद्ध हुआ।"[3]

६–शिल्पकला :

शाहजहाँ को इमारतें बनवाने का बड़ा शौक था। उसके समय की मुख्य इमारतें दीवान–ए–आम, दीवान–ए–खास, जामा मस्जिद मोती मस्जिद और ताजमहल हैं।

"शाहजहाँ की मृत्यु के पश्चात् शिल्प-कला की अवनति प्रारम्भ हो गई। कट्टर धर्मानुयायी औरंगजेब ने इसे कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। उसके समय में कुछ इमारतें अवश्य बनी, परन्तु कला और सुन्दरता की दृष्टि से उनका स्थान गौण है। इन इमारतों में दिल्ली की संगमर्मर की छोटी सी मसजिद, काशी में विश्वनाथ मन्दिर के ध्वंस पर बनी हुई मसजिद, लाहौर की बादशाही मसजिद उल्लेखनीय हैं।"[4]

---

१ डा० ईश्वरी प्रसाद मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृ ५१०-११

२. डा० ईश्वरी प्रसाद . मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृ. ५११। ३. वही–पृष्ठ ५१२

४. डा० ईश्वरी प्रसाद . भारत का इतिहास, पृष्ठ २१०।

७-चित्रकला :

शाहजहाँ के शासन-काल में चित्रकला की विशेष उन्नति नहीं हुई क्योंकि शाहजहाँ की चित्रकला में कम रुचि थी। इसके पश्चात् औरंगजेब की कट्टरता के कारण चित्रों का कला की दृष्टि से स्तर बहुत गिर गया।

८-शिक्षा और साहित्य :

"मुगलकालीन भारत में राज्य की ओर से शिक्षा की कोई व्यवस्थित प्रणाली न थी। शिक्षा का भार विशेषतया जनता के ऊपर ही था। हिन्दू अपनी पाठशालाओं और मुसलमान अपने मकतबों में पढ़ते थे। फिर भी मुगल सम्राट शिक्षा-प्रसार के कार्यों को अपना प्रमुख कर्तव्य समझते थे।"[1]

पाठशालाओं में ब्राह्मण पंडित साहित्य, ज्योतिष, व्याकरण, दर्शन-शास्त्र और चिकित्सा-शास्त्र आदि की शिक्षा देते थे, परन्तु मकतबों और मदरसों की शिक्षा इस्लाम-धर्म से सम्बन्धित थी। कुरान और अन्य धार्मिक पुस्तकों को पढ़ाने की ओर भी ध्यान दिया जाता था।

उस समय निर्धन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जाती थीं। राज्य की ओर से भी विद्यालयों की व्यवस्था की जाती थी।

शाहजहाँ के समय में भी विद्या और विद्वानों को प्रोत्साहन मिलता रहा। उसके शासन-काल में अब्दुल हमीद लाहौरी ने बादशाह-नामा अमीन कजवीनी ने एक अन्य बादशाह-नामा, इनायत खाँ ने शाहजहाँ नामा और मुहम्मद सालह ने अमल सालह नामक ग्रन्थों की रचना की जो सभी शाहजहाँ के काल के इतिहास-ग्रन्थ हैं। सम्राट का पुत्र दारा स्वयं एक उच्चकोटि का विद्वान एवं सूफी दार्शनिक था। उसने उपनिषदों, श्रीमद्भागवत गीता और योगवासिष्ठ का फारसी में अनुवाद कराया। उसने कई महत्वपूर्ण-ग्रन्थों की रचना की जिनमें मजमुआ-उल-बहरीन, सफीनत-उल-औलिया और सकीनत-उल-औलिया प्रमुख हैं।[2]

"मुमताज-महल तथा जहाँआरा बेगम साहित्य और कला में विशेष अभिरुचि प्रदर्शित करती थी। औरंगजेब की पुत्री जैबुन्निसा एक प्रतिभाशालिनी कवयित्री थी।"[1]

९-हिन्दी साहित्य :

इस समय केवल फारसी साहित्य की ही उन्नति नहीं हुई बल्कि हिन्दी और संस्कृत-साहित्य की भी उन्नति हुई। यह सत्य है कि संस्कृत में अधिक उन्नति नहीं हुई पर विद्वान इस ओर बराबर प्रयत्नशील रहे। हिन्दी-साहित्य का स्वर्ण-युग मुगल-काल में ही अन्तर्गत आता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही वर्गों के विद्वानों ने फारसी, संस्कृत तथा हिन्दी-साहित्य का विशद अध्ययन किया। इस समय संस्कृत तथा हिन्दी के ग्रन्थों का अनुवाद फारसी में भी हुआ।

इस युग के कवियों के विषय कृष्ण और राम-भक्ति से लिए गए थे। हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि करके उन भक्तों और संतों के निर्मल और उच्चकाव्य ने हिन्दी के

१. डा० ईश्वरी प्रसाद : भारत का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ३२८ २. वही—पृष्ठ ३१८
१. वही—पृष्ठ ३१८।

भक्ति-काल को स्वर्ण-युग घोषित कर दिया।[1] राम भक्ति शाखा का आविर्भाव महात्मा रामानन्द ने १५ वीं शताब्दी के लगभग उत्तरी भारत में किया। कृष्ण-भक्ति का उदय स्वामी वल्लभाचार्य के प्रयत्नों से इसी समय ही उत्तरी भारत में हुआ। इस प्रकार दोनों शाखाओं का उदय एक ही समय उत्तरी भारत में हुआ। इनके अतिरिक्त कुछ कवि ऐसे भी हुए जिनकी रचनाएँ काव्य के शास्त्रीय पक्ष से अधिक सम्बन्ध रखती थी। इन कवियों में केशव और उनके अनुयायियों का नाम आता है। डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार, "मुसलमानों की बढ़ती हुई ऐश्वर्याकांक्षा ने हिन्दुओं के अस्तित्व पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया।"[2] किन्तु कालदर्शी भक्त कवियों ने भक्ति का ऐसा प्रबल और विस्तृत प्रवाह सचालित किया कि उसकी लपेट में केवल हिन्दू जनता ही नहीं अपितु देश में बसने वाले सहृदय मुसलमानों में से भी न जाने कितने आगए।[3] शाहजहाँ के काल तक आते-आते इस धारा का अवसान प्रारम्भ हो गया था। काव्य को राज्याश्रय मिलने के कारण कवियों पर रीति का प्रभाव प्रारम्भ हो गया था। डा० नगेन्द्र ने सूर को रीति से प्रभावित बताया है।[4]

इस परिपाटी में केशव के अन्य अनुयायी सुन्दर, सेनापति और त्रिपाठी बन्धु हुए जो शाहजहाँ तथा औरंगजेब के काल में थे। भूषण, मतिराम, देव, आदि भी इसी काल में हुए।

शाहजहाँ को साहित्य और ललित कलाओं से अत्यधिक प्रेम था...... दरबारी इतिहासकार अब्दुल हमीद लाहौरी लिखता है कि गगाधर तथा गगालहरी के प्रसिद्ध लेखक *जगनाथ प० शाहजहाँ के राजकवि थे। संस्कृत और हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान* कवीन्द्र आचार्य सरस्वती तथा उन्हीं की कोटि के अन्य सस्कृत विद्वान राजदरबार की शोभा बढ़ाते थे।......हिन्दी काव्य की ओर भी शाहजहाँ उदासीन न रहा। 'सुन्दर शृंगार,' 'सिंहासन बत्तीसी' और 'बारह मासा' के रचयिता प्रसिद्ध कवि सुन्दरदास उपनाम महाकवि 'राय' के अतिरिक्त जो सम्राट का विशेष कृपापात्र था, हिन्दी के सानमिश्र सर्वश्रेष्ठ कवि चिन्तामणि पर भी शाहजहाँ की विशेष कृपा थी। शाहजहाँ फलित ज्योतिष में विश्वास रखता था। अत अनेकानेक ज्योतिषी राजवशजों की कुडलियाँ तैयार करने, विवाह के लिये शुभ लग्न तथा सैनिक-स्थान के लिए शुभ मुहूर्त निकालने में व्यस्त रहते थे।"[5]

अन्य ललित कलाओं की भाँति हिन्दी-साहित्य की उन्नति को भी औरंगजेब के शासन-काल में आघात पहुंचा। इस समय हिन्दी के प्रतिभा-सम्पन्न कवियों का अभाव दिखाई देने लगा।

१०—उर्दू कविता :

इस समय उर्दू कविता की भी उन्नति हुई। अनेक कवि और शायर हुए, जिन्होंने अपनी सरल, आकर्षक शैली में गजलों, रुबाइयों और मसनवियों की रचना की।

---

१. डा० श्यामसुन्दर दास : हिन्दी-साहित्य, पृष्ठ २३६।

२. डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ २७३।

३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६२।

४ डा० नगेन्द्र : रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता, पृष्ठ १८९।

५. डा० आ० ला० श्रीवास्तव मुगलकालीन भारत, पृष्ठ ३७—३८।

लेकिन वास्तव में उर्दू की उन्नति दक्षिण में बीजापुर और गोलकुण्डा के शासकों के संरक्षण में हुई, *जिनमें से कुछ स्वयं बड़े सुसभ्य और सुसंस्कृत शासक थे।*[1]

१ —संगीत :

शाहजहाँ के समय तक संगीत प्रिय था।...... शाहजहाँ गाना सुनता था। रात को वह *हिन्दी गीत सुनता था और सुनते सुनते सो जाता था।* कट्टर मुसलमान गान विद्या का विरोध करते थे। ......इसीलिए औरंगजेब को संगीत से घृणा थी। सिंहासनारोहण के बाद उसने गायकों को दरबार से निकाल दिया था। जब वे संगीत का जनाजा ले जा रहे थे बादशाह ने उनसे पूछा यह क्या है ? उत्तर मिला संगीत का जनाजा है। उस पर उसने कहा इसे ऐसा गहरा दफन करना कि फिर यह सर न उठाने पाये।"[2]

धार्मिक पुरुष, शिया और सूफी भी संगीत का आदर करते थे। वह कीर्तन करते और भजन, गीत गाते थे। अपने धर्म-प्रचार के लिये कथायें भी कही जाती थी। वल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णव भी संगीत प्रेमी थे।

१२—नारी :

विचाराधीन-काल में स्त्रियों की दशा भी अच्छी न थी। प्रजा पर शासन की संस्कृति का प्रभाव पड़ता है अतः पर्दा-प्रथा का खूब प्रचार था। उच्चवर्गों के लोगों में बहु-विवाह का प्रचलन था और जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि अमीरों तथा सरदारों के हरम में अनगिनत स्त्रियाँ रखी जाती थी। स्त्रियों की शिक्षा के प्रति समाज की कोई विशेष रुचि न थी। बाल-विवाह का प्रचार था। बाल-विवाह, बहु विवाह जैसी कुरीतियों के अतिरिक्त तत्कालीन समाज में सती-प्रथा और दहेज-प्रथा जैसी कुरीतियाँ भी विद्यमान थी। आज की भाँति जाति-प्रथा के बन्धन और छुआछूत का भी बोलबाला था।

३ धार्मिक दशा

विचाराधीन-काल के पूर्व धार्मिक वातावरण हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष तथा समन्वय का प्रयत्न लिए हुए विभिन्न स्वरूपों में प्रतिलक्षित होता है। "मुगलों से पूर्व जो यवन बादशाह भारत में हुए उनका राज्य इस्लाम-धर्म की नींव पर स्थित था।[1] राज्य विस्तार के साथ 'इस्लाम-धर्म' का प्रचार भी उनका उद्देश्य रहता था। फलतः प्रायः तलवार की शक्ति से ही 'इस्लाम धर्म' का प्रचार करते हुए वे हिन्दुओं पर मनमाने अत्याचार करते थे और बलपूर्वक इस्लाम-धर्म स्वीकार करने पर विवश करते थे। अतएव यवन राज्य और इस्लाम-धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में भक्तिवाद का एक विशाल धार्मिक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ एवं देश के सम्पूर्ण छोरों तक प्रसारित हो गया।[4] इस आन्दोलन ने अनेक भावनाओं को जन्म दिया, *जो एक ओर तो मानवता के क्षेत्र को विस्तृत करने वाली हैं तथा दूसरी* ओर अनेक संकीर्णता को उत्पन्न करती हैं।[5] ईसा की १५ वी और १६ वीं शताब्दी धार्मिक आन्दोलन के चरमोत्कर्ष का युग मानी जाती है। दक्षिण में उदय होकर भक्ति का

१. डा० ईश्वरी प्रसाद : मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ५३६। २. वही—पृष्ठ ५४०।

३ डा० हीरालाल दीक्षित आचार्य केशवदास, पृष्ठ १०।

४. डा० ईश्वरी प्रसाद : मध्य युग का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ५३७।

५. डा० हरिवंशलाल शर्मा सूर और उनका साहित्य, पृष्ठ ६१।

जो धार्मिक प्रवाह धीरे-धीरे उत्तरी भारत में प्रसारित हो रहा था वह राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप पूर्ण विकसित होता हुआ अकबर के राज्यकाल में देश व्यापी हो गया।[1] यह धार्मिक आन्दोलन इतिहास में 'वैष्णव धर्म आन्दोलन' के नाम से विख्यात है।[2] इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं बल्कि भावावेश का विषय हो गया था।

यद्यपि आचार्य शंकर के अद्वैतवाद ने भारतीय दर्शन को एक नई चिन्तन परम्परा दी थी, परन्तु सामान्य जनता उनकी दुरूह दार्शनिक पद्धति न समझ सकी। बारहवीं शताब्दी के आसपास दक्षिण में अद्वैतवाद के विरोध में चार प्रबल सम्प्रदायों का जन्म हुआ। "ये सम्प्रदाय थे—रामानुजाचार्य का श्री सम्प्रदाय, मध्वाचार्य का ब्राह्मण सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी का रुद्र सम्प्रदाय और निम्बर्क का सनकादि सम्प्रदाय। ये सम्प्रदाय दार्शनिक बातों में थोड़ा बहुत भिन्न होने पर भी शंकर के मायावाद का विरोध करने में एक मत थे।"[3]

'श्री सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य दक्षिण भारत में उत्पन्न हुए थे।"[4] "इन्हीं की चौथी या पाँचवीं शिष्य परम्परा में १४ वीं शताब्दी के लगभग सुप्रसिद्ध स्वामी रामानन्द का आविर्भाव हुआ।"[5] यह उक्ति प्रसिद्ध है कि भक्ति द्रविड देश में उत्पन्न हुई थी। उसे उत्तर में रामानन्द ले आए और कबीरदास ने उसे सप्तद्वीप और नवखंड में प्रकट कर दिया।[2] "शास्त्रीय पद्धति से जिस सगुण भक्ति का निरूपण इन्होंने किया था उनकी ओर जनता आकर्षित होती चली जा रही थी।"[6]

"कृष्ण-भक्ति का विकास मूलरूप में विष्णु-स्वामी के रुद्र सम्प्रदाय से आरम्भ हुआ। उत्तर भारत में इसका प्रचार करने का श्रेय महाप्रभु वल्लभाचार्य को है। वे कृष्ण-भक्ति शाखा के सबसे प्रथम आचार्य माने जाते हैं, उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ बाद में आचार्य-पद के अधिकारी हुए थे। इन दोनों पिता-पुत्र के शिष्यों ने जो अष्टछाप के रूप में प्रतिष्ठित हुए कृष्ण-भक्ति के प्रचार करने में अथक सहायता की। अष्टछाप के भक्तों में सूरदास सबसे अग्रगण्य हैं।'"

उत्तर भारत की भांति भक्ति-आन्दोलन का विकास दक्षिणी भारत में भी था।

१—इस्लाम का प्रभाव :

इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि मुसलमानों का भारत विजय का उद्देश्य केवल राज्य-स्थापना ही न था बल्कि इस्लाम धर्म का प्रचार भी था। भारत में जब तक मुसलमानों का राज्य रहा है तब तक मुसलमानी शासकों का दृष्टिकोण अपनी हिन्दू जनता की ओर सदा विरोध और असहिष्णुता का रहा है।

---

१ डा० हीरालाल दीक्षित : आचार्य केशवदास, पृष्ठ ११।
२ डा० श्यामसुन्दर दास : हिन्दी-साहित्य, पृष्ठ ३१।
३. डा० ईश्वरी प्रसाद : मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ २४२।
४. डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ २६६।
५ डा० ईश्वरी प्रसाद मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ २४२।
६. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ट ६२।
७. डा० ईश्वरी प्रसाद. मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ २४३।

"भारत में इस्लामी प्रभाव के इस लम्बे काल को हम दो विभागों में विभाजित कर सकते हैं। पहला भाग लगभग १५ वीं शताब्दी के अन्त तक समाप्त होता है। ८०० वर्ष की इस लम्बी अवधि में मुस्लिम आक्रमणकारियों और उनके अधीनस्थ सरदारों के मन में यह धारणा घर कर गई कि वे उसे उसी भाँति समस्त भारतवर्ष को इस्लामी क्षेत्र के भीतर कर देंगे, जिस भाँति खलीफाओं की फौजों ने फारस और पश्चिमी प्रदेशों को मुसलमानी प्रभाव के अन्तर्गत कर दिया था।"

"दूसरे भाग में, जोकि बाबर के द्वारा मुगल साम्राज्य की स्थापना से आरम्भ होता है, समस्त जनता की भलाई का ध्यान रखने के उद्देश्य से यह धारणा असंगत सी प्रतीत होने लगी थी। पहले के तुर्क विजेताओं की असहिष्णु और अनुदार नीति के स्थान पर देश की हिन्दू जनता के प्रति सहनशीलता और सहानुभूति का परिचय दिया जाने लगा था। ... इस काल में औरंगजेब ही ऐसा शासक हुआ जिसने भारत को इस्लाम के एक-छत्र प्रभाव के अन्तर्गत लाने की पुनः चेष्टा की, किन्तु उसे भी अपने प्रयास की असफलता स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

भारतवर्ष में इस्लाम के विकास के समूचे इतिहास में मुसलमान धर्म-प्रचारकों का भी महत्वपूर्ण कार्य रहा है। १३ वीं और १४ वीं शताब्दियों में पंजाब, काश्मीर, दक्षिण पश्चिमी प्रदेश और पूर्वीय क्षेत्रों में धर्म-प्रचार का कार्य बड़े उत्साह से होता रहा। उस समय हम पंजाब में बहाबुलहक, बाबा फरीदुद्दीन और अहमद कबीर जैसे व्यक्तियों को अपने प्रयत्नों में दत्तचित्त पाते हैं। १४ वीं शताब्दी के अन्त में काश्मीर प्रदेश में सैयद अलाहमदानी ने धर्म-प्रचार का काम बड़ी लगन से किया। ... सुदूर दक्षिण भारत में भी सैयद मुहम्मद गीसूदराज और पीरमहावीर खमदायत ने कार्य १४ वीं शताब्दी से ही प्रारम्भ हो गए थे। १५ वीं और १६ वीं शताब्दी में समस्त देश में विशेषतया सिन्ध और पश्चिमी भारत में इन मुसलमान प्रचार की का कार्य बड़े वेग से फैला।"[१]

२— इस्लाम पर भारतीय वातावरण का प्रभाव

"प्रारम्भिक काल में भारतीय इस्लाम का स्वरूप विदेशी ही बना रहा। शासकों ने भयंकर असहिष्णुता का प्रदर्शन किया। वे मूर्ति-पूजक और उनके समस्त विश्वासों को भय और शंका की दृष्टि से देखते थे, किन्तु धीरे धीरे यह वैमनस्य पारस्परिक सम्पर्क के कारण कम होने लगा। मुसलमानों ने हिन्दू-स्त्रियों के साथ विवाह किया। ... इधर मुसलमान पीर तथा शेखों की शिष्य-परम्परा में बहुत से हिन्दू दीक्षित हुए। शेख मुईनुद्दीन चिश्ती, शेख फरीदुद्दीन शक्करगंज, शेख निजामुद्दीन औलिया शेख सलीम चिश्ती का उपदेश हिन्दू भी सुनते थे। ...... इस हेल मेल का परिणाम यह हुआ कि हिन्दू जनता ने मुगल साम्राज्य की उन्नति में अपनी महत्वपूर्ण शक्ति भेंट की। कंधे से कंधा भिड़ाकर राजपूत वीरों ने मुगल सत्ता को दृढ़ बनाया और इस्लामी संस्कृति के प्रचार में योग दिया।"[२]

३— मुगल सम्राटों की धार्मिक नीति

"मुगल शासन के आरम्भ होते ही भारतीय इस्लाम का दृष्टिकोण मुगल सम्राटों

---

१. डा० ईश्वरी प्रसाद मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृ. ५४८,

२. वही पृ. ५४८। ३. वही, पृ. ५५३।

की उदार नीति के फलस्वरूप एक दम बदल गया। बाबर स्वय एक सुन्नी मुसलमान था परन्तु वह धर्मान्ध नही था। उसका पुत्र हुमायूँ उदार विचारो का व्यक्ति था। ·· अकबर के सिंहासनारूढ होते ही एक नये युग का आविर्भाव हो जाता है। इस युग म हम सूफी धर्म का व्यापक प्रभाव प्रत्यक्ष देखते हैं। अकबर के पश्चात् उसके पुत्र जहाँगीर ने अपने पिता की उदार नीति का पालन किया। ······परन्तु मुसलमानी राज्य की नीति पर चलने के लिये उसे भी कभी कभी बाध्य होना पडता था। ··· पुष्कर का मन्दिर तोडा गया। ··· पुर्तगालियो का आगरा का गिरजा बन्द कर दिया गया।

····· अन्तिम मुगल सम्राटो को यह उदार नीति मान्य न हुई। शाहजहाँ कट्टर मुसलमान था। ······ हिन्दुओ को मुसलमान बनाने के लिये शासन का एक अलग विभाग था। ······ इस्लाम स्वीकार करने वालो को रुपया मिलता था।

··· औरगजेब के शासन काल मे सुन्नी मुसलमानो का साम्राज्य मे बोलबाला था और सम्राट स्वय उस वर्ग का नेता था। ··· · औरगजेब ने अपनी विधर्मी जनता पर सभी सभाव्य अत्याचार किए, परन्तु कहना न होगा कि इन धर्मान्ध शासको की इस नीति के कारण हिन्दू जनता म इस्लाम के प्रति असतोष उत्पन हो गया, जिसने बाद म चलकर हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धो को अत्यधिक कटु बना दिया।'[1]

४ आर्थिक दशा

बर्नियर लिखता है कि राज्य की आर्थिक दशा खराब थी। सरकारी कोष खाली हो गया था, व्यापार और खेती अवनत दशा म थे। अशान्ति से व्यापार को बडा धक्का पहुँचा था।सडको के अभाव और देश मे अशान्ति और अराजकता के कारण माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने मे देश की आर्थिक दशा खराब हो चली थी क्योकि बादशाह का दूर देशो मे लम्बी लडाइयो तथा भव्य इमारतो और मकबरे इत्यादि बनवाने म अत्यधिक धन व्यय हुआ था। राज्य कोष खाली हो चला था। इसी कारण औरगजेब ने अपनी सेना घटा दी और राज्य के अन्य खर्चों को कम करना चाहा। परन्तु उसके राज्य काल मे भी लडाइयाँ हुई और शासन प्रबन्ध ठीक न होने के कारण आर्थिक दशा खराब ही होती गई।

बर्नियर के कथनानुसार शाहजहाँ के समय से ही कृषि की दशा खराब हो रही थी। स्थानीय अधिकारियो का प्रजा पर ऐसा प्रबल अधिकार था कि उनके द्वारा त्रसित प्रजा कहीं प्रार्थना भी नही कर सकती थी। पीटरमडी नामक यात्री सूबेदारो को बडा निर्दयी और अत्याचारी बतलाता है। कर्मचारी घूस, भेंट (नजराना) इत्यादि लेते थे। औरगजेब के राज्य काल मे जब जागीरदारी तथा ठेकेदारी प्रथा चल पडी थी। तो अधिक कर तथा लगान की वसूली होने लगी। बर्नियर ने लिखा है कि अमीर कारीगरो से बेगार लेते थे और उन्हें कभी-कभी तो उचित पारिश्रमिक के बदले कोडे ही खाने पडते थे। कारीगरों की दशा करुणाजनक थी। ··· उनका रोजगार बिल्कुल चौपट हो गया था। लाखों रुपया बकाया मे पडा हुआ था। मालगुजारी वसूल नहीं होती थी। शाही खजाने में द्रव्य की कमी होती जा रही थी। शम्बर तथा शाहजहाँ के काल मे राज्य किसानो से उनकी

१ डा० ईश्वरी प्रसाद : मध्यकालीन भारत का सक्षिप्त इतिहास, पृ. ५५०-५५६।

एक तिहाई उपज भूमिकर के रूप मे लेता था परन्तु औरंगजेब के काल मे उपज का आधा भाग मालगुजारी के रूप में लिया जाने लगा। लगान समय पर न देने पर कर्मचारी किसानों के प्रति क्रूरता का व्यवहार करते और प्राय उनसे नियत से अधिक वसूल करने की चेष्टा करते थे। इसी कारण किसान कृषि व्यवसाय को छोड़कर शहरो मे मजदूरी और नौकरी करने के लिये आने लगे। औरंगजेब के उन्हें जमीन देकर फिर से बसाने के प्रयत्न विफल हुए और कृषि की दशा खराब होती गई। औरंगजेब ने गद्दी पर बैठते ही बहुत से कर माफ कर दिए थे परन्तु सूबो म वे उसी तरह लिए जाते रहे और प्रजा के ऊपर अत्यधिक करो का बोझ ही बना रहा।"[1]

......"विक्रय की चीजो पर मुसलमानो से ढाई प्रतिशत और हिन्दुओं से पाँच प्रतिशत कर लिया जाने लगा। १६६९ ई० मे हिन्दुओ के मेलो पर रोक लगा दी गई और नगरो मे दिवाली का उत्सव मनाना भी वर्जित कर दिया गया।"[2]

"नौकरियो मे योग्यता का ध्यान नही रखा जाने लगा। दरबार मे दलबन्दियो के कारण दलो के व्यक्तियो को नियुक्ति होने लगी चाहे वे कितने ही अयोग्य क्यो न हों। इसका शासन प्रबन्ध पर बुरा प्रभाव पडा और अयोग्य कर्मचारियो के कारण सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था ही बिगड़ गई।"[3]

उपन्यास मे ऐतिहासिक तत्व

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का यह उपन्यास विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास मे आचार्य श्री ने कल्पना को स्थान नही के बराबर दिया है। 'वैशाली की नगरवधू' और 'सोमनाथ' मे जितना अधिक कल्पना का आश्रय उन्होंने लिया था उतनी कम कल्पना का प्रयोग लेखक ने इस उपन्यास मे किया है। लगता है, जितना अधिक कल्पना का कोष उन्होंने उपर्युक्त दो उपन्यासो के निर्माण मे लुटाया था, कल्पना-व्यय को उतनी अधिक कंजूसी इस उपन्यास मे करके, उन्होंने बैलेन्स बराबर किया है। अथवा यूँ कह सकते हैं कि उनके मन मे पूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की चाह जगी थी, इसलिए उन्होंने कल्पना का आश्रय नहीं लिया।

वस्तुत यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास के निकट न होकर इतिहास के अधिक निकट है। अत्युक्ति नही होगी यदि कहा जाय कि लेखक ने इतिहास के पृष्ठो को ज्यूँ का त्यूँ उठाकर रख दिया है। इतना ही नही इतिहास के पृष्ठो को भी उतनी रमणीय भाषा मे लेखक नही रख पाया है कि यह कृति कुछ रोचक बन जाती और अच्छे ऐतिहासिक उपन्यासो की श्रेणी मे स्थान प्राप्त कर सकती। अनेक स्थल ऐसे हैं जो इतिहास की पुस्तकों मे अधिक रोचक रूप मे मिलते हैं। मुगल-काल स्वयं मे इतना रोचक है कि इसमें कल्पना का आश्रय खोजने की आवश्यकता नहीं रहती। फिर भी यदि आचार्य श्री मुगल काल की इन रंगीन घटनाओं पर कल्पना का हल्का सा भी रंग चढा देते तो यह उपन्यास हिन्दी साहित्य की एक अमर निधि बन जाता।

इस उपन्यास मे वर्णित लगभग सब पात्र और घटनाएँ इतिहास सिद्ध हैं, इसी

---

१. डा० ईश्वरी प्रसाद मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृ. ५५७-५५८।

२. वही, पृ. ५५९ : ३. वही पृ. ५५६।

लिए इतिहास का संकेत मात्र ही दिया गया है, संक्षेप में ही इनका वर्णन किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास के ऐतिहासिक तत्व को तीन भागों में बाँटा है– १–पात्रों की ऐतिहासिकता, २–घटनाओं एवं युद्धों की ऐतिहासिकता, ३ वास्तुकला की ऐतिहासिकता।

१ पात्रों की ऐतिहासिकता

१–शाहजहाँ :

शाहजहाँ के विषय में लेखक ने बहुत कुछ बताया है। उपन्यासकार के अनुसार वह अत्यन्त गम्भीर, प्रभावशाली, ६७ वर्ष की आयु में भी सुर्ख चेहरे वाला तथा सतेज दृष्टि वाला है।[१] वह अपने हरम में २००० से ऊपर स्त्रियाँ रखता था।[१] बादशाह जिस स्त्री को चाहते उसे बुड्ढी कुटनियाँ दगा या लोभ देकर जैसे बने रंगमहल में ले आती थीं।[१] बादशाह के अनुचित सम्बन्ध अनेक रईस और उमरा की औरतों से थे जो छिपे नहीं थे। अन्त में यही बादशाह के पतन और सर्वनाश का कारण हुआ।[४] शाहजहाँ केवल तीन घंटे सोता तथा सूर्योदय से पूर्व ही उठकर नमाज पढ़ता था।[५]

उपन्यास और इतिहासकारों के शाहजहाँ में काफी समानता है। उपन्यासकार के अनुसार ही प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० बनारसी प्रसाद सक्सेना[६], श्री एस० आर० शर्मा[७], डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव[८], प्रो० श्रीनेत्र पाण्डेय[९] आदि ने भी शाहजहाँ के विषय में कहा है।

२–औरंगजेब

औरंगजेब शाहजहाँ का तीसरा शहजादा था। वह गौरवर्ण का एक अत्यन्त आग्रही और दृढ़ विचार का युवक था। वह एक घुन्ना आदमी था और उसके मन की बात का पता लगाना टेढ़ी खीर थी। वह ईमानदारी और फकीरी का ढोंग रखता था। बादशाह और दारा उससे बहुत भय खाते थे और इस बला को दूर ही रखना चाहते थे। इसी से बादशाह ने इसे दक्षिण की सूबेदारी सौंप दी थी।[१०]

ऐसा कोई इतिहास नहीं होगा, जिसमें औरंगजेब का चरित्र-चित्रण इस प्रकार से नहीं मिलता होगा। डा० ईश्वरी प्रसाद,[११] डा० आर० एस० त्रिपाठी,[१२] आदि इतिहासवेत्ताओं ने औरंगजेब के विषय में बहुत कुछ लिखा है। डा० यदुनाथ सरकार ने तो 'हिस्ट्री आफ औरंगजेब' नाम की वृहद् पुस्तक लिखी है। लेनपूल ने औरंगजेब के विषय में

---

१. आलमगीर—पृष्ठ ६। २. वही—पृष्ठ ३४। ३. वही—पृष्ठ ३६। ४. वही पृष्ठ ४२।
५. वही—पृष्ठ ३८।
६. डा० बनारसी प्रसाद सक्सेना हिस्ट्री आफ शाहजहाँ आफ दिल्ली, पृष्ठ ११।
७. श्री एस० आर० शर्मा : भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, पृष्ठ ६३२ तथा भारत में मुगल साम्राज्य, पृष्ठ ३६२।
८. डा० आ० ला० श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, पृष्ठ ३१–३६।
९. श्रीनेत्र पाण्डेय भारत का वृहत इतिहास, भाग २, पृष्ठ २८०।
१०. आलमगीर-पृष्ठ ३१
११. डा० ईश्वरी प्रसाद : भारत का इतिहास, भाग २, पृष्ठ १३०।
१२. डा० आर० एस० त्रिपाठी राइज एण्ड फाल आफ द मुगल, एम्पायर, पृष्ठ ४८०।

बड़ा प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया है।[1]

३–दारा

उपन्यासकार के शब्दों में दारा दिल का साफ, स्पष्ट वक्ता, मृदुभाषी और उदार था। परन्तु उसमें एक दोष यह था कि वह घमण्डी और जिद्दी था। इतना होने पर भी वह अच्छा विद्वान था। अरबी फारसी की तो उसने अच्छी शिक्षा पाई ही थी, हिन्दी, संस्कृत का भी वह अच्छा पंडित था। उसने संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद कराया था।[2] उसे न तो राज्य करने का अनुभव था न युद्ध का। कठिनाई और खतरों से वह सदा दूर रहा।[3] वह इतना उद्दण्ड था कि बादशाह के सम्मुख बादशाह पर ही क्रोधित हो उठता था।[4]

इतिहासकारों के लिये प्रमाण दारा प्रच्छन्न नहीं है। प्रत्येक इतिहासकार ने उसका वर्णन किया है। कान्सटेबुल ने दारा की काफी हिमायत ली है।[5] इसी प्रकार मनूची ने भी दारा का पक्ष लिया है।[6]

४–मुराद

शाहजहाँ का सबसे छोटा बेटा मुराद एक बाँका लड़वैया था। परन्तु वह मूर्ख, विलासी और क्रोधी था। केवल अच्छे खाने-पीने, नाच रंग, शिकार, हथियार चलाने में ही वह मस्त रहता था।[7] वह गुजरात का शासक था।[8]

मुराद इतिहास प्रसिद्ध पुरुष है। उपन्यासकार की भाँति इतिहासकारों ने भी उसके विषय में लिखा है। डा० आर० एम० त्रिपाठी ने ऐसा ही वर्णन किया है।[9]

५–शुजा

सुल्तान शुजा शाहजहाँ का दूसरा बेटा था यह दारा से अधिक विनयी और दृढ़ विचार वाला था, बड़ा बुद्धिमान था, परन्तु उसमें सबसे बड़ा दुर्गुण यह था कि वह विलासी, आरामतलब और पियक्कड़ था। वह बंगाल और उड़ीसा का सूबेदार था।[10]

डा० आर० एम० त्रिपाठी,[11] डा० ईश्वरी प्रसाद [12] आदि विद्वानों ने शुजा का इस प्रकार का वर्णन किया है।

६–जहाँआरा

बादशाह की बड़ी लड़की का नाम जहाँआरा था। परन्तु शाही हलकों में वह बड़ी बेगम के नाम से प्रसिद्ध थी। वह एक विदुषी, बुद्धिमती और रूपसी स्त्री थी। वह बड़े प्रेमी स्वभाव की थी साथ ही दयालु और उदार भी। बादशाह ने उसके जेब-खर्च के

१. लेनपूल : मिडिवियल इण्डिया, पृष्ठ ३४१—३४७।
२. आलमगीर–पृष्ठ २२–२४। ३. वही—पृष्ठ २७। ४. वही—पृष्ठ ६७।
५. कान्सटेबुल बर्नियर्स ट्रैवल, पृष्ठ ६।
६. मनूची एशिया आफ मुगल इण्डिया, पृष्ठ ५१।
७. आलमगीर—पृष्ठ ३२। ८. वही—पृष्ठ ११६।
९. डा० आर० एम० त्रिपाठी : राइज एण्ड फाल आफ द मुगल एम्पायर, पृ. ५७–५८।
१०. आलमगीर–पृ. ३०–३१।
११. डा० आर० एम० त्रिपाठी : राइज एण्ड फाल आफ द मुगल एम्पायर, पृ. ४७६।
१२. डा० ईश्वरी प्रसाद : भारत का इतिहास, भाग २, पृ. ९२।

लिए तीन लाख रुपए साल नियत किए थे तथा उसके पानदान के खर्च के लिए सूरत का इलाका दे रखा था, जिसकी आमदनी भी तीन लाख रुपए सालाना थी।[1] बादशाह का उसके प्रति आकर्षण देखकर यह प्रसिद्ध हो गया था कि बादशाह का उससे अनुचित प्रेम है।[1]...... वह दारा की पक्षपातिनी थी और दारा को ही राज्य दिलाना चाहती थी।[2]

डा० ईश्वरी प्रसाद,[3] प्रो० श्रीनेत्र पाण्डेय[4] आदि ने जहाँआरा का वर्णन इसी प्रकार किया है।

७ रोशनआरा

रोशनआरा शाहजहाँ की दूसरी बेटी थी। यह औरंगजेब की पक्षपातिनी थी। वह दारा और शाहजहाँ की गतिविधियों के सब भेद गुप्त रूप से औरंगजेब को भेजती रहती थी।[5]

रोशनआरा के विषय में डा० ईश्वरी प्रसाद,[6] प्रो० श्रीनेत्र पाण्डेय[7] एवं श्री एस० आर० शर्मा[8] ने साक्षी दी है।

८–सुलेमान शिकोह

सुलेमान शिकोह दारा का पुत्र था। वह राजनीति से अनजान तो था ही, बादशाह के दृष्टिकोण से उसका दृष्टिकोण भी नहीं मिलता था।[9]

डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव,[10] प्रो० एस० आर० शर्मा[11] आदि इतिहासज्ञों ने सुलेमान शिकोह के विषय में लिखा है।

९–शाहजादा मुहम्मद सुल्तान

मुहम्मद सुल्तान औरंगजेब का बेटा था। उसने औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह किया, परन्तु औरंगजेब ने उसे पकड़कर ग्वालियर के किले में कैद कर लिया जहां आग चलकर उसकी मृत्यु हो गई।[12]

डा० यदुनाथ सरकार[13] ने उसके विषय में अच्छा वर्णन किया है।

१०–मीरजुमला

उपन्यासकार के अनुसार मीरजुमला चतुर, फुर्तीला, अच्छा शह-सवार था।

---

१. आलमगीर–पृ. २८। २. वही—पृ. ८६।
३. डा० ईश्वरी प्रसाद : भारत का इतिहास, भाग २, पृ. ६२।
४. प्रो० श्रीनेत्र पाण्डेय भारत का वृहद् इतिहास, पृ. २५८।
५. आलमगीर–पृ. ३१।
६. डा० ईश्वरी प्रसाद भारत का इतिहास, भाग २, पृ. ६२।
७. श्रीनेत्र पाण्डेय भारत का वृहद इतिहास, पृ २५६।
८ एस० आर० शर्मा : भारत में मुगल साम्राज्य—अनुवाद डा० मथुरालाल शर्मा, पृ.-३८७।
९. आलमगीर—पृ ९६०।
१०. डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, भाग २, पृ. ३०।
११. एस० आर० शर्मा : भारत में मुगल साम्राज्य, पृ. ४२१।
१२. आलमगीर–पृ. ३०५।
१३. डा० यदुनाथ सरकार : हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृ. ६२।

अपनी प्रतिभा के बल पर वह गोलकुण्डा का प्रधान-मन्त्री बन बैठा।[1] औरंगजेब की खुशामदो से मीरजुमला उसका पक्षपाती बन बैठा। दारा इसे औरंगजेब से अलग करना चाहता था।[2]

प्रो० श्रीनेत्र पाण्डेय,[3] स्मिथ,[4] प्रो० एम० आर० शर्मा[5] आदि ने मीरजुमला का ऐसा ही वर्णन किया है।

११-मिर्जा राजा जयसिंह

मिर्जा राजा जयसिंह ने मुगल शासन को सुदृढ करने में बड़ा योग दिया। प्रारम्भ में यह शाहजहाँ और दारा की ओर से औरंगजेब के विरुद्ध लड़े और बाद में औरंगजेब के दायें हाथ हो गए।[6]

डा० यदुनाथ सरकार,[7] प्रो० एस० आर० शर्मा[8] आदि ने ऐसा ही वर्णन किया है।

१२-छत्रसाल

छत्रसाल शाहजहाँ की सेना के साथ औरंगजेब के विरुद्ध लड़ा और यह वीर समूम गढ के युद्ध में मारा गया।[9]

छत्रसाल की ऐतिहासिकता के विषय में डा० यदुनाथ सरकार[10] एवं प्रो० एम० आर० शर्मा[11] आदि साक्षी देते हैं।

१३-जसवन्तसिंह

राजपूत राजा जसवन्तसिंह शाहजहाँ की सेना का सेनापतित्व करके औरंगजेब की सेना के विरुद्ध लड़ा।[12] और औरंगजेब की विजय के फलस्वरूप युद्धस्थल त्यागकर जोधपुर भाग गया।[13]

डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव,[14] प्रो० एस० आर० शर्मा[15] ने जसवन्तसिंह के विषय में लिखा है।

१४-हीराबाई

हीराबाई एक अप्रतिम सुन्दरी वेश्या थी। औरंगजेब को यदि कोई अंगुली पर

---

१. आलमगीर-पृ. ११। २. वही—पृ. ११।
३. श्रीनेत्र पाण्डेय: भारत का बृहद् इतिहास, पृ. २४६-२४६।
४. स्मिथ—औक्स फोर्ड हिस्ट्री, पृ. ४१०।
५. प्रो० एम० आर० शर्मा: भारत में मुगल साम्राज्य, पृ. ४२७
६. आलमगीर—पृ. २६२-२६४
७. डा० यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृ ५०३।
८. प्रो० एस० आर० शर्मा. भारत में मुगल साम्राज्य पृ. ४२८।
९. आलमगीर—पृ. २४५।
१०. डा० यदुनाथ सरकार: हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृ. ४०१-४१०।
११. एम० आर० शर्मा: भारत में मुगल साम्राज्य, पृ. ३६६।
१२. आलमगीर-पृ. १०६। १३. वही—पृ. २१२।
१४. डा० आ० ला० श्रीवास्तव: मुगलकालीन भारत, भाग २, पृ २६।
१५. एम० आर० शर्मा: भारत में मुगल साम्राज्य, पृ. ४२८।

नचा सकता था तो वह यही स्त्री थी। इसी के कारण औरंगजेब को शराब पीनी पड़ी थी। यह औरंगजेब की प्रेयसी थी।[1]

डा० यदुनाथ सरकार[2] डा० आर० एम० त्रिपाठी[3] ने हीराबाई की ऐतिहासिकता के विषय में लिखा है।

२ घटनाओं एवं युद्धों की ऐतिहासिकता

१ — मुगल सिंहासन की प्राप्ति के लिए औरंगजेब का कूट-चक्र

औरंगजेब ने अपनी बुद्धिमत्ता से रोशनआरा के द्वारा राजमहल के सब भेद ज्ञात कर लिए जिससे वह दारा के विरुद्ध अपनी गतिविधियों को ठीक प्रकार से संचालित कर सका। इसके अतिरिक्त मीरजुमला और मुराद बख्श की शक्तियों को अपनी चालाकी से अपनी शक्ति में मिलाकर दारा की शक्ति के विरुद्ध अधिक सशक्त होकर अग्रसर हुआ। इसके लिये उसने मीरबाबा को मुराद को फुसलाने भेजा और मुराद उसके चक्करों में आगया।[4]

प्रसिद्ध विद्वान डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव[5] एवं प्रो० एस० आर० शर्मा[6] ने इस घटना की साक्षी दी है।

२ — मीरजुमला की शह

मीरजुमला ऊपर से दिखाने के लिये औरंगजेब के विरुद्ध शाही सेना का संचालन कर रहा था, परन्तु अन्दर से उसने सेनापतियों को औरंगजेब की सेना को नुकसान न पहुचाने का आदेश दिया हुआ था चूंकि मीरजुमला के बालबच्चे आगरा में दारा के पास थे इसलिये वह खुले रूप से औरंगजेब से नहीं मिल सकता था। इसलिये दोनों में गुप्त मन्त्रणा हुई और औरंगजेब ने मीरजुमला को कैद कर लिया। इस प्रकार मीरजुमला की सारी सैन्य-शक्ति औरंगजेब के हाथ आ गई।[7]

प्रो० एस० आर० शर्मा उपर्युक्त घटना की साक्षी देते हैं।[8]

३ — धरमत का युद्ध

शाही सेना और औरंगजेब की सेना के बीच धरमत का युद्ध प्रसिद्ध हुआ। शाही सेना का संचालन राजा जसवन्तसिंह कर रहे थे। शाही सेना की हार हुई। महाराजा जसवन्तसिंह हार कर सीधे जोधपुर की राह चल पड़े।[9]

---

१. आलमगीर : पृ० १२६–१३३।
२. डा० यदुनाथ सरकार : हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृ० ५७–५६।
३. डा० आर. एस. त्रिपाठी : राइज एण्ड फाल आफ द मुगल एम्पायर, पृ० ४८०।
४. आलमगीर : पृ० १४२–१५४।
५ डा आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, भाग २, पृ० २७-२८।
६ प्रो एस आर. शर्मा : भारत में मुगल साम्राज्य - अनुवादक डा. मथुरालाल शर्मा, पृ. ४६५।
७. आलमगीर पृ० १५४–१६०।
८. प्रो एस आर. शर्मा भारत में मुगल साम्राज्य - अनुवादक डा. मथुरालाल शर्मा, पृ. ४२७।
९. आलमगीर पृ. २०६-२१३।

डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव[1], प्रो० एम० आर० शर्मा[2], डा० यदुनाथ सरकार[3] आदि ने ऐसा ही वर्णन किया है।

४ – समूम गढ़ का युद्ध

दारा के सेनापतित्व में शाही सेना का औरंगजेब और मुराद की संयुक्त सेना के साथ समूम गढ़ का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। इस युद्ध में दारा की भयंकर हार हुई, दारा हार कर आगरा भाग गया।[4]

डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव[5], प्रो० एम० आर० शर्मा[6], डा० यदुनाथ सरकार[7] आदि ने ऐसा ही वर्णन किया है।

५— बहादुरपुर का युद्ध

मुगल सिंहासन को हस्तगत करने के लिये शुजा ने भी प्रयास किया। उसने विशाल सेना लेकर बंगाल से कूच किया। उसको रोकने के लिये मिर्जा राजा जयसिंह, दिलेरखाँ के साथ सुलेमान शिकोह को शाही सेना के साथ दारा ने भेजा। दोनों सेनाओं में बहादुरपुर का युद्ध हुआ और अन्त में शुजा हार कर सेना सहित बंगाल भाग गया।[8] शाही सेना ने बंगाल तक उसका पीछा किया। सुलेमान शिकोह की जिद के कारण शाही सेना को सूरजगढ़ में अटक जाना पड़ा और सुलेमान शिकोह को शुजा से सन्धि करनी पड़ी उसे बंगाल, पूर्व बिहार, उड़ीसा का प्रदेश देना पड़ा।[9]

डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव[10] प्रो० एम० आर० शर्मा[11] आदि प्रत्यक्ष इतिहासकार ने इस युद्ध की साक्षी दी है।

६-दारा का पलायन :

अपना पतन देखकर दारा आगरा से अपने परिवार सहित दिल्ली की ओर भाग गया।[12]

डा० यदुनाथ सरकार[13], डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव[14] आदि ने इस घटना का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है।

७-औरंगजेब द्वारा दारा का पीछा करना :

मुराद से छुट्टी पाकर औरंगजेब ने दारा का पीछा किया। दारा भागकर सिन्ध

---

१. डा. आ. ला. श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, पृ. २६ (भाग २)।
२. प्रो. एम. आर. शर्मा : भारत में मुगल साम्राज्य, पृ० ४२८।
३. डा. यदुनाथ सरकार : हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृ. ३३६–३५४।
४ आलमगीर : पृ. २३७–२४६।
५. डा. आ. ला. श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत भाग २, पृ. २६।
६. प्रो. एम. आर. शर्मा : भारत में मुगल साम्राज्य, पृ० ४२६।
७. डा. यदुनाथ सरकार : हिस्ट्री आफ औरंगजेब पृ. ३८८–३६१।
८. आलमगीर पृ० १८८–१९६। ९. वही : पृ० २५१–२५२।
१०. डा. आ. ला. श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, भाग २, पृ. ३४।
११. प्रो. एम. आर. शर्मा : भारत में मुगल साम्राज्य, पृ. ४२६।
१२. आलमगीर : पृ. २५५।
१३. डा. यदुनाथ सरकार : हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृ. ४०६-४११।
१४. डा. आ. ला. श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, भाग २, पृ. ३२।

की राह पहुँचा। औरंगजेब स्वयं आगरा लौट आया परन्तु उसने मीरबाबा की आधीनता में ८, १० हजार सवार दारा का पीछा करने को भेजे।[1]

डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव[2] ने इसकी साक्षी दी है।

८—दोराई की लड़ाई .

कच्छ के महारन को पार करके दारा अहमदनगर पहुँचा जहाँ उसने शाहनवाज को अपने साथ मिलाया और अजमेर की ओर चला। यहाँ वह जसवन्तसिंह के विश्वास पर आया था परन्तु जयसिंह के कहने से उसने दारा की सहायता देने से इन्कार कर दिया। अब वापिस लौटना उसके लिए सम्भव न था। फलत उसे औरंगजेब से युद्ध करना पड़ा। यह युद्ध दोराई की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें दारा को हारकर वापिस भागना पड़ा।[3]

डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव[4], डा० यदुनाथ सरकार[5] आदि ने इसकी पुष्टि की है।

६—दारा का विश्वासघाती के हाथ में पड़ना :

दारा भागकर अपने पुराने कृपा-पात्र दादर के पठान सरदार जीवनखाँ के पास पहुँचा। उसने उसे परिवार सहित मीरबाबा के सुपुर्द कर दिया।[6]

डा० कालिकारंजन कानूनगो ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "दारा शिकोह" में उपन्यास जैसा ही वर्णन किया है।[7] डा० यदुनाथ सरकार[8], डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव[9] ने भी इसकी पुष्टि की है।

१०—बन्दी दारा दिल्ली के बाजारों में

मीरबाबा दारा को कैदकर औरंगजेब के पास ले आया। औरंगजेब ने एक बूढ़ी, गन्दी हथिनी पर दारा को फटे-हाल बैठाकर दिल्ली के बाजारों में घुमवाया।[10]

डा० कालिकारंजन कानूनगो[11], डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव[12] ने भी ऐसा ही वर्णन अपनी पुस्तकों में किया है।

११—दारा का कत्ल

औरंगजेब की आज्ञा के अनुसार नजरबेग ने दारा का सर तलवार से काट

---

१. आलमगीर : पृ. २८८–२९१।

२. आ. ला. श्रीवास्तव : मुगल कालीन भारत, भाग २, पृ. ३२।

३. आलमगीर : पृ. ३०७–३१०।

४. डा. आ. ला श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, भाग २, पृ. ३३।

५. डा. यदुनाथ सरकार : हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृ. ५०७-५१४।

६. आलमगीर : पृ. ३११–३१३।

७. डा. कालिकारंजन कानूनगो : दारा शिकोह, पृ. २२६।

८. डा. यदुनाथ सरकार : हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृ. ५४०।

९. डा. आ ला. श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, भाग २, पृ. ३३।

१०. आलमगीर : पृ. ३१४–३१५।

११. डा. कालिकारंजन कानूनगो : दारा शिकोह, पृष्ठ २३०।

१२. डा आ. ला. श्रीवास्तव मुगलकालीन भारत, भाग २, पृ. ३३।

लिया और चांदी की थाली में रखकर मुँह पर से खून के धब्बे धोकर औरंगजेब ने लाश को देखकर शहर में घुमवाने की आज्ञा दी।

दारा के कत्ल की घटना का विवरण प्रत्येक इतिहासकार ने दिया है। इस घटना के विषय में इतिहासकारों में मतैक्य है। डा० कालिकारंजन कानूनगो ने तो दारा के कत्ल के वर्णन में उपन्यासकार को भी मात कर दिया। उन्होंने दारा के कत्ल का बड़ा ही कारुणिक चित्रण किया है। इतिहासकार का वर्णन उपन्यासकार के वर्णन से अधिक प्राणवान है।[1] ट्रेवल्स आफ टैवर्नियर में भी बड़ा रोमांचकारी वर्णन किया है।[2] डा० यदुनाथ सरकार ने भी ऐसा ही मार्मिक वर्णन किया है।[3] इतिहास के इन पृष्ठों को पढ़कर नेत्र छलछला आते हैं परन्तु उपन्यास अन्तर के उस छोर को स्पर्श नहीं करता जो आँखें गीली कर दे। दारा के कत्ल का वर्णन इतिहास में उपन्यास से कई गुने अधिक पृष्ठों में मिलता है।

१२–शाहजहाँ कैद में

औरंगजेब ने अपने बेटे द्वारा अपने वृद्ध एवं रोगी बाप शाहजहाँ को आगरा में कैद करवा लिया।[4]

डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव[5] आदि प्रत्येक इतिहासकार ने शाहजहाँ की इस दशा के विषय में लिखा है।

१३–मुराद का सफाया

औरंगजेब के समक्ष इस समय प्रत्यक्ष बाधा केवल मुराद रह गया था। शेष सबका प्रायः सफाया हो गया था। औरंगजेब ने अपनी बुद्धिमत्ता से मुराद को कैद करके ग्वालियर के किले भिजवा दिया।[6] जहाँ बाद में वह सैयद के बेटे द्वारा कत्ल करवा दिया गया।[7]

डा० आशीर्वादी श्रीवास्तव,[8] प्रो० एस० आर० शर्मा[9] ने इसकी पुष्टि की है।

१४–सुलेमान शिकोह की दुर्दशा

अपने पिता का पलायन देखकर सुलेमान शिकोह बेसहारा सा हो गया और अपने को शत्रु सेना से घिरा देखकर उसने निराश होकर गढ़वाल के राजा का आश्रय लिया।[10]

---

१. डा० कालिकारंजन कानूनगो दारा शिकोह, पृष्ठ २३२–२३३।
२. ट्रेवल्स आफ टैवर्नियर, वाल्यूम १, पृ. ३५१–३५२।
३. डा यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृष्ठ ५४७ ५४८।
४. आलमगीर पृष्ठ २६३–२६८।
५. डा० आ० ला० श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, भाग २, पृष्ठ २।
६. आलमगीर : पृष्ठ २७६–२८६। ७. वही पृ ३२१।
८. डा० आ० ला० श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, भाग २, पृष्ठ ३१।
९. प्रो० एस० आर० शर्मा . भारत में मुगल साम्राज्य, पृष्ठ ४२६।
१०. आलमगीर पृष्ठ २८८–२८९।

डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव,[1] डा० यदुनाथ सरकार[2] आदि प्रसिद्ध इतिहासज्ञ शिकोह की दुर्दशा के विषय में इसी प्रकार लिखते हैं।

१५–खजुआ की लड़ाई

शुजा ने फिर सैन्य सगठन किया और औरंगजेब से लोहा लेने को आगे बढ़ा। औरंगजेब की सेना भी उसका उत्तर देने को आगे बढ़ी। दोनों सेनाओं में खजुआ का भयंकर युद्ध हुआ। शुजा हार कर रणक्षेत्र से भाग गया।[3]

डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव,[4] प्रो० एस० आर० शर्मा[5] ने खजुआ के युद्ध के विषय में आचार्य चतुरसेन की पुष्टि की है।

१६–शुजा की शामत और समाप्ति

औरंगजेब से डरकर शुजा बनारस और पटना होता हुआ बंगाल के द्वार तक पहुँच गया। शाही सेना बराबर उस पर मार करती रही। एक आध स्थान पर शाही सेना को हार खानी पड़ी।[6] परन्तु और सैनिक सहायता प्राप्त कर मीरजुमला ने शुजा को चारों ओर से घेर लिया। शुजा ढाका की ओर भाग गया और ढाका से अराकान चला गया। अराकान के राजा के साथ शुजा ने विश्वासघात किया। इस पर राजा ने उसके सारे परिवार को तलवार के घाट उतार दिया।[7]

डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव[8] ने इसकी पुष्टि की है।

१७–आखिरी शिकार

औरंगजेब के समस्त शत्रुओं में केवल दारा का पुत्र सुलेमान शिकोह बचा था। टिहरी के राजा पर औरंगजेब ने चढ़ाई का निश्चय किया। इस पर उसने डरकर शिकोह को औरंगजेब को वापिस कर दिया। उसे कैद कर ग्वालियर के किले में भेज दिया गया। जहाँ वह एक साल तक पोस्त पी-पी कर मर गया।[9]

डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव[10] ने इसकी पुष्टि की है। डा० यदुनाथ सरकार ने ने बड़ा मार्मिक वर्णन किया है।[11] आचार्य श्री तो बस एक सूचना सी दे गए हैं जबकि इतिहास के इन पृष्ठों को पढ़ते-पढ़ते एक आह निकल पड़ती है।

३ वस्तुकला की ऐतिहासिकता

१–तख्ते ताऊस

शाहजहाँ की आज्ञा से बेदादल खाँ ने दो सौ चुने हुए कारीगरों की सहायता से

१. आ० ला० श्रीवास्तव मुगलकालीन भारत, भाग २, पृष्ठ ३४।
२. डा० यदुनाथ सरकार हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृष्ठ ५५७–५६०।
३ आलमगीर पृ. २६४–२६५।
४ डा० आ० ला० श्रीवास्तव : मुगल कालीन भारत, भाग २, पृ. ३४।
५ प्रो० एस० आर० शर्मा : भारत में मुगल साम्राज्य पृ ४३०।
६ आलमगीर पृष्ठ ३००–३०४। ७. वहीं पृष्ठ ३२१-३२३।
८ डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव मुगलकालीन भारत, भाग २, पृष्ठ ३४।
९ आलमगीर : पृष्ठ ३२३-३२५।
१०. डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, भाग २, पृष्ठ ३४।
११. डा० यदुनाथ सरकार हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृ. ५६०-५६१।

आठ वर्ष में करोड़ों रुपये की लागत से इसने ताऊस तैयार कराया। यह सिंहासन साढ़े तीन गज लम्बा और सवा दो गज चौड़ा तथा पाँच गज ऊँचा था। ... सिंहासन के भीतर हाजी मुहम्मद जान कुदसी की बनाई चालीस पंक्तियों की एक कविता मीनाकारी के अक्षरों में खुदी हुई थी। कविता के अन्त तीन शब्द थे—औरंग इ-शाहंशा इ आदिल अर्थात् न्याय-परायण राजाधिराज का सिंहासन।[1]

प्रसिद्ध इतिहासकार डा० ईश्वरीप्रसाद,[2] बादशाहनामा के आधार पर प्रो० एस० आर० शर्मा[3] आदि ने इसी प्रकार का वर्णन विश्व विश्रुत तख्त ताऊस के विषय में किया है।

२—ताजमहल

आचार्य श्री ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास आलमगीर में ताजमहल का जिक्र कई स्थानों पर किया है। उन्होंने कहीं भी ताजमहल का कोई विस्तृत वर्णन नहीं दिया। उल्लेख मात्र किया है।

यह इतिहास प्रसिद्ध और विश्व-प्रसिद्ध बात है कि शाहजहाँ ने आगरा में ताजमहल का निर्माण करवाया और आज ताजमहल की गणना विश्व के आश्चर्यों में की जाती है अतः इसके प्रमाण स्वरूप इतिहास की साक्षी को प्रस्तुत करना व्यर्थ है।

३—लाल किले

इतिहास प्रसिद्ध दो लाल किलों का उल्लेख उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में किया है। सर्व प्रथम उसने दिल्ली के लालकिले का अच्छा वर्णन किया है, इसके पश्चात् आगरा के लालकिले का कोई विशेष वर्णन न करके केवल एक आध स्थान पर उल्लेख किया है।

ताजमहल की भाँति ये लाल किले भी अपनी ऐतिहासिकता रखते हैं इसलिए इनकी साक्षी में इतिहास के पृष्ठों का उल्लेख व्यर्थ है।

संक्षेप में आलमगीर में ऐतिहासिक तत्व उपरोक्त प्रकार है। जैसाकि पहले कहा गया है कि इस उपन्यास में अधिकांशतः ऐतिहासिक तत्व ही है कल्पना का आश्रय बहुत कम लिया गया है।

शेष अप्रमुख पात्रों का उल्लेख पात्र विश्लेषण में कर दिया गया है।

उपन्यास में कल्पना

इसी अध्याय में 'उपन्यास में ऐतिहासिक तत्व' के अन्तर्गत हम कह आए हैं कि आचार्य चतुरसेन शास्त्री का यह उपन्यास विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें कल्पना को स्थान बहुत कम है। एक घटना के वर्णन में उपन्यासकार ने कल्पना का उतना ही आश्रय लिया है जितना एक इतिहासकार लेता है। एक विशिष्ट वर्णन को इतिहासकार अपनी भाषा में बद्ध करता है, इसी प्रकार उपन्यासकार ने 'आलमगीर' में वर्णित घटनाओं को अपनी भाषा में बाँधा है। कल्पना के दर्शन प्राय उन स्थान पर होते हैं जहाँ ऐतिहा-

[1] आलमगीर : पृ ४-६।

[2] डा० ईश्वरी प्रसाद : भारत का इतिहास, भाग २, पृ ८८।

[3] प्रो. एस. आर. शर्मा : भारत में मुगल साम्राज्य—अनुवादक डा. मथुरालाल शर्मा, पृ. ४४३

सिक घटना को कथोपकथन के माध्यम से वर्णित किया है। सक्षेप मे कल्पना के दर्शन निम्न प्रकार के होते हैं —

१—लुत्फए शाहजहाँ

यह बात तो इतिहास-सिद्ध है कि बेगम जफर खाँ से शाहजहाँ का अवैध सम्बन्ध था परन्तु जब वह पालकी मे बैठकर शाहजहाँ के किले की ओर जाती थी तो एक फकीर उसे कहता था—ऐ लुत्फए शाहजहाँ हमको भी कुछ देती जा, और बेगम मुट्ठी भर अशर्फियाँ उसकी ओर फेक कर सवारी आगे बढाती।[1] इसी मे आगे शाहजहाँ का बेगम जफर खाँ के साथ प्रेमालाप दिखाया है।

इन प्रकार के स्थलो पर कल्पना के रग चढाकर लेखक ने उपन्यास मे रमणीयता लाने का प्रयास किया है, परन्तु ऐतिहासिकता के घटा-टोप मे रमणीयता की ये किरणें प्रकाश उत्पन्न नही कर सकी।

२—बेगम की बारहदरी

बडी बेगम जहाँआरा अपनी बारहदरी मे सैर के लिए गई। वहाँ तीन व्यक्तियो के साथ बडी बेगम के प्रेम की चर्चा दिखाई है—दूल्हा मियाँ, नजाबत खाँ और राय छत्रसाल। दूल्हा मियाँ और नजाबत खाँ दोनो मन ही मन अपने को बेगम का मालिक समझते थे और बेगम प्यार का स्वाग रचकर इनको मूर्ख बनाती थी। राय छत्रसाल को बेगम दिलोजान से चाहती थी। बेगम ने अपना प्यार बेहूदा ढग से छत्रसाल पर प्रकट किया पर छत्रसाल उसके कामुक प्यार को ठुकरा कर चले गए। बेगम शेरनी की तरह गरज उठी।[2]

इस स्थल की सर्जना से आचार्य चतुरसेन ने 'आलमगीर' मे औपन्यासिकता भरने की चेष्टा की है। लगता है कि आचार्य श्री की यह धारणा रही थी कि अश्लीलता के छोर को स्पर्श करने वाले प्रेम प्रसग उपन्यास को सप्राण कर देते हैं। और इसीलिए शायद उन्होंने इस प्रकार के प्रेम प्रसगो की सर्जना प्राय अपने हर उपन्यास मे की है। परन्तु इस वृत्ति से उपन्यास मे हल्कापन ही आया है।

३—दलित कुसुम

यह भी वास्तव मे ऐतिहासिक तथ्य ही है कि शाहजहाँ के अवैध सम्बन्ध की शिकार बेगम शाइस्ता खाँ भी थी। पर वह इतनी सती सावित्री थी कि शाहजहाँ द्वारा अपने सतीत्व के नष्ट किए जाने पर उसने अन्न-जल ग्रहण न करके आत्मघात कर लिया[3]—इस ऐतिहासिक तथ्य पर आचार्य श्री की कल्पना का मुलम्मा है। औपन्यासिकता की अभिवृद्धि के लिए उपन्यासकार ने इस ऐतिहासिक घटना को इस प्रकार चित्रित किया है।

इसी प्रकार कुछ अन्य स्थल हैं जिनमे कल्पना का कुछ प्रयोग हुआ। परन्तु वे घटनाएँ हैं ऐतिहासिक ही। जैसे औरगजेब द्वारा मुराद को फुसलाकर अपनी ओर मिलाना[4] और बाद मे दारा का सफाया कर देने पर औरगजेब का उसे कैद करके ग्वालियर के किले में भेज देना[5] परन्तु इन घटनाओ के वर्णन मे लेखक ने थोडी बहुत कल्पना से काम

१. आलमगीर पृ. ५७। २. वही पृ ५६—६४। ३. वही पृ० ८१—८३।
४. आलमगीर पृ. १०३—१०७। ५ वही पृ १५२—१५३। ६ वही पृ० २७२—२८५:

लिया है और जसाकि पहले कह चुके हैं कि यह कल्पना इतनी ही है जितनी इतिहासकार लेता है।

४— सूरत मे दो विदेशी यात्री

सूरत में दो योरोपियनो ने किसी भारतवासी को पान थूकते देखा तो वे एक से पूछने लगे कि 'मोसियें, ये देसी लोग खून क्यों थूक रहे हैं ?' इसपर उन्हे बताया गया कि यह खून नही, पान है। और भारत में आकर भारत के रीति रिवाजो से परिचित होना चाहिये इसलिये दोनो ने पान का मजा चखने की सोची। पनवाडी ने मजाक में पान म थाडा जर्दा डाल दिया। विदेशी युवक मूर्च्छित होकर गिर पडा। इस पर उसका साथी दूकानदार पर तलवार लेकर दौडा। तो उसे समझाया गया कि अभी ठीक हुआ जाता है।[1]

इस घटना की सर्जना से उपन्यासकार ने कौतूहल की वृद्धि की है। यह घटना नितान्त काल्पनिक नही है। विदेशी यात्री भारत मे आते थे और उन्हें इस प्रकार का आश्चर्य होता था।

कल्पना मण्डित ऐतिहासिक तथ्यो वाले कथोपकथन निम्न प्रकार है —

१— पिता (शाहजहा), पुत्री (जहाआरा), पुत्र (दारा)[2] के कथोपकथनो म मुगल सिंहासन पर भावी आपत्ति की आशका व्यक्त की गई है।

२— मीरजुमला, दारा और शाहजहाँ के बीच कथोपकथन – जिसमे मीरजुमला के परिवार को दारा के सरक्षण मे रखकर मीरजुमला को दक्षिण भेजे जाने की आज्ञा बादशाह द्वारा दी गई है।[3]

३— रोशनआरा और उसकी बाँदियो के बीच कथोपकथन – जिसमे रोशनआरा को औरगजेब के लिये जासूसी दिखाई है।[4]

४— हीराबाई और औरगजेब का प्रेमालाप – औरगजेब को हीराबाई के हाथ की कठपुतली दिखाया है। वह हीराबाई के हाथ से शराब भी पीता है।[5]

५— मीरजुमला और औरगजेब का वार्तालाप – जिसमे औरगजेब की सैन्य शक्ति मे चालाकी से मीरजुमला की सैन्य शक्ति को मिलाने की चर्चा है।[6]

६— दारा और शाहजहाँ का कथोपकथन – जिसमे दारा द्वारा वजीर सादुल्ला खाँ के मार डाले जाने पर शाहजहा का दारा पर कुपित होना दिखाया है। साथ ही दारा का शाहजहाँ के प्रति अभद्र व्यवहार भी दिखाया है जिससे वृद्ध, रोगी बादशाह बूढ़े शेर की तरह गरज उठा।[7]

सक्षेप मे इतनी ही कल्पना का आश्रय आचार्य चतुरसेन ने अपने इस उपन्यास मे लिया है।

---

१. आलमगीर—पृष्ठ ११०-१२२ २. वही—पृष्ठ ६४-७२।
३. वही—पृष्ठ १०१-१०३। ४. वही —पृ. १०७-११२। ५. वही—पृष्ठ १२८-१३२।
६. वही—पृष्ठ १३४-१३८। ७. वही—पृष्ठ १७६-१८०।

उपन्यास का घटना-विश्लेषण

१ पूर्ण ऐतिहासिक :

१/1 शाहजहाँ द्वारा तख्ते-ताऊस का निर्माण कराना।

२/2 मीरजुमला का बीदर के किले को जीतने के पश्चात शाहजहाँ से मिलना तथा बादशाह को एक हीरा भेंट करके गोलकुण्डा बीजापुर आदि पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित करना।

३/3 अपनी बेगम के साथ मीरजुमला का अनुचित सम्बन्ध जानकर गोलकुण्डा के शाह का क्रोधित होना, मीरजुमला के लड़के का गद्दी पर उल्टी करना, डर कर मीरजुमला का भागना और औरंगजेब से दोस्ती करना।

४/4 मीरजुमला से मिलकर औरंगजेब का गोलकुण्डा पर आक्रमण करना शाहजहाँ का दारा के कहने पर युद्धबन्दी का आदेश देना, बीजापुर, गोल्कुण्डा से सधि करना।

५/5 दारा का महान सेनापति महाबत खाँ का अपमान करना सादुल्ला खाँ को विष देकर मरवा डालना एवं जयसिंह का अपमान करना।

६/6 शाहजहाँ के जहाँआरा के साथ अवैध सम्बन्ध की बात फैलना।

*/7 जफरखाँ और खलीलुल्ला खाँ आदि की औरतों के साथ शाहजहाँ के अनुचित सम्बन्ध के फलस्वरूप इनका शाहजहाँ के विरुद्ध होना।

८/10 शाहजहाँ का कासिम खाँ के द्वारा हुगली के पुर्तगालियों को कैद करवाना।

९/12 मीरजुमला का अपने परिवार को दारा के सरक्षण मे छोड़ कर दक्षिण विजय के लिए प्रस्थान करना।

१०/14 शाहजहाँ की छोटी लड़की रोशनआरा का औरंगजेब के लिये जासूसी का कार्य करना।

११/15 मीरजुमला का दक्षिण मे कुछ किले जीतना, बीजापुर से सन्धि करना, शाहजहाँ का मीरजुमला को वापिस लौटने का आदेश देना।

१२/16 शाहजहाँ का बीमार पड़ना, चारो भाइयो का गद्दी को प्राप्त करने के लिये विचार करना।

१३/17 औरंगजेब का हीराबाई वेश्या के कहने से शराब पीना।

१४/18 औरंगजेब का मुराद की फुसलाना, शिवाजी को अपने पक्ष मे करने के लिए पत्र भेजना।

१५/20 औरंगजेब का मुराद को पत्र भेजना, मुराद का औरंगजेब को सहायता देना।

१६/21 औरंगजेब की कूटनीति— मीरजुमला को दिखावटी कैद करना।

१७/2· मुराद का औरंगजेब के कहने से सूरत लूटना।

१८/24 शाहजहाँ का मिर्जाराजा जयसिंह को सुलेमान शिकोह के साथ शुजा को वापिस लौट जाने के लिए, समझाने भेजना।

१९/25 शुजा और सुलेमान शिकोह के बीच बहादुरपुर का युद्ध होना, शुजा का बंगाल की ओर हारकर भागना।

२०/26 जसवन्तसिंह तथा कासिम खाँ की सेना का और औरंगजेब तथा मुराद की सेना के बीच धरमत का युद्ध होना, औरंगजेब की जीत।

२१/27 धरमत के युद्ध से दो यूरोपियों का लूट का माल लेकर भागना, एक का सराय में मरना, शाही सेना द्वारा उसकी सम्पत्ति हड़पना, दूसरे का दारा के पास जाना, दारा का प्रसन्न होकर उसे नौकर रखना।

२२/28 दारा और औरंगजेब में सामूगढ़ का युद्ध हार कर दारा का आगरा भाग जाना।

२३/29 औरंगजेब के डर से दारा का आगरा से भाग जाना।

२४/30 औरंगजेब का आगरा के पास पड़ाव डालना तथा शाहजहाँ का नीतिपूर्ण पत्र लिखना।

२५/31 औरंगजेब का अपने बेटे मुहम्मद सुल्तान से शाहजहाँ को कैद करवाना।

२६/32 औरंगजेब का दारा का पीछा करना तथा मुराद को कैद करना।

२७/33 औरंगजेब का दिल्ली लौट जाना मीरबाबा को दारा का पीछा करने के लिए छोड़ जाना।

२८/34 सुलेमान शिकोह का गढ़वाल के राजा की शरण जाना, औरंगजेब की सेना और शुजा की सेना में युद्ध होना, तथा शुजा की हार होना।

२९/35 औरंगजेब का मीरजुमला और अपने बेटे को शुजा का पीछा करने भेजना।

३०/36 मुहम्मद सुल्तान को कैद करके ग्वालियर के किले में भेजना।

३१/37 देवराई का युद्ध, दारा की हार।

३२/38 दारा का अपने पुराने मित्र जीवन खाँ के पास जाना, जीवन खाँ का उसे परिवार सहित मीरबाबा के सुपुर्द करना, मीरबाबा का दारा को दिल्ली लाकर औरंगजेब के हवाले करना, औरंगजेब का उसे फटेहाल दिल्ली के बाजारों में घुमवाना, दारा का कत्ल, उसके सिर को बाजारों में घुमवाना।

३३/39 ग्वालियर के शाही कैदखाने में सैयदों द्वारा मुराद का कत्ल, गढ़वाल के राजा से सुलेमान शिकोह को मंगवाकर ग्वालियर में कैद करना, वहाँ उसे पोस्त पिला-पिलाकर मार डालना।

३४/40 शुजा का सपरिवार अराकान जाना वहाँ के राजा के साथ उसका विश्वासघात करना तथा राजा का उसके समूचे परिवार का कत्ल कराना।

२. इतिहास-संकेतित :

१/8 जहाँआरा और दारा का शाहजहाँ को दरबारी शाइस्ता खाँ आदि की स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध से उत्पन्न राजनीति की भयंकरता से अवगत कराना।

२/19 मुराद का शिकार खेलना।

३. कल्पित इतिहास-अविरोधी :

१/11 दारा का हुमायूँ के बंदियों में से प्राप्त आजिदाना लड़की के प्रति भावविह्वल होना, उसे अपने हरम में लाना, उसे अपनी बेगम बनाने का प्रयास करना।

२/22 सूरत में किसी हिन्दुस्तानी को पान खाते देखकर दो यूरोपियों को कुतूहल होना।

४ कल्पनातिशायी

१/9 बारहदरी में जहांआरा के साथ छत्रसाल, नजाबत खां, खानजहां तीनों प्रेमियों का इकट्ठा होना, जहांआरा का छत्रसाल का प्रायश्चित्त देना।

२/13 शाइस्ता खां की पत्नी का शाहजहां के द्वारा भ्रष्ट हो जाने पर प्राण त्यागना।

नोट–(घटना संख्याओं के दो क्रम हैं (१) देवनागरी अंक अपने वर्ग की घटनाओं के क्रम-द्योतक हैं, (२) रोमन अंक उपन्यास की सक्रम घटनाओं के द्योतक हैं।)

आलमगीर के घटना–विश्लेषण का रेखाचित्र
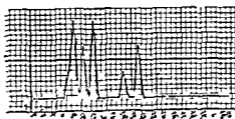
घटना विश्लेषण के रेखाचित्र की व्याख्या

रेखाचित्र के अनुसार

पूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ	३४	=८५.००%
इतिहास-सकेतित घटनाएँ	२	=५.००%
कल्पित किन्तु इतिहास अविरोधी घटनाएँ	२	=५.००%
कल्पनातिशायी घटनाएँ	२	=५.००%
कुल घटनाएँ	४०	१००.००%

उपन्यास में इतिहास प्रस्तुत करने वाले तत्व =८५.००%+५.००%=९०.००%

उपन्यास में रमणीयता प्रस्तुत करने वाले तत्व=५.००% +५.००=१०.००%

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रमणीयता प्रदान करने वाले तत्व केवल १०.००% है अर्थात् केवल १०.००% घटनाएँ ऐसी हैं जो उपन्यास में रोचकता की अभिवृद्धि करती हैं। शेष ९०% घटनाएँ इतिहास प्रस्तुत करने में संलग्न हैं। अतः अत्युक्ति नहीं होगी यदि कहा जाए कि 'आलमगीर' की ९०% घटनाएँ इतिहास के पृष्ठ मात्र हैं। अस्तु आलमगीर घटनाओं के दृष्टिकोण से पूर्ण ऐतिहासिक हैं नीरस है।

उपन्यास का पात्र–विश्लेषण

१. पूर्ण ऐतिहासिक

१/1 शाहजहां २/2 मीरजुमला ३/3 औरंगजेब ४/4 दारा ५/5 जयसिंह ६/6 जहांआरा ७/7 शुजा ८/8 मुराद ९/9 खलीलुल्ला खां १०/10 बेगम जफर खां ११/11

शाइस्ता खाँ १२/12 रोशन आरा १३/13 नजाबत खाँ १४/15 छत्रसाल १५/17 बेगम शाइस्ता खा १६/18 मीरबावा १७/19 हीराबाई १८/20 सुलेमान शिकोह १९/21 दिलेर खाँ २०/22 मुहम्मद सुल्तान २१/23 शाहजादा मुअज्जम २२/24 जीवन खाँ।

२ कल्पित इतिहास अविरोधी

१/ 4 दुल्हा २/16 जाजियाना लौंडी।

आलमगीर के पात्र-विश्लेषण का रेखाचित्र
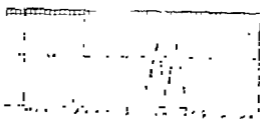
पात्र विश्लेषण के रेखाचित्र की व्याख्या

रेखाचित्र के अनुसार

पूर्ण ऐतिहासिक पात्र	२२ = ९१ ६७%
इतिहास सकेतित पात्र	० = ०० ००%
कल्पित किन्तु इतिहास अविरोधी पात्र	२ = ८ ३३%
कल्पनातिशायी पात्र	० = ०० ००%
कुल पात्र	२४ १०० ००%

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ९१ ६७% पात्र इतिहास की गाथा कहने मे सलग्न हैं केवल ८ ३३% पात्र ऐसे हैं जो उपन्यास मे रमणीयता ला सकते हैं। अत इस दृष्टि से रस दृष्टि से उपन्यास नितान्त असफल है। यह केवल इतिहास प्रस्तुत करता है। पात्रो की दृष्टि से आलमगीर पूर्ण ऐतिहासिक है परन्तु है नीरस।

आलमगीर की घटनाओं और पात्रों का अनुपात

घटनाओं मे ऐतिहासिक तत्व	= ९० ००%
पात्रो मे ऐतिहासिक तत्व	= ९१ ६७%
	= १=१ ६७%—२=९० ८४%
घटनाओं मे रमणीयता तत्व	= १० ००%
पात्रो मे रमणीयता तत्व	= ८ ३३%
कुल रमणीयता तत्व	१८ ३ %—२=९ १९%

आलमगीर में इतिवृत्तात्मक तत्व प्रस्तुत करने वाले अंश = ९०·८४%
आलमगीर में रमणीयता प्रस्तुत करने वाले अंश = ९.१६%

कुल अंश = १००·००

सिद्ध हुआ कि आलमगीर रस-दृष्टि से असफल है, नीरस है और पूर्ण ऐतिहासिक है।

लेखक का उद्देश्य

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'आलमगीर' लिखने का क्या उद्देश्य है, इस प्रश्न के उत्तर में पहले तो मौन होना पड़ता है क्योंकि इस कृति का क्या उद्देश्य है यह समझ में ही नहीं आता। ऐसा कोई प्रच्छन्न गूढ़ तत्व भी इसमें दृष्टिगोचर नहीं होता जिसे चिन्तन मनन द्वारा उद्घाटित कर सकें। बहुत सोचने समझने के पश्चात् केवल एक ही उद्देश्य इसकी रचना का दीख पड़ता है। वह यह है कि आचार्य श्री अपनी कृतियों की संख्या में एक कृति की अभिवृद्धि करना चाहते थे, दूसरे वे एक विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर हिन्दी जगत को एक विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास भेंट करना चाहते थे मानो 'तेली रे तेली तेरे सिर पे कोल्हू' वाली कहावत चरितार्थ हो।

अब लेखक के उद्देश्य के अन्तर्गत वही एक मोटी सी बात कहनी पड़ती है देश, काल-चित्रण सम्बन्धी। 'आलमगीर' में केवल मुगलकालीन राजनीति के दर्शन होते हैं।.. लेखक की एक मान्यता थी— चाहे बीसवीं शताब्दी का सभ्य काल हो चाहे चौदहवीं शताब्दी का जंगली पठाना, खिलजियों और गुलामों का अंध युग, मुस्लिम भावना तो खून में तर है और रहेगी। जब तक इसका जड़मूल से विनाश न हो जाएगा, इसकी खून की प्यास बुझेगी नहीं। यह सर्वथा मानव-विरोधिनी भावना है, जो सांस्कृतिक रूप से मुस्लिम समाज में इतबद्ध मूल है।"[1]

१—मुस्लिम-भावना का दिग्दर्शन

उपरोक्त, खून में, तर मुस्लिम भावना का दर्शन लेखक ने अपने इस उपन्यास में भली प्रकार कराया है। शाहजहाँ की बीमारी की खबर मिलते ही चारों भाई मुगल तख्त पर इस प्रकार झपटे जैसे चील मरे हुए पशु पर झपटती है। चारों भाई इस अवसर की ताक में थे कि शेरों का सफाया करके गद्दी हथिया ली जाए। चारों भाइयों में भयंकर युद्ध हुए। इसमें भाग्यशाली निकला औरंगजेब जो बूढ़े बाप को कैद करने में सफल उतरा, जिसने अपने तीनों सहोदरों को मौत के घाट उतार दिया, जिसने अपने पुत्र को भी जीवित नहीं छोड़ा, जिसने अपने सौते-मानि भतीजे का भी प्राणान्त कर दिया। इस खून की जब अपने खून के प्रति ऐसी अमानुषी वृत्ति रही है तो दूसरों के खून के प्रति कैसी भावना रही होगी, इसका अनुमान भर लगाया जा सकता है।

१. सोमनाथ (आधार)—पृष्ठ ५।

२—मुगलों की कामलिप्सा का दिग्दर्शन

मुगलों की काम पिपासा कितनी बढ़ी हुई थी इसका अनुमान शाहजहाँ की इस बात से लगाया जा सकता है कि उसके हरम में सहस्रों स्त्रियाँ रहती थीं। इसके अतिरिक्त अपने अमीर उमरावों की स्त्रियों से उसका अवैध सम्बन्ध था। इस पर भी वह मीना बाजार लगवाता था और सारे देश के अफसरों से निश्चित संख्या में सुन्दरियाँ मँगाता था। बात यहीं खत्म हो जाती तो भी गनीमत थी, पर उसका अवैध सम्बन्ध उसकी अपनी पुत्री जहाँआरा से भी था। कामलिप्सा के इस ज्वालामुखी की भीषणता का एक अनुमान मात्र लगाया जा सकता है। और अत्युक्ति नहीं होगी यदि कहा जाए कि शाहजहाँ की यही काम लिप्सा उसे ही नहीं मुगल तख्त को ही ले डूबी। बादशाह ने अवैध सम्बन्ध जिन सरदारों की पत्नियों से थे वे बाहर से तो भय के कारण कुछ कह नहीं सकते थे पर अन्दर ही अन्दर वे सुलग रहे थे और अवसर आने पर वे चूके नहीं, बदला लेकर ही रहे। शाइस्ता खाँ इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

अपने इस उद्देश्य में आचार्य चतुरसेन सफल उतरे हैं। लेखक ने तत्कालीन समाज और धर्म के दर्शन कराने का प्रयास नहीं किया। हाँ, मुगलों की शान शौकत, रहन सहन, खान-पीन आदि का अच्छा दर्शन कराया है। पाठक को कहीं भी तो यह आभास नहीं होता कि वह मुगल काल में विचरण कर रहा है, उसका तादात्म्य हो ही नहीं पाता। इस उपन्यास को पढ़ते समय ऐसा लगता है जैसे लेखक अपने अंधे पाठक को उसकी अंगुली पकड़कर मुगलकाल की कोई प्रदर्शनी दिखा रहा है और अपने प्रवचन द्वारा पाठक को विवरण देता चल रहा है।

बस आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'आलमगीर' का उद्देश्य यही है।

निष्कर्ष

पहले उपन्यास की भाँति यह भी पूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है। इतिहास-रस को जीवन देने की चिन्ता आचार्य श्री ने यहाँ भी नहीं की है। इस उपन्यास में भी वे इतिहास के स्थूल तथ्यों में उलझकर रह गए हैं फलतः यह उपन्यास भी 'सह्याद्रि की चट्टानें' के समान नीरस और शुष्क हो गया है। इससे पहले अध्याय में कहा गया है कि कदाचित् इतिहास के स्थूल तथ्यों पर चलने के फलस्वरूप इतिहास-रस की स्रोतस्विनी न बह सकी। इस बात की पुष्टि यहाँ हो जाती है। स्थूल तथ्यों की जानकारी के फलस्वरूप पाठक कोई रस ग्रहण न कर सका और उसे इस कृति में इतिहास से अधिक रोचकता नहीं दिखाई पड़ी। पहले उपन्यास की भाँति चतुरसेन का इतिहासकार उनके साहित्यकार पर छा गया है।

इस अध्याय में हम देख आए हैं कि आलमगीर उपन्यास में कल्पना का आश्रय बहुत कम लिया गया है। लगभग सभी पात्र और घटनाएँ इतिहास-सिद्ध हैं। इस विवेचन से यह भी स्पष्ट हुआ कि इस उपन्यास में तत्कालीन राजनीतिक दशा का चित्रण ही मुख्यतः हुआ है। यह सामाजिक, धार्मिक आदि दशाओं पर प्रकाश नहीं डालता है।

नगरवधू से आलमगीर तक नारी प्रणय की प्रखरता की शृंखला अविच्छिन्न रही है। नारी-प्रणय शाहजहाँ को ही नहीं ले डूबा अपितु उसने मुगल साम्राज्य की नींव

इतनी खोखली कर दी कि वह शीघ्र ही रसातल को पहुँच गया। बर्बरता एव कट्टरता की पराकाष्ठा का प्रतीक, सम्पूर्ण भारत के अतिरिक्त काबुल कधार तक की भूमि का सम्राट औरगजेब हीराबाई के कोमल हाथो मे कठपुतली की भाँति नाचता था। उसने हीराबाई के कहने से शराब पीकर अपने जीवन का सिद्धान्त तोड डाला था। हीराबाई और औरगजेब के उदाहरण से हमे यह भी प्रकट होता है कि लेखक ने इतिहास रस की कल्पना इतिहास की सत्य घटनाओ के आधार पर की है। यद्यपि आलमगीर प्रारम्भिक उपन्यासो के समान सरस नही बन पाया है, फिर भी लेखक के इतिहास रस का सकेत यहाँ स्पष्ट रूप म मिलता है।

नारी प्रणय के दर्शन आचार्य श्री की प्राय. हर कृति का उद्देश्य है। इस कृति मे भी नारी-प्रणय के दर्शन होते हैं। फिर भी यह उपन्यास अपना स्थायी महत्व स्थापित न कर सका और इसमे भी पिछले उपन्यास की भाँति इतिवृत्त की झलक ही दिखाई पडती है, साहित्य की रसिकता कम लक्षित होती है।

उपसंहार

चतुरसेन के अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

वय रक्षाम

बुद्धि और मस्तिष्क को झकझोड़ने वाला यह उपन्यास विश्व के उपन्यास-साहित्य में स्थान पाने योग्य है। वय रक्षाम पढ़ते समय पाठक एक ऐसे कल्पनातीत लोक में विचरण करता है, जहाँ उसकी समस्त चेतना अप्रतिहत सी हो उठती है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के शब्दों में, 'यह उपन्यास प्राग्वेदकालीन नर, नाग, देव, दैत्य दानव, आर्य, अनार्य आदि विविध नृवंशों के जीवन के वे विस्मृत पुरातन रेखाचित्र हैं, जिन्हें धर्म के रंगीन शीशे में देखकर सारे संसार ने उन्हें अन्तरिक्ष का देवता मान लिया था। मैंने इस उपन्यास में उन्हें नर-रूप में आपके समक्ष उपस्थित करने का साहस किया है। 'वय रक्षाम' एक उपन्यास तो अवश्य है, परन्तु वास्तव में वह वेद, पुराण, दर्शन और वैदेशिक इतिहास-ग्रन्थों का दुस्सह अध्ययन है, आजतक कभी मनुष्य की वाणी से न सुनी गई बातें मैं आपको सुनाने को आमादा हूँ।"[1]

इस उपन्यास में वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण आदि से मिस्र मेसोपोटामिया बेबिलोन-सीरिया और यूनान के अति प्राचीन इतिहास का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। कथानक मुख्यतः रावण कालीन है। ऐतिहासिक आधार पर राम का महान पुरुषत्व दिखाते हुए रावण और उनकी रक्ष-संस्कृति का सुस्पष्ट रेखाचित्र आचार्य श्री ने अपनी इस महान कृति में खींचा है। इसमें सम्पूर्ण नृवंश के अपरिज्ञात रेखाचित्र हैं। "देव-दैत्य-दानव-नाग-यक्ष-रक्ष, मानव-आनव, आर्य-व्रात्य मत्स्य-गरुड-वानर-ऋक्ष-महिष आदि इतिहासातीत जातियों की अब तक अविश्रुत, सर्वथा नवीन आधार असाधारण स्थापनाएँ जिनमें संसार की इन सब जातियों देवताओं आदि की प्राचीन धर्म स्थापनाओं की गठरी बाँध कर लेखक ने अतीत रस के गहरे इतिहास-रंग में एक डुबकी दी है।"[2]

हरण निमन्त्रण

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'हरण निमन्त्रण' राजपूती जनून की बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी की रक्त रंजित अमर गाथा कहलाता है। इस उपन्यास में जहाँ एक ओर हम राजपूतों के शौर्य के दर्शन करते हैं वहाँ साथ ही पुरुषों के शौर्य को फीका कर देने वाले राजपूतानियों के शौर्य के दर्शन भी हमें होते हैं। गुजरात के सोलंकी भीमदेव ने परमार की बेटी राजकुमारी से प्रणय की भीख माँगी। राजकुमारी ने अपने प्रेमी की भर्त्सना की, "भीख, आप राजपूत हैं ना ?"" "राजपूत कन्याओं से इस प्रकार प्रेम की भिक्षा नहीं माँगी जाती।""""वीरवर जो तलवार के धनी हैं, कन्या माँगते नहीं है—हरण करते हैं और जब भीमदेव सोलंकी तलवार के बल पर राजकुमारी का हरण करने आबू पहुँचा तो

---

1. वय रक्षाम   2. चतुरसेन साहित्य—पृष्ठ १०।

देखा कि समरीनाथ दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान राजकुमारी के साथ फेरे ले रहा था। तलवारें झनझना उठीं। एक हाथ से तलवार चलाते हुए तलवारों की छांह में पृथ्वीराज चौहान परमार की बेटी को ब्याह ले गया। भीमदेव घायल हुआ, उसने पृथ्वीराज चौहान से वैर का बदला लिया। चौहान के मन में पग कुमारी बसी हुई थी। उसे भी पृथ्वीराज चौहान ने प्राप्त किया और मुहम्मद गोरी द्वारा बन्दी बनाया गया। राजपूत शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई। दिल्ली गई, कन्नौज गया और गुजरात भी दलित हुआ।

लाल पानी

आचार्य श्री का यह उपन्यास ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। इस उपन्यास म आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने कच्छ (गुजरात) के सुप्रसिद्ध वीर खगार का जीवन चरित्र वर्णित है। गुजरात के गौरवशाली इतिहास की घटनाओं के धागों से इस उपन्यास का ताना बाना बुना गया है। इस उपन्यास की भूमिका म आचार्य श्री लिखते हैं, 'इस समय तक भी कच्छ का कोई सांगोपांग अच्छा इतिहास उपलब्ध नहीं है। (लब्ध) ऐतिहासिक-ग्रन्थों के आधार पर इस ग्रन्थ की आधार-भूमि है। केशवजी जोशी ने खगार के चरित्र पर एक उपन्यास लिखा है, ठक्कर नारायण किसन जी ने एक उपन्यास 'कच्छनो कार्तिकेय' लिखा है। इन्हीं की कथावस्तु का आधार मानकर (यह उपन्यास) लिखा गया है।

देवांगना

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने यह उपन्यास बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण की घटनाओं के आधार पर रचा है। उस समय विक्रमशिला, उदन्तपुरी वज्रासन और नालन्दा विश्वविद्यालय वज्रयान और सहजयान सम्प्रदायों के केन्द्र स्थली हो रहे थे तथा उनके प्रभाव से भारतीय हिन्दू शैव-शाक्त भी वाममार्ग म फँस रह थे। इस प्रकार धर्म के नाम पर अधर्म और नीति के नाम पर अनीति का ही बोलबाला था। हम इस उपन्यास मे इसी काल की पूर्वी भारतीय जीवन की कथा उपस्थित देखते हैं। पृथ्वीराज चौहान के बाद गोरी ने तमाम बौद्ध भिक्षुओं को काट डाला, मठ नष्ट-भ्रष्ट कर दिए। बौद्ध-धर्म इस प्रकार भारत से समाप्त हो गया। देवदासी मजु और बौद्ध भिक्षु-दिवोदास की प्रणय-गाथा उपर्युक्त पृष्ठभूमि से परिवेष्ठित कर इस उपन्यास की सर्जना हुई है।

बिना चिराग का शहर

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का यह सबसे छोटा उपन्यास है। यह रोमांचक ऐतिहासिक उपन्यास है। ६५ पृष्ठों के इस लघु उपन्यास मे सुल्तान अलाउद्दीन के समय की राजनैतिक तथा सामाजिक अस्तव्यस्तता तथा मुसलमान सुलतानों की नृशंसता पूर्ण उच्छृंखलता का चित्रण है। सुलतान अलाउद्दीन ने 'केवल बीस बरस शासन किया, परन्तु उसका यह बीस वर्ष का शासन ऐसा अद्भुत रहा कि उसने समूचे भारत का राजनैतिक नक्शा बदल दिया। सबसे पहले वही सुलतान दक्षिण म सवार ले गया तथा सबस पहले इसी ने यत्किंचित मुस्लिम सुल्तानों मे भारतीयता का पुट दिया। उसन कुछ उत्तम राज्य-व्यवस्था भी की किन्तु उसकी हिंसक प्रवृत्ति और नृशंस अत्याचार अप्रतिम रहा। वह प्रबन्धक कम और निष्ठुर सुल्तान रहा।' इसी युग की झाँकी इस उपन्यास मे दिखाई देती है।

सोना और खून

ऐतिहासिक उपन्यासों में 'सोना और खून' आचार्य चतुरसेन शास्त्री का अन्तिम उपन्यास है। इस उपन्यास को पूर्ण करने से पूर्व ही आचार्य श्री का स्वर्गवास हो गया। प्राग्वैदकालीन इतिहास से लेकर आज तक की बात वे पूरी करना चाहते थे, परन्तु आज की बात अर्थात् अपना अन्तिम उपन्यास जो आधुनिक युग पर आधारित है, पूरा न कर सके। 'सोना और खून' दस सहस्र पृष्ठों में लिखने की उनकी योजना थी। यदि यह योजना फलीभूत हो जाती तो यह उपन्यास विश्व का वृहत्तम उपन्यास होता। आचार्य श्री ने कहा था, "यदि शरीर ने मुझे धोखा न दिया तो यह उपन्यास मैं दस भागों में लिखने का इरादा करता हूँ। यह उपन्यास एक शताब्दी का मेरा राजनैतिक, आर्थिक, और सामाजिक अध्ययन होगा। आजकल मासिक में सोना और खून के विषय में लिखा था, आचार्य चतुरसेन शास्त्री का सोना और खून प्रथम भाग सम्पूर्ण उपन्यास का दशमांश से अधिक नहीं है। इस भाग में लगभग पौने तीन लाख शब्द हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं कि उपन्यास पच्चीस लाख से भी अधिक शब्दों में सम्पूर्ण होगा। दूसरे शब्दों में 'सोना और खून' हिन्दी का तो सबसे बड़ा उपन्यास होगा ही। वह संसार के सबसे बड़े उपन्यासों में गिना जाएगा।" "सोने का रंग पीला होता है और खून का रंग सुर्ख। पर तासीर दोनों की एक है। खून मनुष्य की रगों में बहता है और सोना उसके ऊपर लदा हुआ है। खून मनुष्य को जीवन देता है और सोना उसके जीवन पर खतरा लाता है। पर आज मनुष्य का खून पर मोह नहीं, सोने पर है।" इस कथन की पृष्ठ भूमि पर रचा गया है यह उपन्यास। सोना और खून की भूमिका के अनुसार आचार्य श्री इस उपन्यास को सन् १८४५ ई० सन् १९४७ ई० तक के सौ वर्षों के राजनीतिक और सामाजिक इतिहास की भित्ति पर दस भागों और दस हजार पृष्ठों में लिख रहे थे। इसका एक अंश 'ताम्रचूड़' के नाम से धर्मयुग में प्रकाशनार्थ भेजा था, परन्तु वह वहाँ खो गया। लगभग ढाई भाग प्रकाशित हो चुका है। इतना ही लिखा गया था।

प्रकाशित उपन्यास के भाग में १८५७ के स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम के समय के भारत का बड़ा मनोहारी एवं प्रामाणिक चित्रण किया गया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपने जीवन में एक नारा अपनाया था—स्वाधीनता का नाश हो राष्ट्रीयता का नाश हो, देशभक्ति का नाश हो—इन्हीं नारों को उन्होंने प्रायः इस उपन्यास में घोषित किया है। जैसा कि पहले कहा गया है कि आचार्य चतुरसेन मानववादी थे। मानववादी के लिए देश, राष्ट्र एवं स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं होता, यह उनके व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है। इन्हीं नारों की पुष्टि उन्होंने अपने इस उपन्यास में की है। आचार्य श्री यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति से प्रेरित हुए। उन्होंने दूसरे भाग में, अंग्रेजी साम्राज्य में सूर्यास्त नहीं होता था जब इंगलैंड विश्व की नेतृत्व शक्ति के रूप में था, इसी की पृष्ठभूमि में यूरोपीय पूँजीवाद, पूँजीवाद के विरुद्ध जन-क्रान्ति एवं राष्ट्रवादिता के विकास का वर्णन किया है साथ ही ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना का वर्णन है। भारतवर्ष में अंग्रेजों के आगमन से लेकर और यहाँ से अपने घर को वापस लौट जाने तक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में संसार की जन-क्रान्ति का दिग्दर्शन कराया है। श्री जगदीशचन्द्र वोरा के अनुसार खून देता और

सोना लेना' के उद्देश्य ने जिंदा रहने की सारी चेष्टाएँ किस प्रकार हास्यास्पद बनादी हैं - और नये युग का नया खूनी देवता देव है जो नवयुवकों की बलि देने पर आमादा है, उसका चित्रण हुआ है।"[1]

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों मे चतुरसेन का स्थान

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने हिन्दी-साहित्य के भाण्डार की श्रीवृद्धि अपने विपुल साहित्य से करके हिन्दी जगत् के महारथियों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। उनके साहित्य में उपन्यासों का विशिष्ट स्थान है। उसका प्रमुख कारण है कि उनका विश्वास था कि 'जीवन की सच्ची और परिपूर्ण व्याख्या उपन्यास ही में हो सकती है, नाटक में नहीं। आधुनिक साहित्य में नाटक लँगड़ाता हुआ चलता है। वह उपन्यास की नयर गति का किसी हालत मे मुकाबला नहीं कर सकता।"[2] इस प्रकार उन्होंने नाटक मे तो विशेष रुचि नहीं दिखाई, काव्य को भी उन्होंने उपन्यास से हेय बताया। आधुनिक काल के प्रमुख कवियों की छाया से भी उन्होंने नाक भौंह सिकोड़ी। उन्होंने कहा था, 'यदि मुझे अधिकार मिल जाय तो प्रसाद, महादेवी वर्मा और पंत को फाँसी और बाकी छायावादी कवियों को काले पानी की सजा दूँ। यह काव्यधारा क्या बावले की बड़ है।"[3] कदाचित् इसी कारण आचार्य श्री ने अपनी साहित्यिक प्रतिभा के प्रस्फुरण के लिए उपन्यास को अधिक प्रश्रय दिया और उपन्यासों मे भी ऐतिहासिक उपन्यास ही उनके कार्य-क्षेत्र के प्रमुख केन्द्र रहे हैं।

इन ऐतिहासिक उपन्यासों के अध्ययन करने पर हमने स्पष्ट रूप से देखा कि साहित्य का क्षेत्र इतिहास की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत और उदार है। उसमें मानव-जीवन का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत होता है। और फलतः हमारे मनोरागों को उद्बुद्ध करने की क्षमता इतिहास में तभी उत्पन्न हो पाती है जब उसे साहित्यिक रूप दिया जाए। इति-हासकार की अपेक्षा साहित्यकार मानवीय संवेदनों को कहीं अधिक मात्रा में जागृत करता है और वह इतिहास के पटल पर घटित होने वाली घटनाओं तथा उस मंच पर आने वाले पात्रों के प्रति हमारे एक मानवीय दृष्टिकोण का विधान करता है। आचार्य चतुरसेन ने अधिकांशतः कल्पना का आश्रय ऐतिहासिक घटनाओं में इसी प्रकार का मानवीय रस भर देने के लिये लिया है। उदाहरणार्थ इतिहास का महमूद हमारी दृष्टि में एक नर पिशाच ही रहा है, परन्तु चतुरसेन के सोमनाथ का महमूद हमारे सामने मानव-रूप में ही आता है और इसीलिए सोमनाथ के महमूद की प्रतिच्छाया पाठक के अन्तर में सदा के लिए अंकित हो जाती है। जिन ऐतिहासिक पात्रों में किसी ऐसे मानवीय तत्व की प्रतिष्ठा नहीं होती उनका स्थायी मूल्य नहीं रह पाता और कुछ समय के अनन्तर पाठक को यह भी स्मरण नहीं रहता कि वह विशिष्ट पात्र उस उपन्यास का है अथवा इतिहास का, क्योंकि उस पात्र में ऐसी विशिष्टता की सर्जना नहीं हुई जो उसे इतिहास के पात्र की तुलना में सदैव ऊँचा रख सके।

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ६ मार्च सन् १९६०—आचार्य चतुरसेन शास्त्री श्रद्धांजलि अंक में श्री जगदीशचन्द्र वाय के लेख 'शास्त्री जी के ऐतिहासिक उपन्यास' पृ० १३ से उद्धृत।

२. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, साहित्य संदेश (मासिक) जुलाई, अगस्त १९५५ में 'हिन्दी के नाटक और नाटककार' के अन्तर्गत, पृ० ८७।

३. डा० पद्मसिंह शर्मा कमलेश : मैं इनसे मिला, पृ० ८२।

इस प्रकार के वैशिष्ट्य की प्रतिष्ठा ही उस पात्र को अमर संजीवनी दान करती है। वर्मा जी की झाँसी की रानी निःसंदेह एक अप्रतिम कृति है, परन्तु निष्पक्ष रूप से मैं यह कह सकता हूँ कि झाँसी की रानी पाठक के अन्तर पर चिर निवास नहीं कर सकती। झाँसी की रानी उपन्यास पढ़ा जाए और झाँसी की रानी फिल्म देखी जाए, कुछ दिनों बाद दोनों मिलकर एक हो जाएँगी और पाठक यह भी स्मरण नहीं रख सकेगा कि किसकी क्या विशेषता है। परन्तु मुंशी जी के जय सोमनाथ का महमूद और चतुरसेन जी के सोमनाथ का महमूद कभी मिलकर एक नहीं हो सकते। ऐतिहासिक उपन्यासकार की इस महत्ता से मण्डित कदाचित् हिन्दी जगत में कोई अन्य उपन्यासकार आचार्य श्री की जोड़ का नहीं है। महमूद के बाह्य अनगढ़ व्यक्तित्व में छिपी हुई मुग्ध मानवता की ओर इतिहासकार की दृष्टि का पहुँचना असम्भव था परन्तु वहाँ कवि-रवि की प्रतिभा किरणों ने पहुँचकर उस पात्र को घृणा के पंक से निकालकर स्नेह और सहानुभूति के आसन पर प्रतिष्ठित किया है। इतिहासनिष्ठ साहित्यकार की सफलता की सबसे बड़ी और मुख्य कसौटी यह है कि वह इतिहास के अनुशीलन में सीमित रहने वाले कथानकों को साहित्य के प्रशस्त क्षेत्र में लाकर व्यापकता प्रदान करे।

इन उपन्यासों के अध्ययन से यह भी एक बहुमूल्य निष्कर्ष प्राप्त किया गया है कि साहित्य का विषय वस्तुतः सुदूरवर्ती इतिहास ही बनाया जा सकता है, जिसमें कल्पना के रमण के लिए व्यापक क्षेत्र रहता है और फलतः उसमें इतिहास रस के प्रसार और मानवीय सहानुभूति के विस्तार के लिए अधिक क्षेत्र मिल जाता है। निकटवर्ती अर्थात् पिछली एक दो शताब्दी की घटनाओं से सम्बन्धित इतिहास में साहित्यिक रमणीयता का संचार करवाना सरल कार्य नहीं है क्योंकि उसमें संसार का वह सत्य स्थूल रूप में दृष्टिगोचर होता है और साहित्यकार अधिक कल्पना का आश्रय लेने का साहस नहीं कर सकता। एण्टोनी एण्ड क्लियोपेट्रा, जूलियस सीजर, मैकबेथ आदि सुदूरवर्ती इतिहास से सम्बन्धित हैं अतः उनका स्थायी महत्व है। निकटवर्ती इतिहास में रोचकता का अभाव और कल्पना के विस्तार के लिये संकीर्ण क्षेत्र इसलिए भी कम हो जाता है कि उसके विषय में इतिहासकारों और साहित्यकार के पास अत्यधिक तथ्य और ऐतिहासिक उपकरण विद्यमान रहते हैं और होती है सत्य को देखने वाली वैज्ञानिक दुरबीन। अतः हम यह भी कह सकते हैं कि निकटवर्ती इतिहास को जब साहित्य का बाना पहनाने का प्रयत्न किया जाता है तब कलाकार की वैज्ञानिक से टक्कर हो जाती है मानो वैज्ञानिक सत्य और साहित्यिक सत्य में द्वन्द्व-युद्ध छिड़ जाता है और एक सीमा तक साहित्यिक सत्य को वैज्ञानिक सत्य के साथ समझौता करना पड़ता है।

यद्यपि यह सर्वथा असम्भव नहीं है कि निकटवर्ती इतिहास में भी साहित्यकार उसी स्तर की सरसता का संचार कर दे, जिस स्तर की सरसता पुरातन इतिहास पर आधारित साहित्य में की जा सकती है। फिर भी यह कठिन इसलिये होता है कि जब इतिहास के ठोस उपकरण ताम्रपत्र, शिलालेख, सिक्के और राजकीय विवरण आदि प्राप्त हो तब उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती और इन ठोस उपकरणों पर कल्पना की तूलिका चलाकर उनमें चमत्कार उत्पन्न करवाना साधारण प्रतिभा के वश की बात नहीं है। इसके लिए

अत्यधिक पैनी प्रतिभा और उच्चतम कल्पना की आवश्यकता है। आचार्य चतुरसेन में भी यह प्रतिभा थी, परन्तु उसका प्रयोग वे कहानी-क्षेत्र में कर पाए, उपन्यास क्षेत्र में नहीं। उदाहरणार्थ 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' और 'दे खुदा की राह पर' उनकी ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें निकटवर्ती इतिहास (मुगलकालीन) को भी उन्होंने कल्पना के प्रकाश से रमणीय रूप में चमकाया है। उपन्यास के क्षेत्र में उपर्युक्त दृष्टि से हम वर्मा जी को आचार्य जी से अधिक जागरूक पाते हैं। *सामान्यतया मृगनयनी उनका सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक* उपन्यास माना जाता है और इस सर्वश्रेष्ठता का एक कारण हमारे उपर्युक्त तथ्य के अनुसार उसका दूरवर्ती इतिहास से सम्बन्धित होना भी है। परन्तु उनका झाँसी की रानी भी अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है और एक उत्कृष्ट साहित्यिक कृति मानी जाती है।

कहा जा सकता है कि इतिहास की महान घटनाओं के मूल में नारी प्रणय को मानने का सिद्धान्त आचार्य श्री के व्यक्तित्व में निहित प्रणय-सम्बन्धी कुण्ठाओं के कारण था। सम्भव है ऐसा रहा हो परन्तु लेखक ने अपने इस सिद्धान्त को बड़ी शक्ति के साथ अपने उपन्यासों में दी गई ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर ही प्रतिष्ठित किया है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की उपर्युक्त विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए हिन्दी के कुछ मूर्धन्य-ऐतिहासिक-उपन्यासकारों के साथ आगामी अनुच्छेदों में तुलना की गई है।

एक दृष्टि से तो हिन्दी जगत में कोई ऐतिहासिक उपन्यासकार नहीं जन्मा है, जिसकी इतिहास के प्रति सार्वकालिक और सार्वभौतिक प्रवृत्ति रही हो। प्रागैतिहासिक-काल (वय रक्षाम) से आधुनिक काल (*सोना और खून*) तक इतिहास को एक अखंड रूप में आचार्य श्री ने देखा है। यह तो रही उनकी सार्वकालिक प्रवृत्ति और ऐतिहासिक उपन्यासों में विश्व-सम्कृति का दर्शन, यह है उनकी सार्वभौमिक प्रवृत्ति। इनकी यह प्रवृत्ति प्रसाद जी से तुलनीय है, जिन्होंने अपने नाटकों में इसी प्रकार इतिहास-सेतु का निर्माण करने की चेष्टा की है।

ऐतिहासिक उपन्यासों के दृष्टिकोण से हिन्दी-साहित्य का अभी शैशव काल ही समझना चाहिए। उपन्यासों का वास्तविक समारम्भ बाबू देवकीनन्दन खत्री, प० किशोरी लाल गोस्वामी एवं बाबू घोषालराम गहमरी से माना जाता है। हिन्दी साहित्य के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार गोस्वामी जी हैं।[1] उनका कुसुम कुमारी उपन्यास हिन्दी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास माना जाता है। कुल मिलाकर उन्होंने पन्द्रह से अधिक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। प्रमुख उपन्यासों के नाम इस प्रकार हैं — (१) हृदयहारिणी, (२) प्रणयिनी परिणय, (३) लवगलता, (४) कुसुम कुमारी, (५) कनक कुसुम, (६) लाल कुवर, (७) पन्ना, (८) रजिया, (९) हीराबाई, (१०) इन्दुमती (११) मल्लिका देवी, (१२) तारा, (१३) राजसिंह, आदि। ध्यान देने की बात है कि उनके उपन्यासों के लगभग सब नाम नारियों पर है। उनके चित्रण का दृष्टिकोण क्या रहा होगा इसका अनुमान भर लगाया जा सकता है। *'तारा' उनका विशिष्ट ऐतिहासिक उपन्यास है।* ' इस उपन्यास में ऐतिहासिक पात्रों की पूरी दुर्दशा की गई है। ··· किले के कुत्सित वातावरण में शाहजादियों की उच्छृंखल इश्क मिजाजी और उनकी दूतियों की ऐयारी का जैसा वासनामय चित्र तारा में

१. भारतीय साहित्य (पत्रिका ३ अप्रेल १९५७, पृ० १९६।

अंकित किया गया है उसे देखकर उस काल का साक्षी इतिहास भी शर्म से आँखें झुका लेगा। ...... जो बातें तारा के विषय में कही गई हैं वे ही प्रायः गोस्वामी जी के सभी उपन्यासों के विषय में कही जा सकती हैं।"[1] उसका एक प्रमुख कारण यह था कि गोस्वामी जी ने ये ऐतिहासिक उपन्यास सोद्देश्य लिखे थे, हिन्दू गौरवगाथा और मुसलमानों की भद पीटना ये दो मुख्य उद्देश्य उनके समक्ष थे। यह सब कुछ होते हुए भी गोस्वामी जी क्षम्य हैं और प्रशंसा के पात्र हैं, कारण कि वे ऐतिहासिक उपन्यासों की आधारशिला रखने वाले थे, उनके समक्ष आदर्श स्वरूप कोई क्षेत्र न था। यद्यपि बंगला से अच्छे ऐतिहासिक उपन्यास अनूदित होकर आ रहे थे परन्तु दुर्भाग्यवश आदर्श रूप में बंगला के अच्छे ऐतिहासिक उपन्यास होते हुए भी गोस्वामी जी अच्छे ऐतिहासिक उपन्यास नहीं लिख सके।[2]

प० किशोरी लाल जी गोस्वामी के पश्चात् ऐतिहासिक उपन्यासकारों में श्री गंगा प्रसाद गुप्त का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने नूरजहाँ, कुंवरसिंह सेनापति, वीरपत्नी, हम्मीर, पूना में हलचल, वीर जयमल आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। इनके उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का समुचित मिश्रण हुआ है। "जहाँ तक वीरता से भरी घटनाओं का सम्बन्ध है वे ऐतिहासिक हैं और प्रणय सम्बन्धी कथानक कल्पना प्रसूत हैं। गुप्त जी के वे ही उपन्यास अधिक मनोरंजक हैं जिनमें प्रणय कथा अधिक है।"[3] पर ये उपन्यास हृदय पर वैसा स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ते जैसा आचार्य जी के उपन्यास।

इस युग के तृतीय विशिष्ट ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं श्री जयरामदास गुप्त जिन्होंने रंग में भंग, काश्मीर पतन, कलावती, मायारानी, चाँद बीबी, प्रभात कुमारी, फूल कुमारी, चम्पा, किशोरी, नवाबी परिस्तान आदि उपन्यास लिखे। श्री गोस्वामी की भाँति इनके उपन्यास भी नारी प्रधान हैं, तथा उन्हीं की भाँति इनके उपन्यासों में भी तिलस्म और ऐयारी का प्राधान्य है, कथानक प्रणय प्रधान है चरित्र चित्रण का समुचित विकास नहीं हुआ। इनमें हिन्दुत्व की भावना का प्राबल्य है फलतः इनके उपन्यास भी सोद्देश्य हो गए हैं।

किशोरी लाल गोस्वामी कालीन इन ऐतिहासिक उपन्यासकारों के अतिरिक्त कुछ और ऐतिहासिक उपन्यासकार भी हुए हैं परन्तु उनका कोई विशेष योगदान नहीं है। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं — अनारकली, पृथ्वीराज चौहान, पानी पत के लेखक श्री बल्देव प्रसाद मिश्र, नूरजहाँ के लेखक श्री मथुरा प्रसाद शर्मा 'नूरजहाँ' के लेखक श्यामसुन्दर लाल, तारामती के लेखक श्री केदारनाथ शर्मा, 'कोटा रानी' के लेखक ब्रजविहारी सिंह तथा विट्ठलदास, गिरिजानन्द तिवारी, लालजी सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

ये सब उपन्यासकार प्रायः मुस्लिम काल को ही लेकर चले। चरित्र-चित्रण को गौण समझकर कथानक के सौष्ठव पर अधिक ध्यान दिया गया है, कथानक प्राय प्रणय-प्रधान हैं और हिन्दुत्व की भावना से ओत-प्रोत हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों के द्वितीय युग के उन्नायक मिश्र बन्धु माने जा सकते हैं।

---

१. श्री शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ १०६ १०७।
२. श्रीमती विमलेश सहाय आनन्द : हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य-संदेश, जुलाई अगस्त १९५६, पृष्ठ ४३।
३. डा० गोपीनाथ तिवारी : ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृष्ठ ६६।

इन्होंने उदयन, चन्द्रगुप्त मौर्य, विक्रमादित्य, पुष्यमित्र, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, वीरमणि आदि ऐतिहासिक उपन्यासों की सर्जना की। "ये उपन्यास इतिहास प्रधान हैं। लेखक को इतिहास देने का ऐसा मोह है कि वह उपन्यास भूल इतिहास के निकट पहुंच जाता है। वास्तव में मिश्र बन्धुओं में उपन्यास-कला नहीं है। फलत उनके ऐतिहासिक उपन्यास जीवनी या इतिहास बन गए हैं जिनमें कल्पना भी मिली हुई है।"[१] आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'सह्याद्रि की चट्टानें' और 'आलमगीर' भी इसी प्रकार के उपन्यास हैं पर आचार्य श्री के ये दोनों उपन्यास फिर भी मिश्रबन्धुओं के शुष्क उपन्यासों से कहीं अधिक रमणीय हैं।

इस द्वितीय काल में भी कुछ विशिष्ट ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य की सर्जना न हो सकी। इनके पश्चात् आधुनिक युग का समारम्भ होता है। श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने 'गढ़कुण्डार' और 'विराटा की पद्मिनी' लिखकर हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक उपन्यासों के तृतीय युग का श्रीगणेश किया है। वर्मा जी एक बीते जमाने की याद और आने वाले युग की बानगी जैसे हमारे बीच में खड़े हैं।[२] आचार्य चतुरसेन ने श्री वर्मा जी के विषय में लिखा है, 'इन ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों में श्री वृन्दावनलाल वर्मा अग्रगण्य रहे।'[३] श्री वर्मा जी ने आचार्य श्री के विषय में अपने उद्गार इस प्रकार प्रगट किये हैं— 'पैनीसूझ, कहानी की शिल्प-कला पर प्रभुत्व, शब्दों और मुहावरों का चयन, अपनी बात का प्रतिभाशाली, प्रस्तुतीकरण अपने विश्वासों की निर्भीक अभिव्यक्ति इत्यादि आचार्य चतुरसेन शास्त्री की निजी परिधि की समर्थता रही है। ··· साप्ताहिक हिन्दुस्तान में उनका गोली उपन्यास क्रमशः प्रकाशित हुआ। मैं क्रमशः निकलने वाली कहानी कभी नहीं पढ़ता क्योंकि शृङ्खला टूट जाती है। परन्तु गोली तो इतना रोचक है कि मैंने उसे आद्योपान्त पढ़ा, पुराने कारीगर की कारीगरी थी, वह इसलिए।"[४] हिन्दी जगत के श्रेष्ठतम ऐतिहासिक उपन्यासकार बाबू वृन्दावनलाल वर्मा के उद्गारों से आचार्य श्री का महत्वाकन किया जा सकता है।

श्री मन्मथनाथ गुप्त ने आचार्य श्री के विषय में लिखा है, 'चतुरसेन केवल आलोचकों के अनुसार एक महान लेखक नहीं थे, बल्कि जनता ने उन्हें अपनाया और प्रेमचन्द के बाद यदि किसी के उपन्यास अधिक से अधिक बिकते थे तो उन्हीं के बिकते थे।"[५] शोध-कर्त्ता ने अनुमान लगाया है कि लगभग पन्द्रह लाख रुपये का चतुरसेन-साहित्य बिक चुका है। श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति के अनुसार वे 'जो कुछ लिखते थे उसमें फौलाद भर देते थे।"[६]

आचार्य श्री की तुलना में श्री राहुल जी, श्री यशपाल जी, डा० रांगेय राघव आदि के नाम लिये जा सकते हैं। सिंह सेनापति, जय यौधेय, मधुर स्वप्न राहुल जी के ऐतिहासिक उपन्यास हैं। उनके उपन्यास दोषों के भाण्डार हैं। इनका कथानक बड़ा दुर्बल

१. डा० गोपीनाथ तिवारी ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृष्ठ १२८।

२ डा० रामविलास शर्मा : नया पथ (मासिक)

३ वैशाली की नगरवधू (भूमि), पृष्ठ ७७४।

४ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ६ मार्च १९६०, पृष्ठ २६ छोटे भैया बड़े भैया-लेखक श्री वर्मा जी।

५. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ६ मार्च १९६०।

६. साप्ताहिक हिन्दुस्तान १७ अप्रैल १९६०, पृष्ठ ७ लेखक श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति।

है। इनके उपन्यासों में औपन्यासिक कला की बड़ी भारी कमी है, कथा में स्वाभाविक मोड़ नहीं है अर्थ के परिच्छेदों के कारण अनावश्यक विस्तार कथानक में आ गया है।' 'वास्तव में राहुल जी का उद्देश्य इन उपन्यासों के लिखने में उपन्यास लिखना नहीं है। ये उपन्यास उद्देश्य प्रधान हैं। उद्देश्य ही इनमें हावी है।''' ' राहुल जी को परवाह नहीं, आलोचक भले ही कहे कि उपन्यास-कला की हत्या हो रही है''''''राहुल जी के व्यक्तित्व की यही सबसे बड़ी विजय है। वे निर्भय और दृढ़ निश्चयी हैं और उपन्यास-कला की यही सबसे बड़ी निर्बलता है। हाँ ब्राह्मणों और आर्यों को गाली देने में राहुल जी अवश्य ही आचार्य जी से बाजी मार ले गए हैं।

हिन्दी जगत का महान दुर्भाग्य है कि चीवर, प्रतिदान, अंधेरे के जुगनू, मुर्दों का टीला, राणा की पत्नी आदि ऐतिहासिक उपन्यासों के महान स्रष्टा डा० रांगेय राघव अपने साहित्यिक जीवन की भोर में ही इस संसार से उठ गए। अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्त में जन्मा यह कलाकार यदि जीवित रहता तो पता नहीं कितने मुकुटों से माँ भारती का शृंगार करता। मुर्दों का टीला, चीवर उनके ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास हैं जो हिन्दी जगत् में अपना नाम अमर कर गए हैं। मुर्दों का टीला चतुरसेन जी की नगरवधू से बुरी तरह प्रभावित हुआ है।[1] इसमें सकर सन्तानों की उत्पत्ति है, मदिरा के पनाले यहाँ भी बहते हैं, आलिंगन चुम्बनों की हाट सजी रहती है आदि। वेगवती और प्रवाहपूर्ण भाषा इनके उपन्यासों का प्राण है। ये भाषा के दृष्टिकोण से अपना सानी नहीं रखते। वर्णन-तत्व इनका बड़ा शक्तिशाली है।

यशपाल जी ने हिन्दी को दिव्या और अमिता दो ऐतिहासिक उपन्यास दिये हैं।[2] दिव्या में इतिहास नहीं के बराबर है। इसमें भी नगरवधू की दासियों की दशा का चित्रण है। दास-दासियों के चित्रण में लेखक ने अतिरंजना से काम लिया है। यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास न रहकर मार्क्सवाद का ढिंढोरा पीटने वाला अधिक सिद्ध हुआ है। वातावरण सृष्टि करने में यशपाल जी को सफलता मिली है।

श्री चतुरसेन शास्त्री के राशिधारी श्री चन्द्रशेखर शास्त्री ने वैशाली की नगरवधू की खामियों को पूरा करने के लिये 'श्रेणिक बिम्बसार' ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर ऐतिहासिक उपन्यासकारों की श्रेणी में अपना नाम अंकित कराने की चेष्टा की है। किन्तु 'श्रेणिक बिम्बसार' तो उपन्यास भी नहीं बन सका। इसमें उपन्यास-कला का अभाव है।[3]

जिस प्रकार गुलेरी जी ने एक कहानी लिखकर हिंदी-कहानी-संसार में अपना नाम अमर कर लिया, उसी प्रकार डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'बाण भट्ट की आत्मकथा' ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर अपना नाम अमर कर लिया है। उत्तम पुरुष शैली में यह उपन्यास लिखा गया है। इस शैली में राहुल जी का सिंह सेनापति है। इन दो उपन्यासों के अतिरिक्त और कोई ऐतिहासिक उपन्यास इस शैली में नहीं लिखा गया है। द्विवेदी जी का बाण भट्ट की आत्मकथा बड़ा ही सरस और मनोहारी ऐतिहासिक उपन्यास है, यह सिंह सेनापति से उत्कृष्टतर है। देशकाल चित्रण और वातावरण सम्बन्धी औपन्यासिक तत्व

1. डा० गोपीनाथ तिवारी ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ० १७१।
2. वही—पृ० २१६। 3. वही—पृ० २०७।

शायद सर्वाधिक सफलता से इस उपन्यास में घटित हुआ है। परन्तु दूसरी ओर उपन्यासों जैसी कथावस्तु इसमें नहीं है। गुप्त संस्कृति पर आधारित प्रसाद जी का अधूरा ऐतिहासिक उपन्यास इरावती भी उल्लेखनीय है। यदि वे जीवित रहते तो पता नहीं किस प्रकार का मोड़ देते इस उपन्यास को। जितना भी यह है उतना ही अपना महत्व यह हिन्दी-साहित्य में बना गया है। वस्तुतः उनका यह उपन्यास हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का परम ओजस्वी मंगलाचरण प्रस्तुत करता है। परन्तु खेद है कि उस मंगलाचरण का भरत वाक्य तो क्या इसका प्रथम अंक भी हिन्दी वालों की दृष्टि में न आ सका। प्रसाद जी की ऐतिहासिक कहानियों और इस अपूर्ण उपन्यास को दृष्टि में रखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे ऐतिहासिक नाटककार के समान ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में भी कदाचित् सबसे आगे ही रहते।

इन उपन्यासकारों के अतिरिक्त कुछ अन्य ऐतिहासिक कुछ उपन्यासकार और हैं परन्तु उनके ऐतिहासिक उपन्यास इतने कम हैं कि उनकी प्रवृत्तियों का ठीक-ठीक विश्लेषण नहीं किया जा सकता। डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है। "चूँकि सत्यकेतु जी इतिहासज्ञ हैं अतः उनका इतिहासकार इस उपन्यास में प्रबल है। ऐसा प्रतीत होता है कि राहुल जी एवं चतुरसेन जी शास्त्री के उपन्यासों में आर्य ब्राह्मण-निन्दा पढ़ लेखक को दुख हुआ और उसने आर्य पताका को ऊँचा किया है तथा बौद्धों को विलासी एवं समाज के धन से अपने आलसी पेट को भरते चित्रित किया है।"[1] श्री बेनी प्रसाद मंजुल ने दिग्वगधा, सुमंगला, प्रभावाई, राजेश्वरी आदि कई ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। इन ऐतिहासिक उपन्यासों का हिन्दी जगत में विशेष मूल्य नहीं है। इनमें औपन्यासिक कला का नितान्त अभाव है। श्री रणवीर जी वीर ने महामन्त्री चाणक्य ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है। यह उपन्यास इतिहास की खोजों को आधार बनाकर नहीं लिखा गया है। श्री धर्मेन्द्रनाथ ने रजिया और तैमूर लिखे हैं। श्री रघुवीरशरण मित्र ने आग और पानी, पहली हार, सान की राख ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की चेष्टा की है, परन्तु इनके उपन्यास दुर्बलताओं के कारण ऐतिहासिक उपन्यासों में अपना स्थान नहीं बना सके। फलतः ये सब आचार्य श्री की तुलना में खड़े नहीं हो सकते।

अपने विशाल वाङ्मय में भारतीय मनीषा का ओज और अमृत उँडेलने वाले अचल तपस्वी आचार्य चतुरसेन के कृतित्व की विराट वाटिका में झाँकने भर के लिए प्रस्तुत अध्ययन एक वातायन मात्र है, जिसमें से इस विचारक और कलाकार की साधना एवं शिल्प का इतना आभास अवश्य प्राप्तव्य है कि उसकी वाटिका के दर्शन की अभिलाषा मन में जागृत हो सके। विश्वास है कि भावी तरुण अनुसंधाताओं में से कुछ इस ओर अवश्य प्रवृत्त होंगे और तब प्रस्तुत शोध-कर्त्ता स्वयं को विशेष रूप से कृतकृत्य अनुभव कर सकेगा।

—०—

---

१ डा० गोपीनाथ तिवारी : ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ० २१२–२१३।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का संक्षिप्त परिचय

जन्म-तिथि : २६ अगस्त १८९१ निर्वाण-तिथि : २ फर्वरी १९६०

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का जन्म उत्तरप्रदेश के बुलन्दशहर जनपद के अन्तर्गत अनूपशहर कस्बे के निकट गंगा तट पर स्थित चाँदोख नामक एक ग्राम में हुआ था। उनके पिता विशेष शिक्षित न थे परन्तु वे श्री दयानन्द स्वामी के दर्शनों का लाभ प्राप्त कर चुके थे। इसी प्रभाव के कारण उन्होंने आर्य समाज का प्रचण्ड प्रचार किया और वे आजन्म कट्टर आर्य समाजी रहे। बालक चतुरसेन की शिक्षा के हेतु वे सिकन्दराबाद जा बसे। वहाँ उन्हें गुरुकुल सिकन्दराबाद के संस्थापक पं० मुरारीलाल का सान्निध्य प्राप्त हुआ। फलतः आचार्य श्री ने प्रथम तो प्रारम्भिक विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण की और फिर वे गुरुकुल सिकन्दराबाद में प्रविष्ट हुए। लेकिन यहाँ उन्होंने आर्य समाज के बाल-सुलभ आदर्शों का पालन किया—मुसलमान बालकों को पीटा - उन्हें साले आदि की गालियाँ दे देकर अपने हिन्दुत्व का निर्वाह किया। ग्यारह वर्ष की अवस्था में यहाँ से वे काशी भाग गए। काशी रहकर कुछ समय तक विभिन्न गुरुजनों से संस्कृत व्याकरण और काव्य-शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् वे जयपुर शिक्षा प्राप्त करने के लिए पहुँचे। वहाँ उन्होंने आयुर्वेद तथा साहित्य में शास्त्री तथा आचार्य की उपाधियाँ ग्रहण कीं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आर्य-समाजी-विचारधारा आचार्य श्री की, रग-रग में व्याप्त थी।

शिक्षा समाप्त करके आचार्य चतुरसेन लाहौर के डी० ए० वी० कालेज में प्राध्यापक हो गए। कुछ समय पश्चात् नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और चिकित्सा-कार्य करने लगे। साथ ही साहित्य साधना प्रारम्भ कर दी। आचार्य श्री लाहौर, अजमेर, बम्बई, लखनऊ और दिल्ली में प्रसिद्धचिकित्सक के रूप में कार्य कर चुके थे। चिकित्सा में उन्होंने सहस्रों रुपये मासिक अर्जित किये। परन्तु उनकी साहित्य-साधना की लगन ने उनसे चिकित्सक के कार्य से भी त्याग-पत्र दिलवा दिया। अब वे अहर्निश साहित्य साधना में तल्लीन रहते। साहित्य-महोदधि में वे गहरे पानी पैठे, तभी तो माँ भारती का साहित्य की प्रत्येक विधा से शृंगार करने में सफल हो सके। साहित्य साधना के साथ-साथ ही उन्होंने दर्शन, वेद, जैन, बौद्ध आदि धर्मशास्त्रों का अध्ययन और मनन किया, जिसकी गहनता की पुष्टि हमें इनके ग्रंथों की भूमिकाओं और भारतीय संस्कृति के इतिहास से होती है।

हिन्दी साहित्य का यह चतुर चितेरा ६९ वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हो गया।

— : —

चतुरसेन साहित्य की प्रकाशन-अनुक्रम-सूची

१ हिन्दुओं की छाती पर जहरीली छुरी (निबन्ध) १९११, २ प्लेग (उपन्यास) १९१४, ३ शरीर तालिका (शरीर विज्ञान) १९१५, ४. अपस्मावतरण (चिकित्सा) १५ ५ हृदय की परख (उपन्यास) १८, ६ व्यभिचार (चिकित्सा) १८, ७ अन्तस्तल (हिन्दी का नवप्रथम गद्य काव्य) २१, ८ सत्याग्रह और असहयोग (राजनीति) २१, ९ वनाम स्वदेश (गद्य काव्य २६ १० उत्सर्ग (नाटक) २८, ११. चाँद का तूफानी विशेषांक (फाँसी अंक) २८, १२ पथ्यापथ्य (चिकित्सा) २८, १३ चाँद का सामाजिक विशेषांक (मारवाड़ी अंक) ३०, १४ हिन्दू राष्ट्र का नव निर्माण (समाज) ३०, १५. २१ वनाम ३० राजनीति) ३०, १६ अक्षत (कहानी संग्रह) ३१, १७ गोल सभा (राजनीति) ३१, १८ हृदय की प्यास (उपन्यास) ३२, १९ गदर के पत्र (अनुवाद ३२, २०. मदाम का ब्याह (पूर्णाहुति) (उपन्यास) ३२, २१ आरोग्य शास्त्र स्वास्थ्य चिकित्सा) ३२, २२ ब्रह्मचर्य साधन (स्वास्थ्य) ३२, २३ सुखी जीवन (सामाजिक) ३२, २४ वीरगाथा (कहानी संग्रह) ३२, २५ अमीरों के रोग (चिकित्सा) ३१, २६ पुत्र (सामाजिक) ३२, २७ कन्यादर्पण (हमारी पुत्रियाँ कैसी हों) (सामाजिक) ३२, २८ रजकण (वार्विचन) (कहानी संग्रह) ३२, २९ अमर अभिलाषा (वहते आँसू) (उपन्यास) ३२, ३० आदर्श बालक (कहानी संग्रह) ३३ ३१ वीर बालक (कहानी संग्रह) ३३, ३२ भारत में ब्रिटिश राज्य (इतिहास) ३३, ३३ इस्लाम का विषवृक्ष (भारत में इस्लाम) (इतिहास) ३३, ३४ बुद्ध और बौद्धधर्म (इतिहास) ३३, ३५ धर्म के नाम पर (समाज) ३३, ३६ गाँधी की आँधी (राजनीति) ३४ ३७ अमरसिंह (नाटक) ३४, ३८ आत्मदाह (उपन्यास) ३४, ३९ वेद और उनका साहित्य (धर्म) ३५, ४० प्राणदण्ड (धर्म) ३६, ४१ स्त्रियों का ओज (हिन्दी का सर्वप्रथम ध्वन्यात्मक एकांकी) ३६ ४२ जवाहर (गद्य काव्य) ३६, ४३ अजीतसिंह (गद्य काव्य) ३७ ४४ राजपूत बच्चे (कहानी संग्रह) ३७, ४५. मुगल बादशाहों की अनोखी बातें (कहानी संग्रह) ३८, ४६ सीताराम (नाटक) ३८, ४७. मेघनाद (नाटक) ३८, ४८ सत्याग्रह और असहयोग (गुजराती अनुवाद) ३९, ४९. सिंहगढ़ विजय (कहानी संग्रह) ३९, ५० राजसिंह (नाटक) ३९, ५१. सुगम चिकित्सा (चिकित्सा) ४०, ५२. आरोग्य (चिकित्सा) ४०, ५३ नीलमणि (उपन्यास) ४०, ५४. श्रीराम (नाटक) ४०, ५५ सीताराम (नाटक) ४०, ५६. कामकला के भेद (स्वास्थ्य) ४२, ५७. राधाकृष्ण (एकांकी नाटक) ४६, ५८. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास (साहित्य) ४६, ५९. नवाब ननकू (कहानी संग्रह) ४८, ६०. वैशाली की नगरवधू (दो खण्ड) (उपन्यास) ४८, ६१. हिन्दू विवाह का इतिहास (धर्म) ४८, ६२ मरी खाल की हाय (गद्य काव्य) ४९, ६३. जीवन के दस भेद (सामाजिक) ४९, ६४. तरलाग्नि (राजनीतिक गद्य काव्य) ४९, ६५. हमारे लाल दिन (राजनीति) ४९, ६६ पाँच एकांकी (एकांकी संग्रह) ४९, ६७. नरमेध (उपन्यास) ५०, ६८. रक्त की प्यास (उपन्यास) ५१, ६९. मंदिर की नर्तकी (उपन्यास) ५१, ७०. दो किनारे (उपन्यास) ५१,

७१. बापू घर मे (बा और बापू) (चरित्र) ५१, ७२. गान्धारी (नाटक) ५१, ७३ लम्बग्रीव (कहानी संग्रह) ५२, ७४. लालापल (कहानी संग्रह) ५२, ७५. पीरनाबालिग (कहानी संग्रह) ५२, ७६ मनबन (स्वास्थ्य) ५२, ७७. मौत के पंजे मे जिन्दगी की कराह (राजनीति) ५२, ७८. कैदी (कहानी संग्रह) ५२, ७९. दुखवा मे कासो कहूँ मोरी सजनी (कहानी संग्रह) ५२, ८०. सोने की पर्ती (कहानी संग्रह) ५२, ८१. आवारागर्द (कहानी संग्रह) ५२, ८२. दियासलाई की डिबिया (कहानी संग्रह) ५२, ८३. आरोग्य पाठवली १, २ भाग (स्वास्थ्य) ५२, ८४ पगध्वनि (नाटक) ५२, ८५. अपराजिता (उपन्यास) ५२, ८६ हिन्दी साहित्य का परिचय (साहित्य) ५२, ८७ बुलबुल हजरदास्तां (कहानी संग्रह) ५२, ८८. दही की हाडी (कहानी संग्रह) ५२, ८९. बर्मा रोड (कहानी संग्रह) ५०, ९०. प्रबुद्ध (कहानी संग्रह ५३, ९१ अदल-बदल (कहानी संग्रह) ५३, ९ . भारत के मुक्तिदाता (चरित्र) ५३, ९३. गाण्डीवदाह (काव्य) ५ , ९४. स्त्रियो के रोग और उनकी चिकित्सा (स्वास्थ्य) ५३, ९५ कुमारिकाओ के गुप्त पत्र (स्वास्थ्य) ५३, ९६. अविवाहितो के पेचीदा गुप्त पत्र (स्वास्थ्य) ५३, ९७ धर्मसान (नाटक) ५४, ९८ सफेद कौवा (कहानी) ५४, ९९. राजा साहेब की पतलून (कहानी संग्रह) ५४, १००. कालिन्दी के कूल पर (गद्य काव्य) ५४, १०१ अधेडावस्था का दाम्पत्य स्वास्थ्य विज्ञान) ५४, १०२. वृद्धावस्था के रोग (स्वास्थ्य विज्ञान) ५४, १०३ आहार और जीवन (स्वास्थ्य) ५४ १०४. आप कैसे भरपूर नींद सो सकते हैं स्वास्थ्य) ५४, १०५. बच्चे कैसे पाले जायें (स्वास्थ्य) ५४, १०६. जीजी का रसोईघर (स्वास्थ्य) ५४, १०७ विवाहित जीवन का आनन्द (स्वास्थ्य) ५४, १०८. पत्नी प्रदर्शिका (स्वास्थ्य) ५४, १०९ आलमगीर (उपन्यास) ५४, ११०. सोमनाथ (उपन्यास) ५४, १११. धर्मपुत्र (उपन्यास) ५४, ११२. आप अधिक सुन्दर कैसे बन सकती हैं ५५, ११३. मेहनत, आराम और तन्दुरुस्ती (प्रौढ शिक्षा) ५५, ११४. मक्खियाँ (प्रौढ शिक्षा ५५, ११५ तन्दुरुस्त रहो और बहुत दिन जिओ प्रौढ शिक्षा) ५५, ११६ अच्छा खाओ-अच्छा पिओ (प्रौढ शिक्षा) ५५, ११७ शरीर-कपडे-घर की सफाई प्रौढ शिक्षा) ५५, ११८ मौसमी बुखार-मलेरिया (प्रौढ शिक्षा) ५५, ११९. साफ हवा (प्रौढ शिक्षा) ५५, १२० प्रकाश, हवा का आवागमन (प्रौढशिक्षा) ५५, १२१ छूत की बीमारियाँ उनकी रोकथाम (प्रौढ शिक्षा) ५५, १२२. तमाखू का गुलाम (प्रौढ शिक्षा) ५५, १२३. स्वाभाविक चिकित्साएँ (प्रौढ शिक्षा) ५५, १२४. बरबाद करने वाली दो मुसीबतें कर्जा और शराब (प्रौढ शिक्षा) ५५, १२५ बीमारी फैलाने वाले कीडे मकोडे (प्रौढ शिक्षा) ५५, १२६ क्षमा (नाटक) ५५, १२७. जुआ (नाटक) ५५, १२८ सत्यव्रत हरिश्चन्द्र (नाटक) ५५, १२९. अष्टमंगल (नाटक) ५५, १३०. साहित्य सम्पदा (साहित्य) ५५, १३ मेरा बचपन (चरित्र) ५५, १३२ वय रक्षाम (उपन्यास दो खंड. ५५, १३३ ब्रजभाषा पर मुगल प्रभाव (साहित्य) ५५, १३४. सभ्यता के विकास की कहानी (इतिहास) ५५, १३५ स्त्री सुबोध (गार्हस्थ्य कला) ५५, १३.. गाण्डीवदाह (काव्य) ५५, १३७. आदर्श भोजन (प्रौढ-समाज शिक्षा) ५७, १३८. स्वास्थ्य रक्षा ५७, १३९, नीरोग जीवन ५७, १४० जो रुपया अपने कमाया, वह कहाँ गया ५७, १४१. हमारा शरीर ५७, १४२. बडे आदमियो का बचपन ५७, १४३. अच्छी आदतें ५७, १४४.

धर्मराज (नाटक) ५७, १४५. रसार्णव (भाष्य, चिकित्सा) ५७, १४६. भारतीय संस्कृति का इतिहास (संस्कृति) ५७, १४७ गोली (उपन्यास) ५७,

निम्नलिखित कृतियों का प्रकाशन-समय १९५७ से १९६२ तक है

१४८ बगुला के पंख (उपन्यास), १४९ उदयास्त (उपन्यास, १५० पत्थर युग के दो बुत (उपन्यास), १५१ अदल-बदल (उपन्यास), १५२ लाल पानी (उपन्यास), १५३. खग्रास (उपन्यास) १५४ बिना चिराग का शहर (उपन्यास) १५५. सोना और खून (भाग १) (उपन्यास). १५६ सोना और खून (भाग २) (उपन्यास), १५७ सोना और खून (भाग ३) उपन्यास) १५८ सोना और खून (भाग ४) (उपन्यास) १५९ बाहर भीतर (कहानी संग्रह), १६०. धरती और आसमान (कहानी संग्रह), १६१. सोया हुआ शहर (कहानी संग्रह), १६२ कहानी खत्म हो गई (कहानी संग्रह), १६३. पतिता (कहानी संग्रह) १६४ मुगल बादशाहों की सनक (कहानी संग्रह), १६५. भारतीय जीवन पर एक चिड़िया की नजर (इतिहास), १६६ भारतीय इतिहास की एक झाँकी (इतिहास), १६७ अनमोल बोल (संस्कृति), १६८. हिन्दी साहित्य का परिचय (साहित्य), १६९ मोती (उपन्यास), १७०. आभा (उपन्यास), ७१. अपना इलाज खुद कीजिए (स्वास्थ्य), १७२ मातृकला (स्वास्थ्य)।

चतुरसेन-साहित्य का रेखाचित्र
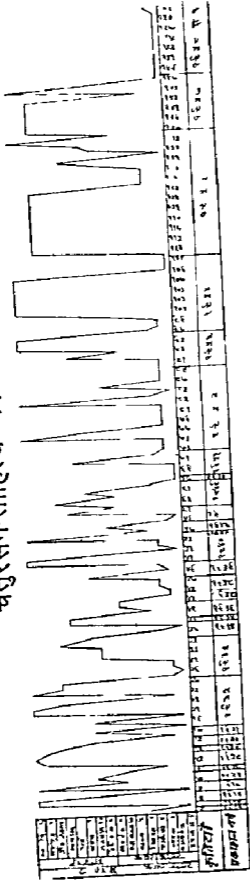
आचार्य चतुरसेन शास्त्री के साहित्य परिचय के रेखाचित्र पर दो शब्द

प्रस्तुत रेखाचित्र पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि आचार्य चतुरसेन की प्रतिभा बहुमुखी थी। भारतीय-साहित्य में और कदाचित् विश्व-साहित्य में ऐसा प्रतिभाशील साहित्यकार उत्पन्न नहीं हुआ जिसकी प्रतिभा के प्रस्फुरण से इतना विशाल वाङ्मय प्रसूत हुआ। साहित्य की कोई विधा ऐसी नहीं बची जिसने आचार्यश्री की लेखनी का संस्पर्श नहीं प्राप्त किया हो।

परन्तु एक और तथ्य की भी पुष्टि होती है इस रेखाचित्र से। आचार्य चतुरसेन का प्रतिभा पुंज विकीर्ण दिखाई पड़ता है। जैसा कि उन्होंने कहा है कि जीवन की सच्ची व्याख्या उपन्यास के माध्यम से हो सकती है उसी के अनुसार यदि उनकी प्रतिभा उपन्यास और वह भी ऐतिहासिक उपन्यास पर केन्द्रीभूत हुई होती तो कदाचित् विश्व-साहित्य में वे अपना सानी नहीं रखते।

संदर्भ ग्रन्थानुक्रमणिका

हिन्दी

१. अजातशत्रु-प्रसाद, प्रयाग, २. अनुसंधान और आलोचना नगेन्द्र, दिल्ली, ३ अनुसंधान और स्वरूप-सावित्री सिन्हा, दिल्ली, ४ अनुसंधान की प्रक्रिया-सावित्री सिन्हा, विजयेन्द्र स्नातक, दिल्ली, ५ आचार्य चाणक्य-हीरालाल दीक्षित, लखनऊ, ६ आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य-सत्यकेतु विद्यालंकार, मसूरी, ७. आदि भारत-अम्बर, ८. आलोचना और सिद्धान्त सोमनाथ गुप्त, दिल्ली, ९. उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा शशिभूषण सिंहल, आगरा, १० ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार-गोपीनाथ तिवारी आगरा, ११. ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य-श्री वी० एस० चिन्तामणि, १२ ओझा निबन्ध संग्रह-गौ० ही० ओझा उदयपुर, १३. काव्य के रूप-गुलाबराय दिल्ली, १४. कुछ विचार-प्रेमचन्द बनारस, १५ चतुरसेन-साहित्य दिल्ली, १६ चन्द्रगुप्त प्रसाद प्रयाग, १७. चिन्तामणि-आचार्य शुक्ल प्रयाग, १८ जय सोमनाथ-अनु० पद्मसिंह शर्मा कमलेश दिल्ली, १९ दिल्ली सल्तनत-डा० आ० ला० श्रीवास्तव आगरा, २० देवांगना-चतुरसेन बनारस, २१ नहुष मैथिलीशरण गुप्त झाँसी, २२ निदर्शिनी-गंगा प्रसाद पाण्डेय प्रयाग, २३ पृथ्वी राज रासो चतुर्थ भाग-चन्दवरदायी उदयपुर, २४ प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक-जगदीश चन्द्र जोशी आगरा, २५ प्राचीन भारत का इतिहास रमाशंकर त्रिपाठी बनारस, २६. प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास-रतिभानु सिंह नाहर इलाहाबाद, २७ पाणिनी कालीन भारतवर्ष-वासुदेवशरण अग्रवाल बनारस, २८. पूर्णाहुति-चतुरसेन वाराणसी २९ पूर्व मध्यकालीन भारत रतिभानुसिंह नाहर इलाहाबाद, ३०. बिना चिराग का शहर-चतुरसेन दिल्ली, ३१ बौद्ध संस्कृति-राहुल सांकृत्यायन कलकत्ता, ३२. भारत का इतिहास भाग २-ईश्वरी प्रसाद इलाहाबाद, ३३ भारत का बृहद इतिहास भाग २-श्रीनेत्र पाण्डेय बनारस, ३४ भारत का सम्पूर्ण इतिहास-श्रीनेत्र पाण्डेय इलाहाबाद ३५. भारत का सामाजिक इतिहास विमलचन्द्र पाण्डेय प्रयाग, ३६. भारतवर्ष का नवीन इतिहास-ईश्वरी प्रसाद प्रयाग, ३७. भारत में मुगल साम्राज्य-एस० आर० शर्मा आगरा, ३८ भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास-एस० आर० शर्मा आगरा, ३९. भारतीय इतिहास-सिद्धेश्वर चन्द्र मेरठ, ४० भारतीय इतिहास की भूमिका-राजबली पाण्डे दिल्ली, ४१ भारतीय मध्य युग का इतिहास ईश्वरी प्रसाद प्रयाग, ४२. भारतीय मध्य युग का संक्षिप्त इतिहास-ईश्वरी प्रसाद बनारस, ४३ भारतीय संस्कृति का इतिहास-कालीशंकर भटनागर आगरा, ४४. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का इतिहास-बी० एम० लूनिया आगरा, ४५. मध्यकालीन भारत-परमात्मा शरण बनारस, ४६ मध्यकालीन भारतीय संस्कृति-गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इलाहाबाद, ४७ मराठों का उत्थान और पतन-गोपाल दामोदर तामसकर अजमेर, ४८, मुगलकालीन भारत-आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव आगरा, ४९, मुगल भारत-गोरखनाथ चौबे इलाहाबाद, ५०. मैं इनसे मिला पद्मसिंह शर्मा कमलेश प्र० सं० दिल्ली, ५१. राज्यश्री-जयशंकर प्रसाद प्रयाग, ५२ राजपूताने का इतिहास-गौरीशंकर हीराचन्द ओझा अजमेर,

५३. राजस्थान का इतिहास-जेम्स टाड इलाहाबाद, ५४ राजस्थानी भाषा और साहित्य मोतीलाल मेनारिया प्रयाग, ५५ रीतिकाव्य की भूमिका-नगेन्द्र दिल्ली, ५६. ललित विक्रम-वृन्दावनलाल वर्मा झाँसी, ५७ लाल पानी-चतुरसेन बनारस, ५७ वृन्दावनलाल वर्मा उपन्यास और कला शिवकुमार मिश्र कानपुर, ५६ वय रक्षाम-चतुरसेन भागलपुर, ६० विश्व इतिहास की झलक-जवाहरलाल नेहरू दिल्ली, ६१ वैशाली की नगरवधू चतुरसेन लखनऊ, ६२ वैशाली की नगरवधू-चतुरसेन भागलपुर ६३ संस्कृति के चार अध्याय-रामधारी सिंह दिनकर दिल्ली, ६४ समीक्षा शास्त्र-दशरथ ओझा दिल्ली, ६५ सह्याद्रि की चट्टानें-चतुरसेन दिल्ली ६६ साहित्य परिचय हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, ६७ साहित्य मीमासा-सूर्यकान्त लाहौर, ६८ साहित्य विमर्श-नरचन्द पण्डित, ६९ साहित्य शिक्षा-पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी बम्बई, ७० साहित्य, शिक्षा और संस्कृति राजेन्द्र प्रसाद दिल्ली, ७१ साहित्य समीक्षा-रामरत्न भटनागर प्रयाग, ७२. साहित्यालोचन श्यामसुन्दर दास प्रयाग, ७३ सूर और उनका साहित्य हरवंशलाल शर्मा अलीगढ, ७४ सोना और खून भाग १-चतुरसेन दिल्ली, ७५ सोना और खून भाग २-चतुरसेन दिल्ली, ७६ सोना और खून भाग ३-चतुरसेन दिल्ली, ७७ सोना और खून भाग ४-चतुरसेन इलाहाबाद, ७८ सोमनाथ-चतुरसेन वाराणसी, ७९. हमारे देश का इतिहास प्रयाग, ८० हरण निमन्त्रण-चतुरसेन भागलपुर, ८१ हिन्दी उपन्यास-शिवनारायण श्रीवास्तव काशी, ८२ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद त्रिभुवनसिंह बनारस, ८३ हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास प्रताप नारायण टडन लखनऊ, ८४. हिन्दी कथा साहित्य पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी बम्बई, ८५ हिन्दी के स्वीकृत शोध-प्रबन्ध-उदयभानुसिंह दिल्ली, ८६ हिन्दी साहित्य श्यामसुन्दर दास प्रयाग, ८७. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास रामकुमार वर्मा प्रयाग, ८८ हिन्दी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल काशी, ८९ हिन्दू पद पादशाही-सावरकर लाहौर ९०. हिन्दू सभ्यता-वासुदेवशरण अग्रवाल दिल्ली।

संस्कृत

९१. अग्नि पुराण, ९२. आपस्तम्ब, ९३ आरण्यक ९४. ऋग्वेद, ९५. कर्पूर मजरी-श्रीराजशेखर, ९६ काम सूत्र-वात्स्यायन, ९७ काव्य प्रकाश मम्मट, ९८. काव्य मीमासा, ९९ काव्यादर्श मम्मट, १०० कौटिल्य, १०१ गौतम, १०२ ताण्ड्य ब्राह्मण, १०३ तैत्तिरीय ब्राह्मण, १०४ तैत्तिरीय संहिता १०५ दीघ निकाय-पालि पब्लिकेशन बोर्ड बिहार १०६ नीति शतक भर्तृहरि, १०७ पुरातन प्रबन्ध संग्रह-सिंघी जैन ग्रन्थमाला, १०८ महाभारत १०९. महावग्ग-पालि पब्लिकेशन बोर्ड बिहार, ११० माघ, १११. रसगंगाधर-पण्डितराज जगन्नाथ बनारस, ११२ वक्रोक्ति जीवितम्-आचार्य कुन्तक, ११३. वाल्मीकि रामायण, ११४ वायु पुराण, ११५ विष्णु पुराण, ११६ शब्दकल्पद्रुम-श्री राधा कान्त बहादुर बनारस, ११७ शार्ङ्गधर पद्धति शार्ङ्गधर बम्बई, ११८. श्री मद्भगवद् गीता, ११९. साहित्य दर्पण श्री विश्वनाथ बनारस, १२० शिवाजी-डा० रामकुमार वर्मा।

अंग्रेजी

121 Alberunis India, E Sachau London 122- Aspects of the Nove E M Forstar 123- Barniers Travels, Constable Westminister 1-4- Bombay Gazetteer 125- Budhist India, Rhys Davids Calcutta 126- Critical Approaches to Litrature, Dr David Daiches New York 127- Dara Shukoh, Dr K R Qanoongo Calcutta 128 Early Chauhan Dynasties, Dr Dashrath Sharma Delhi 129 Early History of India, Smith Oxford 130- Higher Sansksit Grammar, Kale Delhi 131- History as the story of Liberty Benedetto Croce London, 132- History of Aurangzeb, Dr. J N Sarkar 133- History of Dharmashastra Literature, P V Kane Poona 134- History of India as told by its own historians, Elliot & Dowson London 135- History of Indian Civilization, Dr R K Mukerji Bombay 136- History of Marathas, Grant Duff 137- (A) History of the Maratha People, C A Kincaid 138 History of Shahjahan of Delhi, Dr Banarsi Prasad Saxena 139 (The) Idia of History, R C Callingwood Oxford. 140. Imperial Gezetteer of India V A Smith Allahabad 141- India in Kalidas, Dr B S Upadhyaya 142 The Life and Times of Sultan Mahmood of Ghazna), Dr Muhammed Nazim Cambridge 143 (The) Making of Literature, B A Scott James London 144 Models for History, Grenvile Kleiser New York. 145 New International Dictionary of English Language, Webster London 1-6 Oxford History, Smith Oxford 147- (A) Peppys of Moghul India, Manucei London 148 Rise and fall of the Mughul Empire, Dr R. S. Tripathi Allahabad 149 Shivaji and his times, Dr. J. N Sarkar 150- (The) Sociological Imagination, C Wright Mills New York. 151- Tarikh-e Farista, J Briggs Calcutta 152 Travels of Tavernier. 153- Vaishnavism, Shaivism and other minor religious system, R K. Bhandarkar Poona 154- Writing for love or money, Edith Wharton

पत्र, पत्रिकाएं

१५५. आजकल, १५६ आलोचना, १५७. नया पथ, १५८ नागरी प्रचारिणी, पत्रिका, १५९ भारतीय साहित्य, १६०. सरगम, १६१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १६२ साहित्य सदेश ।